मत्स्य-पुराण

[प्रथम खंड]

(सरल भाषानुवाद सहित)



सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन, २० स्मृतियों
एवं १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

बरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक
डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब,
बरेली ।

*

सम्पादक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रथम संस्करण
१९७०

*

मुद्रक
विनोदकुमार मिश्र
राजेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस,
आर्य समाज रोड, मथुरा ।

*

मूल्य
सात रुपये पचास पैसे

भूमिका

भारतीय पुराण-साहित्य बड़ा विस्तृत है। उसने मानव-जीवन के लिये आवश्यक किसी क्षेत्र को अछूता नहीं छोड़ा है। जो लोग समझते हैं कि पुराणों में केवल धार्मिक कथाएँ, ऋषि-मुनि और राजाओं का इतिहास, पूजापाठ की विधियाँ और तीर्थों का वर्णन मात्र है, वे वास्तव में उनसे अनजान हैं। कितने ही पुराणों में औषधि विज्ञान, साहित्य और कला सम्बन्धी विवेचन, गृह निर्माण शास्त्र, साहित्य, संगीत, रत्न-विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, स्वप्न-विचार आदि विविध विषयों की पर्याप्त चर्चा की गई है। 'अग्नि पुराण' में तो विविध विषयक ज्ञान इतना अधिक संग्रह किया गया है कि लोग उसको प्राचीनकाल का 'विश्वकोश' कहते हैं। उसमें लगभग २००–२५० विषयों का परिचय दिया गया है। इस दृष्टि से 'नारद पुराण' भी प्रसिद्ध है जिसमें अनेक प्रकार की उपयोगी विद्याओं का गम्भीर रूप से विवेचन किया गया है। 'गरुड़ पुराण' में चिकित्सा-शास्त्र और रत्न-विज्ञान की बहुत अधिक जानकारी भरी हुई है। पुराणों की इन्हीं विशेषताओं को देखकर प्राचीन साहित्य के एक बहुत बड़े ज्ञाता ने लिखा था—

"पुराणों में भारत की सत्य और शाश्वत आत्मा निहित है। इन्हें पढ़े बिना भारत का यथार्थ चित्र सामने नहीं आ सकता, भारतीय जीवन का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं हो सकता। इनमें आध्यात्मिक, आधि-दैविक, आधिभौतिक सभी विद्याओं का विशद वर्णन है। लोक जीवन के सभी पक्ष (पहलू) इनमें अच्छी तरह प्रतिपादित हैं। ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान नहीं, मन व मस्तिष्क की ऐसी कोई कल्पना अथवा योजना नहीं, मनुष्य-जीवन का ऐसा कोई अंग नहीं, जिसका निरूपण पुराणों में न हुआ हो। जिन विषयों को अन्य माध्यमों से समझने में बहुत कठिनाई

होती है, वे बडे रोचक ढङ्ग से सरल भाषा में, आख्यान आदि के रूप मे इनमे वर्णित हुए हैं।" पर सच पूछा जाय तो पुराणों का यही गुण कुछ 'आलोचको' की निगाह में उनका 'दोष' बन गया है। खण्डन की प्रवृत्ति वाले लेखक और सरसरी निगाह से पढने वाले पाठक उनकी अद्भुत और चमत्कार पूर्ण कथाओ को पढकर तुरन्त शोर मचाने लगते हैं—"देखो. पुराणो मे कैसी गप्पाष्टकें भरी पडी हैं। कहीं ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो एक महीना पुरुष और एक महीना स्त्री रहें और जिनके स्त्री रूप मे सन्तान भी होजाय। कहीं सौ-सौ और दो-दो सौ गज लम्बे मनुष्य भी हुआ करते हैं।"

पर कदाचित् वे यह नहीं जानते कि वैज्ञानिको की खोज के अनुसार पृथ्वी पर आरम्भ का एक युग ऐसा भी था जिसमे सन्तानें नर-मादा द्वारा नहीं होती थी, वरन् किसी भी जीव से दूसरा जीव किसी तत्कालीन प्रणाली से उत्पन्न हो जाता था। निश्चय ही यह स्थिति करोडो वर्ष पहले थी, जब कि मानव-प्राणी तो दूर गाय, भैंस और घोडे-हाथी जैसे पशु भी नहीं थे। पर कुछ भी हो उस समय पृथ्वी पर उन्हीं जीवो का अस्तित्व था, चाहे वे मछली के रूप मे हो और चाहे किसी प्रकार के कीडे-मकोडो, छिपकली जैसे प्राणी आदि के रूप मे। इस वैज्ञानिक तथ्य को पुराने जमाने के साधारण मनुष्यो को, जब ज्ञान-विज्ञान की चर्चा बहुत ही कम फैली थी, समझा सकना असम्भव था। इस दशा मे यदि किसी पुराणकार ने 'इला' नामक राजपुत्र की कहानी गढ कर और उसका सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक व्यक्ति या वंश से जोडकर समझा दिया तो इसमे क्या हानि हो गई? विद्वान् उनका यथार्थ भेद जानते हैं और पौराणिक कथाओं के श्रोता केवल 'पुण्य' के विचार से उन रोचक वर्णनो को सुनते हैं और कुछ लोग उनसे सत्कर्म करने की कुछ शिक्षा भी ग्रहण कर लेते हैं। पर 'अर्द्धदग्ध' जीवो के लिए वे परेशानी का कारण बन जाती हैं, और वे इधर-उधर से दो चार प्रसंगो को लेकर उन्हें

अधूरे रूप में वर्णन करने लगते हैं, और पुराणों के खिलाफ दस-पाँच खरी-खोटी बातें कहकर अपने को 'विद्वान्' समझने का सन्तोष कर लेते हैं।

पौराणिक साहित्य का विस्तार और महत्व—

पर हम पाठकों को बतलाना चाहते हैं कि 'पुराण' वास्तव में ऐसी 'निकम्मी' चीज नहीं है जैसा ये स्वयम्भू विद्वान् उनको सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं। ऊपर जो पुराणों के महत्व का उद्धरण दिया गया है वह भी समस्त आयु वेदों का परिशीलन करने वाले एक विद्वान् का है और वे वेदों तथा पुराणों का समन्वय करके इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि "इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।" अर्थात् पुराणकारों ने मूल वैदिक तथ्यों को सर्व साधारण को समझाने की दृष्टि से ही उनका विस्तार करके नाना प्रकार की कथाओं की रचना की है। इतना ही नहीं पुराणों का दावा तो इससे बहुत अधिक है। 'स्कन्द पुराण' के 'रेवाखंड' में कहा गया है—

आत्मापुराणं वेदानां पृथगङ्गानितानि षट्।
यच्चदृष्टंहि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिभिः किल॥
उभाभ्यां यत्तुदृष्टंहि तत्पुराणेषु गीयते।
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणः स्मृतम्॥

"पुराण वेदों की आत्मा हैं। छः वेदाङ्ग उससे पृथक हैं। जो कुछ वेदों में देखा वही स्मृतियों में भी देखा गया। और वेद तथा स्मृति दोनों में जो कुछ देखा गया वह सब पुराणों में गाया जाता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पुराणों को ब्रह्माजी ने सब शास्त्रों से पहले कहा है।" -

हम इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि जब वेदों को लोकमान्य तिलक जैसे विद्वान् कम से कम दस हजार वर्ष पुराना बतलाते थे, तब पुराणों का रचना काल दो हजार वर्ष के भीतर माना जाता है।

यही बात इन दोनों प्रकार के ग्रन्थों की भाषा की तुलना करने से प्रकट होती है। पर 'स्कन्द पुराण' के लेखक का कथन केवल वर्तमान समय में पाये जाने वाले हस्तलिखित तथा छपे हुए अठारह पुराणों के सम्बन्ध में नहीं है, वरन् पौराणिक शैली के समस्त साहित्य से है चाहे वह लिखा हो अथवा जबानी कहा और सुना जाता हो। इस कथन पर विचार करने से अन्त में हमको यह स्वीकार करना पड़ता है कि वास्तव में वेद जैसी गम्भीर रचनाओं से पहले 'पुराण' जैसी लोक कथाओं का प्रचलन होना स्वाभाविक ही मानना चाहिये। सभी देशों और सभी कालों में इस तरह का 'लोक-साहित्य' ही पहले उत्पन्न और प्रचलित होता है और तत्पश्चात् वही उन्नत और परिष्कृत होते हुए स्थायी और गम्भीर साहित्य के रूप में परिणित हो जाता है। इसी तथ्य को ध्यान में रख कर किसी विद्वान् ने कहा था कि "ससार का सबसे पहला साहित्यकार कोई कहानी कहने वाला ही होगा।"

अब रह गई पुराणों में वर्णित धार्मिक विवरणों को अन्ध-विश्वासों का रूप देकर उनके आधार पर लोगों की अवश्रद्धा को जागृत करना और उसके द्वारा दान तथा पूजा पाठ के नाम पर मनमाना धन वसूल करना। इसके लिये पुराणों को दोष देना व्यर्थ है। यह काम तो प्रत्येक देश के धर्मजीवी (पण्डा-पुजारी) करते आये हैं। चालाक और धूर्त व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति में अपनी स्वार्थ सिद्धि का मार्ग निकाल ही लेते हैं। ऐसे ही लोगों ने पुराणों में तीर्थों तथा दान की अति प्रशसा करदी और उनमें 'रत्न पर्वत दान' 'भूमण्डल दान' 'सप्त समुद्र दान' जैसे अपूर्व दानों का विधान भी सम्मिलित कर दिया। इस दोष का उत्तरदायित्व एक विशेष मनोवृत्ति के व्यक्तियों पर है जो सदा से मौजूद हैं और जब तक एक बड़ी 'ज्ञान-क्रान्ति' न हो जायगी तब तक बने रहेंगे।

पुराणों का परिवर्तित स्वरूप—

पुराणों का विवरण लिखते हुए 'मत्स्यपुराण' तथा अन्य पुराणों

में भी यह कहा गया है कि पहले एक ही पुराण था, फिर व्यास जी ने उस लोगों की सुविधा के लिये अठारह पुराणों के रूप में प्रस्तुत किया। पर यह संख्या अठारह पर ही समाप्त नहीं हो गई। अठारह 'महापुराणों' के पश्चात् अठारह 'उप-पुराण' भी तैयार हो गये और उनके बाद भी लोगों ने 'लघु पुराणों' का निर्माण किया। वास्तव में अब 'पुराण' शब्द इस प्रकार के धार्मिक कथा-ग्रन्थों के लिए काम आने लगा है। इसीलिये इस आधुनिक युग में किसी लेखक ने 'गांधी-पुराण' भी लिखकर तैयार कर दिया है।

पर इन बातों से 'पुराणों' का महत्व कम नहीं हो जाता। यदि हम पुराणों के प्रचलित संस्करणों का भी अध्ययन करें तो तरह-तरह की कथाओं के बीच में अध्यात्म, ब्रह्म-ज्ञान, विज्ञान, चरित्र, नीति आदि के सर्वोच्च तत्व मिले-जुले दिखाई पड़ते हैं। कहने के लिए सभी पुराण मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, स्नान-दान आदि के मुख्य प्रचारक हैं पर साथ ही उनमें से अधिकांश में सृष्टि के मूल स्वरूप का जैसा वर्णन पाया जाता है वह आधुनिक विज्ञान की पहुँच से कहीं अधिक ऊँचा है। उनमें सृष्टि विज्ञान और प्रलय (सर्ग और प्रति-सर्ग) का वर्णन करते हुए सदैव यही प्रतिपादित किया है कि इस समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का आविर्भाव एक अव्यक्त और निराकार तत्व से हुआ है, जिसका कोई आदि अन्त नहीं है और न जिसके विस्तार की कोई सीमा है। समस्त सूक्ष्म और स्थूल पञ्चभूत, समस्त देवता और सांसारिक प्राणी उसी में से उत्पन्न होते हैं और कुछ समय तक पृथक रूप में दिखाई पड़कर अन्त में उसी में लय हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण आदि समस्त देवता उसी एक मूलशक्ति के विभिन्न रूप और नाम हैं।

यद्यपि उस अव्यक्त और निराकार शक्ति की उपासना का वास्तविक मार्ग योग और ध्यान है, पर यह बहुत ही थोड़े लोगों के लिये सम्भव हो पाता है। शेष सामान्य स्तर के व्यक्ति किसी अव्यक्त और

निराकार शक्ति का ध्यान कर सकने मे असमर्थ होते हैं। ऐसे ही लोगो की सख्या १०० मे से ६० होती है। इसलिये उनकी सुविधा की दृष्टि से साकार मूर्तियो की योजना की गई है और उनकी प्रतिष्ठा के लिये मन्दिरो का निर्माण और तीर्थों की स्थापना आवश्यक हुई। जिन पुराणो मे किसी साधारण मन्दिर मे मूर्ति दर्शन करने या गङ्गा अथवा नर्मदा जैसी नदी मे एक बार स्नान करने से करोडो वर्ष तक स्वर्ग सुख भोगने का लालच दिखाया गया है, उन्ही मे सृष्टि की वास्तविकता के उपरोक्त तर्क और विज्ञान के अनुकूल रूप का भी विवेचन किया गया है।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आरम्भ मे पुराणो का उद्देश्य जन साधारण के बीच धार्मिक तत्त्वो का प्रचार करना ही था। यह भी असम्भव नही है कि पुराणो की परम्परा का श्रीगणेश करने वाले वेदव्यास ही हो। इस अनुमान का कारण यह है कि व्यासजी का 'महाभारत' भी एक प्रकार का पुराण ही है, यद्यपि उसमे धार्मिक बातो के साथ राजनीतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक विषयो का विवेचन भी बहुत अधिक परिमाण मे मिलता है, जिससे उसे 'इतिहास' कहा जाने लगा है। पर हमारे कथन का आशय यह नही कि व्यासजी ने पुराणो की जो रूपरेखा बनाई वही अभी तक स्थिर है। भाषा और लिपि मे हजार पाँच सौ वर्ष मे ही इतना अन्तर पड जाता है कि अधिकाश ग्रन्थो का नया सस्करण करने की आवश्यकता पड जाती है। फिर पुराणो मे तो यह भी लिखा है कि व्यासजी ने एक ही पुराण सहिता बनाई और उसका विस्तार उनके शिष्य और फिर उनके भी शिष्यों ने किया—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभि कल्पशुद्धिभिः।
पुराण सहिता चक्रे पुराणार्थ विशारदः॥
प्रख्यातो व्यास शिष्योऽभूत्सूतो वै रोमहर्षण।
पुराण सहिता तस्मै ददौ व्यासो महामति॥

सुमतिरग्निवर्चाश्च मित्रयुश्शांसपायनः ।
अकृतव्रण सावर्णी षट् शिष्यास्तस्य चाभवन् ॥
काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिश्शांसपायनः ।
रोमहर्षणिका चान्या तिसृणां मूल संहिता ॥

अर्थात्—"फिर पुराणों के ज्ञाता व्यासजी ने आख्यान, उपाख्यान गाथा और कल्पशुद्धि से युक्त 'पुराण-संहिता' की रचना की। इस पुराण संहिता का अध्ययन व्यासजी ने अपने सुप्रसिद्ध शिष्य रोमहर्षण सूत को कराया। रोम हर्षण के छः शिष्य हुए—सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, शांसपायन, अकृतव्रण और सावर्णि। इनमें से काश्यप गोत्रीय अकृतव्रण सावर्णि और शांसपायन ने पृथक्-पृथक् तीन संहितायें रचीं। इन तीनों का मूल आधार रोमहर्षण द्वारा रचित एक संहिता थी।

इसके पश्चात् भी इन सबकी आगामी शिष्य मण्डली में से अनेक विद्वान् अपने देश-काल के अनुसार इन संहिताओं की वृद्धि करते रहे, उनमें नये-नये प्रेरणाप्रद आख्यान और उपाख्यान रचकर सम्मिलित करते रहे। ये सब कथावाचक शिष्य 'सूतजी' या 'व्यासजी' कहलाते थे। इनमें सभी प्रकार के व्यक्ति थे। कुछ विशेष रूप से धर्मपरायण और परमार्थी थे तो कुछ में जाति परायणता और सामाजिकता की मात्रा अधिक थी। यदि ऐसे कथावाचकों ने तीर्थ यात्रा, स्नान-दान और व्रतोत्सव वाले अंगों को यथाशक्ति बढ़ाकर अपने श्रोताओं को अधिकाधिक 'दान' देने की प्रेरणा की हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अब हम अठारहों पुराणों पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं और उनकी विषय सूचियों का विवेचन करते हैं, तो हमको यह प्रतीत होने लगता है कि सब पुराण एक ही दृष्टिकोण से नहीं रचे गये हैं। किसी में धर्म-साधन की प्रधानता है, किसी ने जप-तप द्वारा आध्यात्मिकता का महत्त्व विशेष बतलाया है और किसी ने हर तरह के दान-पुण्य पर ही अधिक बल दिया है। 'मत्स्यपुराण' में तीसरा श्रेणी के दर्शन बहुत

अधिक सख्या मे थे। यद्यपि हमने वर्तमान सस्करण मे उनमें से अधिकांश को छोड दिया है, तो भी नमूने के तौर पर जिन 'व्रत' और 'दानो' का वर्णन आ गया है उनसे पाठक हमारे कथन की यथार्थता का अनुमान कर सकेंगे।

पुराणो की परमार्थ और अध्यात्म भावना—

पर इस एक बात से ही हम पुराणो की भलाई-बुराई का निर्णय नही कर सकते। हम इस बात को पूरी तरह नही समझ सकते कि जिस समय—अब से एक-डेढ हजार वर्ष पहले पुराण-साहित्य का इस प्रकार विस्तार किया गया, देश और समाज की क्या परिस्थिति थी। सम्राट अशोक से लेकर पृथ्वीराज चौहान तक के शासन काल के बीच देश की क्या राजनीतिक और सामाजिक स्थिति थी, इसका पता इतिहास ग्रथो से बहुत कम लगता है। पर पुराणो के विवरणो को समझने मे यदि अन्तर्दृष्टि से काम लिया जाय तो यह प्रतीत होता है कि इस हजार-बारह सौ वर्ष के युग मे एक देशव्यापी क्रांति होकर नये समाज का सगठन हो रहा था। बौद्ध धर्म की प्रबलता ने प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था को तोड-फोड दिया था, उसी के भग्नावशेषो पर हमारे धर्माचार्य पुनः हिन्दू-धर्म-भवन के पुनर्निर्माण का प्रयत्न कर रहे थे। इस बीच मे देश की अस्त-व्यस्त राजनीतिक अवस्था को देखकर यवन, हूण, शक, सिथियन आदि विदेशी जातियों ने आक्रमण भी किया था। उन आक्रमणकारियो मे से लाखो व्यक्ति यहाँ बस भी गये और देश के किसी भू भाग पर उन्होंने बहुत वर्षों तक शासन भी किया। ऐसी परिस्थिति मे जो पुराण ग्रन्थ रचे गये अथवा प्रचलित किये गये उनमे पूर्ण रूप से विशुद्ध वैदिक आदर्शों को स्थिर रखना कैसे सभव हो सकता था?

यूनानी-सम्राट सिकन्दर के आक्रमण तथा बुद्ध धर्म की प्रभुता होने से पूर्व, देश की वैदिक सस्कृति अक्षुण्ण थी। उसमे जो परिवर्तन होते थे वे आन्तरिक कारणो के आधार पर ही होते थे। पर विदेशियो के

आक्रमण और उनमें से लाखों, करोड़ों व्यक्तियों के भारतीय समाज में मिल जाने के पश्चात् परिस्थिति बहुत कुछ बदल गई और उसके बाद जो धार्मिक संगठन बनाया गया और धार्मिक नियम प्रचलित किये गये उनमें देश काल की बदली हुई परिस्थिति का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। संसार के अन्य धर्म तथा जातियाँ तो इस प्रकार के आक्रमणों से सर्वथा ही नष्ट हो गये। जैसे यूनान, रोम, और ईरान की प्राचीन संस्कृति और धर्म का नाम ही इतिहास में शेष रह गया है। पर यह वैदिक धर्म की ही विशेषता थी कि विदेशी आक्रमणों और युद्ध धर्म द्वारा उत्पन्न गृह-कलह के भयंकर आघात को सह कर भी उसने अपनी 'आत्मा' की रक्षा करली। हमारे तत्कालीन धर्माचार्यों ने नवीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण बाह्य पूजा, उपासना, कर्मकाण्ड की विधियों में परिवर्तन किया, वैदिक यज्ञों का स्थान मंदिर और तीर्थों की भक्तिमार्गीय उपासना-पद्धति ने ग्रहण किया, पर साथ ही वैदिक सिद्धान्तों और आदर्शों को उनमें बराबर समाविष्ट किया गया, प्रत्येक विधि-विधान में उन्हीं की घोषणा की गई। साथ ही समस्त पौराणिक-धर्म कलेवर का लक्ष्य भी वैदिक आध्यात्मिक सिद्धान्त ही रखे गये। इस तथ्य का विवेचन हमको "वायु-पुराण" के अंतिम अध्याय "व्यास सदाय वर्णन" में मिलता है। उसमें पुराणों में वर्णित लौकिक धर्म विधियों का उल्लेख करते हुए *अन्त में मानव आत्मा के आध्यात्मिक लक्ष्य को ही प्रधानता दी गई है।* उसमें स्पष्ट कहा गया है—

'*हे सूतजी! आप तो भगवान के सच्चे भक्त हैं। व्यासजी की* कृपा से आपने धर्म शास्त्रों का पूर्णतः अध्ययन कर लिया है। हे निष्पाप आपने अठारहों पुराणों और इतिहासों का आदि से अन्त तक अच्छी तरह वर्णन किया है। इन पुराणों में आपने बहुत से धर्मों का निरूपण किया है। उसमें गृहस्थ, त्यागी, सन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, स्त्री, शूद्र आदि के धर्म कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य

द्विजातियो तथा इनसे उत्पन्न जो अन्य संकर जातियाँ—गंगा आदि महा नदियाँ और यज्ञ, दान, तप, दान, यम-नियम, योगाभ्यास, सांख्य-सिद्धान्त, भक्ति-मार्ग, ज्ञानमार्ग आदि सबका आपने वर्णन किया है। कर्मों और उपासना द्वारा चित्त की शुद्धि और धर्म प्राप्ति के सम्बन्ध मे भी आपने बतलाया है। आपने ब्राह्म, शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर (सूर्योपासक) तथा अर्हत् (जैन बौद्ध आदि)—इन छः प्रकार के दर्शनो का भी परिचय दिया है। इन सब तथा अन्य प्रकार के विषयो का पुराणो मे आपने विवेचन किया है। अब हम आपसे कहना चाहते हैं कि इनसे आगे भी क्या अन्य कोई उत्तम विषय जानने को शेष रह जाता है?" प्रश्नकर्त्ता मुनियो ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा—

न ज्ञायेत यदि व्यासो गोपायदथ भवान्।
अत्र न संशय छिन्धि पूर्ण. पौराणिको यतः॥

अर्थात्—"यदि व्यासजी ने किसी विषय का वर्णन न किया हो अथवा आपने ही कुछ गोपन कर लिया हो—न बतलाया हो, तो अब उसे भी कहकर हमारे संशय को दूर कीजिए।"

सूतजी ने कहा—"हे शौनक! आप ध्यान पूर्वक सुनो, मैं आपके 'सुदुर्लभ' (महत्वपूर्ण) प्रश्न का उत्तर देता हूँ। पराशर मुनि के पुत्र महर्षि व्यास देव ने समस्त वेदो के अर्थ से समन्वित पौराणिक कथा की रचना करके फिर चित्त मे विचार किया कि मैंने वर्णों तथा आश्रमो के पालन करने वालों के धर्म का भली भाँति वर्णन कर दिया है और वेद से अविरोध रखते हुए बहुत प्रकार के मुक्ति मार्गों का भी निरूपण कर दिया है। सूत्रो की व्याख्या करते हुये जीव, ईश्वर और ब्रह्म का भेद भी प्रकट किया है और श्रुति (वेदो) के सिद्धान्तानुसार परब्रह्म का स्वरूप भी बतलाया है। एक मात्र परम ब्रह्म ही अविनाशी तत्व है और उसी को प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचारी से लेकर सन्यासी तक सबर

आश्रमों के व्यक्ति 'व्रत' (धर्माचरण) किया करते हैं। मैं वेदों के इस सिद्धान्त को भी जानता हूं कि यह समस्त विश्व ब्रह्म से पृथक् नहीं है वरन उसी से इस प्रकार उत्पन्न होता और मिटता रहता है जैसे बहते हुए फेनिल जल में बुलबुले उठते और टूटते रहते हैं। पर किसी-किसी स्थान पर यही सुनने में आता है कि इस परम ब्रह्म के ऊपर भी 'गोलोक' में भगवान् कृष्ण दीप्यमान होते हैं। इसका रहस्य जानना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।''

तब व्यास जी बहुत कुछ ऊहापोह करने पर भी इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर न पा सके तो उन्होंने निश्चय किया कि इसका निर्णय केवल तप द्वारा हो सकता है। तब वे सुमेरु पर्वत की एक गुफा में जा बैठे और दीर्घकाल तक समाधि अवस्था में ध्यान करते रहे। अन्त में उनके सम्मुख वेद मूर्तिमान रूप में प्रकट हुए और उन्होंने कहा—

हे व्यास ! आप महान् प्राज्ञ हैं, शरीर धारण करने पर भी आप 'विष्णु आत्मा' हैं। आप अजन्मा होकर भी संसारी प्राणियों के उद्धार की इच्छा से यह सब कर रहे हैं। हमारा ठीक अर्थ वही है जो आपने प्रकट किया है। पुराणों, इतिहासों और गूढ़ ग्रन्थों में उसे आपने अनेक प्रकार से प्रकट किया है (ऐसा पात्र भेद से किया गया है)। तो भी हम आपके प्रश्न का उत्तर देते हैं कि परब्रह्म ही अविनाशी तत्व है और वही कारणों का भी कारण है। वह आत्मस्वरूप पुष्प की गन्ध की भांति सदैव स्थिर रहता है। महाप्रलय हो जाने पर उस अक्षर ब्रह्म से परे केवल 'रस' रहता है। पर हम शब्दात्मक होने से उस शब्दातीत तत्व का वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं।"

इस प्रकार पुराणों में सामान्य बुद्धि के मनुष्यों के लिये मन्दिर, तीर्थ आदि का माहात्म्य-वर्णन से लेकर पूर्ण आत्मज्ञानियों के लिए अक्षर-तत्व और 'रस' (भगवद्भक्ति और विश्वप्रेम) का भी निरूपण कर

दिया गया है। उनमे धर्म-साधन के जो अनेक मार्ग बतलाये हैं उनका एक कारण तो सम्प्रदाय भेद है और दूसरा कारण उपासक की योग्यता और शक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति उपनिषदों मे वर्णित आत्म तत्व और ब्रह्म-ज्ञान तथा माया-सिद्धान्त को हृदयङ्गम नही कर सकता। इसलिये पुराणकारों ने उसे अनेक प्रकार से सरल रूपों मे वर्णित किया है जिससे प्रेरणा लेकर हर श्रेणी और योग्यता के व्यक्ति न्यूनाधिक अंशो मे धर्माचरण करते रहे। धर्माचरण ही व्यक्ति और समाज के उत्थान तथा कल्याण का मुख्य साधन है, और उसमे यथाशक्ति लगे रहना मानव मात्र का कर्त्तव्य है।

'मत्स्य पुराण' की विशेषताएं —

इस प्रकार के पुराण-साहित्य मे "मत्स्यपुराण" का दर्जा उल्लेखनीय है। एक तरफ तो इसमे व्रत, पर्व, तीर्थ आदि मे अधिकाधिक दान देने की प्रेरणा की है और दूसरी तरफ राजधर्म, शासन व्यवस्था, गृह निर्माण, मूर्तिकला, शान्ति विधान, शकुन-शास्त्र आदि जीवनोपयोगी विषयों का भी विशद रूप मे विवेचन किया है। भारतीय साहित्य मे नारी जाति की गरिमा का परिचय देने वाला प्रसिद्ध 'सावित्री उपाख्यान' मुख्य रूप से इसी मे विस्तार पूर्वक दिया गया है। वाराणसी, हिमाचल, नर्मदा आदि की प्राकृतिक शोभा का काव्यमय वर्णन साहित्यक दृष्टि से उच्चकोटि का माना जा सकता है। और भी कितने ही विषय ऐसे हैं जो इस पुराण की उत्कृष्टता तथा उपादेयता को प्रमाणित करते है। यद्यपि अब परिस्थितियों के बदल जाने से अधिकांश पाठक उनकी उपयोगिता बहुत कम अनुभव कर सकेंगे, पर अब से कुछ सौ वर्ष पहले ही हमारे देश का एक बड़ा भाग उन्हीं का अनुसरण करने वाला था।

राजधर्म वर्णन—

मत्स्य पुराण का 'राजकृत्य' और 'राजधर्म' वर्णन विशेष रूप से महत्व रखता है। इसमे केवल प्रजा-पालन करने और दान-पुण्य का ही

जिक्र नहीं किया गया है, वरन् खास तौर पर इस विषय का व्यावहारिक ज्ञान दिया गया है। यद्यपि वर्तमान वैज्ञानिक-युग में ये बातें बहुत अधिक बदल गई हैं—तलवार तथा तीरों के युद्ध के बजाय वायुयानों से बम वर्षा और राकेटों से युद्ध होने का जमाना आ गया है, तो भी अब से दो-चार सौ वर्ष पहले तक भारतीय नरेशों के लिये राज व्यवस्था और शासन सञ्चालन के ये नियम और विधियाँ ही उपयोग में आती थीं। प्राचीनकाल में राज्य का पूरा अस्तित्व एक मात्र राजा पर ही रहता था। यदि उसे किसी भी उपाय से नष्ट कर दिया जाय तो सारी राज-व्यवस्था खण्ड-खण्ड हो जाती थी। इसलिये अन्य बातों के साथ राजा को अपनी सुरक्षा के लिये भी सदैव सजग रहना पड़ता था। इस सम्बन्ध में 'मत्स्य पुराण' का निम्न वर्णन द्रष्टव्य है।

"राजा को सदैव कौए के समान शंका युक्त रहना चाहिये। बिना परीक्षा किये राजा को कभी भोजन और शयन नहीं करना चाहिये। इसी भाँति पहले से ही परीक्षा करके वस्त्र, पुष्प, अलंकार तथा अन्य वस्तुओं को उपयोग में लाना चाहिये। कभी भीड़भाड़ में न घुसना चाहिये और न अज्ञात जलाशय में उतरना चाहिये। इन सबकी परीक्षा पहले विश्वासी पुरुषों द्वारा करा लेनी चाहिये। राजा को उचित है कि अनजान हाथी और घोड़े पर कभी सवार न हो और न किसी अज्ञात स्त्री के सम्पर्क में आवे। देवोत्सव के स्थान में उसे निवास करना नहीं चाहिये। अपने राज्य तथा दूसरे राज्यों में भी उसको आने हुये विचक्षण बुद्धि वाले, कष्ट सहिष्णु और संकट से न घबड़ाने वाले, गुप्तचरों (जासूसों) को नियुक्त करना चाहिये जो उसे सब प्रकार के रहस्यों की सूचना देते रहें। फिर भी राजा को किसी एक ही गुप्तचर के कथन पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिये। जब दो-चार गुप्तचरों की रिपोर्ट से उस बात का समर्थन हो जाय तब उस पर भरोसा करे।"

इस वर्णन में आश्चर्य या अविश्वास करने की कोई बात नहीं

है। अन्य लोगों से संघर्ष करने वाले और दूसरों का स्वत्व अपहरण करने वाले शासकों को प्रति ऐसे खतरे से ही रहती है। पुरानी बातों को छोड़ दीजिये वर्तमान समय में भी जर्मनी के डिक्टेटर हिटलर को अपनी रक्षा के लिये, अपकी शकल, सूरत से मिलते हुए और वैसी ही पोशाक तथा रंग ढंग वाले कई व्यक्ति अपने निवास स्थान में रखने पड़ते थे; जिससे कोई जल्दी ही असली हिटलर को पहिचान कर आक्रमण न कर सके। इसी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था बालकन प्रदेश के और भी कई शासक रखते थे, जहाँ षडयंत्रकारियों और गुप्त घातकों का अधिक ज़ोर था। अब भी ऐसे बड़े शासकों के प्राण-नाश के लिए तरह-तरह की चालाकियों से काम लिया जाता है। रूस के जार को मारने के लिये षडयंत्रकारियों ने एक बड़ी घन्टा घड़ी तैयार की थी जिसके भीतर डाइनामाइट का भयंकर बम छुपा था। इस घड़ी को गुप्त रूप से राजमहल (विण्टर पैलेस) के किसी कमरे में लगवा दिया गया। एक नियत समय पर जब उसका घंटा बजा तो उसकी चोट से बम फूट गया और महल का एक भाग उड़ गया। जब इस जन-जागृति के युग में ऐसी घटनायें संभव हैं तो प्राचीनकाल के एकतन्त्र नरेशों को सावधान रहने की कितनी अधिक आवश्यकता थी, इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

प्राचीन काल की सैनिक व्यवस्था—

यह तो हुआ अपनी शारीरिक रक्षा का वर्णन। अब राज्य की रक्षा के लिये इससे कहीं अधिक तैयारियाँ करनी पड़ती हैं। 'मत्स्य-पुराण' के अनुसार दुर्ग या किले छः प्रकार के होते हैं—धनुर्दुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वार्दुर्ग, जलदुर्ग और गिरिदुर्ग। इनमें से अपनी परिस्थिति के अनुसार किसी एक प्रकार का किला बनवा कर उसमें रक्षा की सब प्रकार की सामग्री इकट्ठी करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में पुराणकार ने अस्त्र-शस्त्रों तथा अन्य सामग्री की जो सूची दी है, उससे हम प्राचीन काल के युद्धों के स्वरूप का बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं—

"दुर्ग में सभी प्रकार के आयुधों का संग्रह करना अत्यावश्यक है। इसके लिये राजा को धनुष, तीर, तलवार, तोमर, कवच, लट्ठ, फरसा, परिघ, पत्थर, मुगदर, त्रिशूल, पट्टिश, कुठार, प्राश, भाला, शक्ति, चक्र, चर्म आदि का संग्रह करना आवश्यक है। कुदाल, क्षुर, बेंत, घास-फूस और अग्नि की भी व्यवस्था रहे। ईंधन और तेल का पूरा संग्रह होना चाहिये।"

युद्धकाल में सेना के लिये खाद्य और घायलों की चिकित्सा के लिये औषधियों का संग्रह भी आवश्यक है। इसका वर्णन करते हुये कहा है—"जौ, गेंहू, मूंग, उर्द, चावल आदि सब प्रकार के अन्न इकट्ठे किये जायें। सन, मूंज, लाख, सुहागा, लोहा, सोना, चांदी, रत्न, वस्त्र आदि सभी आवश्यक वस्तु, जो यहां कही गई हैं और नहीं भी कही गई हैं, राजा द्वारा संचित की जानी चाहिये। सब प्रकार की वनस्पतियां तथा औषधियां जैसे—जीवकर्षभ, काकोल, आमलकी, शालपर्णी, मुद्गपर्णी माषपर्णी, सारिवा, बला, धारा, स्वसन्नी, वृष्या, बृहती, कण्टकारिका, शृंगी, शृंगाटकी, द्रोणी, वर्षाभू, दर्भ, रेणुका, मधुपर्णी, विदारीकन्द, महाक्षीरा, महातपा, सहदेई, कटुक, एरण्ड, पर्णी, शतावरी, फल्गु, सर्जरसाष्टिका, शुक्रति शुक्रा, अश्मरी, छत्रातिछत्रका, वीरणा, इक्षु, इक्षुविकार (सिरका), मिश्री, अश्वरोधक, मधुक शतपुष्पा, मधूलिका, मधूर, पीपल, ताल, आत्मगुप्ता, कटुफला, दाडिमा, राजक्षीपकी, राजसर्षप (सरसों), धान्याम्ल, उत्कटा, कालशाक, पद्मबीज, गोवल्ली, मधुवल्लिका, शीतपाकी, कुबेराक्षी, काकजिह्वा, उत्पलिका भद्रुप, गुडमानक, पुनर्नवा, कसेरू, काश्मीरी, बल्या, खजूर, सेमर, सतनुष धान्य, शमीधान्य, क्षीर, क्षौद्र, तक्र, तैल, वसा, मज्जा, घृत, नीम, आरग्वध, सुरा, आसव, मद्य, मण्ड आदि सभी का संग्रह किया जाय।"

यह सूची बहुत बड़ी—इससे लगभग चार-पाँच गुनी है। हमने केवल थोड़े से नाम चुन कर दे दिये हैं, जिससे पाठक अनुमान कर सकें कि उस समय भी चिकित्सकों को जड़ी–बूटियों का पर्याप्त ज्ञान था। आजकल भी युद्धक्षेत्र में सेनाओं के साथ बड़े-बड़े अस्पताल रखे जाते हैं, जिनमें सैंकडों डाक्टर और नर्सें काम करती हैं। उनमें औषधियों का भी बड़ा भण्डार रहता है, जिसमें हजारों तरह के इन्जेक्शन, कैपसूल, टैबलेट, टिंचर, एसिड आदि होते हैं। पहले जंगल की वनस्पतियों अपने असली रूप में ही अधिकतर काम में लाई जाती थी, अब इनको वैज्ञानिक प्रक्रिया से सारस्प में बदल कर इन्जेक्शन, टैबलेट आदि के रूप में बना दिया जाता है। साथ ही घावों की चिकित्सा के लिए घी, तेल, चर्बी, मज्जा, अन्तड़ी, हड्डी आदि का प्रयोग भी किया जाता था।

योग्य राज्य कर्मचारियों का चुनाव:—

पर इन सब बातों से भी अधिक महत्वपूर्ण है योग्य राज्य-अधिकारियों और कर्मचारियों का चुनाव। इस प्रकरण के आरम्भ में ही यह कहा गया है कि "चाहे कोई छोटा कार्य भी क्यों न हो पर उसे किसी अकेले व्यक्ति द्वारा पूरा किया जा सकना बड़ा कठिन होता है। फिर राज्य शासन तो परम विशाल और महत्व का कार्य है। अतएव नृपति को स्वयं ही ऐसे कुलीन सहायकों का वरण करना चाहिए जो शूरवीर, उत्तम जाति के, बलशाली और श्री सम्पन्न हो। इस सम्बन्ध में राजा को यह ध्यान रखना चाहिये कि सहायक रूप और अच्छे गुणों से सम्पन्न सज्जन, क्षमाशील, सहिष्णु, उत्साही, धर्म के ज्ञाता और प्रिय वचन बोलने वाले हो।

"सेनापति राजा का परम सहायक होता है। वह कुलीन, शीलस्वभाव से युक्त, धनुर्विद्या का महान् ज्ञाता, हाथियों और घोड़ों की शिक्षा में प्रवीण, शकुन–शास्त्र को जानने वाला, चिकित्सा के सम्बन्ध में

ज्ञान रखने वाला, कृतज्ञ, कर्मशूर सहिष्णु, सत्य प्रिय, गूढ तत्वों के विधान का ज्ञाता हो। ऐसे विशिष्ट गुणों से युक्त व्यक्ति को सेनाध्यक्ष बनाना चाहिए। राजा का दूत ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो दूसरों के चित्त के भावों को ठीक तरह समझता रहे। वह अपने स्वामी के कथन के आशय को ठीक ढंग से प्रकट करने वाला, देश भाषा का विद्वान् वाग्मी साहसी और देश-काल की परिस्थिति को समझने वाला होना चाहिये, राजा के अंगरक्षक हर तरह से मुस्तैद, बहादुर, दृढ राजभक्त और धैर्यवान् हो। सन्धि और विग्रह का निर्णय करने वाला अधिकारी (विदेश सचिव) नीति शास्त्रों का पंडित, देशभाषाओं का विद्वान्, षड्गुण का ज्ञाता और परम व्यवहार कुशल होना चाहिये। आय व्यय विभाग का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति हो जो देश की उपज से अच्छी तरह परिचित हो। रसोई घर का अध्यक्ष पाकशास्त्र के साथ ही चिकित्साशास्त्र का भी पूर्ण ज्ञाता हो।"

'मत्स्यपुराण' में राजा के कर्तव्यों और राज्य व्यवस्था का जो वर्णन किया है उससे विदित होता है कि पुराने जमाने में भी राजाओं का जीवन वैसा सुखद और ऐश आराम का न था, जैसा अनजान लोग कल्पना किया करते हैं। निस्सन्देह उसके सर पर रत्नजटित मुकुट होता था वह सोने के सिंहासन पर बैठता थी और उसके महल में बीसियों रानियां और सैकड़ों दास-दासी होते थे, पर वहां सदा प्राणों का खटका भी बना रहता था। जो राजा इन कर्तव्यों की अवहेलना करते थे, और राग-रंग में डूब कर कुशासन करने लगते थे वे प्रायः दूसरे राजाओं के आक्रमण से नष्ट-भ्रष्ट हो जाते थे। इस लिये उस समय राजाओं को और नहीं तो अपनी सुरक्षा के ध्यान से ही प्रजापालन और न्यायुक्त व्यवहार का ध्यान रखना पड़ता था, जिससे उनकी स्थिति सुदृढ बनी रहे और वे बाहरी आक्रमणों का मुकाबला सफलता पूर्वक कर सकें।

पुरुषार्थ की प्रधानता—

हमारे उपरोक्त मन्तव्य की पुष्टि पुराणकार ने भी एक अन्य प्रकार से की है। उसने 'राज धर्म' के प्रसङ्ग मे एक अध्याय में यह प्रश्न उठाया है कि "दैव और पुरुषार्थ मे कौन बडा है?" इसके उत्तर मे मत्स्य भगवान् द्वारा कहलाया गया है कि "दैव नाम वाला जो फल प्राप्त होता है वह भी अपना पूर्व कर्म ही होता है, इसलिये विद्वानों की सम्मति मे पुरुषार्थ ही सर्व प्रधान है। यदि दैव प्रतिकूल भी होता है, तो उसका पौरुष के द्वारा हनन हो जाता है। जो श्रेष्ठ आचार वाले और सदैव उत्थान का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति होते हैं पुरुषार्थ से प्रतिकूल दैव को बदल डालते हैं। यह सत्य है कि कुछ उदाहरणो मे अनेक व्यक्तियों को बिना पुरुषार्थ भी अच्छा फल, सौभाग्य युक्त स्थिति प्राप्त हो जाती है. जिसे पूर्व जन्मो के प्रारब्ध का परिमाण माना जाता है। पर यदि वर्तमान मे भी पुरुषार्थ और सत्कर्म न किये जाये तो वह स्थिति प्राय थोडे ही समय रहती है। इसलिए हम कह सकत हैं कि दैव, पुरुषार्थ और काल (परिस्थितियाँ) ये तीनो मिलकर ही मनुष्य को फल देने वाले हुआ करते हैं। पर इनमे भी पुरुषार्थ को ही प्रधान समझना चाहिये, क्योंकि कहा गया है—

नालसः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न च दैव परायणः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन आचरेद्धर्ममुत्तमम् ॥

अर्थात्—"जो व्यक्ति आलसी होते हैं अथवा जो केवल दैव (भाग्य) के ही भरोसे रहते हैं, वे धनोपार्जन मे सफल नही हो सकते। इसलिये सदैव प्रयत्नपूर्वक उत्तम धर्म (पुरुषार्थ) का पालन करना चाहिये।" जो लोग समझते हैं कि पुराने धर्म ग्रन्थों मे भाग्य को ही प्रधान बताकर भारतवासियो को 'भाग्यवादी' बना दिया है उनको 'मत्स्य पुराण' के उपरोक्त वचन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

भारतीय गृह निर्माणकला—

मत्स्य पुराणान्तर्गत गृह निर्माण सम्बन्धी वर्णन से सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत में भी इस विद्या की काफी खोज की गई थी। जो लोग भारत के 'अर्द्धसभ्य' कहते हैं और जिनका ख्याल है कि उस जमाने में यहाँ के मनुष्य जङ्गली प्रदेशों के निवासियों की तरह केवल झोपड़ों अथवा कच्ची मिट्टी के छप्पर वाले मकानों में ही रहते थे, उनका कथन 'मत्स्य पुराण' के वर्णन से असत्य सिद्ध हो जाता है। उससे मालूम होता है कि 'गृह निर्माण कला' का आरम्भ और प्रसार बहुत पहले हो चुका था। अध्याय के आरम्भ में ही प्राचीन भारत के उन अठारह 'वास्तु विज्ञान ज्ञाताओं' (इञ्जीनियरों) के नाम दिये गये हैं जिन्होंने इस विषय में विशेष मनन और प्रयत्न करके प्रसिद्धि प्राप्त की थी—

> भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
> नारदोनग्नजिच्चैव विशालाक्ष. पुरन्दर.॥
> ब्रह्माकुमारो नन्दीश: शौनको गर्ग एव च।
> वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्र बृहस्पति॥
> अष्टादशैते विख्याता वास्तु शास्त्रोपदेशक.।
> सक्षेपेणोपदिष्टन्तु मनवे मत्स्य रूपिणा॥

अर्थात्—"भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र और वृहस्पति—ये अठारह प्रसिद्ध 'वास्तु शास्त्र' के उपदेशक हैं और उन्हीं की विधियों का वर्णन सक्षेप में 'मत्स्य भगवान्' ने मनु जी को सुनाया।"

मालूम होता है उस समय इन नामों अथवा उपनामों वाले मनीषियों द्वारा रचित 'वास्तु विज्ञान' सम्बन्धी ग्रंथ प्राप्त होंगे और उन्हीं में से एकाधिक ग्रंथ के आधार पर सक्षेप में 'मत्स्य पुराण' में इस कला का

परिचय दिया है। हो सकता है ब्रह्मा, इन्द्र, विश्वकर्मा, कुमार आदि का नाम इस विषय में भी देवताओं की प्रधानता दिखाने के लिये शामिल कर दिया हो, तो भी प्राचीन समय में कितने ही उच्चकोटि के विद्वानों ने इस विषय पर भी लिखा था, इसमें सन्देह नहीं। अब भी उनमें से 'मानसार' आदि दो-एक ग्रंथ देखने में आते हैं जिनकी जानकार लोगों से बड़ी प्रशंसा सुनने में आती है। 'मय' तो 'दैत्य' जाति वालों का प्रसिद्ध शिल्प शास्त्र ज्ञाता प्रसिद्ध है। महाभारत के अनुसार महाराज युधिष्ठिर के लिये इन्द्रप्रस्थ की अपूर्व राज सभा उसी ने बनाई थी। संभव है जिस प्रकार आर्य जाति में शिल्प विज्ञान के ज्ञाता को 'विश्वकर्मा' की पदवी दी गई, उसी प्रकार आर्यों की विरोधी दैत्य जाति में शिल्प-कला के प्रमुख ज्ञाता को 'मय' के नाम से पुकारा जाता हो, और पांडवों को संयोगवश उसी जाति का कोई शिल्प विद्या विशारद मिल गया हो। कुछ भी हो 'मत्स्य पुराण' में सामान्य गृह, महल, भवन, प्रासाद, स्तम्भ, दर्वाजे, मंडप, वेदी, आदि के जितने भेद बतलाये हैं और विस्तारपूर्वक उनकी विशेषताओं का वर्णन किया है, उससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि उस जमाने में भी इस कला की काफी खोजबीन की गई थी और तदनुसार अनेक छोटे-बड़े गृहों का निर्माण भी किया जाता था। विभिन्न प्रकार की आकृति के गृहों का वर्णन करते हुए पुराणकार ने लिखा है—

"सबसे उत्तम गृह वह होता है जिसमें चारों तरफ दरवाजे और दालान होते हैं। उसका नाम 'सर्वतोभद्र' कहा जाता है और देवालय तथा राजा के निवास के लिये वही प्रशस्त होता है। जिसमें तीन तरफ द्वार और दालान होते हैं पर पश्चिम की तरफ द्वार नहीं होता वह 'नन्द्यावर्त' कहलाता है। जिस भवन में दक्षिण की तरफ द्वार नहीं होता वह 'वर्द्धमान' कहा जाता है। पूर्व की तरफ बिना दरवाजा वाला 'स्वास्तिक' नाम से प्रसिद्ध है। उत्तर की तरफ द्वार से रहित 'रुचक' कहा जाता है।"

"राजा के निवास गृह पाँच प्रकार के होते हैं। जो सर्वोत्तम माना गया है उसकी लम्बाई एक सौ आठ हाथ (५४ गज) होती है। इस घर को जो अन्य चार श्रेणियाँ होती हैं उनमें से प्रत्येक की लम्बाई एक दूसरे से आठ हाथ कम होती जाती है। इसी प्रकार युवराज के प्रथम श्रेणी के महल की लम्बाई ८० हाथ होती है और बाद की चार श्रेणियों वाले गृहों की लम्बाई क्रम से छः-छः हाथ कम होती चली जाती है। इसी तरह सेनापति के उत्तम गृह की लम्बाई चौंसठ हाथ, मन्त्रियों के घरों की साठ हाथ, सरदारों और छोटे मन्त्रियों की घरों की अड़तीस हाथ होती है। शिल्प विभाग, व्यवस्था और मनोरंजन के अधिकारियों के घर अट्ठाईस हाथ लम्बे होने चाहिये। राजा के यहाँ नियुक्त वैद्य, ज्योतिषी, सभा के प्रबन्धक, पुरोहित के मकान चालीस हाथ लम्बाई के होते हैं। इन सबकी चौड़ाई दर्जे के अनुसार लम्बाई से एक तिहाई, चौथाई या छठवाँ भाग होती है।"

वर्तमान समय में भी अधिकांश व्यक्ति घर के शुभ-अशुभ होने में बहुत विचार किया करते हैं, और नये घर में 'गृह-प्रवेश' का बड़ा महत्व माना जाता है। 'मत्स्य पुराण' में इस सम्बन्ध में बहुत अधिक विधि विधान दिये गये हैं, और गृह-निर्माण तथा गृह-प्रवेश किन मुहूर्तों में किया जाय इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है।

प्राकृतिक शोभा वर्णन—

यद्यपि प्राचीन काल में जितने संस्कृत ग्रंथ लिखे गये थे वे सभी पद्य में हैं, वैद्यक, ज्योतिष, शिल्प, कानून आदि सभी विषयों को भी कारणवश पद्यों में लिखा गया है, पर यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की रचनाओं में उच्च साहित्यिक गुण नहीं आ सकते। उनमें मुख्य रूप से उपयोगिता पर ही ध्यान रखा जाता है, काव्य-सौष्ठव को गौण माना जाता है। पर 'मत्स्य पुराण' में अनेक स्थलों पर प्राकृतिक दृश्यों का जो

वर्णन किया गया है वह इस दृष्टि से भी उसके लेखक की विद्वता को प्रकट करता है। वैसे साधारण रूप से भी इस पुराण की भाषा कितने ही अन्य पुराणों और उपपुराणो अधिक परिष्कृत जान पडती है, पर कवि की विशेषता राजवंश, ऋषिवंश, पूजा उपासना की विधि, प्रायश्चित्त के विधान आदि विषयो का वर्णन करने मे नहीं जानी जा सकती। इनमे तो उपयोगिता की दृष्टि से तुकबन्दी की जैसी ही रचना करनी पडती है।

पर जहाँ कहीं प्राकृतिक शोभा के वर्णन का अवसर आ जाता है वहाँ कवि की कल्पना और प्रतिभा ऊँची उडान लेने लगती है और योग्य कवि अपनी विशेषता को प्रकट कर सकता है। 'मत्स्य पुराण' मे हिमालय पर्वत, कैलाश, नर्मदा, वाराणसी की शोभा का जो वर्णन किया है उसकी गणना भाषा और भाव की दृष्टि से अपेक्षाकृत उत्तम कविता मे की जा सकती है। यद्यपि इस प्रकार की पौराणिक रचनाओ की तुलना कालिदास, भवभूति, माघ आदि जैसे कवियो की रचनाओ से नही की जा सकती, जिनका मुख्य उद्देश्य कविता की उत्कृष्टता को ही दिखलाना होता है और जो कवि-कर्म को अपने जीवन का चरम ध्येय मानते हैं। पुराण रचयिता इसके बजाय अपना मुख्य उद्देश्य लोगो को सरल भाषा मे धर्मोपदेश देना और विविध प्रकार के विधि विधानो का ज्ञान या वर्णन करना समझते हैं, और उसी ढग की रचना करते हैं। इस लिये साहित्यिक गरिमा किन्ही पुराणो मे विशेष स्थलो पर ही दिखाई पडती है। उदाहरण के लिये हम 'मत्स्य पुराण' के हिमालय-वर्णन का कुछ अंश नीचे देते हैं—

"परम पुण्यमयी सरिता का अवलोकन करता और उसके समीप विश्राम करता हुआ पथिक जब महागिरि हिमालय के निकट पहुँचता है, तो उसका दर्शन करके पवित्र होता है। इस हिमवान पर्वत मे भूरे रग वाले उच्च शिखर आकाश को छूते प्रतीत होते हैं। वे इतने ऊँचे हैं कि पक्षी भी वहाँ नही पहुँच सकते। वहाँ नदियो के जल से उत्पन्न होने

वाले महाशब्द के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का शब्द सुनाई नहीं पडता। वे सरितायें परम मनोरम और शीतल जल से परिपूर्ण हैं। देवदारु के वृक्षों का जो वन पर्वत के निम्न भागों में लगा है वही मानो उसका हरित अधोवस्त्र है, और ऊपर के भाग में जो मेघ घिरे रहते है वही उत्तरीय (ऊपर ओढने वाला वस्त्र) है। सबसे ऊपर जो श्वेत वर्ण का बादल दिखाई पडता है वही उसकी पगडी है, जिस पर सूर्य और चन्द्रमा मुकुट के समान जान पडते हैं। इस प्रकार यह महागिरि एक नृपति की भांति ही जान पडता है। उसका सर्वाङ्ग चन्दन की भांति श्वेत हिम से चर्चित रहता है और कहीं–कहीं सुवर्ण आदि धातुओं की आभा आभूषणों का उद्देश्य भी पूरा कर देती है। अनेक स्थानों पर हरितमा युक्त घास और झाड़ियाँ ऐसी घनी हैं कि उनमें हवा का भी प्रवेश नहीं होता है और कहीं रंग बिरंगे सुन्दर फूलों का बगीचा-सा लगा है। ऐसा यह महा पर्वत "तपस्वि शरण शैल कामिनामतिदुर्लभम्" तपस्वियों के लिये उत्तम आश्रय–स्थल और काम-सेवन करने वालों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है।"

सावित्री उपाख्यान—

सावित्री उपाख्यान पति व्रत धर्म की महिमा के लिये भारतीय साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है, और उसके आधार पर यहाँ के कवियों ने अनेक उत्कृष्ट कोटि की रचनायें प्रस्तुत की हैं। भारत ही नहीं इस उपाख्यान ने विदेशों के विद्वानों तक को आकृष्ट किया है और इसको लेकर अंगरेजी में भी सुन्दर काव्य लिखे गये हैं। उस उपाख्यान का मुख्य उद्देश्य नारियों के सम्मुख पतिव्रत का आदर्श उपस्थित करना ही है जैसा कि इस कथानक के आरम्भ में कहा गया है—

"इसके उपरान्त अपरिमित बल-विक्रम वाले उस राजा (मनु) ने देवेश मत्स्य से कहा—'भगवन्! पतिव्रता नारियों में कौन सी नारी श्रेष्ठ है और किसने अपने पतिव्रत के द्वारा मृत्यु को भी पराजित कर

दिया था ? मनुष्यो को इस सम्बन्ध मे किसके परम शुभ नाम का कीर्तन करना चाहिये ? "मत्स्य भगवान ने कहा—"नि:सन्देह पतिव्रता का माहात्म्य इतना अधिक है कि मृत्यु का अधीश्वर यमराज भी ऐसी नारियों की अवमानना नहीं कर सकता। अब मैं तुमको एक ऐसी ही पापनाशक कथा सुनाता हूँ जिसमे एक परम श्रेष्ठ पतिव्रता ने अपने स्वामी को मृत्यु के पाश से भी छुड़ा लिया था।"

इस वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सम्भवत: यह 'सावित्री उपाख्यान' कवि-कल्पना-प्रसून ही हो और 'धर्म के अनुयायी' की महिमा को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से ही इसकी रचना की गई हो। फिर भी ससार मे ऐसी नारियाँ हुई हैं जिन्होने वास्तव मे अपने पति को 'यमराज' के घर से लौटाया है। इतिहास मे एकाध ऐसी वीरांगना का वर्णन मिलता है, जिसका पति युद्ध मे विषाक्त बाण लगने से मरने लगा, पर उसने तत्काल अपने मुँह से दूषित रक्त को चूस कर बाहर निकाल दिया और अपने प्राणो की चिन्ता न करके प्रिय पति के प्राणो की रक्षा की। इसी घटना का वर्णन करते हुये ब्रजभाषा के एक आधुनिक कवि ने लिखा था—

> सहृदय प्यारी,
> मत्यु पराजित होत प्रेम सो निश्चय जानन हारी ।।
> वीरासन ह्वै भूपति पति कों लै भुज लता सहारे।
> व्रण सो विष चूस्यौ लगाय जिन मधुराधर अरुणारे ।।

कुछ भी हो 'सावित्री उपाख्यान' एक ऐसी महान् पतिव्रता की कल्पना है जिसने आज तक लाखों नारियो को प्रेरणा देकर उनको पति की सच्ची सहगामिनी बनाया है। यमराज के सम्मुख उसके द्वारा प्रकट किये ये उद्गार आज भी पति की अनुगामिनी स्त्रियों के कानो मे गूँजते रहते हैं —

पतिर्हि दैवत स्त्रीणां पतिरेव परायणम् ।
अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पति प्राण धनेश्वर ॥
मितन्ददाति हि पिता मित भ्राता मित सुतः ।
अमितस्य च दातारं भर्त्तारं का न पूजयेत् ॥

अर्थात्—"पति ही स्त्रियो का देवता है और उनकी परायणता, भक्ति का पात्र होता है। साध्वी स्त्रियो को सदैव उसका अनुगमन करना ही चाहिये। किसी भी स्त्री को उसके पिता, भ्राता, पुत्र आदि सीमित रूप मे ही प्रदान कर सकते हैं, केवल पति ही ऐसा है जो उसे अमित (सब कुछ) दे डालता है। फिर ऐसे पति की पूजा कौन स्त्री न करेगी।"

यमराज ने समझाया कि "ससार मे मनुष्य का परम धर्म अपने शास्त्रोक्त कर्तव्य का पालन ही है। धर्मशास्त्रो ने माता-पिता और गुरु की सेवा को तीनो प्रकार की अग्नियो की आराधना करने के समान फलप्रद बताया है। इससे मनुष्यों को अनायास ही सर्वश्रेष्ठ स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इस सत्यवान ने इस धर्म कर्तव्य का पूर्ण रूप से पालन किया है, इस लिये इसकी सद्‌गति होने मे कोई सन्देह नहीं। यह अपने पुण्य फल से महान् स्वर्गीय सुखो को भोगेगा। इस लिये तुम मेरा पीछा न करके अब वापस जाकर अपना धर्म-कर्तव्य पालन करो।"

सावित्री ने कहा निश्चय ही 'धर्म' ही ससार की सारवस्तु और मानव-जन्म का प्रधान उद्देश्य है। उसके बिना किसी सुख अथवा कल्याण की अभिलाषा करना वन्ध्या के सुत के समान असम्भव है। इस कारण—

बाल एव चरेद्धर्ममनित्यं देव जीवितम् ।
कोहि जानाति कस्याद्यमत्युरेवापतिष्यति ॥
पश्यतोऽप्यास्य लोकस्य मरण पुरत. स्थितम् ।
अमरस्येव चरितमत्याश्चर्यं सुरोत्तम ॥
युवत्वापेक्षया बालो वृद्धत्वापेक्षया युवा ।
मत्योरुत्सङ्ग मारूढः : स्थविरः निमपेक्षते ॥

"धर्म का पालन तो बाल्यावस्था से ही करना आवश्यक है, क्योंकि यह जीवन अनित्य है। कौन जानता है कि मृत्यु सामने खड़ी रहती है यह वास्तव में भगवान की अद्भुत लीला ही है। बुड्ढों का मरना तो स्वाभाविक ही है, पर उनसे भी जल्दी युवा मर जाते हैं, और युवाओं की अपेक्षा बालक शीघ्र मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं॥"

सावित्री ने कहाकि "जब धर्म की इतनी महिमा है, तो मैं अपने धर्म से कैसे हट सकती हूँ। स्त्री का धर्म तो पति का अनुगमन करना ही बतलाया है, वही मैं पालन कर रही हूँ। इस राजकुमार के माता-पिता बड़ी असहाय स्थिति में हैं, यदि आप इसको ले जायेंगे तो उनको अपार कष्ट होगा। फिर धर्मरक्षार्थ पुत्र का होना भी आवश्यक है। बिना पति के मेरे पुत्र कैसे हो सकेंगे ? अब आप मुझे पुत्रवती होने का वरदान दे चुके हैं तो बिना पति के पुत्र कहाँ से होंगे ? अतः अब आपको इसको जीवनदान देना ही होगा।"

इस प्रकार सावित्री ने अपनी दृढ़ता और धर्मशीलता से अपने पति को पुनर्जीवित कर दिया। सत्य का आचरण वास्तव में सदैव परम कल्याणकारी होता है। महान् से महान् आपत्तिकाल में भी सत्य मनुष्य की रक्षा करता है और उसे सुख, श्री तथा शक्ति प्रदान करता है। 'सावित्री सत्यवान उपाख्यान का सन्देश मनुष्य मात्र के लिए यही है कि चाहे स्त्री हो या पुरुष, उसको धर्ममार्ग से कभी डिगना न चाहिये। जो धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा भी धर्म द्वारा अवश्य होती है।

इस प्रकार के अनेक उपयोगी और लोक-परलोक में कल्याण करने वाले सदुपदेश पुराणों में भरे पड़े हैं। निस्सन्देह उनके साथ बहुत-सी ऐसी अप्रासंगिक और स्वार्थपरता की बातें भी उनमें मिलती हैं, जो अनधिकारी व्यक्तियों द्वारा किसी हीन उद्देश्य से जोड़दी गई है। हमारा कर्तव्य है कि हम हंस की तरह क्षीर-नीर विवेक से काम लेकर श्रेष्ठ बातों को अपनायें और उनसे लाभ उठायें। पुराणों का भारतीय जन-

जीवन पर बड़ा प्रभाव है, और सामान्य वर्ग के लोग उन्हीं के द्वारा धर्म के कुछ तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। आजकल पुराने समय की तरह पुराणों की कथाएँ होनी बन्द होगई हैं और 'पुराणी' लोग अगुलियों पर गिनने लायक संख्या में रह गये हैं, तो भी यदि हम चेष्टा करें तो किसी और उपाय से उनसे लाभ उठा सकते हैं। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास बहुत कम मिलता है। पुराणों में यद्यपि सभी राजाओं तथा उनके कार्यों का वर्णन कवि-स्वभाव के अनुसार बड़े अतिरंजित रूप में किया है तो भी उनकी कथाओं और वर्णनों का सार निकाला जाय तो प्राचीन समय की राजनीति, धर्मनीति और अर्थनीति सम्बन्धी बातों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है। इसलिये हमारा कर्तव्य है कि दोषान्वेषण अथवा खण्डन-मण्डन की अनुचित प्रवृत्ति को त्याग कर उनमें जो कुछ श्रेष्ठ सारयुक्त लाभदायक हो उसे ग्रहण करलें और शेष को मनोरंजक कथा मात्र मानकर उसी भाव से उसे पढ़ते रहें। कुछ भी हो वर्तमान समय में कथा साहित्य (उपन्यास, कहानी आदि) को स्वार्थी अथवा स्वयं भ्रष्टाचार करने वाले लेखकों ने जिस प्रकार पतित कर दिया है, उसकी तुलना में पुराणों की धर्म-कथायें कल्याणकारी शिक्षा ही देती हैं। उनको यदि हम समयानुकूल रूप देकर सद् शिक्षा का माध्यम बनावें तो यह भारतीय-जीवन की दृष्टि से उपयुक्त और हितकारी ही होगा।

'मत्स्यपुराण' के इस संस्करण में से पुनरावृत्तियों को छोड़कर और बहुत बड़ी कथाओं को छोटे आकार में करके इसे सामान्य पाठकों के लिये अधिक उपयोगी बना दिया गया है। आशा है पुराण का यह संशोधित रूप उनको पसन्द आवेगा।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
	भूमिका	१—३२
१—	मत्स्यावतार वर्णन	१
२—	मत्स्य-मनु सम्वाद वर्णन	७
३—	सृष्टि-प्रकरण	१४
४—	सरस्वती चरित्र	२१
५—	दक्ष प्रजापति की मैथुनी सृष्टि	२५
६—	कश्यपान्वय वर्णन	३०
७—	आधिपत्याभिषेचन	३८
८—	मन्वन्तर वर्णन	४०
९—	पृथ्वी दोहन	४६
१०—	आदित्याख्यान	५३
११—	सूर्य वंश वर्णन	६२
१२—	देवी के एक सौ आठ नाम	७३
१३—	पितृ वंश कीर्तन	८४
१४—	श्राद्ध प्रकरण	८६
१५—	साधारण अभ्युदय कीर्तन	१०१
१६—	एकोद्दिष्ट श्राद्ध प्रकरण	११३
१७—	श्राद्धयोग्य तीर्थानांवर्णनम्	११८
१८—	ययाति चरित्र	१२३

( )

१६—ययात्याष्टक सम्वाद वर्णन (१)	...	...	१४१
२०—ययात्याष्टक सम्वाद वर्णन (२)	..	...	१४७
२१—यदुवंश वर्णन	...	...	१५०
२२—क्रोष्टुवंश वर्णन	...	...	१५६
२३—स्यमन्तक मणि का संक्षिप्त चरित्र	...	...	१७४
२४—कृष्णोत्पत्ति वर्णन	...	...	१८०
२५—कृष्ण सन्तान वर्णन	...	...	१८५
२६—ययाति वंश की शाखाओं का वर्णन	...	...	१६०
२७—पुरुवंश वर्णन	...	...	१६८
२८—कुरुवंश वर्णन	...	...	२०८
२६—अग्निवंश वर्णन	...	...	२२३
३०—कर्मयोग वर्णन	...	...	२३१
३१—पुराण संख्या वर्णन	...	...	२३६
३२—नक्षत्र पुरुष नाम व्रत कथन	...	...	२५०
३३—आदित्य शयन व्रत कथन	...	...	२५४
३४—रोहिणीचन्द्र शयन व्रत कथन	...	...	२५८
३५—तडागाराम कूपादि प्रतिष्ठा विधि वर्णन	....	...	२६२
३६—सौभाग्य शयन व्रत कथन	...	...	२७१
३७—अक्षय तृतीया और सरस्वती व्रत			२८१
३८—चन्द्रादित्योपराग में स्नान विधि कथन	...	...	२८४
३६—सप्तमी स्नपन व्रत कथन	...	...	२८८
४०—भीम द्वादशी व्रत कथन	....	..	२६६
४१—कल्याण सप्तमी व्रत कथन	...	...	३०४
४२—विशोक द्वादशी व्रत कथन	...	...	३०८
४३—ग्रह शान्ति वर्णनम्	...	...	३ २
४४—शिव चतुर्दशी व्रत कथन	...	...	३२०

४५—फल त्याग माहात्म्य कथन ३२८
४६—आदित्यवार व्रत कथन ३३२
४७—विभूति द्वादशी व्रत कथन ३३१
४८—स्नान महत्त्व वर्णन ३३४
४९—प्रयाग माहात्म्य वर्णन ३४०
५०—भारतवर्ष वर्णनम् ३४४
५१—हिमवद् वर्णन ३५८
५२—कैलास वर्णनम् ३६२
५३—पृथिवी परिमाण वर्णन ३७६
५४—ज्योतिष चक्र वर्णन ३६४
५५—अमावस्या महत्त्व वर्णन ४०३
५६—चतुर्युगमान वर्णन ४१८
५७—द्वापर और कलियुग वर्णन ४२१
५८—चातुर्युग गति वर्णन ४४०
५९—प्रलयकाल वर्णन ४४४
६०—दशावतार वर्णन ... ... ४५६+३२=४८१

मत्स्य पुराण

१—मत्स्यावतार वर्णन

प्रचण्डताण्डवाटोपे प्रक्षिप्ता येन दिग्गजाः ।
भवन्तु विघ्नभङ्गाय भवस्य चरणाम्बुजाः ॥
पातालादुत्पतिष्णोर्मकरवसतयो यस्य पुच्छाभिघाता-
दूर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डव्यतिकरविहितव्यत्ययेनापतन्ति ॥१
विष्णोर्मत्स्यावतारे सकलवसुमतीमण्डलं व्यश्नुवान,
तस्यास्योदीरितानां ध्वनिरपहरतादश्रियं वः श्रुतीनाम् ॥२
नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ ३ ॥
अजोऽपि यः क्रियायोगान्नारायण इति स्मृतः ।
त्रिगुणाय त्रिवेदाय नमस्तस्मै स्वयम्भुवे ॥४॥
सूतमेकान्तमासीनं नैमिषारण्यवासिनः ।
मुनयो दीर्घसत्रान्ते पप्रच्छुर्दीर्घसंहिताम् ॥५॥
प्रवृत्तासु पुराणेषु धर्म्यासु ललितासु च ।
कथासु शौनकाद्यास्तु अभिनन्द्य मुहुर्मुहुः ॥६॥
कथितानि पुराणानि यान्यस्माकं त्वयानघ ।
तान्येवामृतकल्पानि श्रोतुमिच्छामहे पुनः ॥७॥

(वे भगवान् भव के चरण कमल विघ्नों के नाश करने के लिये होवें जिन्होंने अपने परम प्रचण्ड ताण्डव नृत्य के आटोप में दिग्गजों अर्थात् दिशाओं के अधिपतियों के गजों को भी प्रक्षिप्त कर दिया था अर्थात् उठाकर फेंक दिया था ॥१॥) पाताल लोक से उत्पतन शील

जिसके पुच्छ के अभिघात से ऊपर की ओर ब्रह्माण्ड के खण्डों के ध्यनि-कर से किये हुए व्यत्यय से मकरों की वस्तियाँ आकर गिरा करती हैं उन भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार मे यह समस्त पृथ्वीमण्डल व्ययुमग्न हो गया है उनके मुख मे उदीरितो को ध्वनि आपकी श्रुतियो की अश्री का अपहरण करे ।।२।। भगवान् नारायण और नरों मे सर्वश्रेष्ट नरदर्श सरस्वती महामहिम महर्षि व्यासदेव को नमस्कार करके इसके अनन्त 'भगवान् की जय हो'—ऐसा मुख से उच्चारण करना चाहिए ।। ३ ।। ग अज-मायी है वह भी किन्तु क्रिया के योग से नारायण कहे गये हैं । उ तीनो गुणो (सत्व, रज, तम) से युक्त, तीनो (साम, यजु और ऋक वेदो वाले भगवान् स्वयम्भू की सेवा मे नमस्कार अर्पित है ।। ४ एकान्त स्थल मे समासीन सूतजी से नैमिषारण्य के निवास करने वा मुनियो ने अपनी दीर्घसत्र की अवसान वेला मे दीघ संहिता के विषय पूछा था ।।५।। धम स संयुत परम ललित पुराणो की कथाओ के प्रश् होन पर शौनक आदि ऋषियों ने बारम्बार अभिनन्दन किया था ।।६ महर्षियो न सूतजी स कहा था—हे अनघ ! हम लोगो को कृपा कर आपन जो पुराण सुनाय हैं वे सभी अमृत के ही बिल्कुल तुल्य थे। आपके मुखारविन्द स उन्हें पुन श्रवण करना चाहत हैं ।।७।।

यथससर्जभगवान् लोकनाथश्चराचरम् ।
यस्माच्च भगवान्विष्णुमत्स्यरूपत्वमाश्रित ।।८।।
भैरवत्व भवस्यापि पुरारित्वञ्च गद्यते ।
यस्य हेतो कपालित्व जगाम वृषभध्वजः ।।९।।
सवमेतत्समाचक्ष्व सूत ! विस्तरश क्रमात् ।
त्वद्वाक्येनामृतस्येव न तृप्तिरिहजायते ।। १० ।।
पुण्य पवित्रमायुष्यमिदानी श्रृणुत द्विजा ।
मात्स्य पुराणमखिल यज्जगाद गदाधर ।।११।।
पुरा राजा मनुर्नाम चीणवान् विपुलन्तप. ।

पुत्रेराज्यं समारोप्यक्षमावान् रविनन्दन ॥१२
मलयस्यैकदेशेतु सर्वात्मगुणसंयुत. ।
समदुःखसुखोवीरः प्राप्तवान् योगमुत्तमम्॥ १३
बभूव वरदश्चास्य वर्षायुतशते गते।
वरम्वृणीष्व प्रोवाच प्रीत. स कमलासन. ॥१४

लोकों के स्वामी भगवान् ने इस चराचर सम्पूर्ण सृष्टि का किस प्रकार से सृजन किया था और किस कारण से भगवान् विष्णु ने मत्स्य का स्वरूप धारण किया था ॥८॥ भगवान् भव की भी भैरव स्वरूपता पुरारित्व होना कहा जाया करता है अर्थात् त्रिपुरासुर के हनन करने वाले और भैरव स्वरूप धारण करने वाले भव को कहा करते हैं किन्तु ऐसा कौनसा कारण है जिसके होने से भगवान् वृषभध्वज प्रभु कपाली हो गये हैं। ॥९॥ हे सूतजी यह सभी कुछ आप विस्तारपूर्वक क्रम से हमको बतलाने का अनुग्रह करें। आपकी परम श्रेयस्करी मधुर वचनावली ही ऐसी है जो अमृत के समान ही है कि इससे हम को कभी तृप्ति नहीं होती है। १०॥ श्री सूतजी ने कहा हे द्विजगण! इस समय में परम पुण्यप्रद-आयु की वृद्धि करने वाला और अति पवित्र सम्पूर्ण मत्स्य पुराण का ही आप लोग श्रवण करिये जिसको भगवान् गदाधर ने स्वयं कहा था ॥११॥ प्राचीनकाल में मनु नामधारी एक राजा था जो धर्म वाला और बहुत ही अधिक तपस्वी था। उसने अपने पुत्र पर समस्त राज्य का भार सौंपकर वह क्षमावान रविनन्दन योगाभ्यासी होगया था ।१२। मलय देशके एक भाग में वह सम्पूर्ण आत्मा के गुणों से संयुत होकर तथा सुख और दुःख दोनों को समान भाव से मानकर वीर उत्तम योग को प्राप्त हो गया था ॥१३॥ जिस समय में एकसौ दस सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे तब वह भगवान् कमलासन परम प्रसन्न हो गये थ और इसको वरदान देने वाले बन गये थे। उन्होंने मनु के समीप में साक्षात् समुपस्थित होकर कहा था, जो चाहो वरदान माँग लो ॥१४॥

एवमुक्तोऽब्रवीद्राजा प्रणम्य स पितामहम् ।
एकमेवाहमिच्छामि त्वत्तो वरमनुत्तमम् ॥ १५
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च ।
भवेयं रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते ॥ १६
एवमस्त्विति विश्वात्मा तत्रैवान्तरधीयत ।
पुष्पवृष्टिः सुमहती खात्पपात सुरार्पिता ॥ १७
कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम् ।
पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता ॥१८
दृष्ट्वा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः ।
रक्षणायाकरोद्यत्नं स तस्मिन् करकोदरे ॥१९
अहोरात्रेण चैकेन षोडशांगुलविस्तृतः ।
सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत् ॥२०
स तमादाय मणिके प्राक्षिपज्जलचारिणम् ।
तत्रापि चैकरात्रेण हस्तत्रयमवर्धत ॥ २१

जब राजा से इस तरह ब्रह्माजी के द्वारा कहा गया तो उसने पितामह के चरणों में प्रणाम किया था और फिर राजा ने कहा हे भगवन्! मैं आपसे केवल एक ही अत्युत्तम वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१५॥ जिस समय में इस सम्पूर्ण भूतों के समुदाय का तथा समस्त स्थावर और चर सृष्टि का प्रलयकाल उपस्थित हो तो उस भीषण समय में मैं सबकी रक्षा करने के काम में समर्थ हो जाऊँ॥१६॥ इस वर की याचना को सुनकर विश्वात्मा ने कहा एवमस्तु! अर्थात् ऐसा होवे। यह कहने के बाद में ही वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे उसी समय में अन्तरिक्ष से देवगण के द्वारा की गई बड़ी भारी पुष्पों की वर्षा होने लगी थी ॥१७॥ इसके अनन्तर किसी समय में वह मनु आश्रम में अपने पितृगण के लिए तर्पण कर रहे थे तो उनके हाथों में एक शफरी (मछली) जल के साथ ही आ गई थी ॥१८॥ उस दयालु महीपति ने उस शफरी के रक्षण

को देखकर उसी की रक्षा करने का यत्न किया था और उसने उसे करवोदर में रख दिया था ॥१६॥ एक ही अर्ध रात्रि के समय में वह सोलह अगुल के विस्तार वाला हो गया था और वह मत्स्य रूप से सम्पन्न होकर उस राजा से "मेरी रक्षा करो —मेरी रक्षा करो"—यह बोला ॥२०॥ उस राजा ने उस जलचारी को लेकर एक मणिक में डाल दिया था। वहाँ पर भी वह एक ही रात्रि में तीन हाथ का होकर बढ गया था ॥२१॥

पुनः प्राहार्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम् ।
समत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणङ्गतः ॥२२॥
ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद्रविनन्दनः ।
यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे ॥२३॥
क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात्पुनर्योजनसम्मिताम् ।
तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहिपाहि नृपोत्तम ॥२४
ततः स मनुना क्षिप्तो गङ्गायामप्यवर्धत ।
यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः ॥२५
यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः ।
तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽपित्वमसुरेतरः ॥२६
अथवा वासुदेवस्त्वमन्य ईदृक्कथं भवेत् ।
योजनायुतविंशत्याकस्य तुल्यं भवेद्वपुः ॥२७
ज्ञातस्त्वमत्स्यरूपेण मां खेदयसिकेशव !
हृषीकेश ! जगन्नाथ ! जगद्धाम ! नमोऽस्तुते ॥२८

उस मत्स्य ने फिर उस सूर्य के पुत्र नृपति से बड़े ही आर्तनाद कहा था कि मेरी रक्षा करो—रक्षा करो—मैं तो इस समय में आपकी शरणागति में आगया हूँ ॥२२॥ इसके पश्चात् उस रवि के पुत्र राजा ने उस मत्स्य को कुए में डाल दिया था। जब वह मत्स्य कुए में भी नहीं समाया था तो उस मत्स्य को एक सरोवर में प्रक्षिप्त कर दिया था।

वहां पर भी वह बहुत बडा होकर एक योजन के विस्तार वाला हो गया था और वहां पर भी वह फिर अधिक दीन होकर राजा से बोला था—हे नृपश्रेष्ठ ! मेरी रक्षा करो-रक्षा करो ॥२३॥२४॥ इस के अनन्तर उस मनु के द्वारा वह गङ्गा मे प्रक्षिप्त कर दिया गया था किन्तु वह वहां पर भी बढ गया था। ऐसा जिस समय मे देखा तो उसी समय मे राजा ने उस मत्स्य को समुद्र मे डाल दिया था। जब यह सम्पूर्ण समुद्र मे व्याप्त होकर समुपस्थित हो गया था तो उस राजा मनु ने अत्यन्त भयभीत होकर उससे बोला था—तुम असुरेश्वर कौन हो ! ॥२५॥२६॥ अथवा आप साक्षात् भगवान् वासुदेव ही हैं ! अन्य इस प्रकार का किस तरह हो सकता है। आपका यह शरीर का आकार अयुत विंशति योजन वाला हो गया है ॥२७॥ हे केशव ! मैं अब भली भाँति जान गया हूं कि आप इस विशाल मत्स्य के स्वरूप मे समुपस्थित होकर मुझे खेद दे रहे हैं। हे हृषीकेश ! हे जगत् के स्वामिन् ! हे जगद्धाम ! आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम समर्पित है ॥२८॥

एवमुक्तः सभगवान्मत्स्यरूपीजनार्दनः ।
साधुसाध्वितिचोवाचसम्यग् ज्ञातस्त्वयाऽनघ ॥२९
अचिरेणैव कालेन मेदिनी मेदिनीपते ।
भविष्यति जले मग्ना सशैलवनकानना ॥३०
नौरियं सर्वदेवानां निकायेन विनिर्मिता ।
महाजीवनिकायस्य रक्षणार्थं महीपते ॥ १
स्वेदाण्डजोद्भिजोयेवैयेचजीवाजरायुजाः ।
अस्यांनिधायसर्वास्ताननाथान् पाहिसुव्रत ॥३२
युगान्तवाताभिहता यदाभवतिनौर्नृप !
शृङ्गेऽस्मिन्मम राजेन्द्र ! तदेमां संयमिष्यसि ॥३३
ततोलया ते सर्वस्य स्थावरस्य चरस्यच ।
प्रजापतिस्त्वं भविता जगतः पृथिवीपते ॥३४

एवं कृतयुगस्यादौ सर्वज्ञो धृतिमान्नृपः ।
मन्वन्तराधिपश्चापि देवपूज्यो भविष्यसि ॥३५

इस प्रकार से राजा ने जब मत्स्य से निवेदन किया तो उस समय में मत्स्य स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् जनार्दन ने कहा—बहुत अच्छा बहुत ही ठीक ! हे अनघ ! तुमने मुझको अच्छी तरह से पहिचान लिया है ॥२९॥ हे मेदिनी के स्वामिन् ! अब बहुत ही थोड़े–से समय में यह पृथ्वी जल में मग्न हो जायगी । जिसमें ये समस्त पर्वत वन और कानन सभी इस मेदिनी के साथ जल में डूब जायेंगे ॥३०॥ हे महीपते ! यह नौका समस्त देवों के निकाय से निर्मित हुई और महान् जीवों के निकाय की रक्षा के लिये ही इसका निर्माण उत्तम है ॥३१॥ हे सुव्रत ! जो भी स्वेदज-अण्डज-जरायुज और उद्भिज जीव हैं उन सब अनाथों को इसी नौका में रखकर आप उनकी रक्षा कीजिएगा ॥३२॥ जिस समय में युगान्त की वायु से अभिहत यह नौका होवे तब हे नृप ! हे राजेन्द्र ! इसको मेरे शृङ्ग में सम्बद्ध कर देना ॥३३॥ हे पृथिवी पते ! इसके उपरान्त जिस समय में समस्त स्थावर और चर के लय का अन्त हो उस वक्त आप ही इस सम्पूर्ण जगत् के प्रजापति होंगे ॥३४॥ इस प्रकार से कृतयुग के आदि काल में सवज्ञ और धृतिमान् नृप और देवों के द्वारा पूज्य मन्वन्तर का भी अधिप होगा ॥३५॥

२—मत्स्य-मनुसंवादवर्णन

एवमुक्तो मनुस्तेन पप्रच्छ मधुसूदनम् ।
भगवन् ! कियद्भिर्वर्षैर्भविष्यत्य-त्तरक्षयः ॥१
सत्त्वानि च कथं नाथ ! रक्षिष्ये मधुसूदन !
त्वया सह पुनर्योगं कथं वा भवितामम ॥२

अद्य प्रभृत्यनावृष्टिर्भविष्यति महीतले ।
यावद्वर्षशतं साग्रं दुर्भिक्षमशुभावहम् ॥ ३
ततोऽल्पसत्वक्षयदा रश्मयः सप्त दारुणाः ।
सप्तसप्तेर्भविष्यन्ति प्रतप्ताङ्गारवर्षिणः ॥ ४
और्वानलोऽपि विकृतिङ्गमिष्यति युगक्षये ।
विषाग्निश्चापि पातालात्सङ्कर्षणमुखच्युतः ।
भवस्यापि ललाटोत्थतृतीयनयनानलः ॥ ५
त्रिजगन्निर्दहन् क्षोभसमेष्यति महामुने !
एवदग्धा महीमर्वा यदास्याद्भस्मसन्निभा ॥ ६
आकाशमूष्मणा तप्तम्भविष्यति परन्तप ।
ततः सदेवनक्षत्रं जगद्यास्यति संक्षयम् ॥ ७

श्री सूतजी ने कहा—उन मत्स्यावतारी भगवान् के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर राजा मनु ने मधुसूदन प्रभु से पूछा था—हे भगवन् ! यह अन्तर क्षय कितने वर्षों मे होगा ! ॥१॥ हे मधुसूदन ! हे नाथ ! इन जीवो की रक्षा किस प्रकार से मैं करूँगा ! फिर आपके साथ मे मेरा योग कैसे होगा ? ॥२॥ मत्स्य भगवान् ने कहा-आज ही से लेकर इस महीतल मे अनावृष्टि (वर्षा का अभाव) होगी । जिस समय तक साग्र सौ वर्ष होंगे तब तक यहाँ पर परम अशुभ का देने वाला अकाल हो जायगा ॥३॥ इस के अनन्तर पूर्ण प्रतप्त अङ्गार के वर्ण के समान वर्ण वाले सप्त साप्ति सूर्य सात दारुण रश्मियों हो जायगी जो छोटे २ सत्वों के क्षय को कर देने वाली हैं ॥४॥ युग के क्षय मे और्वानल भी विकृति को प्राप्त हो जायगा । पाताल लोक से भगवान् संकर्षण के मुख से च्युत विषाग्नि भी विकृत स्वरूप धारण करेगा और महादेव जी के ललाट मे उत्थित तीसरे नेत्र का अनल भी महान् विकृत रूप धारण करेगा ॥५॥ हे महामुने ! इन तीनों लोकों को निदाघ करते हुए परम क्षोभ को प्राप्त हो जायगा । इस तरह से यह सम्पूर्ण पृथ्वी

दग्ध हो करके जिस समय में भस्म के सदृश हो जायगी उस समय में हे परन्तप ! यह समस्त आकाश मण्डल ऊष्मा से एकदम तप्त हो जायगा। इसके अनन्तर देवगण और नक्षत्रों के सहित यह सम्पूर्ण जगत् संक्षय को प्राप्त हो जायगा ॥६॥७॥

> संवर्त्तो भीमनादश्च द्रोणश्चण्डोवलाहकः ।
> विद्युत्पताकः शोणस्तु सप्तैतेलयवारिदाः ॥ ८
> अग्निप्रस्वेदसम्भूताः प्लावयिष्यन्तिमेदिनीम् ।
> समुद्राः क्षोभमागत्य चैकत्वेन व्यवस्थिताः ॥ ९
> एतदेकार्णवसर्वं करिष्यन्ति जगत्त्रयम् ।
> वेदनावमिमां गृह्य सत्वबीजानि सर्वशः ॥ १०
> आरोप्य रज्जुयोगेन मत्प्रदत्तेन सुव्रत ।
> संयम्य नावं मच्छृङ्गे मत्प्रभावाभिरक्षितः ॥११
> एकः स्थास्यसि देवेषु दग्धेष्वपि परन्तप !
> सोमसूर्यावहं ब्रह्मा चतुर्लोकसमन्वितः ॥१२
> नर्मदा चनदीपुण्यामार्कण्डेयोमहानृषिः ।
> भवोवेदाः पुराणश्चविद्याभिःसर्वतोवृतम् ॥१३
> त्वया सार्द्धमिदं विश्वं स्थास्यत्यन्तरसंक्षये ।
> एवमेकार्णवे जाते चाक्षुषान्तरसंक्षये ॥१४

संवर्त—भीमनाद—द्रोण—चण्ड—बलाहक—विद्युत्पताक और शोण ये सात संसार का लय करने वाले मेघ हैं ॥८॥ अग्नि के प्रस्वेद से सम्भूत इस मेदिनी को ये मेघ प्लावित कर देंगे। समुद्र भी सब क्षोभ को प्राप्त होकर एक रूप वाले व्यवस्थित हो जायेंगे। यह त्रैलोक्य हो सम्पूर्ण को एक सागरमय कर देंगे अर्थात् चारों ओर त्रैलोक्य में समुद्र के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखाई नहीं देगा। उस समय में इस वेद नौका का ग्रहण करके सभी ओर से सत्त्व बीजों को इसमें सञ्चरित करके हे सुव्रत ! मेरे द्वारा दिये हुए रज्जु के योग से इस नाव को

सयमित करके मेरे ही शृङ्ग में मेरे प्रभाव से सुरक्षित होगा ॥८॥९॥१०॥ ॥११॥ हे परन्तप ! समस्त देवों के दग्ध हो जाने पर भी एक देव उस समय में भी स्थित रहेगा । वह सोम और सूर्य समावहन करने वाले चारों लोकों से समन्वित ब्रह्मा जो होंगे ॥१२॥ नर्मदा परम पुण्यमयी नदी है और मार्कण्डेय महान् ऋषि हैं। सब वेद और पुराण तथा विद्याओं से सर्वतः वृत यह विश्व आप के साथ अन्तर सक्षय में स्थित रहेगा जबकि यह चाक्षुषान्तर समय एकार्णव मात्र रहेगा ॥१३॥१४॥

वेदान् प्रवर्त्तयिष्यामि त्वत्सर्गादौ महीपते ।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१५
मनुरप्यास्थितोयोग वासुदेवप्रसादजम् ।
अभ्यसन् यावदाभूतसंप्लव पूर्वंसूचितम् ॥१६
काले यथोक्ते सजाते वासुदेवमुखोद्गते ।
शृङ्गी प्रादुर्बभूवाथमत्स्यरूपी जनार्दनः ॥१७
भु ङ्गोरज्जुरूपेणमनो पार्श्वमुपागमत् ।
भूतान्सर्वान्समाकृष्ययोगेनारोप्यधर्म्मवित् ॥१८
भुजङ्गरज्वा मत्स्यस्य शृङ्गे नावमयोजयत् ।
उपर्युपस्थितस्तस्या प्रणिपत्यजनार्दनम् ॥१९
आभूतसंप्लवे तस्मिन्नतीते योगशायिना ।
पृष्टेन मनुना प्रोक्तं पुराण मत्स्यरूपिणा ॥
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥२०
यद्भवद्भि पुरा पृष्ट सृष्ट्यादिकमहद्द्विजा ।
तदेवैकार्णवे तस्मिन् मनु पप्रच्छ केशवम् ॥२१

हे महीपते ! आपके स्वर्ग के आदिकाल मे मैं वेदो को प्रवृत्त करूंगा। इतना कहकर वह भगवान वहीं पर अन्तर्ध्यान हो गये थे ॥ १५ ॥ महीपति मनु भी भगवान् वासुदेव के प्रसाद से समुत्पन्न योग मे समास्थित होगये थे जिसका अभ्यास पूर्व मे सूचित जब तक भूत सम्प्लव रहा तब तक करते रहे थे ॥ १६ ॥ भगवान् वासुदेव के मुख

द्वारा उद्गत जैसाभी कहा गया था उसी काल के समुपस्थित हो जाने पर मत्स्य स्वरूप को धारण करने वाले जनार्दन श्रृङ्गी प्रादुर्भूत होगये थे ॥ १७ ॥ एक भुजंग रज्जु (रस्सा) के स्वरूप में मनु के पार्श्व में समागत हो गया था । धर्म के वेत्ता उस मनु ने समस्त भूतों का समाकर्षित करके योग के द्वारा समारोपित कर दिया था ॥ १८ ॥ उस नौका को भुजंग की रज्जु से मत्स्य के श्रृंग में योजित कर दिया था । फिर भगवान् जनार्दन की सेवा में प्रणिपात करके उस नौका के ऊपर स्वयं उपस्थित होगया था ॥ १९ ॥ उस आभूत संप्लव के समाप्त हो जाने पर योगशायी मत्स्य रूपी मनु के द्वारा पूछे जाने पर यह पुराण कहा गया था । उसे ही इस समय में मैं कहूँगा । हे श्रेष्ठ ऋषिगण ! आप सब लोग उसका श्रवण कीजिये ॥ २० ॥ हे द्विजवृन्द ! आप लोगों ने पहिले मुझसे सृष्टि आदि का वृत्तान्त पूछा था वही उस समय में जब कि यह सम्पूर्ण जगत् एक अर्णव स्वरूप में था मनु ने भगवान् केशव से पूछा था ॥ २१ ॥

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव वंशान्मन्वन्तराणि च ।
वंश्यानुचरितञ्चैव भुवनस्यच विस्तरम् ॥२२
दानधर्म्मविधिञ्चैव श्राद्धकल्पञ्च शाश्वतम् ।
वर्णाश्रमविभागञ्च तथेष्टापूर्त्तसंज्ञितम् ॥२३
देवतानां प्रतिष्ठादि यच्चान्यद्विद्यते भुवि ।
तत्सर्वं विस्तरेण त्व धर्म्मंव्याख्यातुमर्हसि ॥२४
महाप्रलयकालान्त एतदासीत्तमोमयम् ।
प्रसुप्तमिव चातर्क्यमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥२५
अविज्ञेयमविज्ञातं जगत् स्थास्नुचरिष्णु च ।
ततः स्वयम्भूरव्यक्तः प्रभवः पुण्यकर्मणाम् ॥२६
व्यञ्जयन्नेतदखिलं प्रादुरासीत्तमोनुदः ।
योऽतीन्द्रियः परोऽव्यक्तादणुर्ज्यायान् सनातनः ।

नारायण इति ख्यातः स एकः स्वयमुद्बभौ ॥२७
यः शरीरादभिध्याय सिसृक्षुर्विविधं जगत् ।
अपएव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥२८

मनु ने कहा—हे भगवन् ! इस विश्व की उत्पत्ति तथा इसका प्रलय—राजाओं आदि के वंश तथा मन्वन्तर—वंश में होने वाला अनुचरित और इस भुवन का विस्तार, दान, धर्म का विधान—शाश्वत श्राद्धकल्प—चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों का विभाग तथा इष्टापूर्त संज्ञा वाला कर्म्म, देवगणों की प्रतिष्ठा आदि एवं अन्ययी जो कुछ भी इस भूमण्डल में विद्यमान है वह सभी कुछ विस्तार पूर्वक तथा धर्म्म की पूर्ण व्याख्या का कथन करने को आप परम योग्य हैं उसे अब कहिये ॥२२।२३।२४॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—यह तमोमय महा प्रलय का अन्त काल है । यह प्रसुप्त की भाँति तर्क न करने के योग्य अप्रज्ञात और लक्षण शून्य ही होता है ॥ २५ ॥ यह स्थावर और चर जगत् अविज्ञेय और अविज्ञात सा रहता है । इसके अनन्तर पुण्य कर्म्मों का प्रभव - अव्यक्त स्वयम्भू तम का नोदन करने वाले इस समस्त जगत् को प्रकट करते हुए प्रादुर्भूत हुए थे । जो इन्द्रियों की पहुँच से अतीत अव्यक्त से पर, अणु, ज्यायान् और सनातन थे । इनका शुभ नाम नारायण प्रसिद्ध था, यह एक ही थे और स्वयं ही उद्भूत हुए थे ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ जिन ने अपने शरीर से अभिध्यान करके इस विविध भाँति के जगत् की रचना करने की इच्छा वाले थे । इसीलिए सृजन किया था और आदि में उन में बीजों का अत सृजन किया था ॥ २८ ॥

तदेवाण्डं समभवद्धेमरूप्यमयं महत् ।
संवत्सरसहस्रेण सूर्य्यायुतसमप्रभम् ॥ २९
प्रविश्यान्तर्महातेजा स्वयमेवात्मसम्भवः ।
प्रभावादपितद्व्याप्त्याविष्णुत्वमगमत्पुनः ॥३०
तदन्तर्भगवानेष सूर्य्यः समभवत् पुरा ।

आदित्यश्चादिभूतत्वात् ब्रह्माब्रह्मपठन्नभूत् ।।३१
दिव भूमि ममकरोत्तदण्डशकलद्वयम् ।
सचाकरोद्दिश· मर्व्वामध्येव्योमच शाश्वतम् ।।३२
जर युर्मेरुप्रमुख्यादन्न शैलास्तस्याभवस्तदा ।
यदुल्बन्तदभू मेघस्तडित्सघातमण्डलम् ।।३३
नद्याऽण्डनाम्न· सम्भूता· पितरोमनवस्तथा ।
सप्तयेऽमीसमुद्राश्चतेऽपिचान्तजलोद्भवा ।
लवणेक्षुसुराद्याश्च नानारत्नसमन्विताः ।।३४
स सिसृक्षुरभूद्देवः प्रजापतिररिन्दम ।
तत्तेजसश्च तत्रैव मार्तण्ड· समजायत ।। ३५
मृतेऽण्डे जायते यस्मान्मार्तण्डस्तेन संस्मृत· ।
रजोगुणमय यत्तद्रूप तस्य महात्मनः ।
चतुर्मुखः स भगवानभूल्लोकपितामहः ।। ३६
येन सृष्ट जगत्सर्व सदेवासुरमानुषम् ।
तमवेहि रजोरूपं महत्सत्वमुदाहृतम् ।।३७

वही अण्ड हेम रूपात्मक महान हो गया था और एक सहस्र सम्वत्सर में यह दश सहस्र सूर्यों की प्रभा के समान प्रभा वाला होगया था ।। २९ ।। महान् तेज से युक्त अन्दर सम्पत्र अर्थात स्वयम्भू प्रभु अन्तर में स्वय ही प्रविष्ट होकर प्रभाव से भी उसकी व्याप्ति के द्वारा फिर वह विष्णुत्व को प्राप्त हो गया था ।। ३० ।। उसके अन्दर से गये हुए यह भगवान् पहिले सूर्य हुए थे ब्रह्मा आदि भूत होने के कारण से ब्रह्म का पाठ करते हुए आदित्य हुए ।। ३१ ।। उस अण्ड के दो खण्डों ने दिव और भूमि को किया था और उसने सभी दिशाओं को बनाया था तथा मध्य में शाश्वत व्योम की रचना की थी ।। ३२ ।। उस समय में उसके जरायु और मुख्य शैल हुए थे । जो उल्वण था वहीं मेघ और विद्युत् के

सङ्घात का मण्डल होगया था ॥ ३३ ॥ उस अणु नाम से नदियां तथा पितृगण और मनु वर्ग हुए थे। जो ये सात समुद्र हैं वे भी अन्तर में जल से उद्भव प्राप्त करने वाले हो गये थे। जिनका लवण सागर इक्षु समुद्र और सुरा सागर आदि कहा गया है वे सब अनेक रत्नों से समन्वित होगये थे ॥ ३४ ॥ हे आरन्दय! सृजन करने की इच्छा वाले वह देव प्रजापति होगये थे। उनके तेज से वहां पर यह मार्तण्ड समुत्पन्न होगया था ॥ ३५ ॥ अण्ड के मृत होने पर जिससे यह समुत्पन्न होता है इसी कारण से यह मार्त्तण्ड कहा गया है। उस महान् आत्मा वाले का यह रजोगुणमय स्वरूप है। लोकों के पितामह वह भगवान् चार मुखों वाले होगये थे ॥ ३६ ॥ जिसने इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया है जिसमें देव-असुर और मानव सभी हैं उसको रजोगुण के रूप वाला समझलो और महत्तत्त्व उदाहृत किया गया है ॥ ३७ ॥

३—सृष्टि-प्रकरण

चतुर्मुखत्वमगमत्कस्माल्लोकपितामहः।
कथं तु लोकानसृजत् ब्रह्मविदाम्वर ॥ १
तपश्चचार प्रथमममराणां पितामहः।
आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपाङ्गपदक्रमाः ॥ २
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्राह्मणा स्मृतम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥३
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः।
मीमांसान्यायविद्याश्च प्रमाणाष्टकसंयुताः ॥४
वेदाभ्यासरतस्यास्य प्रजाकामस्य मानसाः।
मनसः पूर्वसृष्टा वै जाता यत्तेन मानसाः ॥५

शारीरानथ वक्ष्यामि मातृहीनान् प्रजापते. ।
अगुष्टाद्दक्षिणाद्दक्ष प्रजापतिरजायत ॥६
धर्म्मस्तनान्तादभवत् हृदयात्कुसुमायुध: ।
भ्रूमध्यादभवत्क्रोधोलोभश्चाधरसम्भवः ॥१०
बुद्धेर्मोह. समभवदहङ्कारादभून्मदः ।
प्रमादश्चाभवत्कण्ठान्मृत्युर्लोचनता नृप ॥११
भरत करमध्यात्तु ब्रह्मसूनुरभूत्तत ।
एते नव ! सुता राजन् ! कन्या च दशमी पुन ।
अङ्गजा इति विख्याता दशमी ब्रह्मण सुता ॥१२
बुद्धेर्मोह समभवदिति यत्परिकीर्त्तितम् ।
अहङ्कार. स्मृत क्रोधोबुद्धिर्नामकिमु यते ॥१३

इस भाँति ब्रह्माजी के भृगु पुत्र उत्पन्न हुए थे और तुरन्त ही स्वल्प समय में नारद जी का प्रादुर्भाव हुआ था। इस प्रकार से ब्रह्माजी ने इन दश मानस मुनियों को समुत्पन्न किया था ।। ८ ।। इसके उपरान्त अब मैं प्रजापति के माता से रहित पुत्रों के शरीरों का वर्णन करता हूँ कि किस अङ्ग से किसकी समुत्पत्ति हुई थी। ब्रह्माजी के दक्षिण अगुष्ठ से दक्ष प्रजापति का जन्म हुआ था ।। ६ ।। स्तन के अन्तर से धर्म्म और हृदय से कुसुमायुध [कामदेव] हुआ था। भौंहों के मध्य भाग से क्रोध की उत्पत्ति हुई थी तथा अधरों से लोभ समुत्पन्न हुआ था ।। १० ।। बुद्धि से मोह पैदा हुआ और अहङ्कार से मद की समुत्पत्ति हुई थी। हे नृप ! ब्रह्माजी के कण्ठ भाग से प्रमोद का जन्म हुआ था और लोचनों से मृत्यु की उत्पत्ति हुई ।। ११ । इसके उपरान्त ब्रह्माजी का पुत्र भरत उनके कर के मध्य भाग से उत्पन्न हुआ था। हे राजन् ! ये नौ तो ब्रह्माजी के पुत्र हुए थे और फिर दशमी कन्या समुत्पन्न हुई थी। यह ब्रह्मा की दशमी कन्या [पुत्री] अंगजा-इस शुभ नाम से विख्यात हुई थी ॥ १२ ॥ मनु महर्षि ने कहा -हे भगवन् ! आपने अभी यह वर्णन

कर दिया करती है ॥१५॥ जब वे ही तीन गुण क्षोभ को प्राप्त होते हैं तो इनसे तीन देव समुत्पन्न होकर तीन स्वरूपों मे सामने आते हैं। सिद्धान्ततः यह एक ही मूर्ति है और उस एक के ही ये तीन भाग हो जाया करते हैं जो ब्रह्मा-विष्णु और महेश—इन तीन शुभ नामों वाले होते हैं ॥१६॥ यह विकार युक्त प्रधान से महत्तत्त्व समुत्पन्न होता है। इसकी 'महान्' यह ख्याति इसी लिये है कि यह सदा लोकों का होता है। ॥१७॥ मान के बढाने वाला अहङ्कार महत्तत्त्व से समुत्पन्न होता है। इसके पश्चात् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। जिनके विषय मे बतलाये गे तथा पाँच अन्य कर्मेन्द्रियाँ होती हैं ॥ १८ ॥ पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के नाम श्रोत्र त्वक् नेत्र-जिह्वा और नासिका ये हैं। पायु उपस्थ-हस्त-पाद वाक-ये पाँच कर्मेन्द्रियों के नाम हैं, यही दसों इन्द्रियों का समूह है ॥१९॥ इन दसों इन्द्रियों के भिन्न २ अपने विषयों के क्रम से ही बनलाते हैं। ज्ञानेन्द्रियों के विषय शब्द-स्पर्श रूप रस और गन्ध हैं। कर्मेन्द्रियों के विषय क्रमश उत्सर्ग-आनन्द-दान गति और आलाप ये इनकी क्रियाएँ हैं ॥२०॥ मन ग्यारहवीं सर्वोपरि इन्द्रिय है। इस मे कर्म और बुद्धि दोनों ही गुणों का समावेश होता है। इन्द्रियों के अवयव बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। मनीषीगण उसकी मूर्ति का समाश्रय ग्रहण करते हैं। इसी कारण से उनका शरीर तन्मात्रा कहा गया है शरीर के ही योग से यह जीवात्मा भी बुधों के द्वारा शरीरी कहा जाया करता है ॥ २१,२२॥

श्रयन्ति यस्मात्तन्मात्रा शरीरं तेन सम्भृतम्।
शरीरयोगाज्जीवोऽपि शरीरी गद्यते बुधः ॥२२
मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया।
आकाशशब्दतन्मात्रादभूच्छब्दगुणात्मकम् ॥२३
आकाशविकृतेर्वायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत्।
वायोश्च स्पर्शतं मात्रात्तेजश्चाविरभूत्ततः ॥२४
त्रिगुणं तद्विकारेण तच्छब्दस्पर्शरूपवत्।

तेजोविकारादभवद्वारि राजश्चतुर्गुणम् ॥२५
रसतन्मात्रसम्भूत प्रायोरसगुणात्मकम् ।
भूमिस्तु गन्धतन्मात्रादभूत्पञ्चगुणान्विता ॥२६
प्रायोगन्धगुणा सातु बुद्धिरेषा गरीयसी ।
एभिः सम्पादित भुङ्क्तेपुरुषःपञ्चविंशक. ॥२७

पूजन करने की इच्छा से प्रेरणा प्राप्त हुआ मन सृष्टि किया करता है। यह आकाश शब्द तन्मात्रा से ही समुत्पन्न होता है और इस आकाश का शब्द ही विशेष गुण होता है।.२३॥ आकाश की विकृति से वायु की समुत्पत्ति होती हैं और इस वायु के शब्द और स्पर्श ये ही विशेष गुण हुआ करते हैं। वायु के स्पर्श तनमात्रा से शब्द गुण के स्वरूप वाला तेज प्रदुभूत हुआ करता है। इस तेजमें शब्द के अतिरिक्त स्पर्श और रूप के भी दो गुण और होते हैं। ऐसे यह तीन गुणो वाला होता है। तेज के विकार से जल की उत्पत्ति होती है। इस जल मे हे राजन् चार गुण होते हैं ॥२४, २५, यह इसकी तन्मात्रा से समुद्भूत होता है अतएव यह प्रायः इस गुण से समान्वित होता है। भूमि गन्ध की तन्मात्रा से उत्पन्न होती है और इसमे रूप-रस-स्पर्श-शब्द और गन्ध ये पाँच गुण होते हैं ॥२६॥ प्राय. यह गन्ध गुण वाली ही होती है और यही गरीयसी बुद्धि भी है। इनके द्वारा सम्पादित को यह पच्चीसवाँ पुरुष भोगता है ॥ २७ ॥

ईश्वरेच्छावशः सोऽपि जीवात्मा कथ्यते बुधैः।
एव षड्विंशकप्रोक्त शरीरेऽहमानवे ॥ २८
सांख्यसंख्यात्मकत्वाच्चकपिलादिभिरुच्यते ।
एततत्त्वात्मकंकृत्वाजगद्वेधाअजीजनत् ॥ २९
सावित्री लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वासमास्थितः ।
ततः सञ्जपतस्तस्यभित्वादेहमजन्मयम् ॥ ३०
यावदब्दशत दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जन ।

तत कालेन महतातस्या पुत्रोऽभवन्मनु ॥३१
स्वायम्भुव इति ख्यात स विराडिति न श्रुतम्।
तद्रूपगुणसामान्यादधिपूरुष उच्यते ॥ ३२
वैराजा यत्र ते जाता बहव शसितव्रताः।
स्वायम्भुवा महाभागा सप्त सप्त तथापरे ॥ ३३
स्वारोचिषाद्या सर्वे ते ब्रह्मतुल्यस्वरूपिण ।
औत्तमिप्रमुखा स्तद्वद्येषान्त्व सप्तमोऽधुना ॥३४

बुधो के द्वारा वह जीवात्मा भी ईश्वर की इच्छा के वश में रहने वाला कहा जाता है । इस प्रकार से इस मानवीय शरीर म छब्बीस तत्व युक्त या यह संघ्रुशय इस नाम से कहा जाया करता है ॥ २८ ॥ तत्वों की सख्या के स्वरूप वाला होने ही से कपिल आदि के द्वारा यह साख्य शास्त्र या दशन कहा जाता है । वेधा ने इस जगत् को एक तत्व के स्वरूप वाला समुत्पन्न किया है ॥२६॥ लोक की सृष्टि के लिये सावित्री को अपने हृदय मे करके ही प्रजापति समास्थित होते हैं । इसके उपरान्त भलीभाँति जाप करते हुए उनके कल्मष सहित शरीर का भेदन करके ही सावित्री प्रकट हुई थी ॥ ३० ॥ जिस प्रकार से कोई प्राकृत मनुष्य होता है उसी भाँति दिव्य सौ वष तक के बहुत महान् काल मे उसका अर्थात् सावित्री का मनु पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ ३१ ॥ इसका स्वायम्भुव मनु—यह शुभ नाम प्रसिद्ध था वह महान् विराट् था—ऐसा हमने सुना है । उसके रूप गुण सामान्य से वह अधि पुरुष कहा जाता है ॥ ३२ ॥ जहाँ पर वे बहुत से शसित व्रत वाले वैराज समुत्पन्न हुए थे तथा दूसरे सात सात महाभाग वाले स्वायम्भुव थे ॥ ३३ ॥ स्वारोचिष आदि वे सब ब्रह्मा के ही तुल्य स्वरूप वाले थे । उसी तरह औत्तमि प्रमुख भी थे अर्थात् जिनमे औत्तमि प्रधान था वे भी थे जिनमे आप इस समय में मानवें होते हैं ॥ ३४ ॥

आगे वरक सप्तर्षि गण स्थित रहा करते हैं ॥ ५ ॥ धन्या नाम धारिणी मनु की कन्या ने ध्रुव से शिष्ट को जन्म दिया था। शिष्टात्मा अग्नि की कन्या सुच्छाया ने सुतो को समुत्पन्न किया था ॥ ६ ॥ कृप, रिपु, जय, वृत्त, वृक तेजस, चक्षुष यहा दौहित्रो में और वह रिपुंजय वीरिणी मे उत्पन्न हुए थे ॥ ७ ॥

वीरणस्यात्मजायान्तु चक्षुर्मनुमजीजनत्।
मनुर्वैराजकन्यायां नड्वलायां सचाक्षुषः ॥८
जनयामास तनयान्दश शूरानकल्मषान्।
ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्हविः ॥९
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चापराजितः।
अभिमन्युस्तु दशमो नड्वलायामजायत ॥१०
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी तु सुप्रभान्।
अग्निसुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसङ्गयम् ॥११
पितृकन्या सुनीथातु वेनमग्रादजीजनत्।
वेनमन्यायिनं विप्रा ममन्थुस्तत्कराद्भूत्॥
पृथुर्नाम महातेजा. स पुत्रौ द्वावजीजनत् ॥१२
अन्तर्धानस्तु मारीचं शिखण्डिन्यामजीजनत्।
हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत् सुतान्।
प्राचीनबर्हिषं सागं यमं शुक्रं बलं शुभम् ॥१३
प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत्प्रजापतिः।
हविर्धाना प्रजास्तेन बहवः सम्प्रवर्त्तिता. ॥१४

वीरण की आत्मजा मे मनु ने चक्षु को प्रसूत किया था और वैराज की कन्या नड्वला से सचाक्षुष मनु ने कल्मष से रहित महान् शूरवीर दश पुत्रो को जन्म ग्रहण कराया था। उन दशो के नाम— ऊरु-पूरु-शतद्युम्न-तपस्वी सत्यवाक्हवि-अग्निष्टुत्-अतिरात्र-सुद्युम्न-अपराजित और अभिमन्यु दशम था जो नड्वला से उत्पन्न हुआ था ।८।

६, १० ॥ क्रम से पद्माग्नेयी ने सुन्दर प्रभा वाले पुत्रों को प्रसूत किया था उन पुत्रों के नाम अग्नि–सुमन–ख्याति–ऋतु–अङ्गिरा और गय ये थे ॥ ११ ॥ पितृ कन्या जिसका शुभ नाम सुनीथा तो अङ्ग से वेन को जन्म दिया था। राजा वेन बहुत ही अधिक अन्यायी हुआ था। अतएव विप्रों ने उस को शाप देकर फिर उसके शरीर का मथन किया था। उसके हाथ से मन्थन करने पर पृथु नाम वाला महान् तेजस्वी का जन्म हुआ था उस मृत्यु ने भी दो पुत्रों को प्रसूत किया था ॥१२॥ इसने शिखण्डिनी में अन्तर्धान और मारीच नाम वाले पुत्रों को उत्पन्न किया था। धिषणा पद्माग्नेयीने हविर्धान से सुतों को प्रसूत किया था जिनके नाम प्राचीन बर्हि-साङ्ग, यम, शुक्र, बल और शुभ थे ॥१३, प्राचीन बर्हि भगवान् एक महान् प्रजापति हुए थे। उसने हविर्धान बहुत सी प्रजाएँ सम्प्रवर्तित की थीं ॥१४॥

सवर्णायान्तु सामुद्रयान्दशाधत्त सुतान्प्रभु ।
सर्वेपचेलसोनाम धनुर्वेदस्य पारगा ॥१५
तत्तपारक्षिता वृक्षा बभुर्लोके समन्तत ।
देवादेशाच्च तानग्निरदहद्रविनन्दन ! ॥१६
सोमकन्याऽभवत्पत्नी मारिषा नाम विश्रुता
तेभ्यस्तु दक्षमेक सा पुत्र मग्रयमजीजनत् ॥१७
दक्षादनन्तर वृक्षानोषधानि च सर्वशः ।
अजीजनत्सोमकन्या नन्दी चन्द्रवती तथा ॥१८
सोमासाम्यपतत्स्यापदत्त्वासीतिम्नोटय ।
तासातुविस्तर वक्ष्ये लोके य सुप्रतिष्ठित. ॥१९
द्विपदश्चाभवन् केचित् केचिद् बहुपदा नराः ।
वलीमुखा शकुवर्णा कर्णप्रावरणास्तदा ॥२०
अश्वऋक्षमुखा केचित् केचित् सिंहाननास्तथा ।
श्वशूकरमुखा केचित् के चिदुष्ट्र मुखास्तथा ॥२१

प्रभु ने सवर्णा सामुद्री मे दश सुतो को जन्म प्रदान किया था। ये सभी प्रचेतस नाम से प्रसिद्ध हुए थे ॥१५॥ उनके तप से सुरक्षित वृक्ष लोक मे सब ओर सुशोभित हुए थे। हे रविनन्दन ! देवो के आदेश से अग्नि ने उनको जला दिया था ॥१६॥ मारिषा इस शुभ नाम से प्रसिद्ध उसकी पत्नी हुई थी उनसे एक अग्रज अर्थात् परमोत्तम दक्ष नाम वाले पुत्र को उसने प्रसूत किया था ॥१७॥ दक्ष के अनन्तर सभी ओर बहुत से वृक्ष और औषधियाँ सोम कन्या ने समुत्पन्न की थीं तथा नन्दी चन्द्रवती का भी जन्म दिया था ॥१८॥ सोम के अंश उस दक्ष के भी अस्सी करोड़ हुए थे उनका विस्तार बतायेंगे जो लोक मे सुप्रतिष्ठित हुआ था ॥१९॥ कुछ दो पद वाले और कुछ बहुत पद वाले नर हुए थे। बकीमुख-शकु कर्ण तथा कर्ण प्रावरण कुछ अश्व और रीछ के मुख वाले तथा कुछ सिंह के समान मुख वाले हुए थे। कतिपय कुत्ता और शूकर के तुल्य मुख वाले और कुछ ऊँट के समान मुख वाले हुए थे ॥२०, २१॥

> जनयामास धर्मात्मा म्लेच्छान् सर्वाननेकश ।
> मसृष्ट्वा मनसा दक्ष स्त्रिय पश्चादजीजनत् ।
> ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
> सप्तविंशति सोमाय ददौ नक्षत्रसंज्ञिता ॥
> देवासु मनुष्यादि ताभ्य सर्वमभूज्जत् ॥२३

उस धर्मात्मा ने सब अनेकों म्लेच्छों को भी जन्म दिया था। उस दक्ष ने मन से सृजन करके पीछे स्त्रियो को जन्म दिया था ।२२। उसने उन मे से दश तो धर्म को दी थी-तेरह कश्यप को प्रदान की थीं और सत्ताईस नक्षत्र संज्ञा वाली सोम को दी थीं। उन्ही स्त्रियो से देव-असुर और मनुष्य प्रभृति का यह सम्पूर्ण जगत् हुआ था ।२३।

४—दक्ष प्रजापति से मैथुनी सृष्टि

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
उत्पत्तिं विस्तरेणैव सूत ! ब्रूहि यथातथम् ॥१
सङ्कल्पाद्दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ।
दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसम्भवा ॥२
प्रजाःसृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज चैवादौ तथैव शृणुत द्विजाः ! ॥३
यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगणपन्नगान् ।
न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः ।
दक्षः पुत्रसहस्राणि पाञ्चजन्यामजीजनत् ॥४
तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान् सिसृक्षून् विविधाः प्रजाः ।
नारदःप्राहहर्यश्वान् दक्षपुत्रान्समागतान् ॥५
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वोर्ध्वमध एव च ।
ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुध्वमृषिसत्तमाः ॥६
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रादिव सिन्धवः ॥७

था ।४। विविध भाँति की प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा करने वाले महाभाग ने उनको देख करके ना रहने समागत हर्यश्व दक्ष के पुत्र से कहा था ।५। हे ऋषि सत्तमो ! सर्वत्र इस भू मण्डल का प्रमाण ऊर्ध्व भाग में और अधोभाग में भली भाँति जान कर फिर विशेष रूप से सृष्टि की रचना करो ।६। उन्होंने भी उन के इस वचन को सुन कर सभी दिशाओं में प्रयाण किया था और तब से गये हुए वे आज तक भी वापिस नहीं लौटे हैं जिस तरह नदियाँ समुद्र में जाकर फिर वापिस नहीं लौटा करती हैं ।७।

हर्यश्वेषु प्रणष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः ।
वीरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ॥८
शबला नाम ते विप्राः समेताः सृष्टिहेतवः ।
नारदोऽनुगतानाह पुनस्तान्पूर्ववत्सतान ।।
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वा भ्रातनयो पुनः ॥९
आगत्य चाथ सृष्टिञ्च करिष्यथ विशेषतः ।
तेऽपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातॄन् यथा पुरा ॥१०
ततः प्रभृति न भ्रातुः कनीयान्मार्गमिच्छति ।
अन्विष्यन्दुःखमाप्नोति तेन तत्परिवर्जयेत ॥ ११
ततस्तेषु विनष्टेषु षष्टिं स यां प्रजापतिः ।
वैरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तथा ॥१२
प्रादात्स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशतिसोमायचतस्रोऽरिष्टनेमय (मिने) ॥१३
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते ।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासां नामानि विस्तरात् ॥१४

उन हर्यश्वों के प्रनष्ट हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने पुनः वीरिणी में प्रभु ने एक सहस्र पुत्रों का सृजन किया था ।८। वे विप्र शवल इस नाम वाले थे और सभी सृष्टि के हेतु स्वरूप एकत्रित हुए थे । फिर उन

अनुगत सुनो से पूर्व की भाँति ही नारद ने कहा था कि इस भूमि का सर्वत्र प्रमाण को जानकर कि यह कितनी विस्तृत है तथा अपने प्रथम गत भाइयों को भी जान कर फिर यहाँ आकर विशेष रूप से सृष्टि की रचना करोगे। देवर्षि नारद जी के कहने पर वे सभी उसी मार्ग से चले गये थे, जिससे पहिले उनके बड़े भाई लोग गये थे ॥ ९, १० ॥ तभी से लेकर भाई के छोटे भाई उस मार्ग की इच्छा नहीं करता है। अन्वेषण करते हुए दुःख को प्राप्त होता है अतएव इसी कारण से उसका परि-वर्तन कर देना चाहिए ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर उनके भी विनष्ट हो जाने पर प्रजापति प्राचेतस दक्ष ने वैरिणी में साठ कन्याओं का सृजन किया था अर्थात् उनको जन्म दिया था ॥ १२ ॥ उन्हीं साठ कन्याओं में से दक्ष ने दस कन्यायें तो धर्म को दी थीं—तेरह कश्यप ऋषि को प्रदान की थीं, सत्ताईस सोम को प्रदान की थीं—चार अरिष्टनेमि को दी थीं। अब उनके नाम *विस्तारपूर्वक बतलाये जाते हैं ॥ १३, १४ ॥*

शृणुध्वं देवमातृणां प्रजाविस्तरमादित. ।
मरुत्वती वसूर्यामी लम्बा भानुररुन्धती ॥१५
सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भामिनी ।
धर्मपत्न्य समाख्यातास्तासां पुत्रान्निबोधत ॥१६
विश्वेदेवास्तु विश्वाया साध्या साध्यानजीजनत ।
मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥१७
भानोस्तु भानवस्तद्वन् मुहूर्त्ताया मुहूर्तका ।
लम्बायाघोषनामानानागवीथीतुयामिजा ॥१८
पृथिवीतलसम्भूतमरुन्धत्यामजायत ।
सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पो वसुसृष्टिन्निबोधत ॥१९
ज्योतिष्मन्तस्तुयेदेवाव्यापका पर्वतोदिशम् ।
वसवस्तेसमाख्यात स्तेषां सर्गन्निबोधत ॥२०
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौप्रकीर्तिताः ॥२१

अब आप लोग उन दवो की माताओ के परम शुभ नामो का तथा आदि से प्रजा के विस्तार का श्रवण करो—धर्म्म का जो कन्यायें दश दी गयी थी उन धर्म की पत्नियो के नाम मरुत्वती—वसूर्यामी—लम्बा भानु—अरु धती—सङ्कल्पा—मुहूर्ता—साध्या—विश्वा और भामिनी ये थ। ये सब धर्म की पत्नियाँ समाख्यात हुई थी। अब उन दशा पत्नियो क उदर से जो पुत्र समुत्प न हुए थे उनको भी जान लो ।। १५, १६ ।। विश्वा के विश्वेदेवा पुत्र हुए थे और साध्या न साध्या को जन्म दिया था। मरुत्वती मे मरुत्वायो ने ज म ग्रहण किया था और वसू स वसुगण समुत्पन्न हुए थे ।। १७ ।। भानु से भानुगण और उसी भांति मुहूर्ता म मुहूर्त को न जन्म लिया था। लम्बा नाम की पत्नी मे घोष नाम वाले पुत्र हुए थे तथा यामि स जन्म लेने वाले नागवीथी थे। अरु धती म पृथ्वी तत सम्भूत का ज म हुआ था। सङ्कल्पा से सकल्प समुत्प न हुआ था। अब वसु की सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करलो ।। १८ १६ ।। ज्योतिष्मान जो देव व्यापक हैं और सभी दिशाओ में है वे ही सब वसु गण नाम से समाख्यात हुए थे। अब हमसे जो सृष्टि हुई है उसको भी आप लोग समझ लो ।। २० ।। आप अर्थात् जल, ध्रुव, सोम धर, अनिल, अनल प्रत्युष, प्रभास ये आठ वसुगण कीर्तित किये गये हैं ।। २१ ।।

आपस्य पुत्राश्चत्वार शान्तो वैण्डएवच ।
शाम्बोऽयमणिश्चनश्चयज्ञरक्षाधिकारिणा ।।२२
ध्रुवस्य कालपुत्रस्तु वर्चा सोमादजायत ।
द्रविणा हव्यावाहश्च धरपुत्रावुभौ स्मृतौ ।।२३
कल्याणिन्या तत प्राणोरमण शिशिरोऽपि च ।
मनोहराधरात्पुत्रानवापाथ हरे सुता ।।२४
शिवा मनोजव पुत्रमविज्ञानगतिं तथा ।
अवापाचानलात् पुत्रावग्निप्रायगुणौ पुन ।।२५

एतेषां मानसानान्तु त्रिशूलवरधारिणाम् ।
कोटयश्चतुराशीतिस्तत्पुत्राश्चाक्षया मताः ॥३१
दिक्षु सर्वासु ये रक्षां प्रकुर्वन्ति गणेश्वराः ।
पुत्रपौत्रसुताश्चैते सुरभी गर्भसम्भवाः ॥३२

अज, एकपाद, अहि बुघ्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक-सुरेश्वर-सावित्र- जयन्त - पिनाकीत्यपराजित—ये रुद्र समाख्यात हुए हैं। एकादश गणेश्वर हुए हैं। २६, ३० ॥ ये मानस त्रिशूलवर के धारण करने वाले हैं इनकी सख्या चौरासी करोड हैं और इनके पुत्र तो अक्षय माने गये है ।। ३१ ॥ ये गणेश्वर सभी दिशाओ मे रक्षा का काम किया करते हैं। पुत्र, पौत्र और ये सुत सभी सुर भी गर्भ से समूत्पन्न होने वाले हैं ॥ ३२ ॥

६— कश्यपान्वय वर्णन

कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकान् ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टासुरसातथा ॥१
सुरभिर्विनता तद्वत्ताम्रा क्रोधवशा इरा ।
कद्रूर्विश्वा मुनिस्तद्वत्तासां पुत्रान्निबोधत ॥२
तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो. ।
वैवस्वतेऽन्तरे चैते आदित्याद्वादशस्मृता. ॥३
इन्द्रोधाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथवरुणोयमः ।
विवस्वान्सविता पूषांशुमान्विष्णुरेवच ॥४
एते सहस्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः ।
मारीचात् कश्यपादाप पुत्रानदितिरुत्तमान् ॥५॥
कृशाश्वस्य ऋषे. पुत्रा देवप्रहरणाःस्मृताः ।
एते देवगणा विप्रा. प्रतिमन्वन्तरेषु च ॥६॥

उत्पद्यन्ते प्रलीयन्ते कल्पे ल्पे तथैव च ।
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं कश्यप ऋषि की पत्नियों से जो पुत्र और पौत्र आदि हुए हैं उनका हाल बतलाने को जा रहा हूँ। कश्यप महर्षि की पत्नियों के नाम अदिति-दिति-दनु-अरिष्टा-सुरसा-सुरभि-विनता-ताम्रा-क्रोध वशा-इरा-कद्रू-विश्वा-मुनि-ये थे। अब इन पत्नियों के उदर से जो पुत्र समुत्पन्न हुए थे उनको भी आप लोग जान लीजिए ॥१॥२॥ तुषिता नाम वाले जो देवता चाक्षुष मनु के अन्तर में हुए थे वे ही सब वैवस्वत मन्वन्तर में बारह आदित्य कहे गये हैं ॥३॥ उन द्वादश आदित्यों के नाम इन्द्र—धाता भग—त्वष्टा-मित्र वरुण—यम विवस्वान्—सविता-पूषा-अंशुमान्-विष्णु—ये हैं ये ही सहस्र किरणों वाले बारह आदित्य कहे गये हैं। मारीच कश्यप महर्षि से अदिति ने परमोत्तम पुत्रों को प्राप्त किया था ॥४॥५॥ कृशाश्व ऋषि के पुत्र देव प्रहरण कहे गये थे। हे विप्रो! ये सब देव गण प्रत्येक मन्वन्तर में हुए हैं ॥६॥ ये सब उत्पन्न हुआ करते हैं और प्रलीन भी होते रहते हैं और कल्प कल्प में ऐसा ही होता रहता है। दिति नाम की जो महर्षि कश्यप जी की एक पत्नी थी उसने कश्यप से दो ही पुत्रों की प्राप्ति की थी ऐसा सुना गया है ॥७॥

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्ष तथैव च ।
हिरण्यकशिपोस्तद्वज्जात पुत्रचतुष्टयम् ॥८
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च सह्लादोह्लाद एव च ।
प्रह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्वाष्कल एव च ॥९
विरोचनश्चतुर्थश्च स बलि पुत्रमाप्तवान् ।
बलेः पुत्रशत रासीद्बाणज्येष्ठ ततोद्विजा ॥१०
धृतराष्ट्रस्तथा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रांशुतापन ।
निकुम्भनाभो गुवक्षः कुक्षिभीमो विभीषणः ॥११
एवमाद्यास्तु बहवो बाणज्येष्ठा गुणाधिकाः ।

वाण सहस्रबाहुश्च सर्वास्त्रगणसयुत ॥१२
तपसा तापितो यस्य पुरे वसति शूलभृत् ।
महाकालत्वमगमत्साम्य यश्च पिनाकिन ॥१३
हिरण्याक्षस्य पुत्राऽभूदूलूक शकुनिस्तथा ।
भूतसन्तापनश्चैव महानाभस्तथैव च ॥१४

उन दिति के पुत्रों के नाम हिरण्य कशिपु और हिरण्याक्ष था। हिरण्य कशिपु के उसी भाँति चार पुत्र हुए थे ॥ ८ ॥ उन चारों पुत्रों के नाम प्रह्लाद-अनुह्लाद-सह्लाद और ह्लाद ये थे। प्रह्लाद के पुत्र आयुष्मान् शिवि वाष्कल तथा चौथा विरोचन हुए थे। विरोचन ने बाल नामधारी को पुत्र के रूप में प्राप्त किया था। हे द्विजगण ! राजा बालक सौ पुत्र हुए थे जिन में वाण सबसे बड़ा पुत्र था। ८॥९॥१०॥ धृतराष्ट्र-सूय-चन्द्र च द्राश-तापन-निकुम्भ-गुवक्ष-कुक्षिभीम-विभीषण एव आदि गुणों म सब विक बहुत से पुत्र थे इनमे वाण ज्येष्ठ था। वाण और सहस्त्र बाहु सभी प्रकार के अस्त्रों के समुदाय से समन्वित थे अर्थात् सभी अस्त्रों के पूर्ण ज्ञाता थे ॥११॥१२॥ तपश्चर्या के द्वारा परम स तुष्ट हुए भगवान् शूलभृत् जिस के पुर मे ही निवास किया करते थे। और जो पिनाकी प्रभु के साम्य महा कालत्व को प्राप्त होगया था। हिरण्याक्ष के पुत्र उलूक-शकुनि-भूत सन्तापन और महानाभ हुए थे ॥१३॥१४॥

एतेभ्य पुत्रपौत्राणा कोटय सप्तसप्तति ।
महाबला महाकाया नानारूपा महोजस ॥१५
दनु पुत्रशत लेभे कश्यपाद्बलदर्पितम् ।
विप्रचित्ति प्रधानोऽभूद्येषा मध्येमहाबल ॥१६
द्विमूर्द्धा शकुनिश्चैव तथा शकुशिरोधर ।
अयोमुख शम्बरश्च कपिशो नामतस्तथा ॥१७
मारीचिर्मेघवाश्चैव इरा गर्भाशरास्तथा ।

विद्रावणश्च केतुश्च केतुवीर्यः शतह्रदः ॥१८
इन्द्रजित् सप्तजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ।
एकचक्रो महाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा ॥१९
असिलोमा पुलोमा च विन्दुर्बाणो महासुरः ।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च एवमाद्यादनो सुता. ॥२०
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा ।
उपदानवी मयस्यासीत्तथा मन्दोदरी कुहू ॥२१

इनसे जो पुत्र और पौत्र आदि हुए थे उनकी संख्या सतत्तर करोड़ थी। ये महान् बलशाली महान् शरीर के आकार प्रकार वाले, अनेक प्रकार के स्वरूप धारी और महान् ओज वाले सभी हुए थे ॥१५॥ दनु ने महा मुनीन्द्र कश्यप से बल के दर्प से समन्वित एक सौ पुत्रों का जन्म दिया था। इन सबके मध्य मे महान् बलवान और प्रधान विप्रचित्ति हुआ था ॥ १६ ॥ उन सौ दनु के पुत्रो मे कतिपय प्रधान पुत्रो के नाम यहाँ पर बतलाये जा रहे हैं—द्विमूर्धा-शकुनि-शकुशिराधर-अयोमुख-शम्बर-कपिश-मारीचि मेघवान्-इरा—गर्भशिरा-विद्रावण—केतु-केतु वीर्य-शतह्रद-इन्द्रजित—सप्तजित—वज्रनाभ—एक चक्र-महा बाहु-वज्राक्ष-तारक-असिलोमा पुलोमा विन्दु बाण-महासुर-स्वर्भानु वृषपर्वा एव आदि दनुके पुत्र हुए थे जो कि प्रमुख थे ॥१७।१८।१९।२०॥ स्वर्भानु की कन्या का नाम प्रभा था और शची थी तथा पुलोमजा मय की उपदान थी तथा मन्दोदरी और कुहू थी ॥२१॥

शर्मिष्ठा सुन्दरी चैव चन्द्रा च वृषपर्वणः ।
पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते हिते ॥२२
बह्वपत्ये महासत्त्वे मारीचस्य परिग्रहे ।
तयो. पष्टिसहस्राणि दानवानामभूत् पुरा ॥२३
पौलोमान् कालकेयाश्च मारीचोऽजनयत् पुरा ।
अवध्या येऽमराणां वै हिरण्यपुरवासिनः ॥२४

चतुर्मुखाल्लब्धवरास्ते हता विजयेन तु ।
विप्रचित्ति सैंहिकेयान् सिंहिकायामजीजनत् ।।२५
हिरण्यकशिपोर्येवैभागिनेयास्त्रयोदश ।
व्यंस कल्पश्च राजेन्द्र ! नलो वातापिरेव च ।।२६
इल्वलो नमुचिश्चैव श्वसृपश्चाजनस्तथा ।
नरक कालनाभश्च सरमाणस्तथैव च ।।२७
कालवीर्यश्च विख्यातो दनुवंशविवर्धना ।
सह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचा स्मृता ।।२८

वृषपर्वा की शर्मिष्ठा सुन्दरी और चन्द्रा थी वैश्वानर की दो सुतायें हुई थी जिनका नाम पुलोमा और कालका था ।।२२।। महान सत्व वाले और बहुत सी सन्तति से समन्वित मारीच का परिग्रह था उन दोनों से पुरातन काल मे साठ हजार दानव हुए थे ।२३। पहले मरीच ने पौलाम और कालकेयो को जन्म दिया था । जो ऐसे बलशाली थे कि ये हिरण्यपुर मे निवास करने वाले सब देवगणो के द्वारा वध करने के योग्य नहीं थे ।।२४।। वे सब चार मुखो वाले ब्रह्मा जी से वरदान प्राप्त करने वाले थे विजय के द्वारा हत हुए थे। विप्रचित्ति सिंहिका में सैंहिकेयों को जन्म ग्रहण कराया था । जो हिरण्य कशिपु के वंशगामी थे वे तेरह हुए थे । हे राजेन्द्र ! उनके नाम ये है– व्यंस कल्प नल वातापि इल्वल, नमुचि श्वसप, अजन नरक कालनाभ सरमाण और कालवीय तथा विख्यात ये दनु के वंश के वर्धन करने वाले हुए हैं । जो सह्लाद नामधारी दैत्य था उसके निवात कवच कहे गये है ।।२४।२५।२६।२७।२८।।

अवध्या सर्वदेवाना गन्धर्वोरगरक्षसम् ।
ये हता भगमाश्रित्य त्वर्जुनेन रणाजिरे ।।२९ ।।
षट्सुता जनयामास ताम्रा मारीचवीजत ।
शुकीश्येनीचभासीचसुग्रीवीगृध्रिकाशुचि ।।३०
शुकी शुकानुलूकाश्च जनयामास धर्मत ।
श्येनी श्येनास्तथा भासी कुररानप्यजीजनत् ।।३१

गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान् ।
हंससारसकौञ्चांश्च प्लवान् शुचिरजीजनत् ॥३२
अजाश्वमेषोष्ट्रखरान् सुग्रीवी चाप्यजीजनत् ।
एपताम्रान्वय: प्रोक्तो विनतायांनिबोधत ॥३३
गरुडः पततांनाथो अरुणश्च पतत्त्रिणाम् ।
सौदामिनी तथा कन्या येयं नभसि विश्रुता ॥३४
सम्पातिश्च जटायुश्च अरुणस्य सुतावुभौ ।
सम्पातिपुत्रो बभ्रुश्च शीघ्रगश्चापि विश्रुत ॥३५

ये सभी महान बल विक्रमशाली थे और ऐसे बलिष्ठ थे कि समस्त देवगण तथा गन्धर्व-उरग और राक्षस भी इनका वध नहीं कर सकते थे। इनको रणक्षेत्र मे मार्ग का समाश्रय ग्रहण करके अर्जुन ने ही निहत किया था ॥२८॥ मारीच के वीर्य से ताम्रान छै कन्याओ का प्रसव किया था। इन छैओं कन्याओ के नाम ये थे–शुकी, श्येनी, भासी सुग्रीवी, गृध्रिका, शुचि ॥३०॥ शुकी ने शुको को तथा उलूको को धर्म से जन्म कराया था। श्येनी ने श्येनो को प्रसूत किया था और भासी ने कुररो को सम्भूत किया था ॥ ३१ ॥ गृध्री ने गिद्धो को और कबूतरो, पारावत विहङ्गमो, हंस, सारस, क्रोंचो को जन्म दिया था तथा शुचि ने प्लवों को समुत्पन्न किया था ॥३२॥ सुग्रीवी नाम धारिणी ने अज, अश्व, मेप, उष्ट्र और खरों (गधो) को जन्म ग्रहण कराया था। यहा तक यह ताम्र का वश वर्णित किया गया है अब यहा से आगे आप सब लोग विनता मे समुत्पत्ति हुई थी उसका भी ज्ञान प्राप्त करलो ॥३३॥ पतनशील पक्षियो का स्वामी गरुड और पतत्रियो मे अरुण और सौदामिनी नाम वाली एक कन्या जो नभ मे विश्रुत है। अरुण के सम्पाति और जटायु दो पुत्र हुए थे। सम्पाति का पुत्र बभ्रु था और शीघ्रगामी प्रसिद्ध हैं। ॥ ३४ । ३५ ॥

जटायुष: कर्णिकार: शतगाती च विश्रुतौ ।

सारसो रज्जुवालश्चभेरुण्डश्चापि तत्सुताः ।।३६
तेषामनन्तमभवत् पक्षिणां पुत्रपौत्रकम् ।
सुरसाया सहस्रन्तु सर्पाणामभवत्पुरा ।।३७।।
सहस्र शिरसाङ्कद्रू सहस्रञ्चापि सुव्रत ! ।
प्रधानास्तेपु विख्याता षड्विंशतिररिन्दम ।।३८
शेषवासुकिकर्कोटशङ्खैरावतकम्वलाः ।
धनञ्जयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः ।।३९
एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः ।
शख पाल महाशख-पुष्पदंष्ट्र-शुभाननाः ।।४०
शकुरोमाश्च बहुलो वामन पाणिनस्तथा ।
कपिलोदुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरितिस्मृताः ।।४१
एषामनन्तमभवत् सर्वेषां पुत्रपौत्रकम् ।
प्रायशो यत् पुरादग्ध जनमेजयमन्दिरे ।।४२

जटायु के पुत्र कर्णिकार और शतगामी ये दो परम प्रसिद्ध हुये थे। सारस, रज्जुबाल और भेरुण्ड भी उसी के पुत्र थे ।।३६। उनके पुत्र और पौत्र जो हुए थे वे पक्षियो के अनन्त ही हुये थे। पुरातन समय मे सुरसा के एक सहस्र सर्प हुये थे। हे सुव्रत ! कद्रू के सहस्र शिर वालो के एक सहस्र सर्प हुए थे किन्तु हे अरिन्दम ! उनमे परम प्रमुख छब्बीस ही विख्यात हुए हैं।।३७,३८। उन छब्बीस प्रकार के प्रधान सर्पों के नाम तथा भेद इस प्रकार हैं-शेष-वासुकि-कर्कोट-शख-ऐरावत-कम्बल-धनञ्जय-महानील -पद्म-अश्वतर-तक्षक-एलापत्र-महापद्म-धृतराष्ट्र-बलाहक-शखपाल-महाशख-पुष्पदंष्ट्र-शुभानन-शकुरोमा-बहुल-वामन-पाणिन-कपिल-दुर्मुख और पतञ्जलि-इनन मो से छब्बीस कहेगये हैं। इन सबके पुत्र और पौत्र जो हुए वे सबके अनन्त ही हुए थे। बहुधा जनमेजय ने अपने मन्दिर मे सर्पों के ध्वंस करने वाले यज्ञ में प्राचीन काल मे दग्ध कर दिये थे ।। ३९।४०।४१।४२ ।।

रक्षोगणं क्रोधवशा स्वनामानमजीजनत् ।
दंष्ट्रिणा नियुत तेषा भीमसेनादगान्क्षयम् ॥४३

रुद्राणाञ्च गण तद्वद्गोमहिष्यो वराङ्गनाः ।
सुरभिर्जनयामास कश्यपान् मयनयना ॥४४

मुनिर्मुनीनाञ्च गण गणमप्सरसा तथा ।
तथा किन्नरगन्धर्वानरिष्टाऽजनयद्बहून् ॥४५

तृण वृक्षलतागुल्ममिरा सर्वमजीनत् ।
विश्वा तु यक्षरक्षासि जनयामास कोटिशः ॥४६

तत एकोनपञ्चाशन्मरुत कश्यपाद्दितिः ।
जनयामास धर्मज्ञान् सर्वानमरवल्लभान् ॥४७

क्रोधवशा नाम वाली पत्नी ने अपने नाम वाले राक्षसों के गण को जन्म दिया था। दाढ़ वालों उनके संख्या में नियुत हो हुए थे किन्तु भीमसेन से उनका नाश हो गया हो था ॥४३॥ उसी भांति सुरभिनाम धारिणी कश्यप की पत्नी ने कश्यप ऋषि से ही रुद्रों के गण गो-भैंस और वराङ्गनाओं का जन्म उत्पन्न सब वाली होकर दिया था ॥ ४४ ॥ मुनि नाम की पत्नी ने मुनियों के गण तथा अप्सराओं के गण को उत्पन्न किया था। अरिष्टा पत्नी ने बहुत किन्नरों और गन्धर्वों को समुत्पन्न किया था ॥ ४५ ॥ इरा ने ये सभी वृक्ष तृण, लता और गुल्मों को जन्म दिया था। विश्वा नाम वाली कश्यप की पत्नी ने करोड़ों ही यक्षों और राक्षसों को उत्पन्न किया था ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर दिति ने कश्यप जी से गर्भ धारण करके उनचास मरुद्गणों को प्रसूत किया था जो परम धर्मज्ञ थे और सभी देवताओं के परम प्रिय भी थे ॥४७॥

---

७ – आधिपत्याभिषेचन ।

आदिसर्गश्च यः सूत ! कथितो विस्तरेण तु ।
प्रतिसर्गञ्चयेयेषामधिपास्तान् वदस्व नः ॥१
यदाभिषिक्त सकलाधिराज्ये पृथुर्धरित्र्यामधिपो बभूव ।
तदौषधीनामधिप चकार यज्ञव्रताना तपसाञ्च चन्द्रम् ॥२
नक्षत्र-तारा-द्विज-वृक्ष-गुल्मलता-वितानस्य च रुक्मगर्भः ।
अपामधीश वरुण धनाना राज्ञा प्रभु वैश्रवणञ्च तद्वत् ॥३
विष्णु रवीणामधिप वसूनामग्निञ्च लोकाधिपतिश्चकार ।
प्रजापतीनामधिप च दक्षञ्चकार शक्रं मरुतामधीशम् ॥४
दैत्याधिपानामथ दानवाना प्रह्लादमीशञ्च यम पितॄणाम् ।
पिशाचरक्षःपशु-भूत-यक्ष वेतालराजस्त्वथ शूलपाणिम् ॥५
प्रालेय शैलञ्च पति गिरीणामीश समुद्रं ससरिन्नदानाम् ।
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामीश पुनश्चित्ररथ चकार ॥६
नागाधिप वासुकिमुग्रवीर्य सर्पाधिप तक्षकमादिदेश ।
दिशाङ्गजानामधिपञ्चकार गजेन्द्रमैरावतनामधेयम् ॥७

किया था प्रजापतियों का प्रधान अधिप दक्ष को और मरुतों का स्वामी इन्द्र को बनाया गया था ॥४॥ दैत्याधियों का तथा दानवों का स्वामी प्रह्लाद को किया गया था और सब पितृगणों का अधीश यम को नियुक्त किया था। पिशाच, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष, वेताल इन सबका राजा भगवान शूलपाणि को बनाया गया था ॥५॥ समस्त गिरियों का अधिप प्रालेय गिरि (हिमालय) का बनाया था तथा सब सर-सरित और नदों का अधीश्वर समुद्र को नियुक्त किया गया था। गन्धर्व-विद्याधर और किन्नरों का स्वामी फिर चित्ररथ को ही किया गया था ॥ ६ ॥ जितने भी नाग नामधारी थे उनका अधीश उग्रवीर्य वासुकि को किया था और सर्पों का स्वामी तक्षक को नियुक्त किया था। दिशागजों का स्वामी ऐरावत नामधेय वाले गजेन्द्र को किया था ॥७॥

सुपर्णमीशमन्ततामथाश्वराजानमुच्चैःश्रवसञ्चकार ।
सिंहं मृगाणां वृषभं गवाञ्च वृक्षं पुनः सर्ववनस्पतीनाम् ॥८
पितामहः पूर्वमथाभ्यषिञ्चेतान् पुनः सर्वदिशाधिनाथान् ।
पूर्वेण दिक्पालमथाभ्यषिञ्चन्नाम्ना सुधर्माणमरातिकेतुम् ॥६
ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शङ्खपदाभिधानम् ।
सकेतुमन्तञ्च दिगीशमीशश्चकार पश्चाद्भुवनाण्डनर्मं ॥१०
हिरण्यरोमाणमुदग्दिगीशं प्रजापतिर्देवमुनश्चकार ।
अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाः शश नु वहन्तस्तु भुवोऽभिरक्षाम् ॥११
चतुर्भिरेभिः पृथुनामधेयो नृपोऽभिषिक्तः प्रथमं पृथिव्याम् ।
गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये वैवस्वताख्ये च पुनः प्रवृत्ते ॥१२
प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य बभूव सूर्यान्वयवंशचिन्हः ॥१३॥

जो पतनशील पक्षिगण थे उनका राजा सुपर्ण को किया था और सभी प्रकार के अश्वों का राजा उच्चैः श्रवा नाम वाले को बना दिया था। जितने भी प्रकार के वन्य पशु हैं उन सबका शिरोभूषण स्वामी सिंह बनाया गया था—गौ जाति का अधिक वृषभ को

सम्पूर्ण वनस्पतियों का अधीश वृक्ष को बनाया गया था ।८। पितामह ने सबसे पूर्व इनको अभिषिक्त किया और फिर उन्होंने ही इन समस्त दिशाओं के अधिनाथों का अभिषेक किया था । पूर्व दिशा में दिक पाल सुधर्मा नाम वाले को बनाया था जो अराति केतु हैं ।६। इसके अनन्तर दक्षिण दिशा का पालक अधीश्वर शखपद अभिधान वाले सर्वेश्वर को बनाया था । फिर भुवनाण्ड गर्भ ने सकेतुमान ईश को दिगीश किया था ।।१० प्रजापति ने उत्तर दिशा का दिक्पाल स्वामी देवमुन हिरण्य रोमा को बनाया था । ये सब दिक्पाल परम पुरातन समय में नियुक्त किये गये थे किन्तु वे सभी से आज तक भी दिशाओं के अधीश्वर शत्रुओं का दाह करते हुए इस भू मण्डल की रक्षा कर रहे हैं ।११। इन चारों के द्वारा पृथु नाम वाला राजा सर्व प्रथम पृथ्वी में अभिषिक्त किया गया था । जब चाक्षुष नाम वाला मन्वन्तर समाप्त हो गया था और वैवस्वत नाम वाला मन्वन्तर प्रवृत्त हो गया था उस समय में इस चराचर सम्पूर्ण विश्व का सूर्यान्वय वश के चिन्ह वाला प्रजापति हुआ था ।।१२, १३।।

८—मनवन्तर वर्णन

एवं श्रुत्वा मनु प्राह पुनरेव जनार्दनम् ।
पूर्वेषाञ्चरितं ब्रूहि मनूनां मधुसूदन ।।१
मन्वन्तराणि सर्वाणि मनूनां चरितञ्च यत् ।
प्रमाणञ्चैवकालस्यतच्छृणुष्वसमाहित ।।२
एकचित्त प्रशान्तात्मा शृणु मार्तण्डनन्दन ।
यामनामपुरादेवाआसन् स्वायम्भुवान्तरे ।।३
सप्तर्षयः पूर्वं ये मरीच्यादयः स्मृता ।
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च सह सवन एव च ।।४

ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्योमेधामेधा तिथिर्वसुः ।
स्वायम्भुवस्यास्यमनोर्दशैतेवशवर्द्धनाः ॥५
प्रतिसर्गमिमे कृत्वा जग्मुर्यत्परमम्पदम् ।
एतत्स्वायम्भुवंप्रोक्तं स्वारोचिषमतः परम् ॥६
स्वारोचिषस्य तनयाश्चत्वारो देववर्चसः ।
नभो नभस्यप्रसृतिभानव. कीर्तिवर्द्धनाः ॥७

श्री सूत जी ने कहा—इस प्रकार से सबका श्रवण करके मनुने पुनः भगवान् जनार्दन से कहा था कि हे मधुसूदन ! अब आप परमानुग्रह करके पूर्व में होने वाले मनुगण का चरित हमारे सामने वर्णित कीजिए ।१। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अब आप सब लोग पूर्ण रूप से समाहित हो जाइये और श्रवण करिये । मैं सम्पूर्ण मन्वन्तर और मनुष्यों के चरित्र तथा उनके काल का प्रमाण सभी कुछ बतलाता हू ।२। हे मार्तण्ड नन्दन ! एकनिष्ठ चित्त वाले और परम प्रशान्त आत्मा वाले होकर आप सुनिए । पहिले परम पुरातन समय में यामा नाम वाले स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवता हुए थे ।३। मरीचि आदि पूर्व में ये ही सप्त ऋषि हुए थे । आग्नीध्र–अग्नि बाहु–सह–सवन–ज्योतिष्मान् द्युतिमान्–हव्य–मेधा–मेधातिथि–वसु ये दश ही स्वायम्भुव मनु के वंश के वर्धन करने वाले हुए हैं अर्थात् इन्होंने वंश को बढ़ाया था ॥४, ५॥ प्रत्येक सर्ग में ये परम पद को प्राप्त हुए थे–यही स्वायम्भुव मन्वन्तर का चरित है जो तुमको बता दिया गया है । अब इसके आगे स्वारोचिष मन्वन्तर आता है ॥६ स्वारोचिष मनु के देवों के समान वर्चस वाले चार पुत्र हुए थे उनके शुभ नाम ये हैं—नभ–नभस्य–प्रसृति और भानु । ये सभी कीर्त्ति की वृद्धि करने वाले थे ॥७

दत्तोनिश्च्यवनस्तम्वः प्राण कश्यप एव च ।
और्वो वृहस्पतिश्चैवसप्तैतेऋषेय स्मृता ॥८
देवाश्च तुषितानामस्मृता स्वारोचिषेऽन्तरे ।

हवीन्द्रःसुकृतोमूर्तिरापोज्योतिरयस्मयः ॥६
वसिष्ठस्य सुताः सप्त ये प्रजापतयः स्मृता. ।
द्वितीयमेतत्कथितं मन्वन्तरमतः परम् ॥१०
औत्तमीय प्रवक्ष्यामि तथामन्वन्तरं शुभम्।
मनर्नामोत्तमियंस्य दशपुत्रानजीजनत् ॥११
ईषऊर्जश्च तर्जश्च शुचिः शुक्रस्तथैव च ।
मधुश्च माधवश्चैव नभस्योऽथ नभास्तथा ॥१२
सह. कनीयानेतेषामुदार. कीर्त्तिवर्द्धनः ।
भावनास्तत्र देवा.स्युरूर्जा. सप्तर्षयःस्मृताः ॥ ३
कौकुरुण्डिश्च दाल्भ्यश्च शखः प्रवहण.शिवः ।
सितश्चसस्मितश्चोत्रसप्तैतेयोगवर्द्धना. ॥१४

स्वारोचिष मन्वन्तर मे दत्त, निश्च्यवन, स्तम्ब, प्राण, कश्यप, और्व और वृहस्पति ये सात ही सप्तर्षि कहे गये हैं ॥८ स्वारोचिष मन्वन्तर मे देवता तो तुषित नाम वाले ही थे । हवीन्द्र, सुकृत, मूर्त्ति, आपज्योति, अयस्मय ये सात वसिष्ठ ऋषि के पुत्र ही उस समय मे प्रजापति कहे गये हैं । यह दूसरा जो स्वारोचिष नाम वाला मन्वन्तर था उसका भी वर्णन कर दिया गया है । इससे आगे तीसरा मन्वन्तर का वर्णन करते हैं । इसके समय मे औत्तमि नाम वाले मनु ने दश पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥११ उन दशो पुत्र के शुभ नाम ये हैं—ईष, ऊर्ज, तर्ज शुचि शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभा और सह । इनमे कनीयान् जो था वह उदार और कीर्त्ति वर्धन था । उस औत्तमीय मन्वन्तर मे भावना वाले देवगण थे और ऊर्ज सप्तर्षि हुए थे ॥१२, १३॥ कौकुरुण्डि, दाल्भ्य, शख, प्रवहण, शिव, सित, सस्मित ये ही सात योग की वृद्धि करने वाले थे ॥१४

मन्वन्तर चतुर्थं तु तामस नाम विश्रुतम् ।
कवि पृथुस्तथैवाग्निरकपि वपिरेव ॥१५

तथैव अल्पधीमानौ मुनयः सप्तनामतः ।
साध्या देवगणा यत्र कथितास्तामसेऽन्तरे ॥१६
अकल्मषस्तथा धन्वी तपोमूलस्तपोधन. ।
तपो रति तपस्यश्च तपोद्युतिपरन्तपौ ॥१७
तपो भागी तपो योगी धर्माचाररताः सदा ।
तामसस्य सुताः सर्वेदशवंशविवर्द्धनाः ॥१८
पञ्चमस्य मनोस्तद्वद्रैवतस्यान्तरं शृणु ।
ऐन्द्रबाहु सुबाहुश्च पर्जन्य. सोमपो मुनिः ॥१६
हिरण्यरोमा सप्ताश्वः सप्तैते ऋषयः स्मृताः ।
देवाश्चाभूतरजसस्तथाप्रकृतय शुभा ॥२०

तीन मन्वन्तरों का वर्णन किया जा चुका है अब चौथे मन्वन्तर को बतलाया जाता है जिसका तामस नाम प्रसिद्ध है। कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, अल्प और धीमान् ये ही इन नामों वाले सात मुनिगण और साध्य नाम वाले देवगण इस तामस मन्वन्तर में हुए थे ॥१५, १६॥ तापस मनु के भी दश पुत्र हुए थे जो सभी वंश के वर्धन करने वाले थे। उनके नाम-अकल्मष, धन्वी, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, तपस्य, तपोद्युति, परन्तप, तपोभागी, तपोयोगी ये हैं और ये सदा धर्म्म के आचार में ही रति रखने वाले थे ॥१७, १८॥ इसके अनन्तर अब उसी प्रकार से पञ्चममनु रैवत नाम वालेका अन्तर आप लोग श्रवण करिये। इस पाँचवें मन्वन्तर में ऐन्द्रबाहु–सुबाहु–पर्जन्य–मुनि–हिरण्य रोमा और सप्ताश्व ये सात सप्तर्षि कहे गये थे। देवता आभूत रजस हुए थे तथा शुभ प्रकृतियाँ थीं ॥ १६, २० ॥

अरुणस्तत्वदर्शीचधृतिमान्हव्यवान्कविः ।
युक्तोनिरुत्सुक सत्वानिर्मोहोऽथप्रकाशक ॥२१
धर्मवीर्यबलोपेता दशैते रैवतात्मजा ।
भृगु सुधामा विरजा. सहिष्णुर्नाद एव च ॥२२

विवस्वानतिनमा च षष्ठे सप्तर्षयोऽपरे ।
चाक्षुषस्यान्तरे देवालेखा नाम परिश्रुता. ।।२३
ऋभवोऽथ ऋमाद्याश्चवारिमूलादिवौकसः ।
चाक्षुषस्या तरेप्रोक्तादेवानापञ्चयोनयः ।।२४
रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश ।
प्रोक्ताः स्वायम्भुवे वंशे ये मयापूर्वमेव तु ।।२५
अन्तर चाक्षुष नैतन्मया ते परिकीर्त्तितम् ।
सप्तम तत्प्रवक्ष्यामि यद्वैवस्वतमुच्यते ।।२६
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपोगौतमस्तथा ।
भरद्वाजस्तथायोगीविश्वामित्रः प्रतापवान् ।।२८

अरुण–तत्वदर्शी–धृतिमान्–हव्यवान्–कवि–युक्त–निरुत्सुक–सत्व–निर्मोह–प्रकाशक इन नामो वाले धर्म तथा वीर्यबल से समन्वित रैवत मनु के दश पुत्र समुत्पन्न हुए थे। भगु, सुधामा, विरजा, सहिष्णु नाद विवस्वान, अतिनामा ये छठवें मन्वन्तर में दूसरे सप्तर्षि गण थे। चाक्षुष मन्वन्तर मे लेखा नाम वाले देवता हुए थे जो पूर्णतया परिश्रुत हैं ।। २१, २२, २३ ।। चाक्षुष मन्वन्तर मे देवो की पाँच योनियाँ बतलाई गयी हैं—ऋभ ऋमाद्य–वारिमूल और दिनौकस ये उनके नाम हैं ।। २४ ।। इसी प्रकार से चाक्षुष मनु के रुरु प्रभृति दश पुत्र समुत्पन्न हुए थे जिनका वर्णन मैंने स्वायम्भुव के वश में पहिले ही कर दिया है ।।२५।। इसके अनन्तर मैंने यह चाक्षुष मन्वन्तर परिकीर्तित किया है। अब सातवाँ मन्वन्तर बतलाते है जिसको वैवस्वत मन्वन्तर कहा जाता है। इस मन्वन्तर मे अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज तथा प्रताप वान् योगी विश्वामित्र और जय हानि ये सात इस वर्त्तमान समय मे सात महर्षि हैं। ये सब सर्ग की व्यवस्था करके परम पद को चले जते हैं। ।।२६।।२७।।२८।।

साध्याविश्वेन्रुद्राश्नामरुतोवसवोऽश्विनौ ।
आदित्याश्चसुरास्तद्वत्सप्तदेवगणाःस्मृताः ।।२६

इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चास्य दशपुत्राः स्मृता भुवि ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु सप्त सप्तमहर्षयः ॥३०
कृत्वा धर्म्मव्यवस्थान प्रयान्तिपरमम्पदम् ।
सावर्ण्यस्यप्रवक्ष्यामिमनोर्भावितथान्तरम् ॥३१
अश्वत्थामा शारद्वांश्चकौशिकोगालवस्तथा ।
शतानन्द काश्यपश्चरामश्चऋषयःस्मृताः ॥३२
धृतिर्वरीयान् यवसः सुवर्णो वृष्टिरेव च ।
चरिष्णुरीड्यः सुमतिर्वसुः शुकश्च वीर्यवान् ॥३३
भविष्यादशसावर्णेर्मनोःपुत्राःप्रकीर्तिता ।
रौच्यादयस्तथान्येऽपिमनवः सम्प्रकीर्तिताः ॥३४
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम भविष्यति ।
मनुर्भू तिसुतस्तद्वद्भौत्योनामभविष्यति ॥ ३५

इस म वन्तर मे साध्य, विश्वेदेवा, रुद्र, मरुद्गण, वसुगण, अश्विनि कुमार, आदित्य और सुरये उसी भाँति सात देवगण कहे गये हैं ।।२९।। इस वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु जिनमे प्रमुख थे ऐसे दस पुत्र इस भू मण्डल मे बताये गये हैं । इन रीति से सभी मन्वन्तरो में सात-सात ही महर्षि हुए हैं ।।३०।। ये सब महर्षि इसीलिये हुआ करते हैं कि अपने २ मन्वन्तर मे धर्म की ठीक व्यवस्था कर देवें । इसके उपरान्त ये सप्तर्षि परम पद को चले जाया करते हैं । अब भावी मनु सावर्ण्य का अन्तर भी हम बतला दिये देते हैं । इस भावी मन्वन्तर में भी उसी भाँति सात महर्षियों का गण होगा । अश्वत्थामा, शरद्वान्, कौशिक, गालव, शतानन्द, कश्यप और राम ये सात ऋषि कहे गये हैं । इस मनु के भी दस पुत्र हैं उनके नाम धृति वरीयन् यवस, सुवर्ण, वृष्टि, चरिष्णु, ईड्य, सुमति, वसु, शुक जो महान् वीर्य वाला है । ये आगे होने वाले सावर्णि मनु के दस पुत्र होंगे जिनके नाम यहाँ पर कीर्तित कर दिये गये हैं । इनके अतिरिक्त रौच्य प्रभृति अन्य भी मनु बतलाये गये हैं । रुचि नामधारी प्रजापति का

पुत्र रौच्य नाम वाला होगा। इसी प्रकार से भविष्य में भूतिश्री पुत्र एक भौत्य नाम वाला भी मनु होगा ॥३१, ३२, ३३, ३४, ३५॥

ततस्तु मेरुसावर्णिर्ब्रह्मसूनुर्मनुः स्मृतः ।
ऋतश्च ऋतधामा च विष्वक्सेनो मनुस्तथा ॥३६
अतीतानागताश्चैते मनवः परिकीर्तिताः ।
षड्न युगसाहस्रमेभिर्व्याप्तं नराधिप ॥३७
स्वेस्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्य सचराचरम् ।
कल्पक्षये विनिर्वृत्ते मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥३८
एतेयुगसहस्रान्तेविनश्यन्तिपुनःपुनः ।
ब्रह्माद्याविष्णुसायुज्ययातायास्यन्ति वैद्विजा ॥३९

इनके पश्चात् ब्रह्मा का पुत्र मेरु सावर्णि मनु बताया गया है। ऋत, ऋतधामा, विष्वक्सेन भी मनु कहे गये हैं जो सभी आगे समागत समय में ही होंगे। जो मनु अब तक हो चुके हैं वे अतीत मन्वन्तर और जो अब यहाँ से आने वाले मनु हैं उन सबको परिकीर्तित कर दिया गया है। हे नराधिप! इन मनुओं के द्वारा छः कम एक सहस्र युगों का समय व्याप्त होता है। ये सभी मनु अपने २ अन्तर में इस सम्पूर्ण चराचर विश्व का समुत्पादन करके नव कल्प का क्षय होता है उस समय में कल्प की विनिवृत्ति में ब्रह्मा के साथ ही मुच्यमान हो जाया करते हैं। इसी प्रकार से ये सब एक सहस्र युगों के अन्त में बारम्बार विनष्ट हो जाया करते हैं। हे द्विजगण! ब्रह्मा आदि सभी विष्णु भगवान् के सायुज्य में गये हुए चले जायँगे ॥ ३६, ३७, ३८, ३९ ॥

९—पृथ्वीदोहन

बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालैः श्रूयतेपुरा ।
पार्थिवा पृथिवीयोगात्पृथिवीकस्य योगतः ॥ १

किमर्थञ्चकृतामज्ञाभूमे किंपारिभाषिणी ।
गौरितीयञ्चविख्यातानूत ! कस्माद्ब्रवीहिनः॥१
वंशे स्वायम्भुवस्यासीदङ्गो नाम प्रजापतिः ।
मृत्योस्तुदुहितातेनपरिणीतासुदुर्मुखा ॥२
सुनीथा नाम तस्यास्तु वेनो नामसुतः पुरा ।
अधर्म्मनिरतश्चासीद्बलवान्वसुधाधिपः ॥४
लोकेऽप्यधर्मकृज्जातः परभार्यापहारकः ।
धर्माचारस्य सिद्धयर्थंजगतोऽस्यमहर्षिभि- ॥५
अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञा स यदा ततः ।
शापेन मारयित्वैनमराजकमयार्दिताः ॥६
ममन्थु र्ब्राह्मणास्तस्यवद्देहमकल्मषाः ।
पितुरंशस्य चांशेन धार्मिको धर्म्मचारिण ॥७

महर्षि गण ने कहा—यह सुना जाता है कि पहिले बहुत से भूपालों ने इस पृथ्वी का भोग किया है। इस पृथ्वी के नाम से राजाओं को इसका अधिप या भोग करने वाले होने से पार्थिव कहा गया है। पृथ्वी का जो यह नाम हुआ है वह किसके योग से पड़ा है ? भूमि की यह संज्ञा (पृथ्वी) किस लिये हुई है और क्या परिभाषण करने वाली है अर्थात् इसमें क्या बतलाया जाता है। इस धरणी का 'गौ' यह भी नाम कहा जाता है और यह नाम भी परम विख्यात है—यह इसका नाम किस कारण से पड़ा है यह कृपा करके आप हमको बतला दीजिये ॥ १ ॥ २ ॥ सूतजी ने कहा—स्वायम्भुव मनु के वंश में अङ्ग नाम वाला प्रजापति हुआ था। उसने मृत्यु की दुहिता सुदुर्मुखा से परिणय किया था ॥ ३ ॥ उसका सुनीथा नाम था और पहिले वेन नाम का सुत था। यह वेन सर्वदा अधर्म में ही निरत रहा करता था और महान् बलवान् वसुधा का स्वामी था ॥ ४ ॥ यह लोक में भी अधर्म के करने वाला हुआ था और यह पराई भार्या के अपहरण करने वाला था।

जगत् के धर्माचार की सिद्धि के लिये महर्षियों के द्वारा इसको अनुनीत भी किया गया था तो भी जिस समय में अनुज्ञा नहीं दी तो ऋषिगण ने शाप देकर उसके द्वारा इसका हनन कर दिया था और फिर वे अराजकता के भय से अर्दित हो गये थे ।। ५ ।। ६ ।। कल्मष से रहित ब्राह्मणों ने बलपूर्वक उसके देह का मन्थन किया था । मन्थन की हुई उसकी काया से म्लेच्छ जाति वाले लोग नियमित हुए थे ।।७।।

शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः ।
पितुरंशस्य चांशेन धार्मिको धर्म्मचारिणः ।।८
उत्पन्नो दक्षिणाद्धस्तात्स धनुः सशरो गदी ।
दिव्यतेजोमयवपु सरत्नकवचाङ्गदः ।।९
पृथोरेवा भवद्यत्नात् ततः पृथुरजायत ।
स विप्रैरभिषिक्तोऽपितपः कृत्वा सुदारुणम् ।।१०
विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत्पुनः ।
निःस्वाध्यायवषट्कारनिर्द्धर्मवीक्ष्य भूतलम् ।।११
दग्धुमेवोद्यतः कोपाच्छरेणामितविक्रमः ।
ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता ।।१२
पृष्ठतोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दीप्तशरासनः ।
ततः स्थित्वैकदेशे तु किं करोमीतिचाब्रवीत् ।।१३
पृथुरप्यवदद्वाक्यमीप्सितं देहि सुव्रते ।
सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च ।।१४

माता के अंश से शरीर में वे कृष्ण अञ्जन के समान प्रभा वाले हुए थे पिता के अंश के द्वारा जो धर्मचारी था धार्मिक हुआ था ।।८।। दाहिने हाथ से धनुष-शर के सहित गदाधारी समुत्पन्न हुआ था। उस समुद्भूत व्यक्ति के शरीर का परम दिव्य तेज था और उसका वह दिव्य तेज पूर्ण शरीर रत्न जटित कवच और अङ्गदों से विभूषित था ।।९।। यह अधिक यत्न से समुत्पन्न हुआ था इसलिये यह पृथु ही हुआ

था। विप्रों के द्वारा राजासन पर उसका अभिषेक भी किया गया था तो भी वह सुदारुण तप करके भगवान् विष्णु के वरदान से इस समस्त भू-मण्डल का प्रभु बन गया था। उसने भूमिपति होकर देखा था कि यह सम्पूर्ण भूतल स्वाध्याय वषट्कार और धर्म से रहित हो गया है। ॥१०।११॥ इस अमरयित बल विक्रमशाली राजा ने जब भूतल का धर्म शून्य देखा तो उसे बड़ा भारी क्रोध हो गया था और क्रोध से शर के द्वारा उसको दग्ध कर देने को उद्यत हो गया था। जब रोष का इस प्रकार का भीषण क्रोधावेश देखा तो भूमि गौ रूप में समास्थित होकर भय से वहा से भागने को उद्यत हो गई थी ॥१२॥ दीप्त शरासन वाले महाराज पृथु भी उसी के पीछे २ अनुगमन करने लगे थे। इसके उपरान्त जब उसने देखा था राजा पीछे २ खदेड़ते हुए ही बराबर चले आ रहे हैं तो वह एक स्थान में घबड़ा कर स्थित हो गई थी और राजा से बोली—मैं क्या करू ? मुझे आप ही बतलावें ॥१३॥ पृथु ने भी यही कहा था—हे सुव्रत ! जो भी सबके अभीष्ट पदार्थ हैं उनको तुम दो। स्थावर और चर सम्पूर्ण जगत् का अभीष्ट तुम्हें देना चाहिए ॥१४॥

तथैव सा ब्रवीद्भूमिर्दुदोह स नराधिपः।
स्वके पाणौ पृथुर्वत्सं कृत्वा स्वायम्भुवं मनुम् ॥१५
तदन्नमभवच्छुद्धं प्रजाजीवन्तियेनवै।
ततस्तु ऋषिभिर्दुग्धावत्स- सोमस्तदाभवत् ॥ १६
दोग्धावृहस्पतिरभूत्पात्रं वेदस्तपोरसः।
वेदैश्च वसुधा दुग्धा दोग्धामित्रस्तदा भवत् ॥१७
इन्द्रोवत्सः समभवत् क्षीरमूर्जस्करं बलम्।
देवाना काञ्चनं पात्रं पितृणा राजततया ॥१८
अन्तकश्चाभवद्दोग्धायमोवत्स-स्वधा रसः।
अलाबुपात्रं नागानातक्षकोवत्सकोऽभवत् ॥१९
विषं क्षीरं ततो दोग्धा धृतराष्ट्रोऽभवत्पुनः।

अमुरैरपि दुग्धेयमायसे शक्रपीडिनीम् ॥२०
पात्रे मायामभूद्वत्स प्राह्लादिस्तु विरोचन ।
दोग्धाद्विमूर्धा तत्रासीन्मायायेनप्रवर्तिता ॥२१

भूमि ने उसी भांति कहा था और उस नराधिप ने दोहन किया था। पृथु ने अपने हाथ में स्वायम्भुव मनु को वत्स बनाकर ही दोहन किया था ॥१५॥ वह अन्न शुद्ध हो गया था जिससे प्रजा जीवित रहा करती है। इसके पश्चात फिर ऋषियो ने दोहन किया था उस समय मे वत्स सोम हुआ था ॥१६॥ फिर दोग्धा वृहस्पति हुए थे और पात्र तो वेद था तथा तप रस था। वेदों के द्वारा भूमि दोग्ध हुई थी उस समय मे दोहन करने वाले मित्र थे ॥१७॥ इन्द्र वत्स बना था और उस का जो क्षीर था वह ऊर्जस्कर बल था। देवो का जो पात्र था वह तो सुवर्णमय अर्थात् सुवर्ण का था और पितृगणो का पात्र राजत अर्थात् चाँदी का था ॥१८॥ जिस समय मे अन्तक यमराज ने भूमि का दोहन किया था और अन्तक स्वयं दोग्धा बने थे उस वक्त यम वत्स और स्वधा रस था। नागो का पात्र तो अलावु था और तक्षक वत्स बना था ॥१९॥ उस समय म विष ही क्षीर था। इसके अनन्तर पुन. धृतराष्ट्र दोग्धा हुए थे। इस का दोहन असुरो के द्वारा भी हुआ था आयस पात्र अर्थात् लोहे के शक्रपीडिनी को दोहन हुआ। पात्र मे माया को दुहा था और उस समय में प्रह्ला दि विरोचन वत्स हुआ था। वहां पर दोग्धा दो मूर्द्धाओं वाला था जिसने माया को प्रवर्तित किया था ॥२१॥

यक्षैश्च वसुधा दुग्धा पुरान्तर्द्धानमीप्सुभिः ।
कृत्वा वैश्रवण वत्समामपात्रे महीपते ॥२२
प्रेतरक्षोगणैर्दुग्धा धारा रुधिरमुल्वणम् ।
रौप्यनाभोऽभवद् दोग्धा सुमाली वत्सएवच ॥२३
गन्धर्वैश्चपुरादुग्धा वसुधा साप्सरोगणैः ।

वत्संचैत्ररथंकृत्वा गन्धान् पद्मदलेतथा ॥२४
दोग्धा वररुचिर्नामनाट्यवेदस्य पारग ।
गिरिभिर्वसुधा दुग्धा रत्नानि वि.धानि च ॥२५
औषधानिच दिव्यानि दोग्धा मेरुर्महाचलः ।
वत्सोऽभूद्धिमवास्तत्र पात्रंशैलमयंपुनः ॥२६
वृक्षैश्चवसुधादुग्धा क्षीरं छिन्नप्ररोहणम् ।
पालाशपात्रदोग्धातु शाल.पुष्पलताकुलः ॥२७
प्लक्षोऽभवत्ततो वत्सःसर्ववृक्षोधनाधिपः ।
एवमन्यैश्च वसुधा तदा दुग्धायथेप्सितम् ॥२८

पहिले अन्तर्धान की इच्छा रखने वाले यक्षों के द्वारा भी वसुधा दुही गयी थी । हे महीपते ! उस समय में सामवेद को पात्र बनाया था तथा वैश्रवण (कुवेर) को वत्स बनाया गया था । २२ । इस धरा का दोहन प्रेत और राक्षस गणों के द्वारा भी किया गया था अनि बलवान रुधिर दुहा गया था । रौप्य नाम दोग्धा हुए थे और सुमाली वत्स हुआ था ॥२३॥ पहिले काल में गन्धर्वों ने भी इस वसुधा को दुहा था जो कि अप्सराओं के गणों के साथ मिल कर ही दोहन किया गया था । उन्होंने चैत्र रथ को वत्स बनाया था और पद्मों के दलों में गन्धों को दुहा था ॥२४॥ वररुचि नाम वाला तो वसुधा का दोग्धा हुआ था जो कि वर रुचि नाट्य वेद का पारगामी धुरन्धर विद्वान् था । गिरियों के द्वारा इस वसुधा का दोहन किया गया था जिस में विविध भाँति के रत्नों का दोहन हुआ था ॥२५॥ महान् अचल मेरु के द्वारा दिव्य ओषधियों का दोहन हुआ था । उस दोहन के समय में वत्स हिमाचल बना था और शैलमय ही पात्र था ॥२६॥ वृक्षों ने वसुन्धरा का दोहन किया था जिस दोहन में छिन्न हुए वृक्षों का पुनः प्ररोहण हो जाना क्षीर था । पलाश (ढाक) का पात्र था और पुष्प तथा लताओं से समाकीर्ण शाल वृक्ष दोग्धा अर्थात् दोहन करने वाला था ॥२७॥ उस काल में प्लक्ष (पाखर)

ही जो समस्त वृक्षों का धनाधिप है वत्स हुआ था। इसी रीति से इस वसुधा का उस काल में अन्यों के द्वारा भी यथेच्छ रूप से दोहन किया गया था ॥२८॥

आयुर्धनानि सौख्यञ्चपृथौ राज्यप्रशासति ।
न दरिद्रस्तदा कश्चिन्नरोगीन च पापकृत् ॥२६
नापसगभयकिञ्चित् पृथौराजनिशासति ।
नित्यप्रमुदितालोका दुःखशोकविवर्जिताः ॥३०
धनुष्कोटयाच शैलेन्द्रानुत्सार्य्यसमहाबलः ।
भुवस्तलसमञ्चक्रे लोकानांहितकाम्यया ॥३१
न पुरग्रामदुर्गाणि नचायुधधरा नरा. ।
क्षयातिशयदुःखञ्च नार्थशास्त्रस्य चादरः ॥३२
धर्मैकवासनालोकाः पृथौ राज्यं प्रशासति ।
कथितानिचपात्राणि यत्क्षीरञ्चमयातव ॥३३
यथा यत्र रुचिस्तत्तद्देयं तेभ्यो विजानता ।
यज्ञश्राद्धे षु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम् ॥३४
दुहितृत्वङ्गता यस्मात् पृथोर्धर्म्मवतो मही ।
तदानुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता बुधैः ॥३५

जिस समय में यहाँ पर भू मण्डल में महाराज पृथु राज्य का प्रशासन कर रहे थे उस समय यहाँ आयु-सौख्य और धन सभी कुछ था। उस काल में यहाँ पर कोई भी दीन दरिद्र नहीं था और न कोई रोग से ही समाक्रान्त व्यक्ति था और न कोई भी पाप कर्मों के ही करने वाला था ॥२६॥ पृथु राजा के शासन काल में किसी भी प्रकार के उपसर्गों का भय किसी को भी नहीं था। सभी लोग नित्य ही परम प्रमुदित थे और सभी लोग दुःख तथा शोक से रहित थे ॥३०॥ उस महान् बलशाली राजा ने अपने धनुष की कोटि के द्वारा बड़े २ विशाल समुन्नत शैलों को उत्सारित करके इस तल को समतल कर दिया था तथा

ऊबड़ खाबड़पन हटाकर लोकों के हित के सम्पादन की कामना से परम सुन्दर इसको बना दिया था ॥३१॥ उस राजा के शासन काल में नगर और ग्रामों में कोई भी सुरक्षा सम्पादनार्थ दुर्ग आदि की आवश्यकता ही नहीं थी। और कोई भी मनुष्य आयुधों को धारण करने वाले भी नहीं थे क्योंकि अस्त्रायुधों की कोई आवश्यकता ही नहीं रही थी। क्षय के अतिशय होने का दुःख लेशमात्र भी नहीं था तथा *अर्थशास्त्र का कुछ भी समादर* उस समय में नहीं रह गया था ॥३२॥ राजा पृथु महाराज के द्वारा प्रशासन की बागडोर हाथ में ग्रहण करने पर सभी लोग एक मात्र धर्म की वासना रखने वाले हो गये थे। हमने दोहन के पात्र और क्षीर सब बतला दिये हैं ॥३३॥ जिनकी जहाँ पर रुचि थी वही विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष को उनको देना चाहिए। यज्ञों में और श्राद्धों में सब में रुचि के अनुसार ही दान करना चाहिए यह हमने तुम को बतला दिया है ॥३४॥ क्योंकि राजा पृथु के होने पर यह धर्मवती पृथ्वी उसकी दुहिता के स्वरूप वाली हो गई थी। यह उस में एक विशेष अनुराग का ही योग था इसी कारण से पृथु के ही नाम से इस वसुधा का नाम भी लोक में पृथ्वी यह विश्रुत हो गया था। जिसे बुध लोग कहा करते हैं ॥३५॥

१०—आदित्याख्यान

आदित्यवंशमखिलं वद सूत ! यथाक्रमम् ।
सोमवंशञ्च तत्त्वज्ञ ! यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१
विवस्वान् कश्यपात् पूर्वमदित्यामभवत्सुतः ।
तस्यपत्नीत्रयं तद्वत्संज्ञा राज्ञी प्रभा [illegible] ॥२
रैवतस्य सुता राज्ञी रेवतं सुषुवे सुतम् ।
प्रभा प्रभातं सुषुवे त्वाष्ट्रीसंज्ञा तथा म [illegible] ।

यमश्च यमुना चैव यमलौ तु बभूवतुः ।
ततस्तेजोमयं रूपमसहन्ती विवस्वतः ॥४
नारीमुत्पादयामास स्वशरीरादनिन्दिताम् ।
त्वाष्ट्रीस्वरूपेणनाम्ना छायेतिभामिनीतदा ॥५
किङ्गरोमीति पुरतः स्थिता तामभ्यभाषत ।
छाये ! त्वं भज भर्तारमस्मदीयं वरानने ! ॥६
अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय ।
तथेत्युक्ता तु सा देवमगमत् क्वापि सुव्रता ॥७

ऋषियों ने पूछा था—हे सूतजी ! सूर्य का सम्पूर्ण वंश आप हमारे सामने वर्णन कीजिए जो कि सब क्रमपूर्वक हो । हे तत्वों के पूर्ण ज्ञाता विद्वन् ! इसी भाँति चन्द्रवंश का भी यथावत् वर्णन करने के लिये आप परम योग्य हैं ॥ १ ॥ महा मुनीन्द्र सूतजी ने कहा—सबसे पूर्व में कश्यप महर्षि से अदिति नाम धारिणी पत्नी के उदर से विवस्वान् सुत ही समुत्पन्न हुआ था । उस विवस्वान् (सूर्य) की तीन पत्नियाँ थी और उनके नाम संज्ञा - राज्ञी और प्रभा ये थे ॥ २ ॥ राज्ञी रैवत की पुत्री थी और उसने रैवत मुन को जन्म दिया था । प्रभा नाम वाली ने प्रभात को प्रसूत किया था तथा त्वाष्ट्री संज्ञा ने मनु को समुत्पन्न किया था ।३। यम ने यमुना समुद्भूत की थी । ये यमल हुए थे । यह विवस्वान के उस तेजोमय स्वरूप को सहन करने वाली नहीं थी ॥ ४ ॥ उसने अपने शरीर से एक अनिन्दित नारी को समुत्पादित किया था । उस समय में वह भामिनी स्वरूप से त्वाष्ट्री और नाम से छाया थी ॥ ५ ॥ 'मैं इस समय में क्या करूँ'—यह कहने वाली जब सामने वह स्थित हुई तो उससे कहा था—हे छाये ! हे वर आनन वाली ! तुम हमारे ही स्वामी का भजन करो ॥ ५, ६ ॥ जो मेरी सन्तति हो उसे आप माता के समान स्नेह के द्वारा ही पालन करो । 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कह कर वह सुव्रता कहीं पर देव के समीप में पहुँच गई थी ॥७॥

कामयामास देवोऽपि सञ्ज्ञेयमिति चादरात् ।
जनयामास तस्यां तु पुत्रञ्च मनुम्परिणम् ॥ ८
सवर्णत्वाच्च सावर्णिर्म्मनोर्वैवस्वतस्य च ।
ततः शनिञ्च तपतीं विष्टिं चैव क्रमेण तु ॥ ९
छायायां जनयामास सञ्ज्ञेयमिति भास्करः ।
छाया स्वपुत्रेऽभ्यधिकं स्नेहं चक्रे मनौ तथा ॥ १०
पूर्वो मनुस्तु चक्षाम न यमः क्रोधमूर्च्छितः ।
सन्तर्जयामास तदा पादमुद्यम्य दक्षिणम् ॥ ११
शशाप च यम छाया सत्वरः कृमिसंयुतः ।
पादोऽयमेको भविता पूयशोणितविस्रवः ॥ १२
निवेदयामास पितुर्धर्म्मः शापामर्षित ।
निष्कारणमहं शप्तोमात्रा देव ! सकोपया ॥ १३
बालभावान् मया किञ्चिदुद्यतश्चरण सकृत् ।
मनुना वार्यमाणापि मम शापमदाद्विभो ॥ १४

यह देवी भी यह संज्ञा है—इसी आदर से उसको चाहने लगे थे। उसमें उन्होंने मनुरूपी पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था ॥ ८ ॥ वैवस्वत मनु के सवर्ण होने से वह सावर्णि हुआ था। इसके पश्चात् क्रम से शनि-तपती और विष्टि को समुत्पन्न किया ॥ ९ ॥ भगवान् भास्कर ने यह संज्ञा ही है यह समझ कर छाया में ही समुत्पन्न किये थे। छाया अपने पुत्र मनु में विशेष अधिक स्नेह किया करती थी ॥ १० ॥ पूर्व मनु ने तो देखा नहीं था किन्तु यम तो क्रोध से अत्यधिक मूर्च्छित होगया था। उस समय में उसने अपनी दाहिनी लात उठाकर भली भांति उसको डांट फटकार दी थी ॥ ११ ॥ तब तो छाया ने यम को शाप ही दे दिया था कि यह तेरा एक पैर जिसको तुने उठाकर मारने को उसको दी थी कृमियों से युक्त क्षत वाला और मवाद तथा रक्त से विस्रव हो जायगा ॥ १२ ॥ इस शाप से अमर्षित होकर धर्म्म ने पिता से निवेदन किया

था—हे देव ! मुझे बिना हो किसी विशेष कारण के माता ने शाप दे दिया है वह मुझ पर अत्यन्त ही कुपित हो गई हैं ॥ १३ ॥ बल के अभाव होने के ही कारण से मैंने एक ही बार अपना चरण अवश्य ही कुछ उठा किया था। हे विभो! मनु के द्वारा उसे निवारित भी किया गया था तो भी मुझे माता ने शाप दे ही दिया है ॥ १४॥

प्रायेण माता सास्माकं शापेनाहं यतो हतः ।
देवोऽप्याहयमं भूयः किङ्करोमिमहामते ॥१५
मौर्ख्यात्कस्यनदुःखस्यादथवाकर्म्मसन्ततेः ।
अनिवार्याभवस्यापिकाकथाऽयेषुजन्तुषु ॥१६
कृकवाकुर्म्मया दत्तो य कृमीन भक्षयिष्यति ।
क्लेदञ्च रुधिरञ्चैव वत्सायमपनेष्यति ॥ १७
एवमुक्तस्तपस्तेपे यमस्तीव्र महायशाः ।
गोकर्णतीर्थे वैराग्यात् फलपत्रानिलाशनः ॥ १८
आराधयन् महादेवं यावद्वर्षायुतायुतम् ।
वरं प्रादान् महादेवः सन्तुष्टः शूलभृत्तदा ॥१९
वव्रसलोकपालत्वं पितृलोकेनृपालयम् ।
धर्म्माधर्म्मात्मिकस्यापि जगतस्तुपरीक्षणम् ॥२०
एवं स लोकपालत्वमगमच्छूलपाणिनः ।
पितृणाञ्चाधिपत्यञ्च धर्म्माधर्म्मस्य चानघ ॥२१

प्रायः वह हमारी माता शाप के द्वारा मुझे कभी भी हत नहीं किया करती थी इसीलिये बड़ा दुःख है। उस समय म देव ने भी फिर यम से कहा था—हे महामते! बताओ, अब मैं इसमें क्या करूँ ? ॥१५॥ मूर्खता के कारण किसको दुःख नहीं होता है अर्थात् सभी मूर्खता बश दुःखित हुआ ही करते हैं। अथवा यह कर्मों की सन्तति ऐसी अनिवार्य होती है जो भी जैसा कर्म करता है उसे उसका फल अवश्य हो भोगना ही पड़ता है। यह तो साक्षात् भगवान् भव को भी भोगनी पड़ती है

फिर अन्य साधारण जन्तुओं की तो क्या ही क्या है ॥ १६ ॥ यह मैंने कृकवाकु दे दिया है जो कृमियों को खा जायगा । हे वत्स ! यह क्लेदन और रुधिर का भी अपनयन करेगा ॥ १७ ॥ इस प्रकार से जब उससे कहा गया था तो उस महान् यशस्वी यम ने तीव्र तपश्चर्या का तपन किया था और वह तपस्या भी फल—पत्र और वायु का ही केवल अशन करके गोकर्ण नामक तीर्थ में की थी ॥ १८ ॥ अयुतायुत अर्थात दसों हजार वर्ष पर्य्यन्त भगवान् महादेव का समाराधन किया था । तब तो इस उग्रतप से महादेव परम सन्तुष्ट हो गये थे और उसी समय में शूलधारी प्रभु ने वरदान दे दिये थे ॥ १६ ॥ महादेव ने कहा था लोकपालता हो जायगी और पितृ लोक में नृपालय होगा । तुम्हारा कर्त्तव्य कर्म यही होगा कि सम्पूर्ण जगत् का धर्म और अधर्म का आप परीक्षण किया करेंगे कि कौन कितना धर्मनिष्ठ है और कौन घोर पापात्मा है—आपके द्वारा यह निर्णय होने पर ही वह दुःख दण्ड तथा सुख स्वर्ग का उपभोग किया करेंगे ॥ २० ॥ हे अनघ ! इस प्रकार से शूलपाणि के प्रसाद से वह यम लोकपाल हो गया था तथा पितृगण के अधिपति होने का पद तथा धर्माधर्म का निर्णायक बन गया था ॥ २१ ॥

विवस्वानथ तज्ज्ञात्वा संज्ञायाः कर्म्मचेष्टितम् ।
त्वष्टुः समीपमगमदाचचक्षे चरोषवान् ॥ २२
तमुवाच ततस्त्वष्टासान्त्वपूर्वं द्विजोत्तमाः ।
तवासहन्ती भगवन् ! महस्तीव्रतमोनुदम् ॥२३
वडवारूपमास्थाय मत्सकाशमिहागता ।
निवारिता मया सा तु त्वया चैव दिवाकर ॥२४
यस्मादविज्ञाततया मत्सकाशमिहागता ।
तस्मान्मदीयं भवनं प्रवेष्टुं न त्वमर्हसि ॥२५
एवमुक्ता जगामाथ मरुदेशमनिन्दिता ।
वडवा रूपमास्थाय भूतले सम्प्रतिष्ठिता ॥२६

तस्मात्प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्रहभागहम् ।
अपनेष्यामि ते तेजो यन्त्रे कृत्वा दिवाकर! ॥२७
रूपतवकरिष्यामि लोकानन्दकरं प्रभो!
तथेत्युक्तः स रविणा भ्रमौ कृत्वा दिवाकरम् ॥२८

विवस्वान् ने इसके अनन्तर, संज्ञा के उस कर्मों के चेष्टित का ज्ञान प्राप्त किया तो वह त्वष्टा के समीप मे आये और अत्यन्त रोष वाले होकर कहा था ॥ २२ ॥ हे द्विजोत्तम गण! इस पर त्वष्टा ने बहुत ही सान्त्वना पूर्वक उनसे निवेदन किया था—हे भगवन्! वह बिचारी तम को छिन्न-भिन्न कर देने वाले आपके इस तीव्र तेज को सहन न करती हुई वडवा के रूप में समास्थित होकर यहाँ मेरे समीप मे समागत हुई थी। हे दिवाकर! मैंने उसको निवारित किया था और आने भी किया था ॥ २३ ॥ २४ ॥ क्योंकि वह अविज्ञातता के कारण से यहा पर मेरे समीप मे आ गई थी इस कारण से अब आप इस मेरे भवन मे प्रवेश करने के योग्य नहीं होती हैं ॥ २५ ॥ मेरे द्वारा इस प्रकार से कही गयी वह अनिन्दिता मरु देश मे चली गयी थी और वह वडवा का रूप धारण करके ही इस भूतल मे सम्प्रतिष्ठित हो रही है ॥ २६ ॥ हे दिवाकर देव! यदि मैं आपके अनुग्रह का भागी हूँ तो अब आप मुझ पर अपने प्रसाद की वृष्टि कीजिए। अब मैं यन्त्र मे करके आपके इस अत्युल्वण उग्र तेज का भी अपनयन कर दूँगा ॥ २७ ॥ हे प्रभो! आपका मैं अब स्वरूप ऐसा सुन्दर बना दूँगा जो लोकों के आनन्द करने वाला ही हो जायगा। इस प्रकार मे कहे गये उसको रवि के द्वारा भ्रमि मे दिवाकर को कर दिया था ॥ २८ ॥

पृथक् चकारतत्तेजश्चक्रं विष्णोरकल्पयत् ।
त्रिशूलञ्चापिरुद्रस्यवज्रमिन्द्रस्यचाधिकम् ॥ ६
दैत्यदानवसंहर्तु सहस्रकिरणात्मकम् ।
रूपञ्चाप्रतिमञ्चक्रे त्वष्टा पद्भ्यामृते महत् ॥३०

न शशाकाथ तद्द्रष्टुं पादरूपं रवे: पुनः ।
अर्चास्वपि तत पादौ न कश्चित्कारयेत् क्वचित् ॥३१
यः करोति स पापिष्ठां गतिमाप्नोति निन्दिताम् ।
कुष्ठरोगवाप्नोति लोकेऽस्मिन् दुःखसंयुतः ॥३२
यस्माच्च धर्म्मकामार्थी चित्रेष्वायतनेषु च ।
न क्वचित्कारयेत्पादौ देवदेवस्य धीमतः ॥३३
ततः स भगवान् ! गत्वा भूर्लोकममराधिपः ।
कामयामास कामार्त्तो मुखएव दिवाकरः ॥३४
अश्वरूपेण महता तेजसा च समावृतः ।
संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद्भयविह्वला ॥३५

उस भ्रमि के द्वारा उसका जो उग्रतेज था उसके पृथक् कर दिया था और उस पृथक्कृत तेज से भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र की रचना कर डाली थी। उस तेज से भगवान् रुद्र के त्रिशूल की और इन्द्रदेव के अधिक प्रभावशाली वज्र की रचना भी की गई थी ॥ २६ ॥ दैत्यों और दानवों के संहार करने वाले का एक सहस्र किरणों वाले स्वरूप से समन्वित अप्रतिम रूप की रचना त्वष्टा ने करदी थी जो महत् पैरों से रहित था ॥ ३० ॥ फिर वह रवि अपने पदों के रूप को देखने में भी असमर्थ हो गये थे। उसकी अर्चाओं में भी कोई भी कहीं पर उनके पादों की समर्चना न किया करे ॥ ३१ ॥ यदि कोई सूर्य के पादों का समर्चन किया भी करता है तो वह परम निन्दित और घोर पापिष्ठ गति को प्राप्त हुआ करता है। ऐसा करने वाला पुरुष इस लोक में परम दुःख से संयुत होता हुआ कुष्ठ जैसे महान् घोर रोग की प्राप्ति किया करता है ॥ ३२ ॥ इसी कारण से जो भी कोई धर्म और काम का अर्थी हो उसे चित्रों में तथा आयतनों में भी कहीं पर भी धीमान् देवों के भी देव के पादों की रचना न करे और करावे ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् वह भगवान् अमरों का अधिप भूर्लोक में गये थे और केवल मुखरूपी दिवाकर ने

कामार्त्त होकर कामना की थी ।। ३४ ।। अश्व के रूप से युक्त और महान् तेज से समावृत थे । वह जो संज्ञा थी वह भय से अत्यन्त विह्वल होती हुई मन से अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त होगई थी ।।३५।।

नासापुटाभ्यामुत्सृष्टपरोऽयमितिशङ्कया ।
तद्रेतसस्ततोजातावश्विनावितिनिश्चितम् ।।३६
दस्रोसुतत्वात्सञ्जातौ नासत्यौनासिकाग्रत ।
ज्ञात्वाचिराच्च तं देवसन्तोषमगमत्परम् ।
विमानेनागमत् स्वर्गं पत्या सह मुदान्विता ।।३७
सावर्णोऽपि मनुर्मेरावद्याप्यास्ते तपोधनः ।
शनिस्तपोबलादाप ग्रहसाम्यं ततः पुनः ।।३८
यमुना तपती चैवपुननद्यौ बभूवतुः ।
विष्टिर्घोरात्मिका तद्वत् कालत्वेन व्यवस्थिता ।।३९
मनोर्वैवस्वतस्यासन् दशपुत्रा महाबलाः ।
इलस्तु प्रथमस्तेषा पुत्रेष्ट्या समजायत ।।४०
इक्ष्वाकुः कुशनाभश्च अरिष्टो धृष्ण एवच ।
नरिष्यतः करूषश्च शर्य्यातिश्च महाबलः ।।
पृषध्रश्चाथ नाभागः सर्वे ते दिव्यमानुषाः ।।४१
अभिषिच्य मनु पुत्रमिल ज्येष्ठ स धार्मिकः ।
जगाम तपसेभूयः स महेन्द्रवनालयम् ।।४२

यह पर है—इस शङ्का से नासा के पुटों से ही उत्सर्जन किया था किन्तु इसके अनन्तर उनके वीर्य्य से अश्विनीकुमार समुत्पन्न हुये थे—यह निश्चित है । नासिका के अग्र भाग से ये नासत्य दस्र सुत रूप से समुद्भूत हुए थे—बहुत ही अधिक समय के पश्चात् यह जानकर देव को परम सन्तोष हुआ था । वह मुदान्वित होती हुई पति के ही साथ विमान के द्वारा स्वर्ग को गयी थी ।। ३६, ३७ ।। सावर्ण मनु भी अधिक तपोधन आज भी मेरु पर्वत में विद्यमान हैं । इसके अनन्तर वह शनि भी बल से

सम्प्रघर्षित करते हुए उसने इस मही पर भ्रमण किया था ॥४३॥ प्रताप वाले उसने अश्व के द्वारा समाकृष्ट होकर घूमते हुए भगवान् शम्भु के उपवन मे वह चले गय थे । वह वन कल्पद्रुम और लताओ से समाकीर्ण था और महत् वन का नाम शरवण था ॥ ४४ ॥ जिस वन मे सोमार्द्ध को शेखर मे धारण करने वाले भगवान् शम्भु देवेश्वर उमादेवी के साथ रमण किया करते हैं । पहिले ही समय मे वहाँ पर शरवण में समय (सङ्केत) कर दिया गया था ॥ ४५ ॥ पुरुष सज्ञा वाला कोई भी जीव यदि तेरे इस वन म समागत होगा तो वह इस दश योजन के मण्डल मे तुरन्त ही स्त्रीत्व को प्राप्त हो जायगा चाहे कोई भी हो सभी के लिए यह प्रभाव अवश्य होगा ॥ ४६ ॥ यह राजा इस इस समय का ज्ञान ही नही रखता था। वह यह भूल तथा अज्ञानवश उस शरवण नामक वन म पहुँच गया था और उसमे प्रवेश करते ही यह स्त्रीत्व को प्राप्त होगया था तथा जो इसकी सवारी का अश्व था वह भी वडवा घोडी) होगया था। हे नृप ! जब समस्त पुरुषत्व के लक्षण हून हो गये थे तो इस राजा को बहुत ही अधिक विस्मय हुआ था जब कि उसने अपने आपको एक स्त्री के रूप मे पाया था । अब तो वह इल इला नाम वाली स्त्री हो गई थी जिसक पीन—उन्नत और परम घनस्तन थे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ उसी वन में भ्रमण करते हुए उस इला भामिनी ने विचार किया था कि ऐसी दशा मे मेरा यहाँ कौन तो पिता है अथवा कौन भाई है और कौन मेरी माता ॥४६॥

११—सूर्यवंश वर्णन ।

अथान्विपन्तो राजान भ्रातरस्तस्यमानवा ।
इक्ष्वाकुप्रमुखाजग्मुस्तदाशरवणान्तिकम् ॥१
ततस्तेददृशु सर्वे वडवामग्रत. स्थिताम् ।
रत्नपर्याणकिरणदीप्तकायामनत्तमाम् ॥२

पर्याणप्रत्यभिज्ञानात् सर्वे विस्मयमागताः ।
अय चन्द्रप्रभो नाम वाजीतस्य महात्मनः ॥३
अगमद्वडवा रूपमुत्तमं केनु हेतुना ।
ततस्तु मैत्रावरुणि पप्रच्छुस्ते पुरोधसम् ॥४
किमित्येतदमून्चित्रवदयोगविदाम्वर ! ।
वशिष्ठश्चाब्रवीत् सर्वं दृष्ट्वा तद्ध्यानचक्षुषा ॥५
समयः शम्भुदयिताकृत. शरवणे पुरा ।
यः पुमान् प्रविशेदत्र स नारीत्वमवाप्स्यति ॥ ६
अयमश्वोऽपि नारीत्वमगाद्राजा सहैवतु ।
पुन. पुरुषतामेति यथासौ धनदोपम. ॥७

श्री महर्षि सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर मनु के पुत्र मानव उस इल राजा के भाई लोग जब उसको लौटने मे बहुत अधिक समय होगया तो उसकी खोज करते हुए इक्ष्वाकु प्रमुख सब उस शरवण नामक वन को गये थे ॥१॥ इसके अनन्तर जैसे ही वे उस वन के समीप तक ही पहुँचे थे कि उन्होंने सबने सामने स्थित वडवा को देखा था जो रत्नों के पर्याण (रत्न जटित जीन) की किरणों स परम दीप्त शरीर वाली थी और अतीव उत्तम थी ॥ २ ॥ इसके पर्याण के प्रत्यभिज्ञान से वे सभी लोग अत्यन्त विस्मित हो गये थे । उन्होंने समझ लिया था कि यह तो उसी महात्मा इल राजा का चन्द्रप्रभ नाम वाला अश्व है ॥३॥ किन्तु क्या हेतु हो गया है—जिससे इस वडवा का ऐसा अत्युत्तम स्वरूप हो गया है । इसके पश्चात् मैत्रा वरुणि नामक अपने पुरोहित से इस विषय में पूछा था ॥४॥ हे योग के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ ! आप हम को यह बताइये कि यह एक विचित्र घटना क्या और कैसे हो गई है ? तब तो महर्षि वशिष्ठ जी ने ध्यान के नेत्रों से यह सम्पूर्ण घटना को देख लिया था और उनसे वे फिर बोले थे ॥५॥ प्राचीन समय मे भगवान् शम्भु की दयिता उमा देवी ने इस शरवण वन मे प्रतिज्ञा की थी कि जो

कोई भी पुमान् इस शरवण वन में प्रवेश करेगा वह निश्चित रूप से स्त्रीत्व को प्राप्त हो जायगा ॥६॥ यह अश्व भी तो पुंस्त्व सत्ता वाला था अतएव यह भी राजा के साथ ही स्त्रीत्व को प्राप्त हो गया है अर्थात् अश्व से वडवा बन गया है। यह धनद के समान उपमा वाला पुनः पुरुषत्व को प्राप्त जिस तरह से होता है उसका उपाय करना होगा ॥७॥

तथैव यत्नः कर्तव्यश्चाराध्यैव पिनाकिनम् ।
ततस्ते मानया जग्मुर्यत्र देवो महेश्वरः ॥८
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः पार्वतीपरमेश्वरौ ।
तावूचतुरलंघ्योऽस्य समयः किन्तु साम्प्रतम् ॥९
इक्ष्वाकोरश्वमेधेन यत्फलं स्यात्तदावयोः ।
दत्त्वा किम्पुरुषो वीरः स भविष्यत्यसंशयम् ॥१०
तथेत्युक्तास्ततस्ते तु जग्मुर्वैवस्वतात्मजाः ।
इक्ष्वाकोरश्वमेधेन तेलः किम्पुरुषोऽभवत् ॥११
मासमेकम्पुमान्वीरः स्त्रीत्व मासमभूत् पुनः ।
बुधस्य भवने तिष्ठन्नीला गर्भधरोऽभवत् ॥१२
अजीजनत् पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम् ।
बुधश्चोत्पाद्य तं पुत्रं स्वर्लोकमुपजग्मिवान् ॥१३
इलस्य नाम्ना तद्वर्षमिलावृतमभूत्तदा ।
[illegible] ॥१४

ह अब संग्रह करने के योग्य नहीं है ॥९॥ इक्ष्वाकु के द्वारा किये गये अश्वमेध से जो भी फल होगा उसको हम दोनों को देकर वह वीर बिना किसी संशय के किम्पुरुष हो जायगा ॥१०॥ तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कहकर वे सब वैवस्वत मनु के पुत्र वहाँ से चले दिये थे। इक्ष्वाकु ने फिर अश्वमेध यज्ञ किया था और उससे वह इल किम्पुरुष हो गया था ॥११॥ इल का भी यह परिणाम हुआ था कि वह एक मास तक तो नारी होकर रहा करता था और एक मास तक पुरुष बनकर जीवन बिताता था। जिस समय में वह बुध के भवन स्थित रहा था और नारी के रूप में था उसी समय में इल ने गर्भ धारण कर लिया था ॥१२॥ फिर इसने अनेक सद्गुण गण से समन्वित एक पुत्र को जन्म दिया था। बुध ने उस पुत्र को इल के उदर में समुत्पादित करके फिर स्वर्लोक को चले गये थे ॥१३॥ उसी समय में इल के नाम से यह वर्ष इलावृत इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था। सोम और सूर्य के वंश में यही इल सबसे प्रथम मनु का पुत्र हुआ था ॥१४॥

एव पुरूरवाः पुंसोरभवद्वंशवर्द्धनः ।
इक्ष्वाकुर्कंवशस्य तथैवोत्पन्नपोऽभवत् ॥ [illegible]
इल. किम्पुरुषत्वे च सुद्युम्न इति [illegible] ।
पुन. पुत्रत्रयमभूत् सुद्युम्नस्या[illegible] ॥ [illegible]
उत्कलो वै गयस्तद्वद्[illegible] ।
उत्कलस्योत्कलानाम गय[illegible] ॥ [illegible]
हरिताश्वस्य दिक्पूर्वा [illegible] ।
प्रतिष्ठानेऽभिषिच्याथ [illegible] ॥ [illegible]
जगामेलावृत भोक्तु [illegible] ।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो [illegible] ॥ [illegible]
नरिष्यन्तस्य पु[illegible] ।
नाभागस्यात्मजस्[illegible] ॥ [illegible]

धृतकेतुश्चित्रनाथो रणधृष्टश्च वीर्य्यवान् ।
आनर्तो नाम शर्याति सुकन्याचैव दारिका ।।२१

इस प्रकार ■ पुरू रवा पुमान् के वंश का वर्धन करने वाला हुआ था । उसी भाँति सूर्य वंश की वृद्धि करने वाला तपोधन इक्ष्वाकु हुआ था ऐसा ही कहा गया है ।।१५।। इल को किम्पुरुषत्व हो जाने पर सुद्युम्न इस नाम से कहा जाता है । इसके पश्चात् सुद्युम्न के तीन अपराजित पुत्र हुए थे ।।१६।। उन तीनों के नाम उत्कल, गय और बड़े वीर्यवान् हरिताश्व ये थे । उत्कल की उत्कला नाम वाली–गय की गया पुरी मानी गयी है ।।१७।। हरिताश्व की कुरुओं के साथ पूर्वदिक् विराट् हुई थी । उसने प्रतिष्ठान में पुरूरवा पुत्र का अभिषेक किया था । दिव्य फलों के अशन वाले इला वृत वर्ष का उपभोग करने के लिये चला गया था । ज्येष्ठ दायाद जो इक्ष्वाकु था उसने मध्य देश को प्राप्त किया था ।।१८, १९।। नारिष्यन्त का शुच नाम वाला महान् बल वाला प्रसूत हुआ था । नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुआ था और धृष्ट के तीन पुत्र हुए थे ।।२०।। उन तीनों के नाम धृष्ट केतु चित्र नाथ और तीसरा वीर्यवान् रण धृष्ट ये थे । शर्याति का पुत्र आनर्त नाम वाला उत्पन्न हुआ था तथा सुकन्या नाम धारिणी एक लड़की हुई थी ।।२१।।

आनर्तस्याभवत्पुत्रो रोचमान प्रतापवान् ।
आनर्तो नाम देशोऽभून्नगरीच कुशस्थली ।।२२
रोचमानस्य पुत्रोऽभूद्देवोरेवत एव च ।
ककुद्मीचापरान्नामज्येष्ठ पुत्रशतस्य च ।।२३
रेवती तस्य सा कन्या भार्या रामस्यविश्रुता ।
ककुद्मस्य तु कारुपावहव प्रथिताभुवि ।।२४
पृषध्रोगोवधा च्छूद्रो गुरुशापादजायत ।
इक्ष्वाकुवंश वक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमा ! ।।२५
इक्ष्वाको पुत्रतामाप विकुक्षिर्नाम देवराट् ।

ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्दश पञ्चच तत्सुताः ।।२६
मेरोरुत्तरतस्तेतु जाताः पार्थिवसत्तमाः ।
चतुर्दशोत्तरञ्चान्यच्छृतमस्य तथाभवन् ।।२७
मेरोर्दक्षिणतो ये वै राजानः सम्प्रकीर्तिताः ।
ज्येष्ठः ककुत्स्थो नाम्नाऽभूत्तत्सुतस्तु सुयोधनः ।।२८

आनर्त्त का पुत्र परम प्रताप वाला रोचमान हुआ था इस राजा के ही नाम से देश का नाम भी आनर्त्त हो गया था और इसकी नगरी का नाम कुशस्थली था ।।२२।। रोचमान का पुत्र रैवरैवत हुआ था और ककुद्मी अपर नाम था जो सौ पुत्रों में सबसे बड़ा ज्येष्ठ था ।।२३।। उसकी रेवती नाम वाली कन्या समुत्पन्न हुई थी जो बलरामजी की परम प्रसिद्ध भार्या थी । धृष्ट के बहुत से धाष्र्ट नाम धारी पुत्र भू मण्डल में प्रसिद्ध हुए थे ।।२४।। मो मनु से पृषध्र समुत्पन्न हुआ था जो गुरु के शाप से शूद्र हो गया था । हे ऋषि श्रेष्ठो ! अब मैं इक्ष्वाकु के वंश का वर्णन करता हूं उस का आप लोग श्रवण कीजिए ।।२५।। विकुक्षि नाम वाले देवराट् ने इक्ष्वाकु के पुत्र का स्थान प्राप्त किया था । यह सौ पुत्रों में सबसे बड़ा पुत्र था । इसके भी दस और पाँच अर्थात् पन्द्रह पुत्र हुए थे ।।२६।। ये सब मेरु की उत्तर दिशा में श्रेष्ठ पार्थिव हुए थे । चतुर्दश से उत्तर अन्य इसका वंश ही विश्रुत हुआ था ।। २७ ।। मेरु के दक्षिण भाग में जो भी राजा लोग कीर्तित किये गये हैं उनमें ज्येष्ठ काकुत्स्थ हुआ था । उसका पुत्र सुयोधन नाम वाला था ।। २८ ।।

तस्य पुत्रः पृथुर्नाम विश्वगश्च पृथोः सुतः ।
इन्दुस्तस्यचपुत्रोऽभूद्युवनाश्वस्ततोऽभवत् ।।२९
श्रावस्तश्चमहातेजावत्सकस्तत्सुतोऽभवत् ।
निर्मिता येन श्रावस्तीगौडदेशेद्विजोत्तमाः ।।३०
श्रावस्ताद् बृहदश्वोऽभूत् कुवलाश्वस्ततोऽभवत् ।

घुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धु ना न हत पु्गा ॥३१
तस्य प नास्त्रया जाता द्रटाश्वो दण्ड एव च ।
कपिलाश्वश्च विख्यातो धौन्धुमारिः प्रतापवान् ॥३२
द्दढाश्वस्य प्रमादश्चहर्यश्वस्तस्यचा मज ।
हयश्वस्यनिकुम्भाऽभूत्सहताश्वस्ततोऽभवत ॥३३
अकृताश्वोरणाश्वश्चा सहताश्वसुतावुभौ ।
युवनाश्वोरण श्वस्य मान्धाताचततोऽभवत ॥३४
मान्धातु पुरुकुत्साऽद्रमममनोन्ना पार्थिव ।
मुचकुन्दश्च विख्यात शत्रुजिच्च प्रतापवान् ॥३५

सुयोधन क पुत्र का नाम पृथु और पृथु का आत्मज विश्वग नामधारी था। इसके पुत्र का नाम इन्दु था और इन्दु का सुत युवनाश्व हुआ था॥२९॥ श्रावस्त महान् तेज वाला था। इसके सुत का नाम वत्सक था। हे द्विजगणो! इसी न गौड देश मे श्रावस्ती नाम वाली पुरी का निर्माण किया था।३०॥ श्रावस्त स बृहदश्व ने जन्म प्राप्त किया और इसके पुत्र क नाम कुवलाश्व हुआ था। यह धुन्धुमारता को प्राप्त हो गया था क्योंकि पहिले धुन्धु नामधारी का हनन किया था।३१। इसके तीन सुतो न जन्म ग्रहण किया था। उनके नाम द्दढाश्व और दण्ड थे तथा तीसरा कपिलाश्व था जो प्रताप वाला धौन्धुमारि नाम से विख्यात हुआ था॥३२॥ द्दढाश्व का प्रमोद और प्रमोद का हर्यश्व पुत्र हुआ था। हर्यश्व का निकुम्भ सुत उत्पन्न हुआ था फिर इसका पुत्र संहताश्व पैदा हुआ था॥३३॥ संहताश्व के अकृताश्व और उरणाश्व ये दो सुत हुए थे। उरणाश्व का पुत्र युवनाश्व हुआ तथा फिर इसके मान्धाता नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया था॥३४॥ मान्धाता के पुत्र का नाम पुरुकुत्स था धर्मसेन पार्थिव भी हुआ था एवं मुचुकुन्द परम विख्यात हुआ और प्रतापधारी शत्रुजित् भी हुआ था। ऐसे ये चार पुत्र हुए थे॥३५॥

पुरुकुत्सस्य पुत्रोऽभूद्वसूदानर्म्मदापतिः ।
सम्भूतिस्तस्यपुत्रोऽभूत्त्रिधन्वा चततोऽभवत् ॥३६
त्रिधन्वन सुतोजातस्त्रय्यारुण इति स्मृतः ।
तस्मात्सत्यव्रतोनामतस्मात्सत्यरथ स्मृत ॥३७
तस्य पुत्रो हरिश्चन्द्रो हरिश्चन्द्राच्चरोहितः ।
रोहिताच्च वृको जातो वृकाद्बाहुरजायत ॥३८
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद्राजा परमधार्मिकः ।
द्वे भार्य्ये सगरस्यापि प्रभाभानुमती तथा ॥३९
ताभ्यामाराधित पूर्वमौर्वोऽग्नि पुत्रकाम्यया ।
और्वस्तुष्टस्तयो प्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम् ॥४०
एका षष्टिसहस्राणि सुतमेकं तथापरा ।
गृह्णातु वंशकर्त्तारं प्रभाऽगृह्णाद् बहूस्तदा ॥४१
एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम् ।
ततः षष्टिसहस्राणि सुषुवे यादवीप्रभा ॥४२

पुरुकुत्स का पुत्र वसुद हुआ था जो नर्मदा पति था। इसका सुत सम्भूति था तथा सम्भूति से त्रिधन्वा ने जन्म ग्रहण किया था ॥ ३६ ॥ त्रिधन्वा के पुत्र का नाम त्रय्यारुण कहा गया है। इससे सत्यव्रत और सत्य व्रत के पुत्र का नाम सत्यरथ था ॥ ३७ ॥ इस सत्य रथ के ही पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र हुआ था जिसका पुत्र रोहित हुआ था। रोहित से वृक का नाम हुआ था और वृक के पुत्र का नाम बाहु था ॥ ३८ ॥ इस बाहु के सुत का नाम राजा सगर हुआ था जो परम धार्मिक महीपति हुआ है। इस महाराज सगर की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम प्रभा और दूसरी का नाम भानुमती था ॥ ३९ ॥ इन दोनों ही पत्नियों ने पहिले पुत्र प्राप्ति की कामना से और्व अग्नि की समाराधना की थी। और्व इनके समाराधन से परम सन्तुष्ट हो गया था और उसने उन दोनों को यथेष्ट उत्तम वरदान दे दिया था। उनमें से एक तो साठ हजार

और दूसरी एक पुत्र कर जो वश की वृद्धि करने वाला हो। उस समय मे प्रभा ने बहुत–से पुत्रो की प्राप्ति का ही ग्रहण किया था ।।४०, ४१।। भानुमती नाम धारिणी सगर की भार्या ने एक सुत ही प्राप्त किया था जिसका नाम असमञ्जस था। इसके अनन्तर यादवी प्रभा ने साठ सहस्र पुत्रो को प्रसूत किया था ।४२।।

> खनन्त: पृथिवी दग्धा विष्णुना येऽश्वमार्गणे ।
> असमञ्जसस्तु तनयोर्योऽशुमान्नामविश्रुत ।।४३
> तस्यपुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथ ।
> येन भागीरथी गङ्गा तप. कृत्वावतारिता ।।४४
> भगीरथस्य तनयोनाभाग इतिविश्रुत ।
> नाभागस्याम्बरीषाऽभूत्सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ।।४५
> तस्यायुतायु पुत्रोऽभूदृतुपर्णस्ततोऽभवत् ।
> तस्य कल्माषपादस्तु सर्वकर्मा तत स्मृत ।।४६
> तस्यानरण्य पुत्रोऽभून्निघ्नस्तस्य सुतोऽभवत् ।
> निघ्नपुत्रावुभोजातो अनमित्ररघूनृपो ।।४७
> अनमित्रो वनमगाद्भविता स कृते नृप ।
> रघारभद्‍ दिलीपस्तु दिलीपादजकस्तथा ।।४८
> दीर्घबाहुरजाज्जातश्चाजपालस्ततो नृप ।
> तस्माद्दशरथा जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ।।४९

ये साठ हजार जो पुत्र हुए थे इन्होने अश्वमेध के घोडे की खोज करने मे भूमिका खनन किया था और खनन करते हुए ही विष्णु के द्वारा ये दग्ध कर दिये गये थे असमञ्जस का पुत्र अशुमान् नाम से प्रसिद्ध हुआ था ।४३। इसके पुत्र का नाम दिलीप था और दिलीप नामधारी राजा से ही भगीरथ ने जन्म प्राप्त किया था जिसने परमोग्र तपश्चर्या करके भागीरथी गङ्गा का अवतरण कराया था ।। ४४ ।। भगीरथ के पुत्र का नाम नाभाग था जो परम प्रसिद्ध हुआ था। नाभाग का पुत्र अम्बरीष और

...के पुत्र का नाम सिन्धु द्वीप हुआ था ।४५। सिन्धु द्वीप का पुत्र अयुतायु ...आ था और इसके पुत्र का नाम ऋतुपर्ण था। ऋतुपर्ण का कल्मापपाद ...और फिर इसका सुत सर्वकर्मा नामधारी हुआ था ।।४६।। सर्वकर्मा का ...अनरण्य हुआ और इसके पुत्र का नाम निघ्न हुआ था। इस निघ्न ...के दो पुत्रों ने प्रसव प्राप्त किया था एक का नाम अनमित्र था और दूसरा रघु नृप हुआ था ।। ४७ ।। अनमित्र जो था वह वन में चला गया था अतः रघु ने ही राज्यासन ग्रहण किया था। राजा रघु के पुत्र का नाम दिलीप हुआ था। इस दिलीप का पुत्र अज हुआ था ।। ४८ ।। अज से दीर्घबाहु ने जन्म ग्रहण किया था और इसके अनन्तर अजपाल नृप हुआ था। इस अजपाल से महाराज दशरथ ने जन्म ग्रहण किया था जिन महाराज दशरथ के चार पुत्र हुए थे। ये चारों ही पुत्र नारायण स्वरूप थे जिनमें श्री रामचन्द्र सबसे बड़े पुत्र थे। यह रावण के अन्त करने वाले तथा रघुकुल के वंश की वृद्धि करने वाले हुए हैं ।। ४९, ५० ।।

नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तेष्वग्रजोऽभवत् ।
रावणान्तकरस्तद्वद्रघूणां वंशवर्धनः ।।५०
वाल्मीकिस्तस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः ।
तस्य पुत्रौ कुशलवाविक्ष्वाकुकुलवर्धनौ ।।५१
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ।
नलस्तु नैषधस्तस्मान्नभास्तस्मादजायत ।।५२
नभसः पुण्डरीकोऽभूत् क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ।
तस्य पुत्रोऽभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान् ।।५३
अहीनगुस्तस्य सुतः सहस्राश्वस्ततः परः ।
ततश्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्ततोऽभवत् ।।५४
तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुश्चन्द्रस्ततोऽभवत् ।
श्रुतायुरभवत्तस्माद्भारते यो निपातितः ।।५५

मर्लोद्भावैवविख्यातौ वंशे कश्यपसम्भवे ।
वीरसेनसुतस्तद्वन्नैषधश्च नराधिप. ॥५६
एते वैवस्वते वंशे राजानो भूरिदक्षिणाः ।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिता ॥५७

महर्षि प्रवर वाल्मीकि ने जो भार्गव श्रेष्ठ थे उनके चरित का निर्माण स्कन्धावार में किया था । महाराज श्रीराम के पुत्र कुश और लव ये दो हुए थे जो इक्ष्वाकु कुल के वर्धन करने वाले हुए थे ॥ ५१ ॥ कुश से अतिथि ने जन्म ग्रहण किया था और इसके आत्मज का नाम निषध हुआ था । इसी निषध से नैषध नल हुआ था और नल से नभ ने जन्म लिया था ॥ ५२ ॥ नभ से पुण्डरीक सुत हुआ और इसके पश्चात् क्षेमधन्वा ने जन्म लिया था । इस क्षेमधन्वा का पुत्र वीर एवं प्रतापि वाला देवानीक हुआ था ॥ ५३ ॥ इसका पुत्र अहीन और इसके सुत का नाम सहस्राश्व हुआ था । इसके उपरान्त चन्द्रावलोक हुआ और फिर इसका सुत तारापीड समुत्पन्न हुआ था । इस तारापीड का सुत चन्द्रगिरि हुआ और चन्द्रगिरि से भानुचन्द्र ने जन्म ग्रहण किया था । इसके पत्र का नाम श्रुतायु हुआ जो भारत में निपातित कर दिया गया था । कश्यप से सम्भूत वंश में दो ही नल विख्यात हुए हैं एक वीरसेन का सुत और उसी भाँति नराधिप नैषध प्रसिद्ध था ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार से वैवस्वत के वंश में भूरि दक्षिणा वाले राजा लोग हुए थे । प्रधानतया ये सब राजागण इक्ष्वाकु वंश से उत्पन्न प्रकीर्तित हुए हैं ॥ ५७ ॥

१२—देवी के एक सौ आठ नाम

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामि पितॄणां वंशमुत्तमम् ।
रवेश्चश्राद्धदेवस्य सोमस्य च विशेषतः ॥१
हन्त ते कथयिष्यामि पितॄणां वंशमुत्तमम् ।
स्वर्गे पितृगणाः सप्त त्रयस्तेषाममूर्तयः ॥२
मूर्तिमन्तोऽथ चत्वारः सर्वेषाममितौजसः ।
अमूर्तयः पितृगणा वैराजस्य प्रजापतेः ॥३
यजन्ति यान् देवगणा वैराजा इति विश्रुताः ।
दिवि ते योगविभ्रष्टाः प्राप्य लोकान् सनातनान् ॥४
पुनर्ब्रह्मदिनान्ते तु जायन्ते ब्रह्मवादिनः ।
सम्प्राप्य तां स्मृतिं भूयो योगं सांख्यमनुत्तमम् ॥५
सिद्धिं प्रयान्ति योगेन पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ।
योगिनामेव देयानि तस्माच्छ्राद्धानि दातृभिः ॥६
एतेषां मानसी कन्या पत्नी हिमवतो मता ।
मैनाकस्तस्य दायादः क्रौञ्चस्तस्याग्रजोऽभवत् ॥७

किया करते हैं। वे फिर उत्तम साख्य और योग की उसी स्मृति को प्राप्त कर लिया करते हैं।५॥ योग के द्वारा पुन आवृत्ति करने में अत्यन्त दुर्लभ सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। अतएव ज्ञाताओं के द्वारा योगियों को ही श्राद्ध देने चाहिए॥६॥ इनकी जो मानसी कन्या हिमवान् की पत्नी मानी गयी है। उसका दायाद मैनाक पर्वत है और क्रौञ्च उसके उदर से अग्रज सुत समुत्पन्न हुआ है॥७॥

क्रौञ्चद्वीप स्मृतो येन चतुर्थो घृतसवृत ।
मेनाचसुपुवेतिस्र कन्यायोगवतीस्तत ॥८
उमैकपर्णापर्णा च तीव्रव्रतपरायणा ।
रुद्रस्यैका सितस्यैका जैगीषव्यस्यचापरा ॥६
दत्ता हिमवता बाला सर्वा लोके तपाऽधिका ।
कस्माद्दाक्षायणी पूर्व ददाहात्मानमात्मना ॥१०
हिमवद्दुहिता तद्वत् कथ जाता महीतले ।
सहरन्ती किमुक्तासौ सुता वा ब्रह्मसूनुना ॥११
दक्षेण लोकजननी सूत ! विस्तरतो वद ।
दक्षस्य यज्ञे वितते प्रभूतवरदक्षिणे ॥१२
समाहूतेषु देवेषु प्रोवाच पितर सती ।
किमर्थ तात ! भर्तामे यज्ञेऽस्मिन्नाभिमन्त्रित ॥१३
अयोग्य इति तामाह दक्षो यज्ञेषु शूलभृत ।
उपसहारकृद्रुद्रस्तेनानामगलभागयम् ॥१४

सती ने जिस कारण से अपने ही आप स्वयं अपने को दग्ध कर दिया था ॥९, १०॥ फिर इस महीतल में उसी भाँति वह हिमवान् की दुहिता कैसे और क्यों उत्पन्न हो गई थी संहार करती हुई इस सुता से ब्रह्मा के पुत्र दक्ष ने क्या कहा था जो कि समस्त लोकों की जननी थी। हे सूत जी ! आप कथा को कृपया कुछ विस्तार के साथ बतलाइये। सूतजी ने कहा—प्रजापति दक्ष यज्ञ विस्तृत रूप में फैला हुआ चल रहा था और वह यज्ञ ऐसा था जिसमें प्रभूत मात्रा में श्रेष्ठ दक्षिणाएँ दी गई थीं ॥११, १२॥ जिस समय में समस्त देवगण समाहूत किये गये थे और भगवान् शम्भु को आमन्त्रित नहीं किया था तो यह देखकर सहन न करते हुए सती ने अपने पिता से कहा था—हे तात ! आपने किस कारण से केवल मेरे ही स्वामी को इस महान् विशाल यज्ञ में निमन्त्रित नहीं किया है ? उस समय में दक्ष ने उस जगदम्बा को यही उत्तर देते हुए कहा था कि वह शूलपाणि यज्ञों में सम्मिलित होने की योग्यता ही नहीं रखते हैं अतः अयोग्य हैं क्योंकि वह रुद्र तो संसार का उपसंहार करने वाला है इसीलिये वह अमङ्गल भागी है ॥१३, १४॥

मुक्त्वा पापं सती देहं त्यक्षामीति त्वदुद्भवम् ।
दशानामस्य भविता पितॄणामेक पुत्रकः ॥१५
क्षत्रियत्वेऽश्वमेधे च रुद्रात्त्वं नाशमेष्यसि ।
इत्युक्त्वा योगमास्थाय स्वदेहोद्भवतेजसा ॥१६
निर्दहन्ती तदात्मानं सदेवासुरकिन्नरैः ।
किं किमेतदिति प्रोक्ता गन्धर्वगणगुह्यकैः ॥१७
उपगम्याब्रवीद्दक्षः प्रणिपत्याथ दुःखितः ।
त्वमस्य जगतो माता जगत्सौभाग्य देवता ॥१८
दुहितृत्वङ्गता देवि ममानुग्रहकाम्यया ।
न त्वया रहितं किञ्चित् ब्रह्माण्डे सचराचरम् ॥१९
प्रसादं कुरु धर्मज्ञे न मान्त्यक्तुमिहार्हसि ।

प्राह देवी यदारब्ध तत्कार्य्यं मे न सशय. ।।२०
किं त्ववश्य त्वया मर्त्ये हतयज्ञे न शूलिना ।
प्रसादेलोक्सृष्ट्यर्थं तप.काय समान्तिके ।।२१

यह कथन करने के अनन्तर ही सती अत्यन्त कुपित हो गई थी और उसने कह दिया था कि तुझ मे समुत्पन्न मैं इस देह का भी अब त्याग कर दूँगी । और तू दशा पितृगण का एक पुत्र वाला हो जायगा ।।१५।। इस क्षत्रियत्व वाले अश्व मेध मे ही तुम रुद्र से ही माता को प्राप्त हो जाओगे । बस, इतना ही कह कर सती योग मे समास्थित हो गई थी । उसके देह से ही एक प्रकार के तेज का उद्भव हुआ था ।।१६।। उसी तेज से उस समय मे सती ने आप दाह कर दिया था। निर्दहन करती हुई उसस देव-असुर-किन्नर गन्धवगण और गुह्यक सभी ने उससे यही कहा था—यह क्या हो रहा है' । १७।। फिर तो दक्ष स्वय उस सती के समीप मे आकर उपस्थित हुआ था और प्रणिपात कर के सती स कहा था-आप तो इस सम्पूण जगत् की माता हैं और जगत् के सौभाग्य की देवता हैं ।।१८।। हे देवि ! मेरे ऊपर अनुग्रह करने की ही कामना से आप मेरी पुत्री होने को स्वीकार किया था और दुहिता बन गयी थी । आपसे रहित इस ब्रह्माण्ड मे सचराचर कुछ भी नहीं है ।।१९।। हे धर्मज्ञ ! अब प्रसाद (प्रसन्नता) कीजिए और मेरा त्याग करने के योग्य आप नही बनिये । इस पर देवी ने कहा था कि जो मैंने आरम्भ कर दिया है वह मुझे करना ही है क्यो कि यह परम कर्त्तव्य ही हो गया है—इसमे कुछ भी सशय शेष नही है ।।२०।। किन्तु अब यह परमावश्यक ही है कि अब भगवान् शूली के द्वारा तेरा यह यज्ञ विध्वस्त हो हो जायगा तब उनके प्रसाद प्राप्त करने के लिये लोको की सृष्टि के वास्ते मर्त्य लोक मे मेरे ही समीप मे तप करना चाहिए ।।२१।।

प्रजापतिस्त्व भविता दशानामङ्गजोप्यलम् ।
मदशेनाङ्गनापष्टि र्भविष्यन्त्यङ्गजास्तव ।।२२

मत्सन्निधौ तपः कुर्वन् प्राप्स्यसेयोगमुत्तमम् ।
एवमुक्तोऽब्रवीद्दक्ष केषुकेपुमयाऽनघे ।।२३
तीर्थेषु च त्व द्रष्टव्या स्तोतव्या कैश्च नामभि. ।
सर्वदा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतो भुवि ।।२४
सर्वलोकेषु यत्किञ्चिद्रहितं न मया विना ।
तथापियेषुस्थानेषुद्रष्टव्यासिद्धिमीप्सुभि ।।२५
स्मर्तव्याभूतिकामैर्वानानिवक्ष्यामितत्वत. ।
वाराणस्याविशालाक्षीनैमिषेलिङ्गधारिणी ।।२६
प्रयागे ललिता देवी कामाक्षी गन्धमादने ।
मानसे कुमुदा नाम विश्वकायातथाम्बरे ।।२७
गोमन्ते गोमती नाम मन्दरे कामचारिणी ।
मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे ।।२८

दक्षो का अङ्गज भी तुम समर्थ प्रजापति होओगे और मेरे अंश मे साठ अङ्गनाएँ होंगी तथा तुम्हारे अङ्गज होंगे ।।२२।। मेरी सन्निधि में तपश्चर्या करते हुए उत्तम योग की प्राप्ति करोगे । जब इस प्रकार से जगदम्बा ने कहा था तो वह दक्ष देवी से बोला—हे अनघे ! मुझे आपके किन २ तीर्थों मे दर्शन होंगे और किन २ नामों से आपकी स्तुति करनी चाहिए ? ।।२३।। देवी ने कहा—इस भू मण्डल में सर्वदा सभी ओर समस्त प्राणियों मे मेरा दर्शन करना चाहिए ।२४।। समस्त लोकों में मेरे बिना कुछ भी रहित पदार्थ या प्राणी नहीं है । तो भी सिद्धि की ईप्सा रखने वालों के द्वारा जिन स्थानों मे मेरा दर्शन करना चाहिए तथा भूति की कामना रखने वालों को मेरा स्मरण करना चाहिये उन नामों को मैं अब तत्त्वतः बतला देती हूँ । यहां से ही देवी के अष्टोत्तर शत नामों का आरम्भ होता है—वाराणसी मे मेरा विशालाक्षी नाम लेकर स्मरण तथा स्तवन करना चाहिये । नैमिष क्षेत्र में मेरा लिङ्गधारिणी नाम प्रसिद्ध है ।।२५, २६।। प्रयाग मे ललिता देवी और

गन्ध मादन मे कामाक्षी देवी है । मानस मे मेरा कुमुदा नाम है तथा अम्बर मे विश्वकाया नाम है ।।२७।। गोमन्त मे गोमती नाम है और मन्दर मे मेरा कामधारिणी यह शुभ नाम स्मरण के योग्य है । चेत्ररथ मे मदोत्कटा तथा हस्तिनापुर मे मेरा जयन्ती नाम लेकर ही स्तवन करे ।।२८।।

> कान्यकुब्जे तथा गौरी रम्भा मलयपर्वते ।
> एकाम्रकेकीतिमतीविश्वाविश्वेश्वरेविदु ।।२८
> पुष्करे पुरुहूतेति केदारे मार्गदायिनी ।
> नन्दा हिमवत पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका ।।३०
> स्थानेश्वरे भवानी तु विल्वके विल्वपत्रिका ।
> श्रीशैले माधवी नाम भद्राभद्रेश्वरेतथा ।।३१
> जया वराहशैले तु कामला कमलालये ।
> रुद्रकोट्यांञ्च रुद्राणी काली कालञ्जरेगिरौ ।।३२
> महालिंगे तु कपिला मर्कोटे मुकुटेश्वरी ।
> शालिग्रामे महादेवी शिवालिंगे जलप्रिया ।।३३
> मायापुर्यां कुमारी तु सन्ताने ललिता तथा ।
> उत्पलाक्षी सहस्राक्षेकमलाक्षेमहोत्पला ।।३४
> गयायां मंगला नाम विमला पुरुषोत्तमे ।
> विपाशायाममोघाक्षी पाटला पुण्ड्रवर्द्धने ।।३५

कान्य कुब्ज देश मे गौरी—मलय पर्वत मे रम्भा—एकाम्रक मे कीतिमती तथा विश्वेश्वर क्षेत्र मे मेरा विश्वा नाम ही लिया जाता है ।।२६।। पुष्कर मे पुरुहूता—केदार क्षेत्र में मार्गदायिनी—हिमाचल पर्वत के पृष्ठ पर मेरा नाम नन्दा तथा गोकर्ण मे भद्र कर्णिका कहकर मुझे याद किया जाता है ।।३०।। स्थानेश्वर मे मेरा भवानी नाम है तथा विल्वक मे मेरा विल्व पत्रिका नाम लेकर स्मरण या स्तवन किया जाता है । श्री शैल मे मेरा माधवी नाम है तथा भद्रेश्वर मे भद्रा नाम से मेरा

स्मरण किया जाता है ॥३१॥ वराह शैल में जया नाम लेकर मेरा स्मरण किया जाता है और कमलालय में मेरा ही नाम कमला है। रुद्रकोटि में रुद्राणी कहकर मुझे पूजते हैं तथा कालञ्जर गिरि में मेरा ही नाम काली कहलाता है ॥३२॥ महालिङ्ग में मेरा कपिला नाम कहा जाता है और मर्कोट में मुकुटेश्वरी मेरा शुभ नाम है। शालिग्राम में महादेवी तथा शिवलिङ्ग में मेरा ही नाम जल प्रिया है ॥३३॥ मायापुरी में कुमारी मेरा नाम है तथा सन्तान में ललिता कही जाती हूँ। सहस्राक्ष में उत्पलाक्षी तथा कमलाक्ष में मुझे ही महोत्पला कहा जाता है ॥३४॥ गया में मङ्गला नाम प्रसिद्ध है तथा पुरुषोत्तम में मेरा ही नाम विमला देवी है। विपाशा में मुझे अमोघाक्षी कहा जाता है और पुण्ड्र वर्धन में मुझे पाटला कह कर पुकारते हैं ॥३५॥

नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे भद्रसुन्दरी।
विपुले विपुला नाम कल्याणी मलयाचले ॥३६
कोटवीकोटितीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने।
कुब्जाम्रके त्रिसन्ध्यातु गङ्गाद्वारेरतिप्रिया ॥३७
शिवकुण्डे सुनन्दा तु नन्दिनी देविकातटे।
रुक्मिणी द्वारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने ॥३८
दवकी मथुरायान्तु पाताले परमेश्वरी।
चित्रकूटे तथा सीताविन्ध्येविन्ध्यनिवासिनी ॥३९
सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रेति चन्द्रिका।
रमणा रामतीर्थेतु यमुनायां मृगावती ॥४०
करवीरे महालक्ष्मीरुमादेवी विनायके।
अरोगा वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी ॥४१
अभयेत्युष्णतीर्थेषु चामृता विन्ध्यकन्दरे।
माण्डव्ये माण्डवी नाम स्वाहामाहेश्वरेपुरे ॥४२

सुपार्श्व में मेरा नाम नारायणी देवी है और त्रिकूट में भद्र सुन्दरी

मुझे ही कहते हैं। विपुल में मेरा विपुलेश्वरी नाम है तथा मलयाचल में कल्याणी नाम लेकर मेरा स्मरण किया जाता है ॥३६॥ कोटि तीर्थ में कोटवी मेरा शुभ नाम है एवं माधव वन में सुगन्धा मुझे ही कहा जाता है। कुब्जाम्रक स्थल में त्रिसन्ध्या मुझे कहते हैं और गङ्गा द्वार में रति प्रिया कहकर मेरा ही स्मरण किया जाता है ॥३७॥ शिव कुण्ड में सुनन्दा—देविका तट में नन्दिनी—द्वारावतीपुरी में रुक्मिणी और वृन्दावन में मेरा ही नाम राधा है ॥ ३८ ॥ मथुरा पुरी में देवकी—पाताल में परमेश्वरी—चित्रकूट में सीता देवी तथा विन्ध्याचल में विन्ध्यवासिनी देवी मुझे कहा करते हैं । ३६ ॥ सह्याद्रि में एकवीरा—हर्म चन्द्र-चन्द्रिका मेरा ही शुभ नाम है। राम तीर्थ में रमणा और यमुना में मृगावती मुझे कहा करते हैं ॥४०॥ करवीर में मुझे ही महालक्ष्मी पुकारा जाता है तथा विनायक में उमा देवी मेरा नाम विख्यात है। वैद्यनाथ में मुझे अरोगा कहा जाता है और महाकाल स्थान में महेश्वरी मेरा ही नाम है ॥ ४१ ॥ उष्ण तीर्थों में मुझे अभया और विन्ध्य के कन्दरा में अमृता मुझे ही कहा करते हैं। माण्डव्य में मेरा माण्डवी नाम लेकर स्मरण किया जाता है तथा महेश्वर पुर में मुझे स्वाहा कहा करते हैं ॥४२॥

छागलण्डे प्रचण्डातु चण्डिका मकरन्दके ।
सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती ॥४३
देवमाता सरस्वत्यां पारा पारातटे मता ।
महालये महाभागा पयोष्ण्या पिङ्गलेश्वरी ॥४४
सिंहिका कृतशौचेतु कार्त्तिकेये यशस्करी ।
उत्पलावर्त्तके लोला सुभद्रा शोणसङ्गमे ॥४५
माता सिद्धपुरे लक्ष्मीरङ्गना भरताश्रमे ।
जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किन्धपर्वते ॥४६
देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले ।

भीमा देवी हिमाद्रौतु पुष्टिर्विश्वेश्वरे तथा ॥४७
कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे ।
शङ्खोद्धारे धरा नाम धृतिः पिण्डारके तथा ॥॥४८
चन्द्रभागायां कालातु चन्द्रभागाया मच्छोदे शिवकारिणी ।
वेणायाममृता नाम वदर्यामुर्वशी तथा ॥४९

विभिन्न स्थलों में विभिन्न नामों का स्मरण कर मेरी ही समाराधना की जाया करती है—छागलण्ड में प्रचण्डा—मकरन्दक मे चण्डिका, सोमेश्वर मे वरारोहा और प्रभास में पुष्करावती मेरा नाम लिया जाता है ॥ ४३ ॥ सरस्वती के क्षेत्र में मुझे देव माता कहा जाता है और पारातट में मेरा ही नाम पारा है । महालय मे मुझे महाभागा कहते हैं तथा पयोष्णी में मुझे पिङ्गलेश्वरी देवी कहकर मेरा स्तवन—स्मरण किया जाता है ॥४४॥ कृतशौच मे सिंहिका मेरा शुभ नाम है और कार्तिकेय में मुझे ही यशस्करी कहा जाता है । उत्पलक वर्तक स्थान मे मेरा ही लोला नाम लिया जाता है । शोण के सङ्गम क्षेत्र में सुभद्रा नाम का स्मरण किया जाता है ॥ ४५ ॥ सिद्धपुर मे मेरा माता नाम लिया जाता है तथा भरताश्रम मे लक्ष्मीअङ्गना कहते हैं । जालन्धर में मुझे ही विश्वमुखी इस पवित्र नाम से याद किया करते हैं तथा किष्किन्धा पर्वत में तारा देवी कहकर मेरी उपासना करते हैं ॥ ४६ ॥ देवदारु वन मे पुष्टि मेरा नाम लिया जाता है और काश्मीर मण्डप मे मेधा के नाम से मैं ही पुकारी जाया करती हू । हिमाद्रि मे मेरा ही नाम भीमा कहा जाया करता है तथा विश्वेश्वर क्षेत्र में पुष्टि नाम है ॥ ४७ ॥ कपाल मोचन मे शुद्धि और कायावरोहण मे माता कही जाती हूँ । शखोद्धार में धरा नाम स्मरण किया जाता है और पिण्डारक मे धृति मेरा नाम याद करते हैं ॥४८॥ चन्द्रभागा के तट में काला तथा मच्छोद मे शिवकारिणी मेरा नाम है । वेणा मे अमृता कही जाती हू तथा वदरी मे उर्वशी कहते हैं ॥ ४९ ॥

ओषधा चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका ।
मन्मथा हेमकूटे तु मुकुटे सत्यवादिनी ॥५०
अश्वत्थे वन्दनीया तु निधिर्वैश्रवणालये ।
गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ ॥५१
देवलोके तथेन्द्राणी ब्रह्मस्येषु सरस्वती ।
सूर्य्यबिम्बे प्रभा नाम मातॄणा वैष्णवीमता ॥५२
अरुन्धती सतीनान्तु रामासु च तिलोत्तमा ।
चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिःसर्वशरीरिणाम् ॥५३
एतदुद्देशतः प्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम् ।
अष्टोत्तरञ्च तीर्थानां शतमेतदुदाहृतम् ॥५४
यः स्मरेच्छणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
एषु तीर्थेषु यः कृत्वा स्नानंपश्य ति मा नरः ॥५५
सर्वपापविनिर्मुक्त कल्प शिवपुरे वसेत् ।
यस्तु मत्परम काल करोत्येतेषु मानव ॥५६
स भित्वा ब्रह्मसदन पदमभ्येति शाङ्करम् ।
नाम्नामष्टशत यस्तु श्रावयेच्छिवसन्निधौ ॥५७
तृतीयायामथाष्टम्यां बहुपुत्रो भवेन्नरः ।
•दाने श्राद्धकाले वा अहन्यहनि वा बुधः ॥५८
देवार्चनविधौ विद्वान् पठन् ब्रह्माधिगच्छति ।
एव वदन्ती सा तत्र ददाहात्मानमात्मना ॥५९

उत्तर कुरु प्रान्त में ओषधी—कुशद्वीप मे कुशोदका—हेमकूट में मन्मथा और मुकुट में सत्यवादिनी मेरा नाम लिया जाता है ॥ ५० ॥ अश्वत्थ में वन्दनीय—वैश्रवण के आलय मे निधि—वेद वदन में गायत्री तथा भगवान् शिव की सान्निधि मे मुझे पार्वती कहते हैं ॥ ५१ ॥ देवलोक में जो इन्द्राणी कही जाती है वह भी मैं ही हूँ और पितामह ब्रह्माजी के मुख मे सरस्वती भी मैं हूँ । सूर्य के बिम्ब मे प्रभा मेरा ही नाम एवं

रूप है तथा मातृगण में वैष्णवी मैं ही कही जाती हूँ ॥ ५२ ॥ समस्त
ी नारियों में अरुन्धती मेरा ही स्वरूप है। सम्पूर्ण रामाओं में
लोत्तमा मैं ही [illegible]। चित्त में ब्रह्मकला मेरा नाम है तथा समस्त शरीर-
रियों में शक्ति मुझे ही समझना चाहिये ॥ ५३ ॥ यह अष्टोतर शत
नाम नामावली इसी उद्देश्य से कही गयी है कि यह इसी बहाने से
ष्टोत्तर शत तीर्थों के शुभ नाम भी बता दिये गये हैं ॥ ५४ ॥ जो इस
त्र का स्मरण करे या श्रवण करे वह सभी पापों से प्रमुक्त हो जाया
रता है। ये जो उक्त तीर्थ बताये गये हैं उनमें जो भी कोई स्नान करके
र दर्शन किया करता है वह सभी प्रकार के पापों से विमुक्त होकर एक
ल्प पर्यन्त शिवपुर में निवास किया करता है और जो मनुष्य उनमें पूरे
मय को मेरे ही समाराधन में लगा दिया करता है वह तो फिर ब्रह्माण्ड
ो भी भेदन करके शङ्कर पद को प्राप्त किया करता है जो इन अष्टोत्तर
त नामों को भगवान् शिव की सन्निधि में स्थित होकर भगवान् को
वण कराया करता है और यह भी तृतीया में या अष्टमी तिथि में श्रवण
राता है तो वह मनुष्य बहुपुत्र ही हो जाता है। गोदान में अथवा श्राद्ध
ान में जो कुछ दिन प्रतिदिन देवार्चन विधि में विद्वान् इसका पाठ करता
वह ब्रह्म को अधिगत हो जाता है। इस प्रकार यह जगदम्बा दक्ष के
ज्ञ मण्डप में कहती हुई ही अपने ही आप अपने तेज से उस देवी ने अपने
रीर का दाह कर लिया था ॥५५, ५६, ५७, ५८, ५९ ॥

स्वायम्भुवोऽपि कालेनदक्षः प्राचेतसोऽभवत् ।
पार्वतीसाभवद्देवी शिवदेहार्द्धधारिणी ॥६०
मेनागर्भसमुद्भूता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
अरुन्धती जपन्त्येतत् प्र प योगमनुत्तमम् ॥६१
पुरूरवाश्च राजर्षिर्लोके ह्यजयनामगात् ।
ययाति. पुत्रलाभञ्च धनलाभञ्च भार्गव ॥६
तथान्येदेवदैत्याश्च ब्राह्मणा क्षत्रियास्तथा ।

वश्या शूद्राश्चबहव. सिद्धिमीयुर्यथेप्सिताम् ॥६३
यत्रै तल्लिखित तिष्ठेत् पूज्यते दैवसन्निधौ ।
न तत्र शोको दौर्गत्य कदाचिदपि जायते ॥६४

समय आने पर स्वायम्भुव भी प्राचेतस दक्ष होगया था। वह पार्वती हुई थी जो भगवान् शिव के अर्द्ध शरीर के धारण करने वाली ॥६०॥ वह फिर मेना के गर्भ से समुत्पन्न हुई थी और भक्ति तथा मुक्ति दोनो ही के प्रदान करने वाली थी। इसका जप करती हुई अरुन्धती ने अत्युत्तम योग को प्राप्त कर लिया था ॥६१॥ पुरूरवा नाम वाले राजा ने लोकमे विजय की प्राप्ति की थी। राजा ययाति ने पुत्र का लाभ लिया था और भार्गव ने धन का लाभ प्राप्त किया था ॥ ६२ ॥ इसी प्रकार अन्य भी बहुत से देवगण, दैत्य वर्ग, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण ने भी इसी के समाराधन से यथेष्ट सिद्धि को प्राप्त किया था ॥ ६३ ॥ यह देवी का अष्टोत्तर शत नामक स्तोत्र जहा पर लिखित रूप में स्थित रहता है और देव की सन्निधि म इसकी अर्चा की जाया करती है वहा पर कभी भी किसी भी प्रकार का शोक एव कैसी भी दुर्गति कभी नही हुआ करती है ॥६४॥

१३—पितृ वंश कीर्तन

विभ्राजानाम चान्येतु दिविसन्ति सुवर्चसः ।
लोकार्वाहिषदोयत्र पितरः सन्तिसुव्रता ॥१
यत्र वर्हिणयुक्तानि विमानानि सहस्रश ।
सङ्कल्प्य वर्हिषो यत्र तिष्ठन्ति फलदायिन ॥२
यत्राभ्युदयशालासु मोदन्ते श्राद्धदायिन ।
यान्च देवासुरगणा गन्धर्वाप्सरसागणा ॥३

यक्षरक्षोगणाश्चैव यजन्ति दिवि देवता: ।
पुलस्त्यपुत्रा: शतशस्तपोयोगसमन्विता: ॥४
महात्मानो महाभागा भक्तानामभयप्रदा: ।
एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिविविश्रुता ॥५
योगिनी योगमाता च तपश्चक्रे सुदारुणम् ।
प्रसन्नो भगवांस्तस्यावरंवव्रेतु सा हरे: ॥६
योगवन्तं सुरूपंच भर्तारं विजितेन्द्रियम् ।
देहि देव ! प्रसन्नस्त्वं पतिं मे वदताम्वरम् ॥७

सूतजी ने कहा—दिव लोक में विभ्राज नाम वाले अन्य भी ...। हैं जहां पर सुव्रत बर्हिषद पितर लोक हैं ॥१॥ जहां पर बर्हिष क सहस्त्रों विमान हैं और जहां सकल्प करके बर्हिष फलों के प्रदान ने वाले समवस्थित रहा करते हैं ॥२॥ जहां पर अभ्युदय शालाओं में द देने वाले परम मोह से समन्वित होकर रहा करते हैं और जिनका न देवासुरगण तथा गन्धर्वों एवं अप्सराओं का समूह भी किया करता ॥३॥ यक्ष और राक्षसों के गण भी तथा दिवलोक में देवता भी जिन भजनार्चन किया करते हैं। सैकड़ों ही पुलस्त्य मुनि के पुत्र जो तप र योग से भी समन्वित हैं महान् आत्मा वाले—महान् भाग वाले र भक्तों को अभय का दान देने वाले हैं। इनकी पीवरी मानसी कन्या लोक में विश्रुत है ॥४, ५॥ वह योगिनी और योगमाता थी जिसने म दारुण तपस्या की थी। उसपर जब भगवान् प्रसन्न हुए और उसने दान की याचना करने को कहा गया तो उसने हरि से यही वरदान गा था ॥६॥ उसने कहा—हे देव ! आप कृपा कर योग वाला—रूप वण्य से समन्वित—इन्द्रियों को जीतने वाला, बोलने वालों में परम श्रेष्ठ े भरण करने वाला प्रदान कीजिए यदि आप मेरी तपश्चर्या से परम सन्न हो गये हैं ॥७॥

उवाच देवो भविता व्यासपुत्रोयदा शुक: ।

भविता तस्य भार्य्यात्व योग,चार्य्यस्य सुव्रते ॥८
भविष्यन्ति च ते कन्या कृत्वी नाम च योगिनी ।
पाञ्चालाधिपतेर्देया मानुष्यस्य त्वया तदा ॥६
जननीब्रह्मदत्तस्ययोग सिद्धा च गौःस्मृता ।
कृष्णागौर प्रभुशम्भुर्भविष्यन्तिचतेसुताः ॥१०
महात्मानोमहाभागगमिष्यन्ति परम्पदम् ।
तानुत्पाद्य पुनर्योगात्सवरा मोक्षमेष्यसि ॥११
सुमूर्तिमन्त. पितरो वशिष्टस्य सुता स्मृता. ।
नाम्ना तु मानसा सव सर्वते धर्म्ममूर्त्तय. ॥१२
ज्योतिर्भासिपुलोकेपुये वसन्ति दिव. परम् ।
विराजमाना क्रीडन्तियत्रतेश्राद्धदायिनः ॥१३
सर्वकामसमृद्धे पुविमानेष्वपिपादशः ।
किं पुनः श्राद्धदा विप्राभक्तिमन्तक्रियान्विता ॥१४

भगवान् ने कहा—जिस समय मे कृष्ण द्वैपायन व्यास जी के शुकदेव नामक पुत्र प्रसूत होगा तब उसकी तुम भार्या होओगी। हे सुव्रत वह योग के परम प्रमुख आचार्य ही होंगे ॥८॥ उस समय मे कृत्वी नाम धारिणी योगिनी कन्या तेरी उत्पन्न होगी। उस कन्या को तुझे पाञ्चाल देश के अधिपति मनुष्य को ही प्रदान करनी होगी ॥६॥ ब्रह्मदत्त को जन्म देने वाली और योगसिद्धा गौ कही गयी है। उस समय मे कृष्ण-गौर-प्रभु और शम्भु तेरे पुत्र समुत्पन्न होंगे ॥१०॥ महान् आत्मा वाले महाभाग परम पद को गमन करेंगे। उनका समुत्पादन करके पुनः योग से वर सहित मोक्ष को प्राप्त करोगी ॥११॥ महामुनीन्द्र वसिष्ठ के पुत्र सुमूर्तिमान् पितर कहे गये हैं। नाम से तो ये सभी मानस पुत्र थे किन्तु ये सभी धर्ममूर्ति थे ॥ १२ ॥ दिवलोक से भी पर ज्योतिर्भासी लोकों मे जो निवास किया करते हैं जहां पर वे श्राद्ध देने वाले विराजमान होते [illegible] आनन्द की क्रीडा किया करते हैं, सर्व कामो से समृद्ध विमानो मे भी

काम और भोग के फल देने वाले थे ॥१९॥ सुन्दर व्रत वाले सुस्वधा नाम वाले पितृगण जहा पर अवस्थित रहा करते हैं वे प्रजापति कर्दम के लोको म आज्यपा नाम वाले हैं ॥२०॥ वे प्रलहाङ्गज के दायाद हैं और उन मे वैश्य गण ही भक्ति की भावना रखा करते हैं, जहा पर सब श्रेष्ठों के करने वाल एक साथ गये हुए देखा करते हैं ॥२१॥

मातृभ्रातृपितृष्वसृ सखिसम्बन्धिबान्धवान् ।
अपिजन्मायुतैर्दृष्टाननुभूतान्सहस्रशः ॥२२
एतेषा मानसी कन्या विरजानाम विश्रुता ।
या पत्नीनहुपस्यासीद्ययातेजननी तथा ॥२३
एकाष्टकाऽभवत् पश्चाद् ब्रह्मलोके गता सती ।
त्रय एतेगणाःप्रोक्ताश्चतुर्थन्तुवदाम्यतः ॥२४
लोकास्तु मानसा नाम ब्रह्माण्डोपारि सस्थिता ।
येषान्तु मानसी कन्या नर्मदा नाम विश्रुता ॥२५
सोमपानाश्पितरोयत्रतिष्ठन्तिशाश्वता. ।
धर्ममूर्तिधराःसर्वे परतो ब्रह्मणः स्मृताः ।
दृश्वासृष्ट्यादिकसर्वं मानसेसाम्प्रतस्थिता. ॥२६
नर्मदानाम तेषा.तु कन्यातोयवहासरित्.।
भूतानि या पावयति दक्षिणापथगामिनी ॥२७
तेभ्य सर्वे तु मनव प्रजा सर्गेषु निर्मिताः ।
ज्ञात्वाश्राद्धानि कुर्वन्तिधर्माभावेऽपिसर्वदा ॥२८
तेभ्य एव पुनः प्राप्तु प्रसादाद्योगसन्ततिम् ।
पितृ.णामादिसर्गे तु श्राद्धमेवविनिर्मितम् ॥२९

वहा पर वे उन सबका दर्शन प्राप्त किया करते हैं जिनको दशों सहस्र जन्मों मे भी कभी देखा था और सहस्रों की सख्या मे उनका दृष्ट भी अनुभव नहीं है । उनमे माता-पिता-भ्राता-भगिनी-सखा-सम्बन्धी और बान्धव ये सभी होते है ।२२। इनकी मानसी कन्या विरजा नाम से विश्रुत है जो राजा नहुष की पत्नी हुई थी तथा राजा ययाति

जननी थी ॥८३॥ पीछे ब्रह्म लोक में गयी हुई यह सती एकाष्टका गई थी। ये तीन गण तो हमने पितरों के आप लोगों को बतला दिय। अब आगे चतुर्यगण बतलाते हैं ॥८४॥ जो मानस लोक हैं वे सब ब्रह्माण्ड के ऊपर संस्थित हैं। जिनकी मानसी कन्या नर्मदा—इस नाम से प्रसुत है ॥८५॥ जहा पर सोमप नाम वाले शाश्वत पितृगण स्थित रहा करते हैं सृष्टि आदि सब कुछ करके इस समय में मानस में ही संस्थित हैं ॥८६॥ उनकी नर्मदा नाम धारिणी कन्या तोय वहा सरित है जो दक्षिण पथ का गमन करने वाली भूतों को पावन किया करती है ॥८७॥ उनसे सब मनुगण और सर्गों में निमित्त प्रजा श्राद्धों का ज्ञान प्राप्त करके उनकी सर्वदा धर्म के अभाव में भी क्रिया करते हैं ॥८८॥ उनमें ही पुनः प्रमाद से योग सन्तति को प्राप्त करने के लिये पितृगणों के आदि सर्ग में यह श्राद्ध ही विशेष रूप से निर्मित किया गया है ॥८९॥

१४—श्राद्ध प्रकरण

श्रुत्वैतत्सर्वमखिलं मनुः पप्रच्छ केशवम् ।
श्राद्धकालञ्च विविधं श्राद्धभेदं तथैव च ॥१
श्राद्धे पुभोजनीयायेये च वर्ज्याद्विजातयः ।
कस्मिन्वासरभागेवापितृभ्यः श्राद्धमाचरेत् ॥२
कस्मिन्दत्तं कथयाति श्राद्धन्तु मधुसूदन ।
विधिनाकेनकर्तव्यं कथं प्राणाति तर्पितृन् ॥३
कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
पयामूलफलर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥४
नित्यन्नैमित्तिकङ्काम्यन्त्रिविधश्राद्धमुच्यते ।
नित्यन्तावत्प्रवक्ष्यामिअर्घावाहनवर्जितम् ॥५

अदैव तद्विजानीयात् पार्वणं पर्वसु स्मृतम्
पार्वणं त्रिविधंप्रोक्तं शृणुतावन्महीपते !
पार्वणे ये नियोज्यास्तु ताञ्छृणुष्व नराधिप ॥६
पञ्चाग्निःस्नातकश्चैवत्रिसुपर्णःषडङ्गवित् ।
श्रोत्रियः श्रोत्रियसुतः विधिवाक्य विशारदः ॥७

महर्षि सूतजी ने कहा—यह सब कुछ श्रवण कर के मनु ने फिर भगवान् केशव से पूछा था कि श्राद्ध के जो अनेक काल होने हैं वे क्या हैं और श्राद्धों के जो बहुत से भेद हुआ करते हैं वे कौन से हैं ? ॥१॥ श्राद्धों में जिन विप्रों को भोजन कराना चाहिए उन के समुचित स्वरूप क्या होने चाहिए और जो द्विजातिगण श्राद्ध में वर्जनीय है उनके क्या लक्षण होते हैं ? श्राद्ध दिन के किस भाग में करना चाहिए जो कि पितृगण के लिये समाचरित किया जाता है ? ॥२॥ हे मधु सूदन ! किस में दिया हुआ श्राद्ध किस प्रकार से जाकर वहां पहुँचता है ? यह भी कृपया बतलाइये कि यह श्राद्ध किस विधि–विधान से करना चाहिए और यह किस प्रकार से पितृगणों को प्रसन्नता दिया करता है ? ॥३॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—श्राद्ध प्रतिदिन ही करना चाहिए । इसे चाहे तो अन्नादि के द्वारा सम्पन्न करे अथवा उदक के द्वारा ही पूर्ण करे या पय-मूल और फलों के द्वारा भी श्राद्ध करे जो कि पितृगण की प्रीति का समावहन करने वाला है । श्राद्ध देने वाले का कर्त्तव्य है कि उसकी भावना सदा पितृगण की प्रीति को प्राप्त करने की अवश्य होनी चाहिए ॥४॥ नित्य-नैमित्तिक और काम्य-इस प्रकार से तीन तरह के श्राद्ध हुआ करते हैं । अब मैं नित्य जो श्राद्ध होता है जो अर्घ और आवाहन से वर्जित है उसे बतलाता हू ॥५॥ उसे अदैव ही जानना चाहिए । पर्व में होने वाला पार्वण श्राद्ध कहा गया है । हे महीपते ! यह पार्वण नामक श्राद्ध भी तीन तरह का कहा गया है—इसका भी श्रवण करिये ॥६॥ हे नराधिप ! पार्वण श्राद्ध में जो नियोजन करने के योग्य होते हैं उनके

विषय में भी सुन लीजिए। इसमें नियोजन करने के योग्य ब्राह्मण पंचाग्नि तपने वाला—स्नातक—त्रिसुपर्ण—छहअङ्गों का ज्ञाता—श्रोत्रिय-श्रोत्रिय पण्डित का पुत्र और विधि वाक्य का विशेष विद्वान् ही होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त गुणों में से उस विप्र में कोई भी एक गुण अवश्य ही होना चाहिए ॥७॥

सर्वज्ञोवेदविन्मन्त्री ज्ञातवंशः कुलान्वितः ।
पुराणवेत्ता धर्मज्ञः स्वाध्यायजपतत्परः ॥८
शिवभक्तः पितृपरः सूर्यभक्तोऽथ वैष्णवः ॥६
ब्रह्मण्यो योगविच्छान्तो विजितात्मा च शीलवान् ।
भोजयेच्चापि दौहित्रं यत्नतः स्वसृहृद्गुरुम् ॥१०
विशति मातुल बन्धुमृत्विगाचार्यसामगान् ।
यश्चव्याकुरुतेवाक्यमचमीमासतेऽध्वरम् ॥११
सामस्वरविधिज्ञश्च पंक्तिपावनपावनः ।
साम गोब्रह्मचारी च वेदयुक्तोऽथब्रह्मवित् ॥ २
यत्रैते भुञ्जते श्राद्धे तदेव परमार्थवित् ।
एते भोज्या प्रयत्नेन वर्जनीयान्निबोध मे ॥१३

पार्वण श्राद्ध में वही नियोज्य होता है जो या तो सर्वज्ञ हो या वेदों का वेत्ता, मन्त्र शास्त्री—ऐसा जिसके वंश का पूर्ण ज्ञान हो—सुन्दर कुल में समुत्पन्न—पुराणों का ज्ञाता—धर्म का ज्ञान रखने वाला—वेदों के स्वाध्याय करने में तथा मन्त्र जाप में तत्पर हो ॥८॥ जो विप्र भगवान् शङ्कर का परम भक्त हो वह—पितृगण में भक्ति रखकर परायण रहने वाला—भगवान् भुवन भास्कर का भक्त—विष्णु का भक्त—ब्राह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों पर दया तथा भक्ति रखने वाला—योग शास्त्र का ज्ञाता—परम शान्त स्वभाव से सम्पन्न विजितात्मा और शील वाला ब्राह्मण को ही पार्वण श्राद्ध में भोजन कराना चाहिए। यदि दौहित्र प्राप्त हो तो यत्न पूर्वक उसे ही भोजन करावे अथवा अपने मित्र के

गुरु वर्ग को भोजन कराना चाहिए ॥ ८ ॥ १० ॥ विद्पति-मातुल-वन्धु-ऋत्विक—आचार्या-सोमय—वह जो वाक्य का व्याकरण करता हो—वह जो आधार के विषय मे मीमांसा कर सकता हो—सामवेद के स्वरों की विधि का ज्ञाता—पाडि्क्तपावन—सामग—ब्रह्मचारी—वेद से युक्त अथवा ब्रह्म का वेत्ता इनमें से कोई भी जिस श्राद्ध में भोजन किया करता है वह ही उत्तम प्रकार का श्राद्ध है और वही परमार्थ का वेत्ता श्राद्धदाता होता है । इतने प्रकार के जो ब्राह्मण बतलाये हैं उन्हीं मे से किन्ही को प्रयत्नपूर्वक भोजन श्राद्ध मे कराना चाहिए । अब वे भी बतलाये जाते है जो श्राद्ध मे वर्जित विप्र होते हैं उनको भी मुझसे ही जानलो ॥ ११, १२, १३ ॥

पतितोऽभिशस्त वलावरच पिशुनश्यङ्गरोगिणः ।
कुनखीश्यावदन्तश्चकुण्डगोलाश्वपालकाः ॥ १४
परिवित्तिनियुक्तात्मा प्रमत्तोन्मदारुणाः ।
वैडाली वर्कवृत्तिश्च दम्भोदेवलकादयः ॥१५
कृतघ्नान्नास्तिकास्तद्वन्म्लेच्छदेशनिवासिन ।
त्रिशङ्कुर्बर्वरद्रावबीतद्रविडकोकणान् ॥१६
वर्जयेल्लिङ्गिनः सर्वान् श्राद्धकाले विशेषतः ।
पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा विनीतात्मा निमन्त्रयेत् ॥१७
निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ।
वायुभूतानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥१८
दक्षिण जानुमालभ्यत्वमयातुनिमन्त्रितः ।
एव निमन्त्यनिदमथावयेत्पितृवान्धवान् ॥१९
अक्रोधन शौचपरं सतत ब्रह्मचारिभिः ।
भवित-यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ॥
पितृयज्ञ विनिवर्त्य तर्पणाख्य-तु योऽग्निमान् ।
पिण्डान्वाहार्यकं कुर्याच्छ्राद्धमिन्दुक्षये मुदा ॥

जो ब्राह्मण तो है किन्तु किसी कर्म वश पतित हो गया हो उसे—वह जो अभिशस्त हो—क्लीब—पिशुन—विगत या विशेष अङ्ग वाला—रोगी—कुनखी—कृष्ण वर्ण वाले जिसके दाँत हों वह—कुण्ड—गोलक और अश्वपालक ये ब्राह्मण श्राद्ध में वर्जित हैं। (पति के रहते हुए पर पुरुष से समुत्पन्न और पति के मृत होने पर पर पुरुष से उत्पन्न कुण्ड और गोलक संज्ञा वाले होते हैं) ॥ १४ ॥ परिवित्ति—नियुक्तात्मा—प्रमत्त—उन्मत्त—दारुण—बैड़ाली—बक के समान वृत्ति वाला—दम्भी—देवलक आदि विप्र भी श्राद्ध में वर्जनीय होते हैं ॥१५॥ जो किये हुए उपकार को नहीं मानने वाले हैं—ईश्वर की सत्ता के नहीं मानने वाले—म्लेच्छों के देश में निवास करने वाले—त्रिशंकु—बर्बर—द्रावनीय—द्रविड़—कोंकण में भी सब विप्र श्राद्ध में नियोजन के योग्य नहीं हैं और वर्जित हैं ॥१६॥ श्राद्ध के समय में जितने भी लिङ्गधारी हैं उन सभी को विशेष रूप से वर्जित कर देना चाहिए पहिले दिन में या उससे भी पूर्व दिन में ही श्राद्ध में ब्राह्मण को निमन्त्रण दे देना चाहिए और परम विनीत भाव से सम्पन्न होते हुए निमन्त्रित करे ॥ १७ ॥ जो ब्राह्मण श्राद्ध में निमन्त्रित होते हैं पितृगण उन्हीं द्विजों पर उपस्थान किया करते हैं। वे वायु भूत होते हुए उनका ही अनुगमन किया करते हैं अतएव जब वे आसीन होवें तो उनकी उपासना करे। दक्षिण जानु का आलम्बन करके मैंने आपको निमन्त्रित किया है—इस रीति से निमन्त्रित करके पित गन्धर्वों को नियमों का श्रवण कराना चाहिए ॥१८, १९॥ उन ब्राह्मणों से प्रार्थना करते हुए श्राद्ध कर्त्ता को कहना चाहिये कि आप लोगों को क्रोध से रहित शौच में परायण और निरन्तर ब्रह्मचर्य्य व्रत का परिपालन पूर्ण रूप से करने वाले होना ही चाहिए। मैं श्राद्ध का करने वाला हूं मुझे भी पितृयज्ञ को पूर्णतया सम्पन्न करके जिसका नाम तर्पण है जो अग्निमान् है उस इन्दुक्षय में परम प्रसन्नता से पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध करना चाहिए ॥२०॥२१॥

गोमयेनोपलिप्ते तु दक्षिणप्रवणेस्थले ।
श्राद्धं समाचरेद्भक्त्या गोष्ठे वा जलसन्निधौ ॥२२
अग्निमान्निर्वपेत्पित्र्य चरुञ्छाममुष्टिभिः ।
पितृभ्योनिर्वपामीतिसर्वंदक्षिणतोन्यसेत् ॥२३
अभिघाय ततः कुर्य्यान्निर्वापत्रयमग्रतः ।
तेऽपि तस्यायता कार्य्याश्चतुरङ्गुलविस्तृता ॥२४
दर्व्वीत्रयन्तु कुर्व्वीत खादिरं रजतान्वितम् ।
रत्निमात्रं परिश्लक्ष्णं हस्ताकाराग्रमुत्तमम् ॥२५
उदपात्रञ्च कांस्यञ्च मेक्षणञ्चसमित्कुशान् ।
तिला पात्राणिसद्वासोगन्धधूपानुलेपनम् ॥२६
आहरेदपसव्यन्तु सर्वं दक्षिणतः शनैः ।
एवमासाद्य तत्पर्वं भवनस्याग्रतो भुवि ॥२७
गोमयेनोपलिप्तायांगोमूत्रेणतुमण्डलम् ।
अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्यापसव्यवत् ॥२८

जो स्थल दक्षिण दिशा की ओर हो उसे ही गोमय से उपलिप्त कर लेना चाहिए और वहीं पर परम भक्ति की भावना से पूरित होकर श्राद्ध का समाचरण करना चाहिए। अथवा गोष्ठ में श्राद्ध करने का उत्तम स्थल रक्खे या किसी भी जलाशय की सन्निधि में श्राद्ध का समाचरण करे ॥२२॥ जो अग्निमान् अर्थात् साग्निक हो उसे पित्र्य चरुका साम मुष्टियों से निर्वपन करना चाहिए। 'मैं पितृगण के लिये निर्वपन करता हूँ'—यह कहते हुए सभी को दक्षिण की ओर न्यस्त करना चाहिये ॥२३॥ इसके उपरान्त आगे निर्वापत्रय अभिधार्य्य को करना चाहिए। वे भी उसके चार अंगुल के विस्तृत आयत ही करने चाहिएँ ॥२४॥ वहाँ पर तीन दर्वी करे। वे चाहे खादिर निर्मित हों या रजत से समन्वित हों। रत्निमात्र—परिश्लक्ष्ण और एक हाथ के आकार वाला उत्तम होना चाहिए ॥२५॥ जल का पात्र-कांस्य-मेक्षण-समिधा-कुशा-

तल-पात्र-सुन्दर वस्त्र-गन्ध धूप और अनुलेपन इन समस्त पदार्थों का ... में धीरे से दक्षिण की ओर ही आहरण करना चाहिए। इस ... से सबका समाहरण करके भवन के अगले भाग में भूमि में ... गोमय से उपलिप्त की हुई है उसमें गोमूत्र से मण्डन करे और ... एवं पुष्पों के सहित अक्षतों से उसका अभ्यर्चन करना चाहिए। ... सब श्राद्ध करने के स्थल पर करके ही श्राद्ध का समारम्भ करे ॥२६॥२७॥२८॥

विप्राणां क्षालयेत्पादावभिनन्द्य पुन. पुन ।
आसनेषूपक्लृप्तेषु दर्भवत्सु विधानवत् ॥२६
उपस्पृष्टोदकान्विप्रानुपवेश्यानुमन्त्रयेत् ।
द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र च ॥३०॥
भोजयेदीश्वरोऽपीह न कुर्याद्विस्तर बुध ।
दैवपूर्वं नियोज्याथविप्रानर्घ्यादिनाबुधः ॥३१
अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो विप्रैर्विप्रो यथाविधि ।
स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाचरु तत ३२
अग्नीषोमयमाभ्यान्तु कुर्यादाप्यायन बुध ।
दक्षिणाग्नौ ... एकाग्निर्द्विजोत्तम. ॥३३
यज्ञोपवीती निर्वर्त्य तत पर्युक्षणादिकम् ।
प्राचीनावीतिना कार्यमत सर्वं विजानता ॥३४
षट्तस्माद्धवि शेषात्पिण्डान्कृत्वाततोदकम् ।
दद्यादुदकपात्रैस्तु सतिल सव्यपाणिना ॥३५

जब विप्रगण जो कि श्राद्ध में निमन्त्रित किए गये हैं उस स्थल पर पदार्पण करें तो उनकी बारम्बार वन्दना करके सर्व प्रथम उनके चरणों का प्रक्षालन करना चाहिए। फिर विधान पूर्वक दर्भों से समन्वित उपक्लृप्त आसन हैं उन पर उन विप्रों को जिन्होंने जल से अपना उपस्पर्शन कर लिया है उपवेशित करे और अनुमन्त्रण करना चाहिए।

कृत्य मे दो तथा पितृ कृत्य मे तीन अथवा इन दोनो मे ही एक-एक ही विप्र को निमन्त्रित करना चाहिए। इन्ही ब्राह्मणो को भोजन कराये चाहे कोई आर्थिक पूर्ण समर्थता भी क्यो न रखता हो श्राद्ध कर्म में पुरुष को इससे अधिक विस्तार नहीं करना चाहिए। देव पूर्व निदेश करके इसके अनन्तर ही बुध पुरुष को चाहिए कि निमन्त्रित विप्रो के अर्घ्य आदि उपचारो से उपसेवित करे ॥२९, ३०, ३१॥ विप्र की विधि के ही अनुसार उन निमन्त्रित विप्रो से अनुज्ञा प्राप्त करके अग्नि मे हवन का आरम्भ करना चाहिए। अपने गृह्य सूत्र के विधान के अनुसार ही फिर कांस्य पात्र मे चरु को कर लेवे। फिर "अग्नि त सोमयम्"-इसे बुध पुरुष को आप्यायन करना चाहिए। जो एकाग्नि द्विजोत्तम हो उसे दक्षिणाग्नि मे अथवा प्रतीत मे यज्ञोपवीती होते हुए पर्युक्षण आदि का निवर्तन करना चाहिए। इसलिए सबका ज्ञान रखने वाले पुरुष को प्राचीनावीति होकर ही करना चाहिए। उस हवि शेष से छै पिण्डों की रचना करके फिर उदक देव और तिलो के सहित उदक को सव्य पाणि से ही उदक पात्र क द्वारा देना चाहिए ॥३२, ३३, ३४, ३५॥

जान्वाच्य सव्य यत्नेन दर्भयुक्तो विमत्सर ।
विधाय लेखा यत्नेन निर्वापेष्ववनेजनम् ॥३६
दक्षिणाभिमुख कुर्यात् करे दर्वी निधाय वै ।
निधाय पिण्डमेकैक सर्वदर्भेष्वनुक्रमात् ॥३७
निनयेदथ दर्भेषु नामगोत्रानुकीर्तनैः ।
तेषु दर्भेषु त हस्त निमृज्याल्लेपभागिनाम् ॥३८
तथैव च तत. कुर्यात् पुन प्रत्यवनेजनम् ।
षडप्येतानमस्कृत्य गन्धधूपार्हणादिभि. ॥३९
एवमावाह्य तत्रैव वेदमन्त्रं यथोदितं ।
एकाग्नेरेकएव स्यान्निर्वापादर्विका तथा ॥४०
तत कृत्वा-तरेदद्यात्पत्नीभ्योऽन्नन्तु पुरा. ।

तद्वत्पिण्डादिकेवूर्यादावाहनविसर्जनम् ॥४१
ततो गृहीत्वा पिण्डेभ्योमात्राः सर्वाः क्रमेणतु ।
तानेवविप्रान्प्रथमप्राशयेद्यत्नतोनर ॥४२

सव्य आचाम्य होकर यत्न पूर्वक मत्सरता से रहित और हर्षित होकर लेखा करे तथा फिर यत्न के साथ दक्षिणाभिमुख हो दाँये हाथ में रखकर तिलों से अवनेजन करना चाहिए। एक-एक पिण्ड को रखकर अनुक्रम से सम्पूर्ण दर्भों में विनीत करे और उन दर्भों में उन सबके नाम और गोत्र का भी कीर्तन करते हुए यह क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए ॥३६, ३७, ३८॥ उसी भाँति से इनके पश्चात् पुनः प्रत्यवनेजन करना चाहिए। इन छओं पिण्डों को मन्त्र सूप आदि की अनुष्ठान के द्वारा नमस्कार करे ॥ ३६ ॥ यथोदित जो वेद के मन्त्र हैं उनके द्वारा इसी प्रकार से उन सबका आवाहन करना चाहिए। जो एकाग्नि हों उनका एक ही होना चाहिए तथा निर्वापोदक क्रिया भी वैसा ही होवे ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर यह सब सम्पादित करके उसी अन्तर में कुशों से उनकी पत्नियों के लिये अन्न देना चाहिए। और इनके लिये भी इसी भाँति पिण्ड आदि में आवाहन और विसर्जन करने चाहिए ॥ ४१ ॥ इसके पश्चात् उन्हें ग्रहण करके पिण्डों से सब मात्रा क्रमेण अर्थात् क्रमपूर्वक इस श्राद्धदाता पुरुष को यत्नपूर्वक उन्हीं विप्रों को सबसे प्रथम खिला देनी चाहिये ॥ ४२ ॥

यस्मादन्नात् धृता मात्राभक्षयन्तिद्विजातय. ।
अन्वाहार्यं कमित्युक्तंतस्मात्तच्चन्द्रसक्षये ॥४३
पूर्वं दत्वातु तद्धस्तेसपवित्रं तिलोदकम् ।
ततपिण्डाग्रप्रयच्छेतस्वधैषामस्त्वितिब्रुवन् ॥४४
वर्णयन् भोजयेदन्नं मिष्ट पूतञ्च सर्वदा ।
वर्जयेत् क्रोधपरता स्मरन्नारायण हरिम् ॥४५
तृप्तान् ज्ञात्वा तत. कुर्याद्विकिरन् सार्ववर्णिकम् ।

सोदक चान्नमुद्धृत्य सलिल प्रक्षिपेद्भुवि ॥४६
आचान्तेषु पुनर्दद्याज्जलपुष्पाक्षतोदकम् ।
स्वस्तिवाचनक सर्वं पिण्डोपरिसमाहरेत् ॥४७
देवाद्यन्त प्रकुर्वीतश्राद्धनाशोऽन्यथाभवेत् ।
विसृज्यब्राह्मणास्तद्वत्तेषा कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥४८
दक्षिणा दिशमाकाङ्क्षन् पितॄन् याचेत मानव ।
दातारो नोऽभिवर्धन्ता वेदा सन्ततिरेव च ॥४९

जिस अन्न से जो मात्रा वहाँ पर धृत की गई है द्विजाति गण उसका भक्षण करते हैं । इसको अन्वाहार्यक कहा गया है । इस कारण से उस चन्द्र के सक्षय में पहिले पवित्री के सहित तिलोदक को उनके हाथ मे देकर फिर एपा स्वधा अस्तु' अर्थात् इनको स्वधा होवे—यह मुख स बोलता हुआ उस पिण्ड का अग्रभाग देवे । फिर सर्वदामिष्ट ■■ पूर्त मन्त्र की प्रशसा का वर्णन करते हुए उनको भोजन कराना चाहिए। उस समय मे क्रोध का भावना को सर्वथा वर्जित कर देना चाहिए और श्री हरिनारायण का स्मरण करते हुए ही यह सब कर्म सम्पन्न करे ॥४३ ४४ ४५ ॥ जब यह जान लेवे कि विप्र भोजन से पूर्णतया तृप्त हो गये हैं तो फिर सार्व वर्णिक विकिरन करना चाहिय । उदक के सहित अन्न को उद्धृत करके भूमि म अन्न का प्रक्षपण करे ॥ ४६ ॥ जब विप्र आचान्त हो जावें तो उन्हे पुन. जल पुष्प, अक्षत और उदक देवे। स्वस्ति वाचनक सब का पिण्डों के ऊपर म समाहरण करना चाहिये। सब देवाद्यन्त करे अन्यथा श्राद्ध का नाश हो जाता है । फिर ब्राह्मणों का विसर्जन करके उनकी प्रदक्षिणा करे । दक्षिण दिशा की ओर आकांक्षा करते हुए मनुष्य को पितृगण स याचना करनी चाहिये कि आप सब दाता हैं और हमारे वेदों तथा सन्तति का अभिवर्द्धन करें ॥ ४७, ४८, ४९ ॥

श्रद्धाचनोमाव्यगमतबहूदयञ्चनोऽस्त्विति ।
अन्नञ्चनो वहुभवेदतिथीश्च लभामहे ॥५०
याचितारश्च न सन्तुमायाचिष्मकञ्चन ।
एतदस्त्विततत्प्रोक्तमन्वाहायन्तुपावणम् ॥५१
यथेन्दुमक्षये तद्वदन्यत्रापि निगद्यते ।
पिण्डास्तुगोऽजविप्रभ्यादद्यादग्नौ जलेऽपिवा ॥५२
विप्राग्रता वा विकिरेद्वयोभिरभिवाशयेत् ।
पत्नीतुमध्यमपिण्ड प्राशयेद्विनयान्विता ॥५३
आघत्त पितरोगर्भमत्र सन्तानवर्धनम् ।
तावदुच्छेषण तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिता ॥५४
वैश्वदेव तत कुर्यान्निवृत्ते पितृकर्मणि ।
इष्टै सह तत शान्तामुञ्जीत पितृसेवितम् ॥५५
पुनर्भोजनमध्वान यानमायासमैथुनम् ।
श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक् चैवसर्वमेतद्विवर्जयत ॥५६
स्वाध्याय कलह चैव दिवास्वप्नञ्च सर्वदा ।
अनेन विधिना श्राद्ध त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ॥५७
कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षेषु सर्वदा ।
यत्र यत्र प्रदातव्य सपिण्डिकरणात्परम् ।
तत्रानेन विधानेन दयमग्निमता सदा ॥५८

पितृगण से करबद्ध होकर परमपून भावना से यह भी याचना र कि आप ऐसी कृपा करें कि हमारे हृदय से कभी भी श्रद्धा का व्यय-म न होवे और हमारे हृदय म बहुत अधिक दातृत्व शक्ति की वृद्धि वे। हमारे पास अत्यधिक अन्न होवे और उस अतिथि गण प्राप्त करते है ॥ ५० ॥ हम लोगों से याचना करने वाले भी होवे जिनकी याच ाओ की पूर्ति हम किया करें तथा हम कभी भी किसी से याचना करने ाले न बने। ऐसी ही कृपा आप लोग करें कि एसा ही हो जावे।

इसी को अन्वाहार्य पार्वण श्राद्ध कहा गया है ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार से इन्दु के सक्षय में इसे कहा गया है उसी भाँति अन्यत्र भी इसको कहा जाता है । इन पिण्डो को फिर गौ-अजा और विप्रों को दे देना चाहिए अथवा इनको किसी पवित्र जलाशय मे या अग्नि मे प्रक्षिप्त कर देना चाहिए ॥ ५२॥ विप्रो के आगे विकिरण कर देवे अथवा पक्षियों को खिला देना चाहिये । पत्नी को मध्यम पिण्ड का प्राशन विनय से समन्वित होकर करना चाहिए ॥ ५३ ॥ इसमे पितृगण सन्तान के वर्धन करने वाला गर्भ रख दिया करते हैं । जब तक विप्रगण वहाँ से विसर्जित न होवें तब तक वह उनका उच्छिष्ट वैसे ही स्थित रहना चाहिये ॥ ५४ ॥ इस पितृकर्म्म के साङ्ग सम्पन्न होकर निवृत्त हो जाने के पश्चात् बलि-वैश्वदेव करना चाहिए । इसके अनन्तर अपने समस्त इष्ट मित्रो तथा बन्धु-बान्धवो के साथ मिलकर परम शान्त भाव से युक्त हो उस पितृ सेवित अन्न को खावे ॥ ५५ ॥ श्राद्ध करने वाले पुरुष को उसी दिन में दूसरी बार भोजन करना, मार्ग का गमन करना, यान मे समारोहण करना, विशेष श्रम का कार्य करना, मैथुन नहीं करना चाहिये । इस भाँति श्राद्ध भोजन करने वाले विप्र को भी इन नियमो का परिपालन करना चाहिए तथा दोनो को ही इनका विवर्जन कर देना चाहिए ॥५६॥ श्राद्ध वाले दिन में स्वाध्याय भी न करे तथा किसी प्रकार का कलह और दिन मे निद्रा भी न लेवे और सर्वदा इसका ध्यान रखना चाहिए । इसी विधि-विधान से यहाँ पर श्राद्ध का निर्वपन करना चाहिए । कन्या राशि, कुम्भ और वृष राशि पर सूर्य के स्थित होने पर सर्वदा कृष्ण-पक्षो मे ही श्राद्ध देना चाहिए । सापिण्डीकरण से आगे ही जहाँ-जहाँ पर श्राद्ध देना चाहिये । जो साग्निक हो उसे भी इसी विधान से श्राद्ध देना चाहिए ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

१५—साधारण अभ्युदय कीर्तन

अतः परं प्रवक्ष्यामि विष्णुना यदुदीरितम् ।
श्राद्धं साधारणनामभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१
अयने विषुवे युग्मे सामान्ये चार्कसंक्रमे ।
अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षे पञ्चदशीषु च ॥२
आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसङ्गमे ।
गजच्छायाव्यतीपाते विष्टि वैधृतिवासरे ॥३
वैशाखस्य तृतीयाया नवमी कार्तिकस्य च ।
पञ्चदशी च माघस्य नभस्येचत्रयोदशी ॥४
युगादयः स्मृता ह्येता दत्तस्याक्षय्यकारिका ।
तथा मन्वन्तरादौचदेयश्राद्ध विजानता ॥५
अश्वयुक् शुक्लनवमी द्वादशीकार्तिके तथा ।
तृतीया चैत्र मासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥६
फाल्गुनस्यह्यमावास्यापौषस्यैकादशीतथा ।
आषाढस्याऽपिदशमीमाघमासस्यसप्तमी ॥७
श्रावणस्याष्टमी कृष्णातथाषाढीचपूर्णिमा ।
कार्तिकीफाल्गुनीचैत्रीज्येष्ठपञ्चदशीसिता ॥
मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥८

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके आगे मैं साधारण श्राद्ध को बतलाऊँगा जो भगवान् विष्णु ने कहा था। यह श्राद्ध भुक्ति-मुक्ति के फल देने वाला है। १।। इस श्राद्ध के देने के समय बतलाये जाते हैं अयन-विषुव-युग्म-सामान्य सूर्य संक्रान्ति-अमावस्या-अष्टकाकृष्ण प पञ्चादशी-आर्द्रा-मघा-रोहिणी-द्रव्यब्राह्मण सङ्गम-गजच्छाया व्यतिपात-विष्टि-वैधृतिवासर वैसाख की तृतीया-कार्तिक मासकी नवमी तिथि-माघ की पञ्चदशी-नभस्य माघ की त्रयोदशी तिथि ये युगादि हुए श्राद्ध को अक्षय करने वाले कहे गये हैं। उसी भाँति मन्व

वे आदि में विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष को श्राद्ध देना चाहिए ॥१॥ ॥३, ४, ५॥ अश्वयुक् की शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि तथा कार्तिक द्वादशी तिथि चैत्र और भाद्र पद मास की तृतीया तिथि–फाल्गुन की अमावस्या और पौष मास की एकादशी तिथि–आषाढ की भी दशमी तथा माघ मास की सप्तमी तिथि–श्रावण की अष्टमी कृष्ण पक्ष वाली–आषाढ़ी पूर्णिमा तथा कार्तिकी–फाल्गुनी–चैत्री और ज्येष्ठ की सित पक्षदशी तथा मन्वन्तर दिये हुए श्राद्ध के अक्षय करने वाली तिथियाँ हैं ॥६, ७, ८॥

यस्या मन्वन्तरस्यादौ रथमास्तेदिवाकरः ।
माघमासस्यसप्तम्यामातु स्याद्रथसप्तमी ॥ ६
पानाग्रमप्यत्र तिलैर्विमिश्र दद्यात्पितृभ्य. प्रयतोमनुष्य. ।
श्राद्ध कृत तेन समाः सहस्र रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति॥१०
वैशाख्यामुपरागेषु तथोत्सवमहालये ।
तीर्थायतनगोष्ठेषु द्वीपोद्यानगृहेषु च ॥११
विविक्तेपूपलिप्तेषु श्राद्ध देय विजानता ।
विप्रान् पूर्व परेचाह्निविनीतात्मानिमन्त्रयेत् ॥१२
शीलवृत्तगुणोपेतान् वयारूपसमन्वितान् ।
द्वौ दवे त्रीस्तथा पैत्र्ये एकैकमुभयत्रवा ॥१३
भोजयेत्सुसमृद्धोपिनप्रसज्जेतविस्तरे ।
विश्वान्देवान्यवैः पुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्वकम् ॥१४

मन्वन्तर के आदि में जिस तिथि में दिवाकर रथ में विराजमान होते हैं वह माघ मास की सप्तमी तिथि है, अतएव वह रथ सप्तमी कही भी जाती है ॥६॥ इस तिथि में यदि कोई प्रयत मनुष्य अपने पितृगण के लिये तिलों से विमिश्रित जल मात्र भी समर्पित कर देता है तो ऐसा मान लिया जाता है कि उस व्यक्ति ने एक सहस्र वर्ष तक का श्राद्ध कर दिया है—इस रहस्य को पितृगण ही कहा करते हैं ॥१०॥ वैशाख

ामा मे–उपरागो मे–उत्सव महालय में–तीर्थ-देवायतन और गोष्ठ में-
ा-उद्यान गृह मे तथा परम विविक्त (एकान्त) और गोमय से उप
न स्थल मे विशेष ज्ञाना पुरुष को पितृगण के लिए श्राद्ध देना चाहिए।
या पर दिन मे ही नियोजन के योग्य अधिकारी विप्रों को विनीत
रना वाला परम विनम्र होकर निमन्त्रित कर देना चाहिए ॥११, १२॥
ा भी विप्र श्राद्ध मे निमन्त्रित किये जावें वे शील-वृत और गुणों से
न्न तथा वय एवं रूप से समन्वित होने चाहिए। दैव मे दो और पैत्र्य
तीन ही विप्रो को श्राद्ध मे निमन्त्रण देना चाहिए अथवा इन दोनों
ही एक-एक विप्र को निमन्त्रित कर देना पर्याप्त होता है ॥१३॥
ाहे कोई कितना ही अधिक समृद्धिशाली भी क्यों न हो जिस धन के
धिक व्यय होने की कुछ भी परवाह न हो तो भी श्राद्ध में विस्तार
रने के लिए प्रसज्जित नहीं होना चाहिए। विश्व देवो को यवों के तथा
ुष्पो के द्वारा अभ्यर्चन करते हुए पहिले आसन ग्रहण करना
ाहिए ॥१४॥

पूरयेत्पात्रयुग्मन्तु स्थाप्य दर्भपवित्रकम् ।
शन्नोदेवीत्यप.कुर्य्याद्यवोऽसीतियवानपि ॥१५
गन्धपुष्पैश्च सपूज्य वैश्वदेव प्रतिन्यसेत् ।
विश्वेदेव.मइत्याभ्यामावाह्यविकिरेद्यवान् ॥१६
गन्धपुष्पैरलङ्कृत्ययादिव्येत्यपउत्सृजेत् ।
अभ्यर्च्यताभ्यामुत्सृष्टपितृकार्य्य समारभेत् ॥१७
दर्भासनन्तुतत्त्वादौत्रीणिपात्राणिपूरयेत् ।
सपवित्राणिकृत्वादौशन्नोदेवीत्यप.क्षिपेत् ॥१८
तिलोऽसीति तिलान् कुर्य्याद्गन्धपुष्पादिक पुन ।
पात्र वनस्पतिमयतथापर्णमय पुनः ॥१९
जलज वाथ कुर्व्वीत तथा सागरसम्भवम् ।
सौवर्ण राजत वापि पितृणा पात्रमुच्यते ॥२०

रजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव वा ।
राजतैर्भाजनैरेषामथवा रजतान्वितैः ॥२१

दो पात्रों की स्थापना करके दर्भ और पवित्री के सहित जल उन्हे पूरित करे तथा "शन्नोदेवी"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा जल करना चाहिए। "यवोऽसीति"—इत्यादि मन्त्र को उच्चारण करते हुए यवों को भी डाल देवे ॥ १५ ॥ गन्ध और पुष्पों से वैश्वदेव का भली भाँति पूजन करके प्रतिन्यास कर देना चाहिये। 'विश्वेदेवास"—इत्यादि मन्त्रों द्वारा आवाहन करके यवों को विकीर्ण करना चाहिये ॥ १६ ॥ गन्ध पुष्प से समलङ्कृत करके 'या दिव्य'—इत्यादि मन्त्र को बोलते हुए जल का उत्सर्ग करे, उन दोनों से अभ्यर्चन करके फिर उत्सृष्ट पितृ कार्य का समारम्भ कर देना चाहिए ॥ १७ ॥ आदि में दर्भासन देकर तीन पात्रों को पूरित कर देवे और आदि में उन पात्रों को पवित्री के सहित करे फिर "शन्नोदेवी रभिष्टये"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा जल का क्षेपण करना चाहिए ॥ १८ ॥ "तिलोऽसीति" मन्त्र को पढ़ते हुये तिलों का क्षय करे और फिर गन्ध, पुष्प आदि का क्षेपण करना चाहिये। पात्रों को वनस्पतियों से पूर्ण तथा पर्णमय कर देवे ॥ १९ ॥ अथवा जलज और तथा सागर सम्भव कर देवे। पितृगणों के पात्र सुवर्ण निर्मित अथवा रजत (चाँदी) से बने हुए राजत कहे जाया करते हैं ॥ २० ॥ रजत की कथा भी दर्शन और दान ही होना है। इन पितृगणों के लिये श्राद्ध आदि में जो कुछ भी दिया जावे वह चाँदी के निर्मित पात्रों के द्वारा ही देना चाहिए अथवा चाँदी से समन्वितों के द्वारा करना चाहिये ॥२१॥

वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ।
तथार्घ्यपिण्डभोज्यादौ पितॄणा राजतंमतम् ॥२२
शिवनेत्रोद्भव यस्मात्तस्मात्तत्पितवल्लभम् ।
अमङ्गल तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत् ॥२३
एव पात्राणि संस्थाप्य यथालाभविमत्सरः ।

यादिव्येतिपितुर्नामगोत्रं दर्भकरोन्यसेत ॥२४
पितृ नावाहयिष्यामि कुर्वित्युक्तस्तु तं पुनः ।
उशन्तस्त्वा तथायन्तु ऋग्भ्यामावाहयेत्पितृ न् ॥२५
यादिव्येत्यर्घ्यमुत्सृज्य दद्याद् गन्धादिकांस्ततः ।
हस्तात्तदुदकं पूर्वं दत्वा संस्रवमादितः ॥२६
पितृपात्रे निधायाथ न्युब्जमुत्तरतोन्यसेत् ।
पितृभ्य स्थानमसीतिनिधाय परिषेचयेत् ॥२७
तत्रापि पूर्ववत् कुर्यादग्निकार्यं विमत्सरः ।
उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिवेषयेत् ॥२८

जो श्रद्धापूर्वक केवल अन्न भी दिया गया है वह भी अक्षय ही उपकालीन हो जाता है। इसी भाँति से अर्घ्य-पिण्ड भोज्य आदि के कर्म में पितृगणों के लिये राजत माना गया है ॥ २२ ॥ भगवान् शिव के नेत्रों से उत्पत्ति होती है इसी कारण से यह पितृगण का प्रिय है। जो अमङ्गल है उसे यत्नपूर्वक देव कार्यों से वर्जित करना चाहिए ॥ २३ ॥ इस रीति से पात्रों का सङ्कल्प करके साम्यानुसार मत्सरता के भाव से रहित होकर ही "या दिव्या"—इत्यादि मन्त्र से पिता के नाम गोत्रों से हाथ में दर्भ ग्रहण करने वाले को न्यास करना चाहिये ॥ २४ ॥ "पितृन् आवाहयिष्यामि"—अर्थात् मैं अपने पितृगणों का आवाहन करूँगा—इस रीति से अनुज्ञा प्राप्त करने के लिये पूछे। जब ब्राह्मण कह देवें कि 'कुरु'—अर्थात् आवाहन करो तभी आवाहन पूछकर प्राप्ताभ्यनुज्ञ होकर ही करे। 'उशन्तस्त्वा'-'तथायन्तु'—इन दो ऋचाओं के द्वारा पितृगण का आवाहन करे ॥ २५ ॥ 'या दिव्या'—इस मन्त्र को पढ़कर अर्घ्य का उत्सर्ग करके फिर पीछे गन्ध आदिक अन्य पूजनोपचारों का देना चाहिये। हाथ में पूर्व में उस जल को देकर आदि से संस्रव को पितृगण के पात्र में रखकर उत्तर की ओर न्युब्ज न्यास करना चाहिये। "पितृभ्यस्स्थानमसि"—इस मन्त्र से रखकर परिषेचन करे ॥ २६, २७ ॥

वहाँ पर भी पूर्व की ही भाँति मात्सर्य से रहित होकर ही अग्निकार्य करना चाहिये। दोनों हाथों से समाहरण करके ही परिवेषण करना चाहिये ॥ २८ ॥

> प्रशान्तचित्तः सततं दर्भपाणिरशेषतः ।
> गुणाढ्यैः सूपशाकैस्तु नानाभक्ष्यैर्विशेषतः ॥२६
> अन्नन्तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम् ।
> मासम्प्रीणातिवैसर्वान्पितॄन्नित्याह्केशव ॥३०
> यत्किञ्चिन्मधुसंमिश्रं गोक्षीरं घृतपायसम् ।
> दत्तमक्षयमित्याहुः पितरः पूर्वदेवताः ॥३१
> स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्यं पुराणान्यखिलानि च ।
> ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तवानि विविधानि च ॥३२
> इन्द्राग्निसोमसूक्तानि पावनानि स्वशक्तितः ।
> बृहद्रथन्तरतद्वज्ज्येष्ठसामसरौहिणम् ॥३३
> तथैव शान्तिकाध्यायं मधु ब्राह्मणमेव च ।
> मण्डलं ब्राह्मणंतद्वत्प्रीतिकारितुयत्पुनः ॥३४
> विप्राणामात्मनश्चैव तत्सर्व समुदीरयेत् ।
> भुक्तवत्सु ततस्तेषु भोजनोपान्तिके नृप ! ॥३५

निरन्तर श्राद्ध कर्म में प्रशान्त चित्त वाला रहकर ही उसे करे और सर्वदा हाथ में दर्भ रखे। गुणों से युक्त सूप तथा शाक आदि अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों का विशेष रूप से परिवेषण करे ॥ २६ ॥ जो भी अन्न दिया जावे वह दधि-क्षीर और शर्करा से समन्वित ही देना चाहिये। भगवान् केशव ने कहा है कि इस तरह से दिया हुआ श्राद्ध एक मास पर्यन्त पितृगण को प्रसन्न किया करता है ॥ ३० ॥ जो कुछ भी मधु से समिश्रित गौ का क्षीर घृत पायस दिया हुआ है वह सब अक्षय अर्थात् क्षय से रहित हो जाया करता है—ऐसा पितृगण और पूर्व देवता कहते हैं ॥ ३१ ॥ पित्र्य अर्थात् पितृगण से सम्बन्धित स्वाध्याय का श्रवण

करावे तथा सभी पुराणों को सुनाना चाहिये । ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के विविध स्तवों का श्रवण कराना चाहिए ॥ ३२ ॥ इन्द्र-अग्नि और सोम के जो परम पावन सूक्त हैं उनका श्रवण अपनी शक्ति से करावे । इसी भाँति बृहद् अन्तर और ज्येष्ठ साम सरोहिण का श्रवण भी शक्ति के अनुसार बन पड़े तो कराना चाहिए ।। ३३ ।। इसी तरह से शान्तिकाध्याय और मधु ब्राह्मण एवं मण्डल तथा ब्राह्मण का श्रवण करावे । तात्पर्य यही है कि जो भी कुछ पितृगण के लिये प्रीति का करने वाला हो वही उस समय में श्रवण कराना उचित होता है ।। ३४ ।। हे नृप ! इसके पश्चात् उन सबके भुक्तवान् हो जाने पर ही भोजन के समीप में ही विप्रों का तथा अन्य सब उद्दीरित करना चाहिए ॥ ३५ ॥

सार्ववर्णिकमन्नाद्य सन्नीयाप्लाव्य वारिणा ।
समुत्सृजेद् भुक्तवतामग्रतो विकिरेद्भुवि ॥३६
अग्निदग्धास्तु ये जीवा यऽप्यदग्धाकुले मम ।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु प्रयान्तु परमाङ्गतिम् ।।३७
येषा न माता न पिता न बन्धुर्न गोत्रशुद्धिर्न तथान्नमस्ति ।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत् प्रयातु लोके सुसुखाय तद्वत्॥३८
असंस्कृतप्रमीतानान्त्यक्तानां कुलयोषिताम् ।
उच्छिष्टभागधेयं स्याद्दर्भे विकिरयोश्चय ॥३९
तृप्ता ज्ञात्वोदकं दद्यात् सकृद्विप्रकरे तथा ।
उपलिप्ते महीपृष्ठे गोशकृन्मूत्रवारिणा ॥४०
निधाय दर्भान् विधिवद्दक्षिणाग्रान्प्रयत्नतः ।
सर्ववर्णेन चान्नेन पिण्डांस्तु पितृयज्ञवत् ।।४१
अवनेजनपूर्वन्तु नामगोत्रेण मानवः ।
गन्धधूपादिकं दद्यात् कृत्वा प्रत्यवनेजनम् ॥४२

सभी वर्णों का अन्न आदि का ग्रहण कर लेवे और उसको लाकर जल से प्लावित कर लेना चाहिए फिर उसको भुक्त हुओं के सामने

समुत्कृष्ट करना चाहिए और भूमि मे विकीर्ण कर देवे ॥ ३६॥ जिस समय मे भूमि मे अन्न को विकीर्ण करे उस समय मे "अग्निदग्धास्तु ये जीवाप्येऽप्यदग्धाः कुलेमम । भूमि······" इत्यादि मन्त्र का मुख से समुच्चारण करना चाहिए । इसका अर्थ है जो भी कोई जीव मेरे कुल मे आग से जलकर मृत हो गये हों अथवा जिनका कभी दाह ही नही किया गया हो और ऐसे ही कहीं मृत शव पड़कर विनष्ट हुआ हो वे सभी भूमि मे समर्पित इस विकीर्ण अन्न से तृप्ति को प्राप्त कर तथा परम गति की प्राप्ति भी करें ॥ ३७ ॥ जिनके कोई भी माता—पिता और बन्धु नहीं हैं—न उनके गोत्र की ही बुद्धि है और न अन्न ही प्राप्त है उन सबकी तृप्ति के लिये ही यह अन्न भूमि मे विकीर्ण करके दिया गया है । यह लोकों मे उन सबको उसी भांति सुख के लिये होवे ॥ ३८ ॥ असंस्कृत प्रमीत त्यक्त कुल योषितों का उच्छिष्ट भाग शेष और ओर जो दर्भ मे विकीर्ण है वह होवे ॥३६॥ जिस समय मे यह समझ लेवे कि भोजन करके विप्र प्राय तृप्त हो चुके हैं तब एक बार विप्र के कर मे उदक देना चाहिए । गोमय और गोमूत्र के द्वारा उपलिप्त भूमि के पृष्ठ भाग पर उन दर्भों को निधापित कर देवे किन्तु विधिपूर्वक दक्षिण की ओर ही उनके अग्रभाग होने चाहिये ऐसा ही प्रयत्न पूर्वक करे । सभी वर्णों वाले पुरुषों के अन्न से पितृ यज्ञ की भांति पिण्डों की रचना करनी चाहिए ॥ ४०, ४१ ॥ मानव को अवनेजन पूर्वक नाम और गोत्र के द्वारा गन्ध-धूप आदिक सभी समर्पित करे और फिर प्रत्यवनेजन करना चाहिए।

> जान्वाच्यसव्य सव्येनपाणिनाथ प्रदक्षिणम् ।
> पित्र्यमानीय तत्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ॥४३
> दीपप्रज्वालनतद्वत् कुर्यात्पुष्पार्चनं बुधः ।
> अथाचान्तेषु चाचम्यवारिदद्यात्सकृत्सकृत् ॥४४
> अथ पुष्पैः तान् पश्चादक्षय्योदकमेव च ।

सतिल नामगोत्रेणदद्याच्छक्तयाचदक्षिणाम् ॥४५
गोभूहिरण्यवासांसि भव्यानि शयनानि च ।
दद्याद्यदिष्टं विप्राणामात्मन पितुरेव च ॥४६
वित्तशाठ्येन रहित पितृभ्य. प्रीतिमावहन् ।
तत स्वधावाचनकं विश्वेदेवेषु चोदकम् ॥४७
दत्त्वाशो प्रतिगृह्णीयाद्विश्वेभ्य प्राङ्मुखो बुध ।
अघोरा पितर सन्तु सन्त्वित्युक्त पुनर्द्विजं ॥४८
गोत्र तथावर्द्धन्तान्नस्तथेत्युक्तश्च तं पुन ।
दातारोनोऽभिवर्द्धन्तामिति चैवमुदीरयेत् ॥४६

सम्य पाणि से जावा वाच्य करे इसके अनन्तर पित्र्य को प्रदक्षिण ों लाकर दर्भयुक्त हाथ से विधिपूर्वक वह करना चाहिए ॥४३॥ उसी तरह दीपक का प्रज्वालन करे और बुध पुरुष को पुष्पार्चन करना चाहिए । उसके पश्चात् उन विप्रों के आचान्त होने पर और आचमन करके एक-एक बार जल देवे ॥४४॥ इसके अनन्तर पुष्प और अक्षतों को तथा प्रक्षय्य उदक जो तिलों के सहित हो नाम और गोत्र का उच्चारण करके देना चाहिए तथा शक्ति के अनुसार दक्षिणा भी देवे ॥४५॥ दक्षिणा में गौ-भूमि-सुवर्ण-वस्त्र और भव्य शय्या इतम अपना जो अत्यन्त प्रिय एवं अभीष्ट हो तथा पिता को जो परम इष्ट पदार्थ हों उन्हीं को ब्राह्मणों को देना चाहिए ॥४६॥ दक्षिणा आदि को देने में वित्तशाठ्य से रहित होकर ही पितृगण की प्रीति प्राप्त करता हुआ सकीर्णता दूर रहकर करे। इसके उपरान्त फिर विश्वेदेवों में प्रेरणा करने वाला स्वधा का वाचनक करे ॥४७॥ यह सब समर्पित करके बुध पुरुष का पूर्व को ओर मुख वाला होकर विश्वेदेवों से आशीर्वाद का प्रतिग्रहण करना चाहिए। फिर द्विजों के द्वारा पितृगण अघोर होवें–इस प्रकार से कहा हुआ श्राद्ध-कर्ता हो–फिर उनके द्वारा कहा जावे–हमारा गोत्र वृद्धिशील होवे और

इसके अनन्तर हमारे दातागणों का वर्धन होवे–इस प्रकार से यह कहना चाहिए ॥४८, ४६॥

एता. सत्याशिषः सन्तु सन्त्वित्युक्तश्च तं. पुन. ।
स्वस्तिवाचनक कुर्यात् पिण्डानुद्धृत्य भक्तित. ॥५०
उच्छेषणन्तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ।
ततो ग्रहबलिं कुर्यादिति धर्म्मव्यवस्थितिः ॥५१
उच्छेषण भूमिगतमजिह्मस्यास्तिकस्य च ।
दासवर्गस्य तत्पित्र्य भागधेय प्रचक्षते ॥५२
पितृभिर्निर्मित पूर्वमेतदाप्यायन सदा ।
अपुत्राणा सपुत्राणा स्त्रीणामपि नराधिप ! ॥५३
ततस्तानग्रतः स्थित्वा परिगृह्योदपात्रकम् ।
वाजेवाज इतिजपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत् ॥ ५४
बहिः प्रदक्षिणान्कुर्यात् पदान्यष्टावनुव्रजन् ।
बन्धुवर्गेण सहितः पुत्रभार्यासमन्वितः ॥५५

ये सभी आशीर्वाद सत्य होवें–उनके द्वारा पुनः यह कहा जावे कि अवश्य सत्य हो। भक्ति भाव से पिण्डो को उद्धृत करके स्वस्तिवाचन करना चाहिये । ५०॥ जब तक उस श्राद्ध के स्थल से ब्राह्मण लोग विसर्जित होवें तब तक उन के भोजन का उच्छिष्ट उसी वहां मे स्थित रहना चाहिए। इसके अनन्तर ग्रहबलि करे—यही इतनी धर्म की व्यवस्था होती है । ५१॥ जो भूमि पर गिरा हुआ उच्छेषण है वह जो जिह्म न हो तथा आस्तिक हो ऐसे दास वर्ग के लिये ही यह पित्र्य भाग धेय कहा जाता है ॥५२॥ हे नराधिप ! पितृगण के द्वारा यह सदा आप्यायन (तृप्त होना) पहिले ही निर्मित किया गया है । यह सभी के लिये है चाहे वे पुत्र पूरित हों या सपुत्र हों या स्त्रियाँ हों ।.५३। इसके अनन्तर उनके आगे स्थित होकर उदक पात्र को परिगृहीत करके "वाजे वाज"—यह जप करता हुआ कुशा के अग्रभाग से पितृगण का

विसर्जन करना चाहिये ॥ ५४ ॥ आठ कदम तक अनुव्रजन करते हुए अर्थात् विप्रों के पीछे २ चलते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये। जिस समय में प्रदक्षिणा करे उस समय में सब बन्धु वर्ग को भी साथ में रखना चाहिये तथा अपनी भार्या और पुत्रादि को भी साथ में ले लेना चाहिए ॥५५॥

> निवृत्य प्रणिपत्याथ पर्युक्ष्याग्निं समन्त्रवत्।
> वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यकं बलिमेव च ॥५६
> ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः।
> भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ॥५७
> एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात् सर्वेसु पर्वसु।
> श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥५८
> भार्याविरहितोऽप्येतत प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान्।
> शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः ॥५९
> तृतीयमाभ्युदयिकं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते।
> उत्सवानन्दसम्भारे यज्ञोद्वाहादिमङ्गले ॥६०
> मातरः प्रथमं पूज्या. पितरस्तदनन्तरम्।
> ततो मातामहा राजन् विश्वेदेवास्तथैव च ॥६१

इस विसर्जन की क्रिया से निवृत्त होकर प्रणिपात करे और इसके उपरान्त समन्त्रवत् अग्नि का पर्युक्षण करना चाहिए। वैश्वदेव और नैत्यिक बलि देवे ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर वैश्वदेव के अन्त में भृत्य-सुत और बान्धवों के सहित अतिथियों से संयुक्त होकर सभी पितृगण के द्वारा निषेवित किये हुए पदार्थों का भोजन करना चाहिए ॥ ५७ ॥ इस श्राद्ध का वह भी समस्त पर्वों में करे जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो। यह साधारण नाम वाला श्राद्ध है जो सम्पूर्ण कामनाओं के फलों को प्रदान करने वाला है ॥ ५८ ॥ जो कोई भार्या से भी विरहित हो तथा प्रवास में स्थिति रखने वाला हो और भक्ति भाव से सम्पन्न शूद्र भी हो

जो मन्त्र रहित होता है उस बुध पुरुष को यह श्राद्ध विधिपूर्वक करना चाहिए ॥ ५६ ॥ तीसरा आभ्युदयिक श्राद्ध होता है जिसको वृद्धि श्राद्ध के नाम से कहा जाया करता है। उत्सवों के आनन्द सम्भार मे तथा यज्ञ और उद्वाह आदि के मङ्गलमय समय मे सर्व प्रथम मातृगण का अभ्यर्चन करना चाहिए और इसके पश्चात् फिर पितरों का पूजन करे। हे राजन्! इसके अनन्तर मातामहों का पू न करे और पीछे उसी भाँति विश्वे देवाओं का अर्चन करना चाहिए ॥ ६०, ६१ ॥

> प्रदक्षिणोपचारेण दध्यक्षतफलोदकैः ।
> प्राङ्मुखो निवपेत्पिण्डान् दूर्वयाच कुशैर्युतान् ॥६२
> सम्पन्नमित्यभ्यदये दद्यादर्घ्यं द्वयोर्द्वयोः ।
> युग्मा द्विजातय पूज्या वस्त्रकार्तस्वरादिभि ॥६३
> तिलार्थस्तु यवै कार्योनान्दिशब्दानुपूर्वकः ।
> माङ्गल्यानि च सर्वाणिवाचयेद्द्विजपुङ्गवैः ॥६४
> एव शूद्रोऽपि सामान्यवृद्धिश्राद्धेऽपि सवदा ।
> नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नत सदा ॥६५
> दानप्रधान शूद्र स्यादित्याह भगवान्प्रभु ।
> दानेन सर्वकामाप्तिरस्य सञ्जायते यतः ॥६६

प्रदक्षिणा मे उपचार से दधि-अक्षत-फल और जल के द्वारा पूर्व दिशा की ओर मुख वाला होकर दूर्वा और कुशा से युक्त पिण्डों का निर्वपन करे ॥ ६२ ॥ यह श्राद्ध अभ्युदय मे सम्पन्न होता है इसी लिये दो-दो को अर्घ्य देना चाहिए। वस्त्र और कार्तस्वर (सुवर्ण) आदि के द्वारा युग्म द्विजातियों का पूजन करना चाहिये ॥६३॥ नान्दि शब्दानु पूर्वक तिलार्थ को यवों से ही सम्पन्न करना चाहिए। द्विज श्रेष्ठों के द्वारा सम्पूर्ण माङ्गल्यों का वाचन करना चाहिए ॥६४॥ इसी प्रकार से सामान्य वृद्धि श्राद्ध में भी सर्वदा शूद्र को भी नमस्कार मन्त्र के द्वारा कच्चे अन्न से ही सदा करना चाहिये ॥६५॥ भगवान् प्रभु ने कहा है

शूद्र को दान देने की प्रधानता वाला अवश्य होना ही चाहिये कारण है कि इस शूद्र वर्ण वाले पुरुष को केवल दान से ही समस्त कामनाओं फलों की प्राप्ति हो जाया करती है इसी लिये शूद्र के लिये दान देना विशेष महत्व होता है ॥६६॥

१६—एकोद्दिष्टश्राद्धप्रकरण

एकोद्दिष्टमतोवक्ष्ये यदुक्तं चक्रपाणिना ।
मृते पुत्रैर्यथाकार्यमाशौचञ्च पितर्यपि ॥१
दशाहं शावमाशौचं ब्राह्मणेषु विधीयते ।
क्षत्रियेषु दश द्वे च पक्षं वैश्येषु चैवहि ॥२
शूद्रेषु मासमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
नैशम्वाऽकृतचूडस्य त्रिरात्रम्परतः स्मृतम् ॥३
जननेऽप्यवमेव स्यात् सर्ववर्णेषु सर्वदा ।
तथास्थिसञ्चयादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥४
प्रेताय पिण्डदानन्तु द्वादशाहं समाचरेत् ।
पाथेयं तस्य तत् प्रोक्तं यत प्रीतिकरं महत् ॥५
तस्मात् प्रेतपुरं प्रेतो द्वादशाहं न नीयते ।
गृहं पुत्रं कलत्रञ्च द्वादशाहं प्रपश्यति ॥ ६
तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा ।
सर्वदाहोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥ ७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—अब तक पार्वण तथा साधारण श्राद्धों आदि का वर्णन किया जिनके साथ आभ्युदयिक श्राद्ध को भी बतला दिया गया था । अब एकोदिष्ट श्राद्ध के विषय में बतलाते हैं जिसे भगवान् चक्र पाणि ने कहा है । पुत्रों के द्वारा पिता के मृत हो जाने पर किस प्रकार से आशौच करना चाहिये—यह सभी कहा जाता है ॥१॥

ब्राह्मणों में शाव (मृतक) आशौच दश दिन का माना जाता है-क्षत्रियों मे बारह दिन का मृताकाशौच होता है और वैश्यों मे एक पक्ष का आशौच हुआ करता है ॥२॥ शूद्रों में जो भी सपिण्ड होते हैं एक मास का आशौच रहा करता है। जो बालक चूड़ा संस्कार से रहित हो उसका आशौच एक निशा का या अधिक से अधिक तीन रात्रि का ही कहा गया है ॥३॥ सर्वदा जिस प्रकार से विभिन्न वर्णों में मृतकाशौच होता है उसी भाँति जनन में भी हुआ करता है। तथा अस्थियों के संचय करने से ऊर्ध्व मे अङ्ग स्पर्श का विधान है ॥४॥ प्रेत के लिये पिण्डों का दान बारह दिन समाचरण करे। यह उसका यमपुरी के मार्ग का पाथेय कहा गया है अर्थात् मार्ग भोजन है क्योंकि यह उसको महान् प्रीति का करने वाला हुआ करता है ॥५॥ इसलिये यह सुसिद्ध है कि बारह दिन तक प्रेत प्रेतों के पुर मे नहीं पहुँचाया जाता है। वह प्रेत बारह दिन तक अपने घर को,पुत्र को और भार्या को बराबर देखता रहता है।६। इसलिये दश रात्रि पर्यन्त आकाश मे अर्थात् पीपल आदि वृक्ष पर पय (जलकुम्भ) रखना चाहिये अर्थात् जलका घट भरे। यह सब प्रकार के दाह की शान्ति के लिये और मार्ग के श्रम का विनाश करने के लिये ही होता है ॥७॥

> तत एकादशाहे तु द्विजानेकाशव तु।
> क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुतो द्विजान् ॥८
> द्वितीयेऽह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्ट समाचरेत्।
> आवाहनाग्नौकरणं दैवहीन विधानतः ॥९
> एक -वित्रमेकोर्घं एकः पिण्डो विधीयते।
> उपतिष्ठतामित्येतद्देय पश्चात्तिलोदकम् ॥१०
> स्वादित विकिरेद्ब्रूयाद्विसर्गे चाभिरम्यताम्।
> शेष पूर्ववदत्रापि कार्यं वेदविदा पितुः ॥११
> सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभाग् भवेत्।

वृद्धिपूर्वेषु योग्यश्च गृहस्थश्च भवेत्ततः ॥१२
सपिण्डीकरणे श्राद्धे देवपूर्वं नियोजयेत् ।
पितॄन्नेवासयेत्तत्र पृथक् प्रेतं विनिर्दिशेत् ॥१३
गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
अर्घार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥१४

इसके पश्चात् दश रात्रि समाप्त होने पर ग्यारहवें दिन एकादश द्विजों को और क्षत्रियादि को सूतक के अन्त में मयूनों द्विजों को भोजन कराना चाहिये ॥८॥ दूसरे दिन में उसी तरह से फिर एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। आवाहनादि में विधान से दैवहीन करे ॥९॥ एक पवित्री-एक अर्घ और एक पिण्ड किया जाता है। 'उपतिष्ठताम्'-इत्यादि के द्वारा पीछे तिलोदक देना चाहिये ॥१०॥ 'स्वदितं विकिरेत्'-इसको बोले और विसर्ग में 'अभिरम्यताम्'-यह बोलना चाहिये। शेष सभी पूर्व की ही भाँति इन पिता के श्राद्ध में भी वेदों के ज्ञाता पुरुष करना चाहिये। ॥११॥ सपिण्डी करण के पश्चात् ही वह प्रेत पार्वण श्राद्ध ग्रहण करने का हकदार हुआ करता है। वृद्धि पूर्वों में योग्य और फिर गृहस्थ होता है ॥१२॥ सपिण्डी करण श्राद्ध में देव पूर्व का नियोजन करना चाहिये। वहाँ पर पितृगण का ही अधिवास करे और प्रेत को पृथक विनिर्दिष्ट करना चाहिये ॥१३॥ गन्ध-उदक और तिलों से युक्त चार पात्रों को वहाँ पर रखना चाहिये। अर्घ के लिये पितृ पात्रों में प्रेत पात्र का प्रसेचन करे ॥१४॥

तद्वत्संकल्प्य चतुरः पिण्डान् पिण्डप्रदस्तदा ।
ये समाना इति द्वाभ्यामन्त्यन्तु विभजेत्त्रिधा ॥१५
चतुर्थस्य पुनः कार्यं न कदाचिदतोभवेत् ।
ततः पितृत्वमापन्नः सर्वतस्तुष्टिमागतः ॥१६
अग्निष्वात्तादिमध्यत्वं प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम् ।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्मै तस्मान्नदीयते ॥१७

पितृष्वेव तु दातव्य तत् पिण्डोयेपु सस्थित ।
ततः प्रभृति सक्रान्तावुपरागादि पर्वसु ॥१८
त्रिपिण्डमाचरेच्छाद्धमेकोद्दिष्ट मृताहनि ।
एकोद्दिष्ट परित्यज्य मृताहे यः समाचरेत् ॥१६
सदैव पितृहा स स्यान्मातृभ्रातृविनाशक ।
मृताहे पावण कुवन्नघोऽधोयाति मानवः ॥२०
सपृक्तेष्वाकुलीभाव प्रतेपु तु यतोभवेत् ।
प्रतिसवत्सर तस्मादेकोद्दिष्ट समाचरेत् ॥२१

उस समय मे उसी भाँति सङ्कल्प करके पिण्डों के प्रदाता को चार पिण्ड करने चाहिये । जो समान होते हैं । दो से जो अन्त्य है उसका तीन भागो मे विभाजन करे ॥१५॥ जो चौथा है उसका पुनः कदाचित् इससे नहीं होवे । इसके उपरान्त ही सब ओर से तुष्टि को प्राप्त होता हुआ वह युत पितृत्व को प्राप्त हो जाया करता है ॥१६॥ अग्निष्वात्तादि जो पितगण हैं उनके मध्यत्व को वह प्राप्त कर लेता है जो कि अमृत और उत्तम है । सपिण्डी करण कर्म के करने के ऊर्ध्व मे फिर उस युत के लिये इसी कारण से कुछ नहीं दिया जाया करता है ॥१७॥ फिर तो पितृगणो मे ही देना चाहिय जिनमे पिण्ड सस्थित होता है । तभी से लेकर सूय सक्रान्ति मे और उपराग आदि पर्वों मे मृत होने वाले दिन मे तीन पिण्डों का समाचरण करे । यही एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है । एकोद्दिष्ट का परित्याग करके जो मृत दिन मे किया करता है वह सदा ही पितगण का हनन करने वाला है और माता तथा भाई का विनाश करने वाला है । मृत दिन मे पार्वण श्राद्ध करने वाला मानव अधोभाग से भी अधोभाग मे जाया करता है क्योंकि सपृक्त प्रेतो मे व्याकुली भाव हो जाया करता है । इसी कारण से प्रत्येक सम्वत्सर मे एकोद्दिष्ट श्राद्ध का अवश्य ही समाचरण करना चाहिये ॥ १८ ॥ १६ ॥ २० ॥ २१ ॥

यावदब्दन्तु योदद्यादुदकुम्भं विमत्सरः ।
प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥२२
आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदस्तदा ।
तेनाग्नौकरणंकुर्यात्पिण्डांस्तेनैवनिर्वपेत् ॥२३
त्रिभिः सपिण्डिकरणे अतीतत्रितये पिता ।
यदा प्राप्स्यतिकालेनतदामुच्येतबन्धनात् ॥२४
मुक्तोऽपिलेपभागित्वप्राप्नोतिकुशमार्जनात् ।
लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याःपिण्डभागिनः ॥
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥॥२५

जब तक मृत को एक वर्ष पूर्ण हो उस वर्ष में बराबर जो कोई विगत मत्सरता वाला होकर श्राद्ध के सहित जल का कुम्भ दिया करता है और प्रेत के लिये उसे अन्न से समायुक्त करके देता है वह एक अश्वमेध यज्ञ के करने के पुण्य-फल का लाभ करता है ॥२२॥ जिस समय में विधान का ज्ञान रखने वाला श्राद्ध दाता आम श्राद्ध करे अर्थात् कच्चा ही अन्नादि बिना पाक किये हुए देवे तो उससे अग्निकरण अवश्य ही करना चाहिए और उसी से पिण्डों का भी निर्वपन भी करे ॥२३॥ तीनों के द्वारा अतीत त्रितय सपिण्डी करण में जब पिता प्राप्त होगा तो समय से वह उस समय में बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥२४॥ मुक्त हुआ भी कुश के मार्जन लेप भागित्व को प्राप्त किया करता है। चतुर्थादि लेप भागी है और पित्रादि सब पिण्ड भागी हुआ करते हैं। तात्पर्य यह है कि चौथी पीढ़ी से ऊपर वाले केवल लेप भागी ही हुआ करते हैं और चार पुश्त तक पिण्डों के भागी होते हैं। उनका पिण्ड देने वाला सातवाँ होता है अतएव साप्त पौरुष सपिण्ड्य हुआ करता है ॥२५॥

१७—श्राद्धयोग्यतीर्थानांवर्णनम् ।

यस्मिन्कालेचतच्छ्राद्धमनन्तफलदं भवेत् ।
कस्मिन् वासरभागेतुश्राद्धकृच्छ्राद्धमाचरेत् ॥१
तीर्थेषु केषु च कृतं श्राद्धं बहुफलं भवेत् ।
अपराह्णे तु सम्प्राप्ते अभिजिद्रोहिणोदये ॥२
यत्किञ्चिद्दीयते तत्र तदक्षयमुदाहृतम् ।
तीर्थानि कानि शस्तानि पितृणां वल्लभानिच ॥३
नामतस्तानि वक्ष्यामि सक्षेपेण द्विजोत्तमाः ! ।
पितृतीर्थं गया नाम सर्वतीर्थवरं शुभम् ॥४
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः ।
तत्रैषा पितृभिर्गीता गाथा भागमभीप्सुभिः ॥५
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयाव्रजेत् ।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥६
तथावाराणसी पुण्या पितृणां वल्लभासदा ।
यत्राविमुक्तसान्निध्यंभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब आप हम लोगों को यह बताने की कृपा कीजिएगा कि किस समय में वह किया हुआ श्राद्ध अनन्त फल का देने वाला होता है । दिन के किस भाग में श्राद्ध का करने वाला उस श्राद्ध का समाचरण करे । वे कौन से तीर्थ हैं जिनमें किया हुआ श्राद्ध बहुत अधिक फल का देने वाला हुआ करता है ? "महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—दिन में जिस समय में अपराह्न सम्प्राप्त हो जावे उसी समय में अभिजिद्रोहिणोदय में जो कुछ भी दिया जाया है वह अक्षय कहा गया है । कौन २ से तीर्थ परम प्रशस्त हैं और पितरों के अधिक प्रिय हैं उनका भी सबका नाम ले लेकर हम बतलाते हैं । हे द्विजोत्तमो ! यह सब संक्षेप में ही हम बतलायेंगे । गया नाम वाला पितृ तीर्थ है जो कि समस्त तीर्थों में परम श्रेष्ठ एवं अति शुभ तीर्थ है ॥१, २, ३, ४॥ यहाँ

गया वह उत्तम तीर्थ है जहाँ पर देवों के भी देवेश्वर पितामह स्वयमेव विराजमान रहा करते हैं। यहाँ पर पितृगणों के द्वारा यह एक गीता कही गयी है। इस गाथा के भाग को अभीप्सा रखने के लिये यह है ॥४, ५॥ यह यही है कि सर्वदा बहुत से पुत्रों के प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिये। उन बहुत सारे पुत्रों में यदि कोई एक भी कभी गया तीर्थ में चला जावे अथवा अश्वमेध यज्ञ के द्वारा कभी यजन करे या नील वृष का उत्सर्जन करे। तात्पर्य यही है कि जब बहुत पुत्रों की कामना के अनुसार वे उत्पन्न होंगे तो उन में कभी कोई एक ऐसा भी समुत्पन्न हो सकता है जो गया में दान करने वाला होवे। इसी भाँति वाराणसी परम पुण्यमयी पुरी है जो कि सदा ही पितृगण की अत्यन्त वल्लभा रही है जहाँ पर अविमुक्त सान्निध्य प्राप्त होता है जो भुक्ति और मुक्ति दोनों ही के फल को प्रदान करने वाला है ॥६, ७॥

पितॄणां वल्लभं तद्वत् पुण्यञ्च विमलेश्वरम् ।
पितृतीर्थं प्रयागन्तु सर्वकामफलप्रदम् ॥८
वटेश्वरस्तु भगवान् माधवेन समन्वितः ।
योगनिद्राशयस्तद्वत् सदावसति केशवः ॥६
दशाश्वमेधिकं पुण्यं गङ्गाद्वारं तथैव च ।
नन्दाथ ललिता तद्वत्तीर्थं मायापुरी शुभा ॥१०
तथा मित्रपदं नाम ततः केदारमुत्तमम् ।
गङ्गासागरमित्याहुः सर्वतीर्थमयं शुभम् ॥११
तीर्थं ब्रह्मसरस्तद्वच्छतद्रुसलिले ह्नदे ।
तीर्थन्तु नैमिषं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥१२
गङ्गोद्भेदस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः ।
तथा यज्ञवराहस्तु देवदेवश्च शूलभृत् ॥१३
यत्र तत्काञ्चनं द्वारमष्टादशभुजोहरः ।
नेमिस्तु हरिचक्रस्य शीर्णा यत्राभवत्पुरा ॥१४

उसी भाँति पितृगणों का अत्यन्त प्रिय और परम पुण्यमय विमलेश्वर है तथा पितृतीर्थ प्रयाग तो समस्त कामनाओं के फलों का प्रदान करने वाला है ।।८।। वटेश्वर भगवान् माधव से समन्वित है उसी भाँति से योग निद्रा में शयन करने वाले केशव वहाँ पर सदा ही निवास किया करते हैं ।।६ । दशाश्वमेधिक परम पुण्यशील है और उसी तरह से गङ्गा द्वार है । उसी रीति से नन्दा और ललिता एवं अतीव शुभ माया पुरी तीर्थ है ।।१०।। तथा मित्रपद नाम वाला और उससे आगे अत्युत्तम केदार तीर्थ है। गङ्गा सागर जिसको कहा करते हैं वह तो सभी तीर्थों से परिपूर्ण शुभ है ।।११।। ब्रह्मसर एक महान् तीर्थ है और शतद्रु सलिल वाले ह्रद में नैमिष नाम वाला तीर्थ है जो सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला और सम्पूर्ण तीर्थों के फल को प्रदान करने वाला है ।।१२।। गोमती में गङ्गोद्भेद है जहाँ पर सनातन उद्भूत हुए हैं। तथा यज्ञ वराह और देवों के भी देव शूल भृत प्रभु हैं।।१३।। जहाँ पर वह काञ्चन द्वार है और अठारह भुजाओं वाले भगवान् हर हैं। जहाँ पर प्राचीन काल में भगवान् हरि के सुदर्शन चक्र की नेमि शीर्ण हो गयी थी ।।१४।।

तदेतन्नैमिषारण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ।
देवदेवस्य तत्रापि वाराहस्य तु दर्शनम् ।।१५
॥ प्रयाति स पूतात्मा नारायणपदं व्रजेत् ।
कृतशौचं महापुण्यं सर्वपापनिषूदनम् ।।१६
यत्रास्ते नारसिंहस्तु स्वयमेव जनार्दन ।
तीर्थमिक्षुमती नाम पितॄणां वल्लभं सदा ।।१७
सङ्गमे यत्र तिष्ठन्ति गङ्गाया पितरः सदा ।
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं सर्वतीर्थसमन्वितम् ।।१८
तथा च सरयू पुण्या सर्वदेवनमस्कृता ।
इरावती नदी तद्वत् पितृतीर्थाधिवासिनी ।।१९
यमुना देविका काली चन्द्रभागा दृषद्वती ।

नदी वेणुमती पुण्या परा वेत्रवती तथा ॥२०
पितॄणा वल्लभा ह्येताः श्राद्धे कोटिगुणा मताः ।
जम्बूमार्गं महापुण्यं यत्र मार्गोहिलक्ष्यते ॥२१

यह ही यह नैमिषारण्य है जिसको सभी तीर्थों ने समागत होकर निषेवित किया है। वहा पर भी देवों के भी देव वराह भगवान् के दर्शन होते हैं ॥ १२॥ जो भी कोई वहा पर आया करता है वह परम पूत आत्मा वाला होकर फिर भगवान् नारायण के ही पद को चला जाया करता है। यह शौच कर देने वाला, महान् पुण्य से युक्त और समस्त प्रकार के पापो का हनन कर देने वाला तीर्थ है ॥१६॥ जहा पर स्वयं साक्षाद् नारसिंह जनार्दन भगवान् विराजमान रहा करते हैं। एक भिक्षुमती नाम वाला तीर्थ है जो सदा ही पितृगणों का परम वल्लभ है ॥१७॥ जहाँ पर भागीरथी गङ्गा के सङ्गम मे पितर गण सदा ही समवस्थित रहा करते हैं। कुरुक्षेत्र महान् पुण्यशाली तीर्थ है जो सम्पूर्ण तीर्थों से सयुत रहा करता है ॥ १८ ॥ उसी प्रकार से सरयू नाम वाली सरिता अतीव पुण्यशालिनी है जिसको समस्त पितृगण नमस्कार किया करते हैं। उसी भाँति इरावती नाम वाली नदी है जो पितृ तीर्थों की अधिवासिनी है ॥ १९ ॥ यमुना–देविका–काली–चन्द्रभागा–दृषद्वती–वेणुमती नदी तथा परम पुण्यमयी वेत्रवती नदी ये सभी सरितायें पितृगणों की अतीव प्यारी हैं और श्राद्ध मे करोड़ो गुण वाली मानी गयी हैं। जम्बूमार्ग महान् पुण्यशाली है जहाँ पर मार्ग दिखलाई दिया करता है ॥ २०, २१ ॥

अद्यापि पितृतीर्थं तत्सर्वकामफलप्रदम् ।
नीलकुण्डमितिख्यात पितृतीर्थं द्विजोत्तमा ॥२२
तथा रुद्रसर. पुण्य सरामानसमेव च ।
मन्दाकिनी तथाच्छोदा विपाशाथ सरस्वती ॥२३
पूर्वमित्रपदन्तद्वद्वैद्यनाथ महाफलम् ।
क्षिप्रा नदी मह कालस्तथाकालञ्जर शुभम् ॥२४

वंशोद्भेदं हरोद्भेदं गङ्गोद्भेदं महाफलम् ।
भद्रेश्वरं विष्णुपदं नर्मदाद्वारमेव च ॥२५
गयापिण्डप्रदानेन समान्याहुर्महर्षयः ।
एतानि पितृतीर्थानि सर्वपापहराणि च ॥२६
स्मरणादपि लोकानां किमु श्राद्धकृतानृणाम् ।
ओङ्कारपितृतीर्थञ्चकावेरीकपिलोदकम् ॥२७
सम्भेदश्चण्डवेगायास्तथैवामरकण्टकम् ।
कुरुक्षेत्राच्छतगुणं तस्मिन् स्नानादिकं भवेत् ॥२८

हे उत्तम द्विजगणो ! आज भी वह पितृतीर्थ है जो सभी मनोरथों के फलों को प्रदान करने वाला है। वह पितृतीर्थ नीलकुण्ड इस शुभ नाम से विख्यात है ॥ २२ ॥ उसी तरह से रुद्रसर पुण्यमय है और मानसरोवर भी महान् पुण्ययुक्त है। मन्दाकिनी–अच्छोदा–विपाशा–सरस्वती *ये सभी सरितायें महान् पुण्यशालिनी हैं ॥ २३ ॥ उसी भाँति* पूर्व में मित्र पद है और वैद्यनाथ तीर्थ महान् फल देने वाला है। भद्रेश्वर–विष्णुपद—नर्मदा द्वार—क्षिप्रा नदी महाकाल तथा परम शुभ कालञ्जर वंशोद्भेद—हरोद्भेद और गङ्गोद्भेद महान् फल प्रदान करने वाले सभी पुण्य तीर्थ एवं स्थल हैं ॥२४, २५॥ इन सभी तीर्थों को महर्षिगण गयातीर्थ में पिण्ड प्रदान करने के समान ही कहा करते हैं। ये सभी पितृतीर्थ हैं और समस्त प्रकार के पापों का संहरण करने वाले हैं ॥२६॥ इन उपर्युक्त सभी तीर्थों की ऐसी महिमा है कि इनके केवल स्मरण मात्र से ही सब पाप नष्ट हो जाया करते हैं और जो लोग इनमें जाकर श्राद्ध किया करते हैं उनके पुण्य-फल के विषय में तो कहा ही क्या जाये। ओङ्कार पितृतीर्थ है और कावेरी—कपिलोदक—चण्डवेगा का सम्भेद तथा अमर कण्टक ऐसा महान् तीर्थ है उसमें स्नानादिक का फल कुरुक्षेत्र से भी सौ गुना अधिक हुआ करता है ॥२७, २८॥

शुक्रतीर्थञ्च विख्यातं तीर्थं सोमेश्वरं परम् ।

सर्वव्याधिहरं पुण्यं शतकोटिफलाधिकम् ।।२६
श्राद्धे दाने तथा होमे स्वाध्याये जलसन्निधौ ।
कामाराहूण नाम तथा चर्मण्वती नदी ।।३०
गोमती वरुणा तद्वत्तीर्थमौशनसम्परम् ।
भैरवं भृगुतुङ्गञ्च गौरीतीर्थमनुत्तमम् ।।३१
तीर्थं वैनायकं नाम भद्रेश्वरमतः परम् ।
तथा पापहरं नाम पुण्याथ तपती नदी ।।३२
मूलतापीपयोष्णी च पयोष्णीसङ्गमस्तथा ।
महाबोधि पाटला च नागतीर्थमवन्तिका ।।३३
तथावेणा नदी पुण्या महाशाल तथैव च ।
महारुद्रं महालिङ्गं दशार्णा च नदी शुभा ।।३४
शतरुद्रा शताह्वा च तथा विश्वपदं परम् ।
अङ्गारवाहिका तद्वन्नदौ तौ शोणघर्घरौ ।।३५

शुक तीर्थं परम विख्यात है तथा सोमेश्वर भी परमोत्तम तीर्थ है जो सभी व्याधियों के हरण करने वाला तथा महान् पुण्यशाली और शत-कोटि फलों से भी अधिक फल प्रदान करने वाला है ।।२६।। श्राद्ध करने में—दान देने में—होम कर्म करने में—स्वाध्याय करने में तथा केवल जल की सन्निधि में ही निवास करने में अतीव अधिक पुण्य फल होता है। एक कामाराहूण नाम वाला तीर्थ है तथा चर्मण्वती नदी है उसी भाँति गोमती एवं वरुणा नदी महान् तीर्थ हैं । उसी भाँति औशनस परम तीर्थ है । भैरव भृगुतुङ्ग और गौरी तीर्थ सर्वोत्तम तीर्थ है ।।३०, ३१।। एक वैनायक नाम वाला तीर्थ है और इसके भी परे भद्रेश्वर तीर्थ है तथा पापहर तीर्थ है। एवं परम पुण्यमयी तपती नाम वाली नदी है ।।३२।। मूलतापी—पयोष्णी तथा पयोष्णी सङ्गम—महाबोधि—पाटला—नागतीर्थ—अवन्तिका तथा पुण्य मयी वेणा नदी—महाशाल—महारुद्र—महालिङ्ग—तथा दशार्णा परम शुभ सरिता है। शतरुद्रा—शताह्न—परम विश्वपद—अङ्गार

वाह्निका और इसी प्रकार से शोण और घर्घर ये दो परम विशाल पुण्य शाली नद हैं। ये सभी अत्युत्तम तीर्थ स्थल हैं ।।३३, ३४, ३५।

कालिका च नदी पुण्या वितस्ता च नदी तथा।
एतानि पितृतार्थानि शस्यन्ते स्नानदानयोः ।।३६
श्राद्धमेतेषु यद्दत्तन्तदनन्तफल स्मृताम्।
द्रोणी वाटनदी धारासरित् क्षीरनदी तथा ।।३७
गोकर्णं गजकर्णञ्च तथा च पुरुषोत्तम ।
द्वारका कृष्णतीर्थञ्च तथार्बुदसरस्वती ।।३८
नदी मणिमती नाम तथा च गिरिकर्णिका।
धूतपाप तथा तीर्थ समुद्रो दक्षिणस्तथा ।।३९
एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते।
तीर्थं मेघकर नाम स्वयमेव जनार्दन ।।४०
यत्र शाङ्‌र्गधरो विष्णुर्मेखलायामवस्थित ।
तथा मन्दोदरी तीर्थं तीर्थं चम्पा नदी शुभा ।।४१
तथा सामलनाथश्च महाशालनदी तथा।
चक्रवाक चर्म्मकोट तथा जन्मेश्वर महत् ।।४२

कालिका नदी परम पुण्य शालिनी है तथा वितस्ता नाम धारिणी नदी है। ये सब जो यहा तक बताये गये हैं पितृ तीर्थ कहलाते हैं और ये सभी स्नान तथा दान करने में अधिक प्रशस्त माने गये हैं ।।३६।। इन उक्त तीर्थों मे जो भी कोई श्राद्ध दिया जाता है वह अनन्त फलों का प्रदान करने वाला हुआ करता है ऐसा ही बताया गया है। इनके भी अतिरिक्त और भी महान् तीर्थ हैं—द्रोणी—वाट नदी—धारा सरित्—क्षीर नदी—गोकर्ण—गजकर्ण—पुरुषोत्तम—द्वारका—कृष्णा तीर्थ—अर्बुद सरस्वती—मणिमती नदी—गिरिकर्णिका—धूतपाप नाम वाला तीर्थ तथा दक्षिण समुद्र ये सभी महा महिमा मय तीर्थ हैं, इनमे जो कि पितृतीर्थ हैं जो भी श्राद्ध दिया जाता है उसकी अनन्त फल शालिता हो जाया करती है।

एक मेघ कर नामक तीर्थ है जहाँ पर साक्षात् भगवान् जनार्दन स्वय ही विराजमान रहा करते हैं ॥३७, ३८, ३६, ४०॥ जिस पुण्य मय क्षेत्र मे शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले भगवान् विष्णु उसकी मेखला में समवस्थित रहा करते हैं ; उसी प्रकार से एक मन्दोदरी नाम वाला तीर्थ है और दूसरा चम्पा नाम वाली परम शुभ नदी है जो एक तीर्थ स्थल है ॥४१॥ इसी तरह से शामल नाथ और महा शाल नदी है। चक्रवाक, चर्म्म कोट और महान् तीर्थ जन्मेश्वर नाम वाला है ॥४२॥

अर्जुन त्रिपुर चैव सिद्धेश्वरमतःपरम् ।
श्रीशैल शाङ्कर तीर्थ नारसिंहमतः परम् ॥४३
महेन्द्रञ्च तथा पुण्यमथ श्रीरङ्गसंज्ञितम् ।
एतेष्वपि सदा श्राद्धमनन्तफलद स्मृतम् ॥४४
दशनादपि चैतानि सद्यः पापहराणि वै ।
तुङ्गभद्रा नदी पुण्या तथा भीमरथी सरित् ॥४५
भीमेश्वरं कृष्णवेणा कावेरी कुड्मलानदी ।
नदी गोदावरी नाम त्रिसन्ध्यातीर्थमुत्तमम् ॥४६
तीर्थ त्रैयम्बकं नाम सर्वतीर्थ नमस्कृतम् ।
यत्रास्ते भगवानीशः स्वयमेव त्रिलोचनः ॥ ४७
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु कोटिकोटिगुण भवेत् ।
स्मरणादपि पापानि नश्यन्ति शतधा द्विजः ॥४८
श्रीपर्णी ताम्रपर्णी च जयातीर्थमनुत्तमम् ।
तथा मत्स्यनदी पुण्या शिवधारं तथैव च ॥४६

अर्जुन–त्रिपुर–इससे भी परे सिद्धेश्वर–श्रीशैलशाङ्कर तीर्थ और इससे पर नारसिंह नामक तीर्थ है ॥४३॥ उसी भांति पुण्य शाली महेन्द्र और श्रीरङ्ग नाम वाले तीर्थ हैं। इन तीर्थों मे भी दिया हुआ श्राद्ध अनन्त फलों के प्रदान करने वाला हुआ करता है। श्राद्ध स्नान आदि के द्वारा होने वाले पुण्य के विषय मे तो कहा ही क्या जावे ये तो ऐसे महान्

प्रभाव शाली तीर्थ हैं कि इनके केवल दर्शन मात्र से ही तुरन्त सब पापों का हरण हो जाया करता है। तुङ्गभद्रा पुण्यमयी नदी है तथा भीमरथी नाम वाली सरित् है—भीमेश्वर—कृष्ण वेणा—कावेरी—कुड्मला नदी—गोदावरी सरिता और उत्तम त्रिसन्ध्या नाम वाला तीर्थ है। त्र्यम्बक नामधारी तीर्थ सभी तीर्थों के द्वारा वन्द्यमान होता है जहां पर भगवान् ईश स्वयं ही साक्षात् त्रिलोचन प्रभु विराजमान रहा करते हैं। इन उपरिकथित समस्त तीर्थों में किया या दिया हुआ श्राद्ध करोड़ो-करोडो गुणों वाला हुआ करता है। हे द्विज गण! इन तीर्थों की तो ऐसी विलक्षण महिमा है कि इनके केवल स्मरण मात्र से ही पाप शतधा हरण हो जाया करते हैं। श्रीपर्णी—ताम्रपर्णी—उत्तमजगा तीर्थ—पुण्यमयी मत्स्य नदी और शिवधार ये भी महान् तीर्थ हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

भद्रतीर्थञ्च विख्यातं पम्पातीर्थञ्च शाश्वतम् ।
पुण्यं रामेश्वरं तद्वदेलापुरमलं पुरम् ॥५०
अङ्गभूतञ्च विख्यातमामन्दकमलं बुधम् ।
आम्रातकेश्वरं तद्वदेकाम्रकमतः परम् ॥५१
गोवर्धनं हरिश्चन्द्रं कृपुचन्द्रं पृथूदरम् ।
सहस्राक्षं हिरण्याक्षं तथा च कदली नदी ॥५२
रामाधिवासस्तत्रापि तथा सौमित्रिसङ्गमः ।
इन्द्रकीलं महानादन्तथा च प्रियमेलकम् ॥५३
एतान्यपि सदा श्राद्धे प्रशस्तान्यधिकानि तु ।
एतेषु सर्वदेवानां सान्निध्यं दृश्यते यतः ॥५४
दानमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशताधिकम् ।
बाहुदा च नदी पुण्या तथा सिद्धवनं शुभम् ॥५५
तीर्थं पाशुपतं नाम नदी पार्वतिका शुभा ।
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशतोत्तरम् ॥५६

भद्र तीर्थ परम विख्यात तीर्थ है तथा शाश्वत पम्पा तीर्थ है—परम पुन्यमय रामेश्वर है और उसी भाँति एलापुर नाम वाला परमोत्तम पुर है—अङ्गभूत विख्यात तीर्थ है—आनन्द कमल—बुध—आम्रात-केश्वर—इसके आगे एकाम्रक तीर्थ है ।।५०, ५१।। गोवर्द्धन—हरिश्चन्द्र—कृपुचन्द्र—पृथूदक—महस्राक्ष—हिरन्याक्ष—कदली नदी—वहीं पर रामाधिवास है तथा सौमित्रि सङ्गम नाम वाला तीर्थ है। इन्द्रकील—महानाद—प्रिय मेलक नाम वाले तीर्थ हैं ।।५२।। ये सभी तीर्थ सदा श्राद्ध देने के लिये परम अधिक प्रशस्त माने गये हैं। एक बाहुदा नाम वाली अति पुन्य मयी नदी है तथा परम शुभ सिद्ध वन नाम वाला तीर्थ है ।।५३, ५४।। एक पाशुपत नाम वाला तीर्थ है तथा परम शुभ पार्वतिका नाम धारिणी नदी है—इन तीर्थों में दिया हुआ श्राद्ध कोटिशत से भी अधिक पुन्य-फल के प्रदान करने वाला हुआ करता है ।।५५, ५६।।

तथैव पितृतीर्थन्तु यत्र गोदावरी नदी ।
युतालिङ्गसहस्रेण सर्वान्तरजलावहा ।।५७
जामदग्न्यस्य तत्तीर्थं क्रमादायातमुत्तमम् ।
प्रतीकस्य भयाद्भिन्नं यत्र गोदावरी नदी ।।५८
तत्तीर्थं हव्यकव्यानामप्सरोयुगसञ्ज्ञितम् ।
श्राद्धाग्निकार्यदानेषु तथा कोटिशताधिकम् ।।५९
तथा सहस्रलिङ्गञ्च राघवेश्वरमुत्तमम् ।
सेन्द्रफेना नदी पुण्या यत्रेन्द्रः पतितः पुरा ।।६०
निहत्य नमुचिं शक्रस्तपसा स्वर्गमाप्तवान् ।
तत्र दत्तं नरैः श्राद्धमनन्तफलदं भवेत् ।।६१
तीर्थन्तु पुष्कर नाम शालग्राम तथैव च ।
सामपानञ्च विख्यातं यत्र वैश्वानरालयम् ।।६२
तीर्थं सारस्वतं नाम स्वामितीर्थं तथैव च ।
मलन्दरानदी पुण्या कौशिकीचन्द्रिका तथा ।६३

उसी भाँति वह पितृ तीर्थ है जहाँ पर गोदावरी नदी है जो सहस्र लिङ्गों से संयुत सर्वान्तर जलावहा है ।।५७।। वह महर्षि जामदग्न्य का तीर्थ है जो अत्युत्तम है और क्रम से समायात हुआ है । प्रतीक के भय से भिन्न है जहा पर गोदावरी नदी है ।।५८।। वह तीर्थ हव्य और कव्यो का है जो अप्सरो युग की संज्ञा वाला है । यह श्राद्ध—अग्नि कार्य और दानो के देने मे सैकडो करोड अधिक फल देने वाला है ।।५९।। उसी भाँति सहस्र लिङ्ग—उत्तम राघवेश्वर—पुन्य शालिनी सेन्द्रफेना नदी है जिस स्थल पर प्राचीन काल मे इन्द्र पतित हो गया था । इन्द्र ने नमुचि का निहनन करके फिर घोर तपश्चर्या की थी जिसके प्रभाव से उसने स्वर्ग को प्राप्त किया था । वहाँ पर मानवो के द्वारा दिया हुआ श्राद्ध अनन्त फल का प्रदान करने वाला हुआ करता है ।।६०, ६१।। पुष्कर नाम वाला तीर्थ है और उसी तरह से शालग्राम तीर्थ है । सोमपान तीर्थ भी परम विख्यात तीर्थ है जहा पर वन्वानर का आलय है । एक सारस्वत नाम वाला तीर्थ है तथा वही पर कौशिकी और चन्द्रिका नामो वाली भी दो नदियाँ हैं जो कि महान् तीर्थ हैं ।।६२, ६३।।

वेदर्भाथ वैरा च पयोष्णी प्राङ्मखापरा ।
कावेरी चोत्तराप ष्या तथाजालन्धरोगिरि ।।६४
एतेषु श्राद्धतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नते ।
लोहदण्ड तथा तीर्थं चित्रकूटस्तथैव च ।।६५
विन्ध्ययोगश्च गङ्गायास्तथा नदीतट शुभम् ।
कुब्जाम्रन्तु तथा तीर्थं उवशी पुलिनतथा ।।६६
ससारमोचन तीर्थं तथैव ऋणमोचनम् ।
एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ।।६७
अट्टहास तथा तीर्थं गौतमेश्वपमेव च ।
तथा वशिष्ठ तीर्थन्तु हारित तु तत परम् ।।६८
ब्रह्मावर्त कुशावत हयतीर्थं तथैव च ।
पिण्डारकञ्च विख्यात शङ्खोद्धार तथैव च ।।६९

घण्टेश्वरं बिल्वकञ्च नीलपर्वतमेव च ।
तथा च धरणीतीर्थं रामतीर्थं तथैव च ॥७०

इनके अतिरिक्त वैदर्भी–वैरा–पयोष्णी–प्राङ मखापद–कावेरी–उत्तरा कृष्णा नदियाँ भी परम पुण्यमय तीर्थ स्वरूपा हैं तथा जालन्धर नामक वहीं पर एक गिरि है ॥६४॥ ये सभी श्राद्ध देने वाले तीर्थ हैं जिनमें दिया हुआ श्राद्ध अनन्तता के फल वाला हो जाया करता है । लोहदण्ड नाम वाला तीर्थ है तथा चित्रकूट तीर्थ है ॥६५॥ विन्ध्य योग और गङ्गा का शुभ नदी तट है । एक कुब्जाम्र तीर्थ है और उर्वशी पुलिन तीर्थ है । संसार मोचन और ऋण मोचन नाम वाले भी तीर्थ हैं—इन पितृ तीर्थों में दिया हुआ श्राद्ध श्राद्ध के करने वाले मानव को अनन्त फलों का भोग कराया करता है ॥६६, ६७॥ अट्टहास तीर्थ है गौतमेश्वर तीर्थ है । एक वसिष्ठ नामक तीर्थ है और इसके आगे हारित नाम वाला तीर्थ है । ब्रह्मावर्त्त—कुशावर्त्त—हयतीर्थ—विख्यात पिण्डारक तीर्थ तथा शङ्खोद्धार—घण्टेश्वर—बिल्वक—नील पर्वत—धरणी तीर्थ तथा रामतीर्थ ये सभी पितृ तीर्थ हैं जिनमें श्राद्ध दाता श्राद्ध देकर परमपद की प्राप्ति किया करते हैं ॥६८, ६९, ७०॥

• अश्वतीर्थञ्च विख्यातमनन्तं श्राद्धदानयोः ।
तीर्थं वेदशिरो नाम तथैवौघवती नदी ॥७१
तीर्थं वसुप्रदं नाम च्छागलाण्डं तथैव च ।
एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमं पदम् ॥७२
तथा च बदरीतीर्थं गणतीर्थं तथैव च ।
जयन्तं विजयञ्चैव शुक्रतीर्थं तथैव च ॥७३
श्रीपतेश्च तथा तीर्थं तीर्थं रैवतकं तथा ।
तथैव शारदातीर्थं भद्रकालेश्वरं तथा ॥७४
वैकुण्ठतीर्थञ्च परं भीमेश्वरमथापि वा ।
एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥७५

तीर्थं मातृगृह नाम करवीरपुर तथा ।
कुशेशरञ्च विख्यात गौरीशिखरमेव च ॥७६
नकुलेशस्य तीर्थञ्च कदमाल तथैव च ।
दिण्डिपुण्यकरं तद्वत् पुण्डरीकपुर तथा ॥७७

श्राद्ध और दान—इन दोनों ही के लिये अश्व तीर्थ परम विख्यात है। एक वेदशिर नाम वाला तीर्थ है और ओघवती नदी है। वसुप्रद तीर्थ है और उसी तरह से एक छागलाण्ड नामक तीर्थ है। इन तीर्थों में श्राद्ध दाता लोग परमोत्तम पद को प्राप्त किया करते हैं ॥७१, ७२॥ बदरी तीर्थ—गण तीर्थ—जयन्त—विजय—शुक्र तीर्थ—श्रीपति का तीर्थ—रैवनक तीर्थ—शारदा तीर्थ—भद्रकालेश्वर—वैकुण्ठ तीर्थ—भीमेश्वर तीर्थ ये सभी तीर्थ पितृ तीर्थ हैं और इन तीर्थों में पहुँच कर श्राद्धों के देने वाले मानव परम गति की प्राप्ति का लाभ लिया करते हैं ॥७३, ७४॥ मातृगृह नाम वाला तीर्थ—करवीरपुर—कुशेश्वर—विख्यात गौरी शिखर नाम का तीर्थ—नकुलेश का तीर्थ—कर्दमाल—दिण्डि पुण्यकर और पुण्डरीक पुरनाम वाला तीर्थ है ॥७५, ७६, ७७॥

सप्त गोदावरी तीर्थं सर्वतीर्थेश्वरम् ।
तत्र श्राद्ध प्रदातव्यमनन्तफलमीप्सुभिः ॥७८
एपतूद्देशतः प्रोक्तस्तीर्थानां सग्रहोमया ।
वागीशोऽपिनशक्नोतिविस्तरान् किमुमानुष. ॥७९
सत्य तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
वर्णाश्रमाणा गेहेऽपि तीर्थन्तु समुदाहृतम् ॥८०
तएत्तीर्थेषु यच्छ्राद्ध तत्कोटिगुणमिष्यते ।
यस्मात्तस्मात् प्रयत्नेन तीर्थे श्राद्धं समाचरेत् ॥८१
प्रात. कालोमुहूर्तास्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्स्यादपराह्णस्ततः परम् ॥८२
सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्रनकारयेत् ।

राक्षसी नामसा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु ॥८३
अह्नो मुहूर्तो विख्याता दश पञ्च च सर्वदा ।
तत्राष्टमो मुहूर्तोय सकाल कुतपः स्मृत ॥८४

सप्त गोदावरी तीर्थ समस्त तीर्थों का ईश्वर तीर्थ है। जो श्राद्ध के देने के अनन्त फल प्राप्त करने के इच्छुक मनुष्य हैं उनको वहा पर श्राद्ध अवश्य ही देना चाहिये ॥७८॥ यह श्राद्ध क उद्देश्य को लेकर हमने तीर्थों का एक संग्रह आप लोगो के समक्ष म कह दिया है। इन समस्त तीर्थों का विस्तार तो बहुत ही विशाल है जिसको विचारे मानव की तो शक्ति ही क्या है बृहस्पति भी नहीं कह सकते हैं जो वाणी के ईश कहे जाते हैं ॥७९॥ वस्तुत. विचार किया जावे तो सत्य का पूर्ण परिपालन करना भी तीर्थ है–प्राणिमात्र पर दया करना भी एक प्रकार का महान् तीर्थ है तथा अपनी सब इन्द्रियों पर पूर्ण निग्रह रखना भी तीर्थ है। वर्णों और आश्रमो का गेह मे भी इस प्रकार से तीर्थ विद्यमान हैं जो समुदाहृत किये गये हैं। इन तीर्थों में जो भी श्राद्ध दिया जाता है उसका करोड गुना फल हुआ करता है। अतएव जिस-तिस प्रयत्न से तीर्थ में अवश्य ही मनुष्य को श्राद्ध देना चाहिए ॥७६, ८०॥ प्रात काल में तीन मुहूर्त तक उतना ही सङ्गव होता है। फिर मध्याह्न मे तीन मुहूर्तों वाला होता है उसके पश्चात् अपराह्न होता है। सायाह्न मे तीन मुहूर्त वाला है उसमे श्राद्ध कभी नही करना चाहिये। यह राक्षसी नाम वाली वेला हुआ करती है जो सभी कर्मों मे गर्हित मानी गयी है। सर्वदा दिन के मुहूर्त की दश और पाँच घटियाँ विख्यात हैं। उनमें जो अष्टम मुहूर्त होता है उसी काल को कुतुप काल कहा गया है ॥८१, ८२, ८३, ८४॥

मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दोभवति भास्करः ।
तस्मादनन्तफलदस्तदारम्भो भविष्यति ॥८५
मध्याह्नखड्ग पात्रञ्च तथा नेपालकम्बल ।

रूप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टम. स्मृतः ॥८६
पाप कुत्सितमित्याहुस्तस्य सन्तापकारिणः ।
अष्टावेतेयतस्तस्मात् कुतपाइति विश्रुता ॥८७
ऊर्ध्वं मुहूर्तात् कुतपाद्यन्मुहूर्तंचतुष्टयम् ।
मुहूर्तपञ्चकञ्चैतत्स्वधाभवन मिष्यते ॥८८
विष्णोर्देहसमुद्भूता कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा ।
श्राद्धस्य रक्षणायालमेतत् प्राहुर्दिवौकस. ॥८९
तिलोदकञ्जालिर्देय जलस्थैस्तीर्थवासिभिः ।
सदर्भहस्तेनैकेन श्राद्धमेव विशिष्यते ॥९०
श्राद्धसाधनकाले तु पाणिनैकेन दीयते ।
तर्पणन्तू भयेनैव विधिरेप सदा स्मृत. ॥९१

अत. मध्याह्न काल मे सर्वदा जिस समय मे भगवान् भास्कर मन्दीभूत हो जाया करते हैं। उस काल मे श्राद्ध दिया हुआ अनन्त फल देने वाला होता है तभी उसका आरम्भ होगा ॥८५॥ मध्याह्न खड्ग-पात्र-नेपाल कम्बल-रूप्य-दर्भ-तिल-गौएँ और आठवा दौहित्र कहा गया है। सन्ताप कारी उसका कुत्सित पाप कहा जाता है। क्योंकि ये आठ है इसी लिये ये कुतुप कहे गये हैं और इसी नाम से विश्रुत भी हैं ॥८६, ८७॥ कुतुप मुहूर्त्त से ऊर्ध्व में जो चार मुहूर्त हैं इस तरह से यह मुहूर्त पञ्चक स्वधा का भवन अभीष्ट हुआ करता है ॥८८॥ कुश और कृष्ण तिल ये भगवान् विष्णु के देह से ही समुद्भूत हुए हैं ये श्राद्ध की रक्षा करने के लिये समर्थ होते हैं—ऐसा देवगण ने कहा है ॥८९॥ तिलों से युक्त जल की अञ्जलि जल मे स्थित हुए तीर्थवासियों को देनी चाहिए। दर्भ के सहित एक हाथ से करे। इस प्रकार से श्राद्ध विशेषता वाला होता है ॥९०॥ श्राद्ध के साधन काल मे एक ही हाथ से दिया जाता है। जो तर्पण होता है भय दो से होता है। सदा यह विधि कही गयी है ॥९१॥

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ।
पुरा मत्स्येन कथितन्तीर्थश्राद्धानुकीर्तनम् ॥
शृणोति यः पठेद्वापि श्रीमान् सञ्जायते नरः ॥६२॥
श्राद्धकाले च वक्तव्य तथा तीर्थनिवासिभिः ।
सर्वपापोपशान्त्यर्थमलक्ष्मीनाशनं परम् ॥६३

इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं महापापहरञ्च पुंसाम् ।
ब्रह्मार्करुद्रैरपि पूजितञ्च श्राद्धस्य माहात्म्यमुशन्ति [illegible]॥६४॥

महर्षि सूतजी ने कहा—इन तीर्थों में श्राद्ध करने का अनुकीर्तन प्राचीन काल में मत्स्य भगवान् ने कहा था। यह परम पुण्यप्रद—आयु का वर्धन करने वाला और सब प्रकार के महान् से महान् पापों का विनाश करने वाला है। जो इस तीर्थ श्राद्धानुकीर्तन का श्रवण किया करता है अथवा इसको पढ़ता है वह मनुष्य श्रीमान् होकर श्री [illegible] ग्रहण किया करता है ॥६२॥ श्राद्ध के समय में तीर्थनिवासियों को इसे बोलना चाहिये। यह सर्व पापों के उपशमन के लिए और अलक्ष्मी के नाश करने वाला होता है ॥६३॥ यह परम पवित्र है [illegible] का धाम है और पुरुषों के महान् पापों का अपहरण करने वाला है। इसका अर्चन ब्रह्मा-अर्क और रुद्र के द्वारा भी किया गया है। [illegible] पुरुष इस श्राद्ध के माहात्म्य को [illegible] करते हैं ॥६४॥

ताभिः सखीभिः सहिता. सर्वाभिर्मुदिता भृशम् ।
क्रीडन्त्योऽभिरता सर्वा पिबन्त्यो मधु माधवम् ॥३
खादन्त्यो विविधान् भक्ष्यान् फलानि विविधानि च ।
पुनश्च नाहुषो राजा मृगलिप्सुर्यदृच्छया ॥४
तमेव देशं सम्प्राप्तो जललिप्सुः प्रतर्पितः ।
ददर्श देवयानीञ्च शर्मिष्ठान्ताश्च योषित ॥५
पिबन्त्यो ललनास्ताश्च दिव्याभरणभूषिताः ।
उपविष्टाञ्चदद्दर्शदेवयानीशुचिस्मिताम् ॥६
रूपेणाप्रतिमा तासा स्त्रीणामध्येवरानानाम् ।
शर्मिष्ठयासेव्यमानापादसम्वाहनादिभि. ॥७

शौनक मुनि ने कहा—हे नृपोत्तम ! इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय के बाद वर वर्णिनी वह देवयानी उसी वन मे क्रीडा विहार करने के लिये निकल कर गयी थी ॥१॥ उस समय मे एक सहस्र दासी और शर्मिष्ठा के साथ उसी देश मे वह सम्प्राप्त हुई थी और उसने इच्छा के अनुसार वहा पर विचरण किया था ॥२॥ उन्ही सब सखियो के साथ अत्यन्त ही मुदित थी । सब क्रीडा करती हुई अभिरत थीं तथा माधव मधु का पान कर रही थीं । अनेक प्रकार के भक्ष्यो को खा रही थी तथा नाना भाँति के फलो का अशन करती जारही थीं । पुन मृगया की इच्छा रखने वाला नाहुष राजा यदृच्छा से उसी देश मे सम्प्राप्त हो गया था । वह राजा जल की लिप्सा रखने वाला और अत्यधिक प्यासा था । उसने देवयानी को तथा शर्मिष्टान्त अन्य सभी योषितो को वहां पर देखा था । ॥३, ४, ५॥ वे सभी ललनाऐं दिव्य आभरणो से विभूषित थी और पान कर रहीं थी । वही पर उसने शुचि स्मित वाली उपविष्ट देवयानी को भी देखा था ॥६॥ वह देवयानी उन समस्त ललनाओं के मध्य से विराजमान रूप लावण्य से अनुपम और परम सुन्दर एव श्रेष्ठ मुख वाली थी शर्मिष्ठा के द्वारा वह सेव्यमान थी जो कि देवयानी के पादो का सम्वाहन आदि कर रही थी ॥७॥

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां द्वे कन्येपरिवारिते ।
गोत्रेचनामनीचैवद्वयोः पृच्छाम्यतोह्यहम् ॥८
आख्यास्याम्यहमादत्स्ववचनमेनराधिपः ।
शुक्रोनाम,सुरगुरुः सुतांजानीहितस्यमाम् ॥६
इयं च मे सखी दासी यत्राहं तत्र गामिनी ।
दुहितादानवेन्द्रस्यशर्मिष्ठावृषपर्वणः ॥१०
कथं तु ते सखी दासी कन्येय वरवर्णिनी ।
असुरेन्द्रसुता सुभ्रु ! परं कौतूहलं हि मे ॥११
सर्वमेव नरव्याघ्र ! विधानमनुवर्त्तते ।
विधिना विहितं ज्ञात्वा माविचित्रमनः कृथाः ॥१२
राजवद्रूपवेषो ते ब्राह्मीं वाचं बिभर्षि च ।
किं नामा त्वं कुतश्चासिकस्यपुत्रश्चशंसमे ॥१३
ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृतस्नः श्रुतिपथं गतः ।
राजाहं राजपुत्रश्च ययातिरितिविश्रुतः ॥१४

राजा ययाति ने कहा—ये दो सहस्र कन्याओं के द्वारा दो कन्याएं परिवारित हैं। अतएव मैं आप दोनों के गोत्र और नाम पूछता हूं ॥८॥ देवयानी ने कहा—हे नराधिप ! मैं अब कहती हूं, आप मेरे वचन को ग्रहण कीजिए। शुक्राचार्य नाम वाले असुरों के गुरु हैं उन्हीं की पुत्री मुझको आप जानिए ॥६॥ यह मेरी सखी दासी है। जहां पर भी मैं जाती हूं वहीं पर यह भी मेरे ही साथ में गमन करने वाली होती है। यह तो दानवेन्द्र वृषपर्वा की दुहिता शर्मिष्ठा है ॥१०॥ राजा ययाति ने कहा—यह वरवर्णिनी कन्या तुम्हारी दासी सखी कैसे हो गई है ? हे सुभ्रु ! यह तो असुरेन्द्र की सुता है। यह आपकी दासी कैसे बनगई है ? मेरे हृदय में इस बात का अत्यधिक कौतूहल हो रहा है। ॥११॥ देवयानी ने कहा—हे नर व्याघ्र ! इस संसार में सभी कुछ विधाता के द्वारा किये हुए विधान का ही अनुवर्त्तन किया करता है।

विधि के द्वारा किये हुए विधान को समझ और मन में किसी भी प्रकार का कौतूहल मत करिये ।।१२।। आपका रूप और वेष-भूषा तो एक राजा के ही समान है और जो वाणी बोल रहे हैं वह ब्राह्मी है। आप यह बतलाइये कि आपका शुभ नाम क्या है और आप कहाँ से आये हैं तथा किसके आप पुत्र हैं ? ।।१३।। ययाति ने कहा—सम्पूर्ण वेद का अध्ययन मैंने ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करते हुए किया है—मैं अवश्य ही एक राजा और राजा का ही पुत्र हूँ तथा मेरा नाम ययाति—यह विश्रुत है ।।१४।।

केन चार्थेन नृपते ! इमं देशं समागतः ।
जिघृक्षुर्वारि यत्किञ्चिदथवा मृगलिप्सया ।।१५
मृगलिप्सुरहं भद्रे ! पानीयार्थमिहागतः ।
बहुधाप्यनुयुक्तोऽस्मि त्वमनुज्ञातुमर्हसि ।।१६
द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां दास्या शर्मिष्ठया सह ।
त्वदधीनास्मि भद्रं ते सखे ! भर्ता च मे भव ।।१७
विद्ध्यौशनसि भद्रं ते न त्वदर्होऽस्मि भामिनि ।
अविवाह्या स्म राजानो देवयानि ! पितुस्तव ।।१८
संसृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं क्षत्रं ब्रह्मणि संश्रितम् ।
ऋषिश्च ऋषिपुत्रश्च नाहुषाद्य भजस्व माम् ।।१९
एकदेहोद्भवा वर्णाश्चत्वारोऽपि वरानने ।
पृथक्धर्म्मा पृथक् शौचास्तेषां वै ब्राह्मणो वरः ।।२०
पाणिग्रहो नाहुषायं न पुंभिः सेवितः पुरा ।
त्वमेनमग्रहीदग्रे वृणोमि त्वामहं ततः ।।२१
कथं तु मे मनस्विन्याः पाणिमन्यः पुमान्स्पृशेत् ।
गृहीतमृषिपुत्रेण स्वयं वाप्यृषिणा त्वया ।।२२

देवयानी ने कहा—हे राजन् ! यहाँ पर इस देश में किस प्रयोजन से समागत हुए हैं ? आप क्या कुछ जलपान करने के इच्छुक हैं या

मृगया की इच्छा से ही इस स्थल पर आपने पदार्पण किया है ? ॥ १५ ॥ ययाति ने उत्तर दिया—हे भद्रे ! मैं मृग की शिकार को करने का इच्छुक ही हूँ यहाँ पर तो केवल जल पीने के ही लिये आ गया हूँ। मैं बहुधा अनुयुक्त भी हुआ हूँ। आपको कुछ सेवा हो तो आप मुझे अनुज्ञा प्रदान कीजिए॥ १६ ॥ देवयानी ने कहा—हे भद्रे ! आपका परम कल्याण हो—मैं दो सहस्र कन्याओं से युक्त तथा दासी शर्मिष्ठा के सहित सब आपके ही अधीन होगई हूँ। अब आप ही मेरे भर्ता हो जाइये ॥ १७ ॥ राजा ययाति ने उत्तर दिया—हे भामिनि ! आप विप्र के तनया अर्थात् शुक्राचार्य की पुत्री हैं। आपका परम कल्याण हो। मैं आपके पति बनने के योग्य नहीं हूँ। हे देवयानि ! आपके पिता के यहाँ राजा लोग विवाह करने के योग्य नहीं हो सकते हैं ॥ १८ ॥ देवयानी ने कहा—ब्रह्मा ने ही सबका सृजन किया है। अतः ब्रह्मा के द्वारा क्षत्रिय वर्ण समुत्पन्न है तथा ब्रह्म में क्षत्र सन्निहित है। ऋषि और ऋषियों के पुत्र सभी तो उन्हीं से हुए हैं। इनमें कुछ का भेद-भाव नहीं है। हे नाहुष ! अब आप मुझे स्वीकार कर लीजिए ॥ १९ ॥ ययाति ने कहा—हे वरानने ! यह ठीक है कि चारों ही वर्ण एक ही ब्रह्माजी के देह से समुद्भूत हुए हैं किन्तु यह भी तो है कि प्रत्येक वर्ण का पृथक् २ धर्म-शौच और आचार हुआ करते हैं और उन सब वर्णों में ब्राह्मण का सर्वश्रेष्ठ वर्ण होता है ॥ २० ॥ देवयानी ने कहा—हे नहुष महाराज के पुत्र ! मेरे पाणि (हाथ) का ग्रहण इस समय से पूर्व में किसी भी पुरुष के द्वारा सेवित नहीं हुआ है। आपने ही सबसे आगे इसे ग्रहण किया है। इसीलिए मैं तो आपको ही वरण करती हूँ ॥ २१ ॥ अब मनस्विनी मेरा यह पाणि किस तरह कोई अन्य पुरुष स्पर्श करेगा। आप ऋषि के पुत्र ने अथवा स्वयं साक्षात् ऋषि भारत इसको ग्रहण किया है ॥२२॥

त्र द्वादाशीविदात्मपाञ्ज्वलनात्सर्वतोनुधात् ।
दुराधर्षतरो विप्र पुरुषेण विजानता ॥२३

कथमाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् ।
दुराधर्षतरोविप्र इत्यात्थ पुरुषर्षभ ।।२४
एकोदाशोविपस्त्वेक शस्त्रेणकश्च वध्यते ।
हन्तिविप्र सराष्ट्राणि पुराण्यपिहिकोपितः ।।२५
दुराधर्षतरो विप्रस्तस्मात् भीरु ! मतोमम ।
अतो दत्तान्चपित्रात्वा भद्रे ! नविवहाम्यहम् ।।२६
दत्ता वहस्व पित्रामांत्वहिराजन् ! वृतोमया ।
अयाचतो भयं नास्ति दत्तान्चप्रतिगृह्णतः ।।२७

राजा ययाति ने कहा—अत्यन्त क्रुद्ध सर्प से तथा सर्वतोमुख अग्नि से भी अधिक विप्र विज्ञान रखने वाले पुरुष के द्वारा दुराधर्षतर हुआ करता है ।। २३ ।। देवयानी ने कहा—हे पुरुषों मे परमश्रेष्ठ ! आप यह समझाइये कि आशीविष सर्प से और सभी ओर मुख वाले अग्नि से विप्र दुराधर्षतर कैसे होता है ? ।। २४ ।। राजा ययाति ने कहा—आशीविष सर्प तो एक ही किसी का दशन किया करता है और वह एक शस्त्र के द्वारा वध किया जाता है। यदि कोई कुपित हो जाता है तो वह राष्ट्रों के सहित समस्त पुरों का दाह कर दिया करता है। विप्र के वचन और शाप मे तो महान् प्रबल शक्ति विद्यमान रहा करती है । हे भीरु ! इसी कारण से विप्र अधिक दुराधर्ष मेरे विचार से माना गया है। इसीलिये हे भद्रे ! आपके पिता के द्वारा भी दी हुई आपके साथ मैं विवाह नहीं करता हूं ।।२५, २६ ।। देवयानी ने कहा—हे राजन् ! आप मेरे पिता के द्वारा प्रदान की हुई मुझे वरण करो क्योंकि मैंने तो आपको ही वरण कर लिया है। बिना याचना किये हुए आपको कुछ भी भय नहीं है और दी हुई मुझको आप ग्रहण कोजिए ।।२७।।

त्वरितदेवयान्याथ प्रेषिता पितुरात्मनः ।
सर्वं निवेदयामास धात्री तस्मै यथातथम् ।।२८

श्रुत्वैवं स राजानं दर्शयामास भार्गवः ।
दृष्ट्वैवमागतं विप्रं ययातिः पृथिवीपतिः ॥२९
ववन्दे ब्राह्मणं काव्यं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ।
तं चाप्यभ्यवदत्काव्यः साम्नापरमवल्गुना ॥३०
राजाऽयं नाहुषस्तात दुर्गमे पाणिमग्रहीत् ।
नमस्ते देहि मामस्मै लोकेनान्यं पतिं वृणे ॥३१
वृतोऽनया पतिर्वीर ! सुतया त्वं ममेष्टया ।
गृहाणेमां मया दत्तां महिषीं नहुषात्मज ! ॥३२
अधर्मोमा स्पृशेदेव पापमस्याश्च भार्गव ! ।
वर्णसंकरतो ब्रह्मन् ! इति त्वां प्रवृणाम्यहम् ॥
अधर्मात् त्वां विमुञ्चामि वरं वरय चेप्सितम् ।
अस्मिन् विवाहे त्वं श्लाघ्यो रहःपापं नुदामि ते ॥३३
वहस्व भार्यां धर्मेण देवयानीं शुचिस्मिताम् ।
अनया सह संप्रीतिमतुलां समवाप्नुहि ॥३४
इयं चापि कुमारी ते शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
संपूज्य सततं राजन् ! नचैनांशयनेह्वय ॥३५
एवमुक्तो ययातिस्तु शुक्रं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
जगामस्वपुरं हृष्टः सोऽनुज्ञातो महात्मना ॥३६

शौनक महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर देवयानी ने तुरन्त ही अपने पिता के समीप में धात्री को प्रेषित कर दिया था। उस भेजी गयी धात्री ने उनको सभी कुछ ओर-छोर निवेदन कर दिया था। धात्री के द्वारा राजा का वहाँ पर आगमन सुनते ही भार्गव मुनि ने राजा का वहाँ उपस्थित होकर दर्शन किया था। राजा ययाति ने वहाँ पर समागत हुए उस विप्र का दर्शन किया तो बड़े वेग के साथ उठकर ययाति ने ब्राह्मण शुक्र की वन्दना की थी और दोनों हाथ जोड़कर प्रणत होते हुए उनके समक्ष में स्थित हो गया था। भार्गव मुनि ने भी राजा होने के

नाते परम वल्गु साम के द्वारा उस ययाति का प्रत्याभिवादन किया था ॥ २८, २६, ३० ॥ देवयानी ने कहा—हे तात ! यह नहुष के पुत्र ययाति नामधारी राजा हैं। इन्होंने दुगम दशा मे मेरा पाणि का ग्रहण किया था। मैं आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित करती हूं। आप मुझको इ ही की पत्नी के रूप मे प्रदान कर दीजिये क्योंकि मैं लोक मे अन्य किसी को पति के रूप मे वरण नही करूँगी ॥ ३१ ॥ शुक्र ने कहा—हे वीर ! इस कन्या देवयानी ने आपको ही अपना पति वरण कर लिया है। यह मेरी परम प्रिय इष्ट सुता है। हे नहुषात्मज ! अब मेर द्वारा समर्पित की हुई इसको ग्रहण कीजिए और अपनी महिषी इसे बना लीजिये ॥ ३२ ॥ राजा ययाति ने कहा—हे भार्गव ! इस प्रकार से करने पर तो अधर्म मुझे स्पर्श करेगा और इसे स्वीकार करने मे पाप होगा। हे ब्रह्मन् ! यह तो वर्णों का सङ्कट हो जायगा—इसीलिये मैं आपस निवेदन करता हूं। शुक्राचार्य ने कहा—मैं इस अ-म से आपका विमोचन किये देता हू। आपको जो भी कुछ अभीप्ट वरदान हो वह अब मुझसे माँगलो इस विवाह के करने मे आप श्लाघ्या के ही योग्य होगे और यह भी कुछ भी पाप है उमसे मैं आपका उद्धार कर दूँगा ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! धम से इस शुचि स्मित वाली देवयानी को आप भार्या के स्वरूप मे वहन कीजिये। इसके साथ आप अतुला प्रीति प्राप्त करेंगे ॥ ३४ ॥ यह तुम्हारी कुमारी शर्मिष्ठा वृषपर्वणी है। हे राजन् ! निरन्तर भली भाँति पूजन करके इसके साथ शयन मत करना ॥ ३५ ॥ महर्षि शौनकजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए ययाति ने शुक्राचार्य की परिक्रमा दी और परम प्रसन्न हाकर अनुज्ञा प्राप्त होने पर जा कि महात्मा शुक्र ने दी थी वह अपने पुर में चला गया था ॥ ३४, ३६ ॥

१६—ययात्यष्टकसम्वादवर्णन

यदा वसन्नन्दने कामरूपे संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
किं कारणं कार्तयुगप्रधान हित्वा तद्वै वसुधामन्वपद्यः ॥१॥
ज्ञाति सुहृत् स्वजनो यो यथेह क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि ।
तथा स्वर्गे क्षीणपुण्यं मनुष्यं त्यजन्ति सद्यः खेचरा देवसंघाः ॥२
कथं तस्मिन् क्षीणपुण्या भवन्ति संमुह्यते मेऽत्रमनोऽतिमात्रम् ।
किं विशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति तद्वै ब्रूहि क्षेत्रवित्त्वं मतो मे॥३
इमं भौमं नरकं ते पतन्ति लालप्यमाना नरदेव ! सर्वे ।
ते कङ्कगोमायुपलाशनार्थं क्षितौ विवृद्धिं बहुधा प्रयान्ति ॥४
तस्मादेवं वर्जनीयं नरेन्द्र दुष्टं लोके गर्हणीयञ्च कर्म्म ।
आख्यातं ते पार्थिव सर्वमेतत् भूयश्चेदानीं वद किन्ते वदामि ॥५
यदा तु तांस्ते वितुदन्ते वयांसि तथा गृध्राः शितिकण्ठाः पतङ्गाः ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति त्वत्तो भौमं नरकमहं शृणोमि ॥६

अष्टक ने कहा—आप इस नन्दन बन में एक से अयुत (दश सहस्र) सम्वत्सरों तक वास करते हुए कार्त युग प्रधान उसका त्याग करके पुनः इस वसुधा पर प्राप्त हो गया था—इसका क्या कारण है? ॥१॥ ययाति ने कहा—जिस तरह से यहाँ पर वित्त के क्षीण हो जाने पर मानवों के द्वारा अपनी ज्ञाति वाला-सुहृद् और स्वजन त्याग दिया जाया करता है उसी भाँति स्वर्ग में खेचर देवों के संघ में भी क्षीण पुण्य वाले मनुष्य को तुरन्त ही त्याग दिया करते हैं ॥२॥ अष्टक ने कहा—वहाँ पर पुण्यों को क्षीण करने वाले कैसे हो जाते हैं—इस विषय में मेरा मन अत्यधिक मोहित हो जाता है। किस विशेषता से युक्त पुरुष किसके धाम को जाया करते हैं—यह सब आप हमको बतलाइये क्योंकि मेरे विचार में आप पूर्णतया क्षेत्र के वेत्ता हैं ॥३॥ ययाति ने कहा—हे नरदेव! लालप्यमान सब इस आपकी भूमि में रहने वाले नरक में गिरा करते हैं।

वे कङ्क-गोमायु पलाशन के लिये बहुधा भूमि मे विशेष वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।।४।। हे नरेन्द्र ! इस कारण से इस प्रकार से लोक मे दुष्ट और गर्हणा के योग्य कर्म्म का वर्जन कर देना चाहिए । हे पार्थिव ! यह सभी कुछ आपको बता दिया गया है और फिर अब बतलाइये कि आपको मैं क्या बतलाऊँ ? ।।५।। अष्टक ने कहा—जिस समय मे वे पक्षी तथा गृध्र-शितिकण्ठ और पतङ्ग उनको उत्पोडित किया हैं ? मैं आपसे ही इस अत्यन्त भयानक नरक के विषय मे श्रवण करना चाहता हू ।।६।।

ऊर्ध्वं देहात्कर्म्मणो नृम्भमाणात् व्यक्तं पृथिव्यामनुसञ्चरन्ति ।
इम भौम नरकन्ते पतन्ति नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान् ।।७
षष्टि सहस्राणि पतन्तिव्योम्नि तथाशीतिञ्चैव तु वत्सराणाम् ।
तान्वै तुदन्ते प्रपतन्त प्रयातान् भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदष्ट्रा ।।८
यदेतांस्ते सपततस्तुदन्ति भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदष्ट्राः ।
कथ भवन्ति कथमाभवन्ति कथ भूगर्भभूता भवन्ति ॥९
अमृप्रेत पुष्परसानुयुक्तं अन्वेति सद्य. पुरुषेण सृष्टम् ।
तद्वै तस्यारज आपद्यते च स गर्भभूतः समुपैति तत्र ॥१०
वनस्पतीनोषधीश्चाविशन्ति अपो वायु पृथिवीञ्चान्तरिक्षम् ।
चतुष्पद द्विपदञ्चापि सर्व एव भूता गर्भभूता भवन्ति ।।११
अन्यद्वपुर्विदधातीह गर्भं उताहोस्वित् स्वेन कामेन याति ।
आपद्यमानो नरयोनिमतामाचक्ष्व मे सशयात् पृच्छतस्त्वम् ।।१२
शरीरदेहादिसमुच्छ्रयञ्च चक्षुःश्रोत्रे लभते केन सज्ञाम् ।
एतत् सर्वं तात आचक्ष्व पृष्ट क्षेत्रज्ञ त्वा मन्यमाना हि सर्वे ।।१३

ययाति ने कहा—जृम्भमाण देहात्कर्म्म से ऊर्ध्व में व्यक्त रूप से पृथिवी में अनुसञ्चरण किया करते हैं । वे इस भूमि में रहने वाले आपके नरक में गिरा करते हैं और अनेक वर्षों के समूह को नहीं देखते हैं ।।७।। साठ सहस्र तथा अस्सी सहस्र वर्ष तक व्योम मे गिरा करते है प्रयाण करते हुए उनको प्रपतन करते हुए तीक्ष्ण दाढ़ा वाले महा भयानक भौम

राक्षस पीडित किया करते हैं ॥८॥ अष्टक ने कहा—जिस समय मे वे सपतन करते हुए तीक्ष्ण दष्ट्राओं वाले भयानक भौम राक्षस इनको उत्पीडित किया करते हैं तो कैसे होते हैं—कैसे चारों ओर होते हैं और और कैसे भूमि के गर्भ मे गत हुआ करते हैं ॥ ९ ॥ ययाति ने कहा—पुरुष के द्वारा सृष्ट रेत पुष्प रस से अनुयुक्त असृक् (रक्त) तुरन्त ही अनुगमन करता है। वह उसका रज आपन्न होता है और वह वहीं पर गर्भभूत होता हुआ समुपगमन किया करता है ॥१०॥ वनस्पति और औषधियों मे आविष्ट होते हैं—जल-वायु-पृथिवी-अन्तरिक्ष-चतुष्पद-द्विपद ये सब इस प्रकार से होते हुए गर्भभूत होते हैं ॥११॥ अष्टक ने कहा—यहा गर्भ मे कोई अन्य वपु धारण करता है अथवा अपनी ही इच्छा मे जाया करता है जब कि इस नर योनि को प्राप्त होता हुआ रहता है—यह सब मुझे बतलाइये, मैं संशय होने के कारण से आपसे पूछ रहा हू ॥ १२ ॥ शरीर देहादि का समुच्छय—चक्षु और श्रोत्र किसम संज्ञा को प्राप्त किया करता है ? हे तात ! आप से पूछा गया है आप यह सभी कुछ बतलाइये। आपको सभी क्षेत्रज्ञ मानते हैं ॥१३॥

वायु समुत्कर्षति गर्भयोनिमृतौ रेतः पुष्परसानुयुक्तम् ।
स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः क्रमेण संवर्धयतीह गर्भम् ॥१४
स जायमानोऽथ गृहीतगात्रः संज्ञामधिष्ठाय ततो मनुष्य. ।
स श्रोत्राभ्यां वेदयतीह शब्दं स वै रूपं पश्यति चक्षुषा च ॥१५
घ्राणेन गन्धं जिह्वयाथो रसञ्च त्वचा स्पर्शं मनसा वेदभावम् ।
इत्यष्टकेहोपचितं हि विद्धि महात्मनः प्राणभृतः शरीरे ॥१६
यः संस्थितः पुरुषो दह्यते वा निखन्यते वापि निकृष्यते वा ।
अभावभूतः स विनाशमेत्य केनात्मानं चेतयते पुरस्तात् ॥१७
हित्वा सोऽसून् सुप्तवन्निष्ठिनत्वात् पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतञ्च ।
अन्यां योनिं पुण्यपापानुसारां हित्वा देहं भजते राजसिंह ॥१८

पुण्या योनिं पुण्यकृतो विशन्ति पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति।
कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापन्न मे विवक्षास्ति महानुभाव ॥१६
चतुष्पदा द्विपदाः पक्षिणश्च तथा भूता गर्भभूता भवन्ति।
आख्यातमेतन्निखिलं हि सर्वं भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह ॥२०

राजा ययाति ने कहा—पुष्प रस से अनुयुक्त रेत को ऋतु काल मे वायु समुत्कर्षित किया करता है। उतना ही अधिकार करने वाला वह वहाँ पर क्रम से गर्भ को सर्वधित किया करता है ॥१४॥ इसके उपरान्त जब वह जायमान होता है तो गात्र को ग्रहण करने वाला हो जाता है। इसके पश्चात् वह मनुष्य सज्ञा को अधिष्ठित हुआ करता है। वह श्रोत्रो से यहाँ पर शब्द का ज्ञान करता है और वह रूप को चक्षु से देखता है ॥१५॥ घ्राण से गन्ध को पहिचानता है तथा जिह्वा से रस और त्वचा से स्पर्श और मन से भेदभाव को जानता है। प्राणधारी महात्मा के शरीर मे इस अष्टक मे उपचित समझलो ॥१६। अष्टक ने कहा—जो सस्थित पुरुष जला दिया जाता है-गाड दिया जाता है अथवा निकृष्ट किया जाता है अभावभूत वह विनाश को प्राप्त होकर फिर किस के द्वारा आगे आत्मा को चैतन्य स्वरूप देकर प्रदर्शित किया करता है ॥१७॥ राजा ययाति के कहा—वह प्राणो का त्याग करके एक सुप्त की भाँति निष्ठित होने से अपने जीवन मे विहित सुकृत और दुसकृत आगे रखकर ही पुण्य पाप के अनुसार अन्य योनिको भजता है और इस देह का त्याग कर दिया करता है। हे राजसिंह ! प्रथम शरीर के त्याग के बाद ऐसा ही हुआ करता है जिसमें पुण्य-पाप की प्रधानता होती है। ॥१८॥ जो पुण्य कर्म्मों के करने वाले लोग होते हैं वे पुण्य योनि मे ही प्रवेश किया करतेहै और जो पापकर्म्म करने वालेहैं वे पाप योनि मे जाया करते हैं। हे महानुभाव ! कीट और पतङ्ग पाप से होते हैं यह मेरी विवक्षा नही है ॥१९॥ चतुष्पद-द्विपद और पक्षी वर्ग उस प्रकार से हुए गर्भभूत होते हैं यह हमने सभी कुछ कह दिया है। हे राजसिंह ! पुनः अब क्या पूछते हैं ? ॥२०॥

किंस्वित् कृत्वा लभते तात संज्ञां-मर्त्यः श्रेष्ठां तपसा विद्यया वा।
तन्मे पृष्टः शंस सर्वं यथावच्छुभान् लोकान् येन गच्छेत् क्रमेण ॥२१
तपश्च दानञ्च शमो दमश्च ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा ।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तैव महान्ति पुंसाम् ॥२२
सर्वाणि चैतानि यथोदितानि तपःप्रधानान्यभिमर्शकेन ।
नश्यन्ति मानेन तमोऽभिभूताः पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः ॥२३
अधीयानः पण्डितं मन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः परस्य ।
तस्यान्तवन्तः पुरुषस्य लोकानचास्य तद्ब्रह्मफलं ददाति ॥२४
चत्वारि कर्माणि भयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।
मानाग्निहोत्रमुतमानमौनं मानेनाधीतमुतमानयज्ञः ॥२५
न मान्यमानो मुदमाददीत न सन्तापं प्राप्नुयाच्चावमानात् ।
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके नासाधवः साधुबुद्धिं लभन्ते ॥२६
इति दद्यादिति यजेदित्यधीयीत मे श्रुतम् ।
इत्येतान्यभयान्याहुस्तान्यवर्ज्यानिनित्यशः ॥२७
येनाश्रयं वेदयन्ते पुराणं मनीषिणो मानसे मानयुक्तम् ।
तन्निश्रेयस्तेन संयोगमेत्य परां शान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्य चेह ॥२८

अष्टक ने कहा—हे तात ! क्या कर्म करके मनुष्य श्रेष्ठ संज्ञा को प्राप्त किया करता है तपश्चर्या से अथवा विद्या से ? यही मेरे द्वारा आप पूछे जा रहे हैं सो सभी यथावत् कहिए और यह भी बतलाइये कि किस क्रम से वह शुभ लोकों को चला जाता है ॥२१॥ ययाति ने कहा—तप—दान—शम—दम—लज्जा—आर्जव और समस्त प्राणियों पर दया—ये सात ही पुरुषों के महान् द्वार हैं जिनको स्वर्ग लोक के भी सन्त लोग कहा करते हैं ॥२२॥ ये सब जो भी वर्णित किये गये हैं वे तपः प्रधान ही होते हैं अर्थात् इन सभी में तपश्चर्या की ही प्रमुखता हुआ करती है। जो तमोगुण से अभिभूत होते हैं वे अभिमर्शक मान से नष्ट हो जाते हैं। वह पुरुष को सदा ही होता है—यही सन्त पुरुष कहते हैं ॥२३॥ अधी-

यान अर्थात् पूर्णतया पठित पुरुष अपने आपको पण्डित मानता हुआ अर्थात् अपने पाण्डित्य का अभिमान रखने वाला है और जो विद्या के बल से दूसरे के यश का हनन किया है उस पुरुष के अन्त में होने वाले लोक नहीं हुआ करते हैं और न उसको वह ब्रह्मफल ही दिया करता है ।।२४।। ये चार कर्म्म महान् भयङ्कर हुआ करते हैं और अयथाकृत वे भय दिया करते हैं—मानाग्निहोत्र-मान मौन-मानसे अधीत और मान-यज्ञ वे ये ही चार हैं ।।२५।। मान्य मान वाला कभी मुद प्राप्त नहीं किया करता है और वह सन्ताप को भी अब मान होने से नहीं प्राप्त किया करता है इस लोक मे सन्त पुरुष सद्गुरुओं का ही पूजन किया करते हैं और जो असाधु पुरुष होते हैं वे कभी भी साधु बुद्धि को प्राप्त नहीं किया करते हैं ।।२६।। मेरा श्रुत तो यह बतलाता है कि इसका इतना दान करे-यह यजनाचन करना चाहिये और यह अध्ययन करे—इसी हेतु से यह भय से रहित है और उनको नित्यही अभजनीय कहा जाता है। ।।२७।। पुराण जिससे आश्रय का वेदन मनीषिगण किया करते हैं जो मानस में मानयुक्त है वही निश्रेय है उससे संयोग प्राप्त करके यहाँ मृत होकर परा शान्ति को प्राप्त किया करते हैं ।।२८।।

२०—ययात्यष्टकसंवाद वर्णन

चरन् गृहस्थः कथमेति देवान् कथं भिक्षुः कथमाचार्य्यकर्म्मा ।
वानप्रस्थः सत्पथे संनिविष्टो बहून्यस्मिन् सप्रति वेदयन्ति ।१
आहूताध्यायी गुरुकर्मसु चोद्यत पूर्वोत्थायी चरमश्चोपशायी ।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः स्वाध्यायशील सिद्धयति ब्रह्मचारी ।।२
धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात्सदैवातिथीन् भोजयेच्च ।
अनाददानश्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनिषत्पुराणी ।।३

स्ववीर्य्यजीवी वृजिनान्निवृत्तो दाता परेभ्यो न परोपतापी ।
तादृङ्मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्यां वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः ॥४
अशिल्पजीवी विगृहश्च नित्यं जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः ।
अनोकसायी लघु निष्प्रमानाश्चरन् देशानेकाम्बरः स भिक्षुः ॥५
रात्र्या यया चाभिरताश्च लोका भवन्ति कामाभिजिताः सुखेन च ।
तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वानरण्यसंस्थो भवितुं यतात्मा ॥६
दशैव पूर्वान् दश चापरांस्तु ज्ञातीँस्तथात्मानमथैकविंशम् ।
अरण्यवासी सुकृतं दधाति मुक्त्वाप्यरण्ये स्वशरीरधातून् ॥७

---अष्टक ने कहा—एक गार्हस्थ्य आश्रम में सञ्चरण करने वाला पुरुष किस प्रकार से देवों को प्राप्त किया करता है भिक्षु (संन्यासी) किस विधान से और आचार्य का कर्म्म करने वाला है वह किस रीति से देवगण के समीप में पहुँचा करता है तथा जो वानप्रस्थाश्रमी पुरुष है और सन्मार्ग में सन्निविष्ट है उसकी क्या विधि है ? इस विषय में अब बहुत सी बातें वेदन की जाती हैं ॥१॥ राजा ययाति ने कहा—जिस समय में उसको अध्ययन करने के लिये आहूत करें तभी उन आचार्य्य वर की सन्निधि में समुपस्थित होकर अध्ययन करने वाला—गुरुजी के सम्पूर्ण कर्मों के सम्पादन करने के लिये सदा उद्यत रहने वाला—गुरुचरण से पहिले शय्या त्याग कर उठने वाला और उनके शयन करने के पश्चात् सोने वाला—परम मृदु दमनशील—धृतिमान्—अप्रमत्त एवं जो सर्वदा स्वाध्याय करने के शील वाला है वही ब्रह्मचारी सिद्धि प्राप्त किया करता है ॥२॥ धर्म्म के द्वारा समागत धन से यजन करना चाहिए और सदा ही अतिथियों को दान देवे तथा उनको भोजन करावे—दूसरों के द्वारा नहीं दिये हुए को नहीं ग्रहण करता हुआ गृहस्थ को होना चाहिए—यही गार्हस्थ्याश्रम में रहने वाले की परम-पुरातन उपनिषद् है ॥३॥ अपने ही स्व वीर्य्य से जीवन यापन करने वाला—पाप कर्म से निवृत्त रहने वाला—दूसरों को दान देने वाला तथा दूसरों को कभी भी सन्ताप न देने वाला इस

प्रकार की रहनी रहने वाला मुनि जो नियत आहार करने की चेष्टा रखते हुए वन में निवास किया करता है वही परम मुख्य सिद्धि का लाभ लेता है ।।४।। जो किसी भी प्रकार के शिल्प कौशल से जीवन का यापन नहीं किया करता है तथा बिना गृह वाला है—नित्य ही अपनी इन्द्रियों को जीत कर रखने वाला है और सभी ओर से प्रमुक्त अर्थात् बन्धन से रहित है—किसी भी गृह में शयन न करने वाला तथा बहुत ही स्वल्प लिप्सा रखने वाला—एक ही वस्त्र का धारी और अनेक देशों में विचरण करने वाला जो होता है वही भिक्षु (सन्यासी) है ।।५।। जिस रात्रि से लोक अभिरत होते हैं तथा सुख से कामाभिजित होते हैं विद्वान् पुरुष को उसी रात्रि में प्रयत्न करना चाहिये कि वह प्रयत आत्मा वाला अरण्य में सस्थित रखने वाला होवे ।।६।। वह अरण्य में निवास करने वाला अपने शरीर की धातुओं को अरण्य मे ही त्याग करके परम सुकृत को धारण किया करता है । वह अपने से पूर्व मे हुए दश पुरुषो को और दश दूसरे ज्ञातियो को तथा इक्कीसवाँ अपने आपको सभी का अपने तपोबल से उद्धार कर दिया करता है ।।७।।

कतिस्विद्देवमुनयो मौनानि कतिचाप्युत ।
भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।।८
अरण्ये वसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठत ।
ग्रामे वा वसतोऽरण्य स मुनि स्याज्जनाधिप ।।६
कथस्विद्वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठत ।
ग्रामे वा वसतोऽरण्य कथ भवति पृष्ठत ।।१०
न ग्राम्यमुपयुञ्जीत य आरण्यो मुनिर्भवेत् ।
तथास्य वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठत ।।११
अनग्निरनिकेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनि ।
कौपीनाच्छादन यावत्तावदिच्छेच्च चीवरम् ।।१२
यावत्प्राणाभिसन्धान तावदिच्छेच्चभोजनम् ।।

तदास्यवसतोग्रामेऽरण्यंभवति पृष्ठतः ॥१२

अष्टक ने कहा—कितने देवगण और मुनिगण मौन होते हैं—यह सब आप मुझको बतलाइये। हम सब यह श्रवण करना चाहते हैं। ॥८॥ ययाति ने कहा—हे जनाधिप! अरण्य में निवास करने वाले जिसको ग्राम पृष्ठ भाग में रहता है तथा ग्राम में निवास में अरण्य को पृष्ठ में छोड़ देता है वही मुनि होता है ॥६॥ अष्टक ने पूछा—अरण्य में निवास करने वाले का ग्राम किस तरह से पृष्ठ में होता है अथवा ग्राम में निवास करने वाले का अरण्य कैसे पृष्ट में होता है? ॥१०॥ राजा ययाति ने कहा—जो आरण्य मुनि हो उसे कभी भी ग्राम का उपयोग नहीं करना चाहिए। इसी तरह से अरण्य में निवास करने वाले इसका ग्राम पृष्ठ भाग में ही जाया करता है ॥११॥ बिना अग्नि वाला अर्थात् निरग्नि—बिना घर बनाकर रहने वाला—अगोत्रचरण वाला—जो मुनि है उसको जितना भी कौपीन और समाच्छादन करने के लिये चाहिये उतने ही वस्त्र की इच्छा करनी चाहिये ॥१२॥ जितने से अपने प्राणों का अभिसन्धान रहे उतना ही आहार प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिये। उस समय में ग्राम में निवास करने वाले इसको अरण्य भी पृष्ठ भाग में पड़ जाया करता है ॥१३॥

यस्तुकामान्परित्यज्यत्यक्तकर्माजितेन्द्रियः।
आतिष्ठेतमुनिर्मौनंसलोकेसिद्धिमाप्नुयात् ॥१४
धौतदन्तं कृत्तनखं सदास्नातमलङ्कृतम्।
असितं सितकर्मस्थं कस्तन्नार्चितुमर्हति ॥१५
तपसाकर्शित क्षामःक्षीणमांसास्थिशोणितः।
यदाभवतिनिर्द्वन्द्वो मुनिर्मौनं समास्थितः ॥१६
अथलोकमिमञ्जित्वा लोकञ्चापि जयेत्परम्।
आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः॥
अथास्य लोकः सर्वो यः सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१७

जो समस्त प्रकार की इच्छाओं का त्याग करके भस्मों को छोड कर पूर्णतया इन्द्रियों के ऊपर अपना नियन्त्रण रखने वाला समाहित हुआ करता है और मौनव्रत धारण करता है वही मुनि लोक मे सिद्धि को प्राप्त किया करता करता है।।१४।। जो धौत दन्तो वाला है—नाखून जिसके कटे हुए रहा करते हैं—सदा स्नान करके साफ-सुथरा रहता है और भली भाँति अलकृत रहा करता है और असित तथा सित कर्मों मे स्थित रहने वाला सन्यासी है उसे कौन अर्चित करने की भावना रखता है अर्थात् ऐसे भिक्षु की समर्चा की योग्यता ही नही होती है। ।।१५।। जो तपश्चर्या से कर्षित—दुबला—पतला—क्षीण मास अस्थि और रक्त वाला जिस समय मे निर्द्वन्द्व होता है वह मुनि मौन व्रत मे समास्थित हुआ करता है ।।१६।। इसके अनन्तर इस लोक को जीतकर वह परलोक पर भी विजय प्राप्त किया करता है। मुनि अपने मुख से गौ की भाँति ही जब आहार को ग्रहण किया करता है तथा खोजता है इस दशा के होने के अनन्तर इसको जो भी सब लोक है वह अमृतत्व के लिये ही कल्पित होते हैं ।।१७।।

२१—यदुवंश वर्णन

इत्येतच्छौनकाद्राजा शतानीकोनिशम्य तु ।
विस्मितः परयाप्रीत्यापूर्णचन्द्र इवाबभौ ।।१
पूजयामास नृपतिर्विधिवच्चाथ शौनकम् ।
रत्नैर्गोभि सुवर्णैश्च वासोभिर्विविधैस्तथा ।।२
प्रतिगृह्य ततः सर्वं यद्राज्ञा प्रहितं धनम् ।
दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च शौनकोऽन्तरधीयत ।।३
ययातिवं शमिच्छाम श्रोतुं विस्तरतो वद ।
यदुप्रभृतिभिः पुत्रैर्यदा लोके प्रतिष्ठितः ।।४

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत ॥५
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः ।
महारथा महेष्वासानामतस्तान्निबोधत ॥६
सहस्रजित्स्थोज्येष्ठःक्रोष्टुर्नीलोऽन्तिकोलघुः ।
सहस्रजेस्तुदायादोशतजिर्नाम पार्थिवः ॥७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—शतानीक राजा ने शौनक से यह सब श्रवण किया था तो वह विस्मित हो गया था और परा प्रीति से पूर्ण चन्द्र की भाँति प्रकाशमान हो गया था ॥१॥ फिर उस राजा ने पूर्ण विधान के साथ शौनक का पूजन किया था। पूजन के उपचारों में बहुमूल्य रत्न—गौ—सुवर्ण और अनेक भाँति के वस्त्र आदि सभी थे ॥२॥ उसे भी राजा के द्वारा धन प्रहित किया था उस सबका प्रतिग्रहण करके और ब्राह्मणों को दान करके फिर महर्षि शौनक वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ॥३॥ ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! अब हम सब लोग राजा ययाति के वंश का विस्तार श्रवण करना चाहते हैं। आप परमानुकम्पा करके उसका सविस्तृत वर्णन कीजिए जिस समय में वह इस लोक में यदु प्रभृति पुत्रों से समन्वित होकर प्रतिष्ठित हुआ था ॥४॥ श्री सूतजी ने कहा—सबसे ज्येष्ठ और उत्तम तेज वाले यदु के वंश का मैं वर्णन करूँगा और विस्तार तथा आनुपूर्वी के साथ ही कहूँगा। आप लोग सब कहने वाले मुझसे सब कुछ समझ लीजिए ॥५॥ महाराज यदु के देवताओं के समान पाँच पुत्र समुत्पन्न हुए थे। वे पाँचों ही महारथी और महान् इष्वास को धारण करने वाले थे ॥ ६ ॥ इनमें सबसे बड़ा जो था वह सहस्रजि था और सबसे छोटा जो अन्तिम पुत्र था क्रोष्टुनील था। सहस्रजि का दायाद शतजि नाम वाले पार्थिव समुद्भूत हुआ था ॥ ७ ॥

शतजेरपि दायादास्त्रयः परमकीर्तयः ।

हैहयश्च हयश्चैव तथा वेणुहयश्च यः ॥८
हैहयस्य तु दायादो धर्म्मनेत्रः प्रतिश्रुतः ।
धर्म्मनेत्रस्यकुन्तिस्तुसहतस्तस्य चात्मजः ॥९
सहतस्य तु दायादो महिष्मान्नामपार्थिवः ।
आसीन्महिष्मतः पुत्रोरुद्रश्रेण्य प्रतापवान् ॥१०
वाराणस्यामभूद्राजा कथितं पूर्वमेव तु ।
रुद्रश्रेणस्य पुत्रोऽभूद्दुर्दमो नाम पार्थिवः ॥११
दुर्दमस्यसुतोधीमान्कनकोनामवीर्य्यवान् ।
कनकस्यतुदायदाश्चत्वारोलोकविश्रुताः ॥१२
कृतवीर्य्यं कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च ।
कृतोजाश्च चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्य्यात्तुसोर्जुनः ॥१३
जातः करसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः ।
वर्षायुत तपस्तेपे दुश्चरं पृथिवीपतिः ॥१४

...जि नाम वाले पुत्र के भी दायाद परम कीर्ति वाले तीन हुए थे जिनके शुभ नाम हैहय–हय और वेणुहय थे ॥८॥ हैहय का जो दायाद उत्पन्न हुआ था वह धर्म्मनेत्र इस शुभ नाम से प्रतिश्रुत हुआ था । धर्मनेत्र का दायाद कुन्ति हुआ और कुन्ति का आत्मज सहत नाम वाला हुआ था ॥९॥ संहत के पुत्र महिष्मान् नाम वाला पार्थिव हुआ था । महिष्मान् का पुत्र परम प्रताप धारी रुद्रश्रेण्य ने जन्म ग्रहण किया था ॥१०॥ यह वाराणसी में राजा हुआ था जिसका वर्णन पूर्व में ही किया जा चुका है । रुद्रश्रेण का पुत्र दुर्दम नाम वाला राजा हुआ था ॥११॥ फिर इस दुर्दम का पुत्र परम बुद्धिमान् और बल वीर्य से संयुत कनक नाम वाला हुआ था । इस कनक के चार दायाद लोक में परम प्रसिद्ध हुए थे ॥१२॥ इन चारों के नाम कृतवीर्य–कृताग्नि–कृतवर्मा और चौथा कृतोजा थे । कृतवीर्य्य के पुत्र से ही सहस्रार्जुन समुत्पन्न हुआ था ॥१३॥ इसके एक ...हस्र हाथ थे जब इसने जन्म ग्रहण किया था और यह सातों द्वीपों का

राजा हुआ था। इस राजा ने दश सहस्र वर्ष तक परम दुश्चर तपस्या की थी ॥१४॥

दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्य्योऽत्रिसम्भवम् ।
तस्मै दत्तावरास्तेनचत्वारः पुरुषोत्तम् ॥१५
पूर्वं बाहुसहस्रन्तु वव्रे राजसत्तमः ।
अधर्मं चरमाणस्य सद्भिश्चापिनिवारणम् ॥१६
युद्धेन पृथिवी जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् ।
संग्रामे वर्तमानस्य वधश्चैवाधिकाद्भवेत् ॥१७
तेनेय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ।
समोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जिता ॥१८
जज्ञे बाहुसहस्रं वै इच्छतस्तस्य धीमत. ।
रथो ध्वजश्च सञ्जज्ञे इत्येवमनुशुश्रुमः ॥१६
दशयज्ञसहस्राणि राज्ञा द्वीपेषु वै तदा ।
निरर्गला निवृत्तानि श्रूयन्ते तस्यधीमतः ॥२०
सर्वे यज्ञा महाराजस्तस्यासन्भूरिदक्षिणा. ।
सर्वेकाञ्चनयूपास्तेसर्वाः काञ्चनवेदिका ॥२१

इस कार्त्तवीर्य ने अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय की समाराधना की थी। हे पुरुषोत्तम ! इसके द्वारा इसको चार वरदान दिये गये थे ॥ १५ ॥ सबसे प्रथम उस राजश्रेष्ठ ने एक सहस्र बाहु प्राप्त करने का वरदान माँगा था। अधर्म का समाचरण करने वाले का सत्पुरुषों से निवारण करना प्राप्त किया था ॥ १६ ॥ युद्ध के द्वारा सम्पूर्ण भूमण्डल पर विजय प्राप्त करके धर्म के ही द्वारा सब पृथ्वी का अनुपालन करना प्राप्त किया था। संग्राम में वर्तमान का वध भी हो तो किसी अधिक से ही होवे।१७। उस सहस्रबाहु ने इस पृथिवी को जो सम्पूर्ण सात द्वीपों से युक्त पर्वतों के सहित और समुद्र से घिरी हुई थी उस सबको क्षात्र विधि के द्वारा ही जीत लिया था ॥ १८ ॥ उस धीमान् की जैसी इच्छा थी उसी के अनुसार

एक सहस्र बाहु समुत्पन्न हो गयी थी। रथ और ध्वज भी समुत्पन्न हुए थे ऐसा ही अनुश्रवण करते हैं ॥ १६ ॥ उस समय में उस राजा के द्वारा द्वीपो में दश सहस्र यज्ञ निगल उस श्रीमान् के, निवृत्त हुए थे ऐसा भी सुना जाता है ॥ २० ॥ उस महान् राजा के सभी यज्ञ अत्यधिक दक्षिणा वाले सम्पन्न हुए थे। उन सभी यज्ञो मे सुवर्ण के यूप थे और सभी सुवर्ण की वेदियों वाले थे ॥२१॥

सर्वे देवैः सम प्राप्तैर्विमानस्थैरलङ्कृता।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिता ॥२२
तस्य यज्ञ जगौ गाथा गन्धर्वोनारदस्तथा।
क र्तवीर्य्यस्यराजर्षेमहिमाननिरीक्ष्य सः ॥२३
न नून कार्तवीर्य्यस्य गति यास्यन्तिक्षत्रिया
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्चविक्रमेणश्रुतेन च ॥२४
स हि सप्तसु द्वीपेसु खड्गी चक्रीशरासनी।
रथीद्वीपान्यनुचरन्योगीपश्यतितस्करान् ॥२५
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणा स नराधिप।
स सर्वरत्नसम्पूर्णश्चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥२६
स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपाल स एव हि।
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्ज्जुनोऽभवत् ॥२७

सब विमानों में स्थित देवो के साथ प्राप्त हुए गन्धर्व और अप्सराओं से समलङ्कृत नित्य ही उपशोभित रहा करते थे ॥ २२ ॥ उसके यज्ञ में गन्धर्व तथा नारद ने कार्तवीर्य राजर्षि की महिमा को देखकर उसकी गाथा का गायन किया था ॥ २३ ॥ निश्चय ही क्षत्रिय गण कार्तवीर्य्य की गति को नहीं प्राप्त होंगे जिस प्रकार के इसके यज्ञ-दान-तप-विक्रम और श्रुत आदि हैं इस तरह के सभी विधान अन्य क्षत्रियों के सकता है ही नहीं ॥ २४ ॥ वह महसुबाहु राजा खड्ग धारण करने वाला तथा धनुषासन ग्रहण किए हुए रथी सातो द्वीपों में अनुचरण करते हुए

योगी तस्करों को देखा करता था ॥२५॥ वह नराधिप चिरायी सहस्र वर्षों तक सम्पूर्ण शस्त्रों से सम्पन्न होता हुआ इस भूमण्डल का चक्रवर्ती सम्राट् हुआ था ॥२६॥ वही पशुओं के पालन करने वाला हुआ था और वह ही क्षेत्रपाल भी हुआ था। वह वृष्टि के द्वारा पर्जन्य हुआ था और योगी होने के कारण से वही अर्जुन हो गया था ॥२७॥

योऽसौ बाहु सहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा।
भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनैवभास्कर ॥२८
एष नाग मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युति.।
कर्कोटकसुतांजित्वापुर्य्यां सन्न्यवेशयत् ॥२९
एष वेगं समुद्रस्य प्रावृट्काले भजेत वै।
क्रीडान्नेव सुखोद्भिन्न प्रतिस्रोतोमहीपति ॥३०
ललता क्रीडता तेन प्रतिस्र दाममालिनी।
ऊर्मि भ्रुकुटिसन्त्रासाच्चकिताभ्येतिनर्म्मदा ॥३१
एको बाहुसहस्रेण वगाहे स महार्णव।
करोत्युद्धतवेगान्तु नर्म्मदाप्रावृडुद्धताम् ॥३२
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाने महोदधौ।
भवन्त्यतीव निश्चेष्टा पातालस्था महासुरा ॥३३
चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहातिमिम्।
मारुताविद्धफेनौघमावर्त्ताक्षिप्तदुःसहम् ॥३४
करोत्यालोडयन्नेव दोःसहस्रेण सागरम्।
मन्दारक्षोभचकिता ह्यमृतोत्पादशङ्किता ॥३५
तदा निश्चलमूर्द्धानो भवन्ति च महोरगा.।
सायाह्नेकदलीखण्डानिर्वातस्तिमिताइव ॥३६

यह सम्राट एक सहस्र बाहुओं के द्वारा धनुष की डोरी के घातों से कठिन त्वचा से युक्त शरदकाल का एक सहस्र रश्मियों से सम्पन्न हो

रहा था ॥२८॥ महान् द्युति वाले इसने महिष्मती पुरी में मनुष्यों के मध्य मे कर्कोटक के पुत्र नाग को जीतकर उसी पुरी मे निवेशित कर दिया था ॥२६॥ यह प्रावृट् काल मे भी समुद्र के वेग का सेवन किया करता था। यह महापति प्रतिस्त्रोत मे सुख से उद्भिन्न होता हुआ क्रीडा करता हुआ था विचरण किया करता था ॥ ३० ॥ उसने प्रातसन्दाय मालिनी ललता क्रीडित की थी। ऊर्मि भृकुटो मे सन्त्रास से नर्मदा चकित होकर उसके समीप मे आ गई थी ॥ ३१ ॥ वह एक अपनी सहस्रबाहुओं से महार्णव के अवगाहन करने पर उद्धत वेग वाली नर्मदा को प्रावृड् हाता करता है ॥ ३२ ॥ उसकी सहस्रबाहुओं से महोदधि के क्षोभ्यमाण होने पर पाताल मे संस्थित महासुर अत्यन्त ही निश्चेष्ट हो जाते हैं ॥३३ सहस्र हाथो से सागर का आलोडन करता हुआ ही उसको तोड़ी हुई महान् तरङ्गो मे विलीन मीन और महातिमि वाला—मारुत से आविद्ध फेनों के ओघ वाला तथा आवर्तों (भँवरो) के समाक्षिप्त होने से दुःसह करता है। उस समय मे मन्दार के क्षोभ से चकित अमृत के उत्पादन की शङ्का वाले महारङ्ग निश्चल मूर्द्धा वाले हो जाते हैं। जिस प्रकार से सायाह्न समय मे निर्वात से स्तिमित कदली खण्डो की दशा होती है वैसी दशा महोरगो की थी ॥ ३४, ३५, ३६ ॥

> एव बद्ध्वा धनुर्ज्यायामुत्सिक्तं पञ्चभिःशरैः ।
> लङ्कायांमोहयित्वातुसबलरावणबलात् ॥ ३७
> निर्जित्यबद्ध्वाचानीयमाहिष्मत्याम्बबन्धच ।
> ततोगत्वापुलस्त्यस्तुअर्जुनसप्रसादयत् ॥३८
> मुमोच रक्ष पौलस्त्य पुलस्त्येनेहयान्वितम् ।
> तस्यबाहुसहस्रेण बभूव ज्यातलस्वन. ॥३९
> युगान्ताभ्रसहस्य आस्फोटस्वशनेरिव ।
> अहोबत विधर्वीयं भार्गवोऽय यदाच्छिनत् ॥४०
> तद्वै सहस्र बाहूनां हेमतालवन यथा ।

यत्रापवस्तु संक्रुद्धो ह्यर्जुनं शप्तवान् प्रभुः ॥४१
यस्माद्वनं प्रदग्धं वै विश्रुतं मम हैहय ।
तस्मात्ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्योहरिष्यति ॥४२

लङ्कापुरी में सबल रावण को बलपूर्वक मोहित करके पाँच बाणों से उत्सिक्त करके धनुष की ज्या में इस प्रकार से बाँध दिया था और उसको जीत करके तथा बद्ध करके माहिष्मती अपनी पुरी में ले आया था तथा बाँधकर रख छोड़ा था। इसके अनन्तर पुलस्त्य ऋषि वहाँ आये थे और उन्होंने सहस्रार्जुन को प्रसन्न किया था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पुलस्त्य ऋषि ने वहाँ पर सान्त्वना दी थी और फिर पौलस्त्य (रावण) को छोड़ दिया था। उसकी सहस्र बाहुओं से ज्या तल का शब्द हुआ था ॥ ३९ ॥ यह घोष उसी भाँति हुआ था जैसा कि युगान्त के समय में होने वाले सहस्रों मेघों के आस्फोट से अशनि का घोष हुआ करता है। बड़ी ही प्रसन्नता की बात है कि विधाता के वीर्य इन भार्गव ने छिन्न किया था ॥ ४० ॥ जिस समय में भार्गव प्रभु ने इसकी सहस्रबाहुओं का छेदन हेमताल वन की भाँति किया था और जहाँ पर आप प्रभु ने सक्रुद्ध होकर अर्जुन को शाप दिया था—हे हैहय ! क्योंकि मेरा परम विश्रुत वन तुमने प्रदग्धकर दिया था इसलिये इस दुस्तर कर्म्म को कृतमन्य हरण करेगा ॥ ४१, ४२ ॥

छित्वा बाहुसहस्रं ते प्रथमन्तरसा बली ।
तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वासवधिष्यतिभार्गवः ॥४३
तस्य रामस्तदा त्वासीन् मृत्युः शापेन धीमता
वरश्चैवन्तु राजर्षेः स्वयमेव वृतः पुरा ॥४४
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च तत्र महारथाः ।
कृतास्त्रा बलिन शूरा धर्म्मात्मानो महाबलाः ॥४५
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टः क्रोष्टुस्तथैव च ।
जयध्वजश्च वैकर्ता अवन्तिश्च विशाम्पते ॥४६

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजंघो महाबलः ।
तस्य पुत्रशतान्येव तालजंघा इति श्रुता ॥४७
तेषां पञ्चकुलाख्याता हैहयानां महात्मनाम् ।
वीतिहोत्राश्चशार्याताभोजाश्चावन्तयस्तथा ॥४८
कुण्डिकेराश्चविक्रान्तास्तालजंघास्तथैवच ।
वीतिहोत्रसुतश्चापिआनर्तोनामवीर्य्यवान् ॥
दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रकर्शनः ॥४९॥

बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण भार्गव पहिले वेग के साथ तेरी सहस्र बाहुओं का छेदन करके फिर तेरा वही वध भी कर देंगे ॥४३॥ सूतजी ने कहा—उस समय मे उसकी मृत्यु शाप के द्वारा राम ही थे। धीमान् ने राजर्षि से पहिले ही इस प्रकार का वरदान स्वयं ही वरण कर लिया था ॥४४॥ उसके एक सौ पुत्र हुए थे उनमें पाँच सौ महारथ थे। ये सब कृतास्त्र बलशाली—शूरवीर-धर्मात्मा और महान् बल वाले थे। ॥४५॥ हे विशाम्पते ! शूरसेन-शूर-धृष्ट-क्रोष्ट-जयध्वज-वैकर्त्ता और अवन्ति ये उनके नाम थे ॥४६॥ जयध्वज का पुत्र महान् बलवान् तालजङ्घ हुआ था। उसके भी एक सौ पुत्र थे जो सब तालजङ्घ—इसी नाम से प्रसिद्ध थे ॥४७॥ उन हैहय महात्माओं के पाँच कुल विख्यात थे। वीति होत्र—शार्यात—भोज—अवन्तिप—कुण्डिकेरा-विक्रान्त और तालजंघ थे। वीतिहोत्र का पुत्र भी आनर्त नाम वाला महान् वीर्यवान् हुआ था। उसका पुत्र दुर्जय था जो शत्रुओं का कर्शन करने वाला था। ॥ ४८, ४९ ॥

सद्भावेन महाराज ! प्रजा धर्मेण पालयन् ।
कार्त्तवीर्यार्जुनो नामराजा बाहुसहस्रवान् ॥५०
येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही ।
यस्तस्य कीर्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः ॥५१
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टञ्च लभते पुनः ।

कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः ॥
॥ यथावत् स्विष्टपूतात्मा स्वर्गलोके महीयते ॥५२

हे महाराज ! कार्तवीर्यार्जुन नाम वाला राजा एक सहस्रबाहुओं से समन्वित था और सद्भावना से धर्म के साथ प्रजा का परिपालन किया करता था ॥ ५० ॥ वह ऐसा प्रतापी राजा हुआ था जिसने अपने धनुष के द्वारा सागर पर्यन्त भूमि को जीत लिया था । जो मानव प्रातःकाल में ही उठकर उसके शुभ नाम का कीर्तन किया करता है उसके वित्त का कभी भी नाश नहीं होता है और जो किसी का वित्त नष्ट भी हो गया हो तो वह नष्ट हुआ धन पुनः प्राप्त हो जाया करता है । परम धीमान् कार्तवीर्य के जन्म की गाथा को कोई कहता है तो वह मानव यथावत् स्विष्ट पूतात्मा होकर स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥ ५१, ५२ ॥

२२—क्रोष्टुवंश वर्णन

किमर्थं तद्वनं दग्धमापवस्य महात्मनः ।
कार्तवीर्येण विक्रम्य सूत ! प्रब्रूहि तत्त्वतः ॥१
रक्षिता स तु राजर्षिः प्रजानामिति नः श्रुतम् ।
सकथंरक्षिताभूत्वा अदहत्तत्तपोवनम् ॥ २
आदित्यो द्विजरूपेण कार्तवीर्यमुपस्थितः ।
तृप्तिमेकां प्रयच्छस्वआदित्योऽहनरेश्वर ॥३
भगवन् ! केन तृप्तिस्ते भवत्येव दिवाकर ।
कीदृशं भोजनंदद्मित्व त्वातु विदधाम्यहम् ॥ ४
स्थावरन्देहि मे सर्वंमाहारन्ददतां वर ।
तेन तृप्तो भवेयं वै सा मे तृप्तिर्हि पार्थिव ॥५

न शक्याः स्थवराः सर्वे तेजसाचबलेनच ।
निदग्धु तपतांश्रेष्ठ ! तेन त्वांप्रणमाम्यहम् ॥ ६

ऋषिगण ने कहा—हे सूत जी ! महात्मा आपव का वन किस प्रयोजन के लिए कार्त्तवीर्य ने विक्रम करके दग्ध कर दिया था ? इस गाथा को तात्त्विक रूप से बतलाइये ॥१॥ यह राजर्षि तो प्रजाओं की रक्षा करने वाला था ऐसा ही हमने सुना है फिर वह रक्षिता होते हुए उस तपोवन को दग्ध करने वाला कैसे और क्यों बन गया था ? ॥२॥ सूत जी ने कहा—एक बार ऐसा हुआ था कि भगवान् आदित्य एक द्विज के स्वरूप में होकर कार्त्तवीय के समीप में समुपस्थित हुये थे और उन्होंने कार्त्तवीर्य्य से कहा था कि हे नरेश्वर ! मैं आदित्य हूँ हमको एक तृप्ति दीजिये ॥३॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! हे दिवाकर देव ! किस से आपकी तृप्ति होती है ? आप मुझे बतलाइये कि किस प्रकार का भोजन मैं आपको समर्पित करू । यह आप जब मुझे आज्ञा देंगे तो उसका श्रवण करके ही मैं प्रस्तुत करूँ ॥४॥ आदित्य देव ने कहा—हे पार्थिव ! आप तो दान शीलों में परम श्रेष्ठ महानुभाव हैं । आप मुझे स्थावरों का सब आहार प्रदान कीजिये उससे मैं तृप्त हो जाऊँगा । वही मेरी पूर्ण तृप्ति होगी ॥५॥ कार्त्तवीय ने कहा—हे तपनशीलों में परम श्रेष्ठ ! तेज के द्वारा और बल के द्वारा सम्पूर्ण स्थावर निर्दग्ध नहीं किये जा सकते हैं। इसलिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥६॥

तुष्टस्तेऽहं शरान् दद्मि अक्षयान् सर्वतोमुखान् ।
ये प्रक्षिप्ता ज्वलिष्यन्ति मम तेज समन्विता ॥ ७
आविष्टाममतेजोभि शोषयिष्यन्तिस्थावरान् ।
शुष्कान्भस्मीकरिष्यन्तितेनतृप्तिर्नराधिप ॥ ८
ततः शरास्तदादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयन्जत ।
ततो ददाह सम्प्राप्तान्स्थावरान्सर्वमेवच ॥६
ग्रामास्तथाश्रमाश्चैव घोषाणि नगराणि च ।

तथा वनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥१०
एवं प्राचीसमदहत् ततः सर्वां सपक्षिणः ।
निर्वृक्षा निस्तृणाभूमिर्हताघोरेण तेजसा ॥११
एतस्मिन्नेव काले तु आपवो जलमास्थितः ।
दश वर्षसहस्राणि तत्रास्तेसमहानृषि: ॥१२
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठत्तपोधनः ।
सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महामुनिः ॥१३
क्रोधाच्छशाप राजर्षि कीर्तितं वो यथा मया ।
क्रोष्टो शृणुत राजर्षेवंशमुत्तमपौरुषम् ॥१४

आदित्य देव ने कहा—मैं तुमसे परम सन्तुष्ट हूं। मैं आपको अक्षय और सर्वतोमुख वाले शरों को प्रदान करता हूं। जो प्रक्षिप्त किये हुए जला देंगे क्योंकि वे सब मेरे तेज से समन्वित होंगे ॥७॥ मेरे तेज से समाविष्ट होने से वे समस्त स्थावरों का शोषण कर देंगे। हे नराधिप! वे वृक्षों को भस्मीभूत कर देंगे। उसी से मेरी तृप्ति होगी। ॥८॥ सूत जी ने कहा—इसके अनन्तर आदित्य देव ने उन शरों को अर्जुन के लिए दे दिये थे। इसके पश्चात् सभी सम्प्राप्त स्थावरों को दग्ध कर दिया था ॥९॥ ग्राम, आश्रम, घोष, नगर, वन और सुरम्य उपवन सभी का दाह कर दिया था ॥१०॥ इस प्रकार से सम्पूर्ण प्राची दिशा को तथा सभी पक्षियों को निर्दग्ध कर दिया था। उस समय में इस महादाह के होने से सम्पूर्ण भूमि वृक्षों से रहित और तृणों से एकदम शून्य उस महान् घोर तेज से हो गई थी तथा हतप्राया हो गई थी ॥११॥ इसी काल में आपवी जल में समास्थित थे। वह महान् ऋषि दश सहस्र वर्ष पर्यन्त वहाँ पर थे ॥१२॥ जब उनका वह जल में स्थित रहकर किये जाने वाला व्रत पूर्ण हो गया था तो वह तपोधन उठकर खड़े हुए थे। उस समय में उन महामुनि ने देखा था कि उनका वह सम्पूर्ण आश्रम अर्जुन ने दग्ध कर दिया था ॥१३॥ उस महामुनि को महान् क्रोध समुत्पन्न

होगया था उन्होंने राजर्षि कार्त्तवीर्य्य को तभी शाप दे दिया था जैसा कि मैंने आपको बतलाया था। हे राजर्षिवर ! अब मुझसे क्रोष्टु को परम पौरुष वाला वंश श्रवण करो ॥ १४ ॥

यस्यान्ववाये सम्भूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वह ।
क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महारथ ॥१५
वृजनीवतश्च पुत्रोऽभूत् स्वाहोनाममहाबल ।
स्वाहपुत्रोऽभवद्राजन् ! रुषगुर्वदतावर ॥१६
स तुप्रसूतिमिच्छन् वरुषङ्गु सौम्य रात्मजम् ।
चित्रश्चित्ररथश्चास्य पुत्र र्मभिरन्वित ॥१७
अथ चत्ररथिर्वीरो जज्ञे विपुलदक्षिण ।
शशबिन्दुरिति ख्यातश्चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥१८
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतस्तस्मिन्पुराऽभवत् ।
शशबिन्दोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ॥१९
धीमतां चाभिरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् ।
तेषां शतप्रधानानां पृथुसाह्वा महाबला ॥२०
पृथुश्रवा पृथुयशा पृथुधर्मा पृथुञ्जय ।
पृथुकीर्त्ति पृथुमना राजान शशबिन्दव ॥२१

जिसके वंश में वृष्णि कुल का उद्वहन करने वाले भगवान् विष्णु ने समुद्गति प्राप्त की थी उस क्रोष्टु के महारथ वृजनिवान् नाम वाला पुत्र प्रसूत हुआ था ॥१५॥ वृजनी का पुत्र महान् बल विक्रम शाली स्वाह नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। हे राजन् ! स्वाह के पुत्र का नाम रुषगु था जो बोलन वाले वक्ताओं में अतीव श्रेष्ठ था। ॥१६॥ उपङ्गु ने जब अपनी परम सौम्य सन्तति के होने की इच्छा की थी तो इसके चित्र और चित्ररथ हुए थे। इसके कर्मों से समन्वित चैत्ररथि वीर ने जन्म ग्रहण किया था जोकि बहुत ही अधिक दक्षिणा देन वाला था। यह शशबिन्दु - इसी नाम से विख्यात् हुआ था और चक्रवर्त्ती राजा होगया

था ॥१७॥१८॥ इसमें यह मनुवंश का श्लोक प्राचीन उस समय में गाया गया था कि शशबिन्दु के सौ पुत्रों के सौ ही पुत्र हुए थे ॥१६॥ ये सभी परम धीमान-अमित्र और बहुत अधिक द्रविण और तेज वाले हुए थे। उन सब प्रधानों के महायशस्वी पृथुसाह्व हुए थे। २०॥ पृथुयशा, पृथुधना, पृथुधर्मा, पृथुञ्जय, पृथुकीर्ति, पृथुमना शशबिन्दु के राजा हुए थे ॥२१॥

शंसन्ति च पुराणज्ञा पृथुश्रवसमुत्तमम् ।
अन्तरस्य सुयज्ञस्य सुयज्ञस्तनयोऽभवत् ॥२२
उशना तु सुयज्ञस्य यो रक्षन्पृथिवीमिमाम् ।
आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिक. ॥२३
तितिक्षुरभवत् पुत्र औशन. शत्रुतापन. ।
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुत्तम. ॥२४
आसीन्मरुत्ततनयो वीरः कम्बलबर्हिषः ।
पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान्कम्बलबर्हिषः ॥२५
निहत्य रुक्मकवच परान् कवचधारिणः ।
धन्विनोविविधैर्बाणैरवाप्यपृथिवीमिमाम् ॥२६
अश्वमेधे ददौ राजा ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम् ।
यज्ञेतु रुक्मकवच कदाचित्परवीरहा ॥२७
जज्ञिरे पञ्चपुत्रास्तु महावीर्या धनुर्भृतः ।
रुक्मेषु पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरि. ॥२८

जो पुराणों के ज्ञाता महामनीषी हैं वे उत्तम पृथुश्रवा की बहुत अधिक प्रशंसा किया करते हैं। अन्तर सुयज्ञ के सुयज्ञ तनय हुआ था ॥२२॥ उस सुयज्ञ का पुत्र उशना समुत्पन्न हुआ था जिस परम उत्तम धार्मिक राजा ने इस पृथ्वी की रक्षा करते हुए एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे ॥ २३ ॥ उस उशना का पुत्र औशन शत्रुओं को ताप देने वाला तितिक्षु उत्पन्न हुआ था। इसके पुत्र का नाम मरुत्त था जो राजर्षियों में

परमोत्तम था। ॥ २४ ॥ इस मरुत का पुत्र अनिकौर कम्बल वर्हिष नाम वला हुआ था। कम्बल वर्हिष के पुत्र का नाम रुक्म कवच था जो महान् विद्वान् हुआ था ॥ २५ ॥ इस रुक्म कवच ने दूसरे कवचधारी और धन्वियों का अनेक प्रकार के वाणों के द्वारा निहनन करके इस पृथ्वी को प्राप्त किया था ॥ २६ ॥ फिर उस राजा ने इस भूमि को अपने बल विक्रम से प्राप्त करके भी अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों के लिए दक्षिणा के रूप मे प्रदान कर दी थी। किसी समय मे वीर शत्रुओं के हनन करने वाल रुक्म कवच ने यज्ञ मे पाँच पुत्रों को जन्म दिया था। ये पाँचों पुत्र महान् बलवीर्य वाले और धनुषधारी हुए थे। रुक्मों मे पृथुरुक्म-ज्यामघ-परिघ-हरि थे ॥ २७, २८ ॥

परिघ च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत्पिता ।
रुक्मेपुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रय. ॥२६
तेभ्य प्रव्राजितो राज्यात्ज्यामघस्तुतदाश्रमे ।
प्रशान्तश्चाश्रमस्थश्चब्राह्मणेनाववाधित ॥३०
जगाम धनुरादाय देशमन्य ध्वजी रथी ।
नर्म्मदा नृपएकाकी केवल वृत्तिकामत ॥३१
ऋक्षवन्त गिरिं गत्वा भुक्तमन्यैरुपाविशत् ।
ज्यामघस्याभवद्भार्या चैत्रापरिणतासती ॥३२
अपुत्रो न्यवसद्राजा भार्यामन्यान्नविन्दत ।
तस्यासींद्विजयो युद्धे तत्रकन्यामवाप्तसः ॥३३
भार्यामुवाच सन्त्रासात् स्नुषेय ते शुचिस्मिते ।
एवमुक्ताब्रवीदेनकस्यचेयस्नुषेति च ॥३४

पिता ने परिघ और हरि को विदेह म स्थापित किया था। रुक्मों मे पृथुरुक्म राजा उसके आश्रय वाला हुआ था ॥२६॥ उनमें से ज्यामघ राज्य से प्रव्राजित हो गया था और उस आश्रम में रहने लगा था। वह परम प्रशान्त होकर आश्रम मे स्थित रहता था तथा ब्राह्मण के द्वारा अव

घोषित किया गया था ॥३०॥ ध्वजी रथी धनुष लेकर अन्य देश को चला गया था । वह नृप केवल वृत्ति की कामना से अकेला ही नर्मदा पर चला गया था ॥३१॥ अश्वों के द्वारा युक्त ऋक्षवान् नाम गिरि पर जाकर वह उपविष्ट होगया था । ज्यामघ की भार्या शैब्या परिणत और सती थी । ॥३२॥ यह राजा बिना ही पुत्र वाला रहा करता था और इसने अन्य किसी भी भार्या को नहीं प्राप्त किया था । उसका युद्ध में विजय हुआ था वहाँ पर एक कन्या को प्राप्त किया था ॥३३॥ उसने सम्भ्रम से अपनी भार्या से कहा था कि हे शुचि स्मिते ! यह कन्या तेरी स्नुषा है जब राजा ने भार्या से इस तरह से कहा था तो वह उससे बोली थी कि यह किस की स्नुषा है ? ॥३४॥

यस्तेजनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति ।
तस्मात्सातपसोग्रेणकन्यायाः सम्प्रसूयत ॥३५
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ।
राजपुत्र्यार्वाविद्वान्सस्नुषायाक्रथकैशिकौ ॥
लोमपादं तृतीयन्तु पुत्रं परमधार्मिकम् ॥३६
तस्या विदर्भोऽजनयच्छूरान्रणविशारदान् ।
लोमपादान्मनुःपुत्रोज्ञातिस्तस्यतुचात्मजः ॥३७
कैशिकस्य चिदिः पुत्रो तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः ।
क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥३८
कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान् ।
धृष्टस्यपुत्रोधर्मात्मानिर्वृतिःपरवीरहा ॥३९
तदेको निर्वृतेः पुत्रो नाम्ना तु विदूरथः ।
दशार्हस्तस्यवैपुत्रोव्योमस्तस्यचवन्मृतः ॥
दाशार्हाच्चैव व्योमात्तु पुत्रो जीमूत उच्यते ॥४०
जीमूतपुत्रो विमलस्तस्यभीमरथ सुतः ।
सुतो भीमरथस्यासीत् स्मृतोनवरथ स्तिन ॥४१

तस्य चासीद्दृढरथः शकुनिस्तस्यचात्मज ।
तस्मात्करम्भ कारम्भिर्देवरातोवभूवह ॥४२

राजा ने अपनी भार्या के इस प्रश्न पर उत्तर दिया था कि जो पुत्र तेरे उदर से जन्म ग्रहण करेगा उसी की यह भार्य्या होगी इससे उसने अत्यन्त उग्र तपश्चर्या की थी फिर उस सुभाग–परिणता–सती चैत्रा ने उस कन्या के लिये विदर्भ पुत्र को प्रसूत किया था उस विद्वान् ने राजपुत्री मे क्रथ–कैशिक और तृतीय परम धार्म्मिक लोमपाद को जन्म दिया था। ।३५, ३६।। उसमे विदर्भ ने रण के महान् विशारद अत्यन्त शूरवीर पुत्रों को समुत्पन्न किया था। लोमपाद से मनु पुत्र उत्पन्न हुआ था और उसका आत्मज ज्ञाति हुआ था। कशिक का पुत्र चिदि नामधारी उत्पन्न हुआ था। उससे जो समुत्पन्न हुए थे वे चैद्य नृप कहे गये थे। विदर्भ का पुत्र क्रथ हुआ था और उसका आत्मज कुन्ति नाम वाला उत्पन्न हुआ था ।।३७, ३८।। कुन्ति से धृष्ट नामक सुत ने जन्म ग्रहण किया था जो रण मे परम धृष्ट ही था और परमाधिक प्रताप वाला था। धृष्ट का पुत्र धर्म्मात्मा निर्वृति नामधारी हुआ जो शत्रुवीरो का हनन करने वाला था ।।३९।। उस निर्वृति से केवल एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम विदूरथ था। इसके जो पुत्र प्रसूत हुआ था उसका नाम दशार्ह था तथा इस दशार्ह के ही पुत्र का नाम व्योम हुआ था। इस दाशार्ह व्योम से जीमूत कहे जाने वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ।।४०। जीमूत का पुत्र विमल हुआ था और फिर इसका पुत्र भीमरथ उत्पन्न हुआ था। इस भीमरथ का जो दायाद हुआ था वह नवरथ कहा गया है। ।।४१।। इसका पुत्र दृढरथ हुआ तथा दृढरथ का शकुनि नाम वाला आत्मज उत्पन्न हुआ था। इससे करम्भ और करम्भ से कारम्भि देवरात ने जन्म प्राप्त किया था ।।४२।।

देवक्षत्रोऽभवद्राजा दैवरातिर्महायशा ।
देवगर्भसमो जज्ञे देवनक्षत्रनन्दन ।।४३

मधुर्नाम महातेजा मधोः पुरवसस्तथा ।
आसीत् पुरवसः पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः ॥४४
जन्तुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रसेन्यां पुरुद्वतः ।
ऐक्ष्वाकी चाभवद्भार्या जन्तोस्तस्यामजायत ॥४५
सात्वतः सत्त्वसंयुक्तः सात्वतां कीर्तिवर्धनः ।
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः ॥
प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः ॥४६॥
सात्वतान्सत्त्वसम्पन्नान्कौशल्या सुषुवे सुतान् ।
भजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृप ॥४७
अन्धकं च महाभोजं वृष्णिं च यदुनन्दनम् ।
तेषां तु सर्गाश्चत्वारो विस्तरेणैव तच्छृणु ॥४८
भजमानस्य सृञ्जय्यां बाह्यकायां च बाह्यकाः ।
सृञ्जयस्य सुते द्वे तु बाह्यकास्तु तदाभवन् ॥४९
तस्य भार्ये भगिन्यौ द्वे सुषुवाते बहून् सुतान् ।
निमिं च कृमिलं चैव वृष्णिं परपुरञ्जयम् ॥
ते बाह्यकायां सृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे ॥५०॥

देवरात का पुत्र देवर्षि देवक्षत्र ने जन्म प्राप्त किया था जो महान् यश वाला राजा हुआ था। देवक्षत्र का पुत्र देवधर्मसम उत्पन्न हुआ था ॥४३॥ मधु नाम वाला महान् तेजस्वी हुआ था इस मधु से पुरवस ने जन्म प्राप्त किया था। पुरवस का पुत्र पुरुषों में उत्तम पुरुद्वान् हुआ था ॥४४॥ पुरुद्वान् से वैदर्भी भद्रसेना में जन्तु ने जन्म लिया था। इस जन्तु की भार्या ऐक्ष्वाकी नाम वाली हुई थी। उस भार्या में सत्त्व से सम्पन्न सात्वत नाम वाला सात्वतों की कीर्ति के वर्धन करने वाला पैदा हुआ था। महात्मा ज्यामघ की इस विविध सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करलो जो उपर्युक्त रीति से हुई थी। श्रीमान् राजा सोम का सायुज्य प्रजावान् प्राप्त करता है ॥४६॥ कौशल्या ने सत्त्व से सुसम्पन्न सात्वतों के

प्रसूत किया था। हे नृप ! भजिन—भजमान—दिव्य—देवावृध—अन्धक—महाभोज और वृष्णि हे यदु नन्दन ! ये उत्पन्न हुए थे। उनके चार प्रमुख सर्ग थे। अब विस्तार से उनका श्रवण करो ॥४७, ४८॥ भजमान के सृञ्जयी मे और बाधुका मे बाह्यक हुए थे। सृञ्जय की दो सुताएँ थी। उस समय मे बाह्यक हुए थे ॥४६॥ उसको दोनो बहिनें भार्य्याएँ थीं जिन्होंने बहुत से सुतो को प्रसूत किया था। निमि—कृमिल—वृष्णि और परपुरञ्जय ये सब बाह्यका और सृञ्जयी मे भजमान से समुत्पन्न हुए थे ॥५०॥

जज्ञे देवावृधो राजा बन्धूना मित्रवर्द्धनः ।
अपुत्रस्त्वभवद्राजा चचार परमन्तपः ॥
पुत्र. सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्पृहन् ॥५१
सयोज्य मन्त्रमेवाथ पर्णाशाजलमस्पृशत् ।
तदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा ॥५२
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्मसानिम्नगोत्तमा ।
चिन्तयाथपरीतात्माजगामाथविनिश्चयम् ॥५३
नाधिगच्छाम्यह नारी यस्यामेवविधः सुत. ।
जायेत तस्माद्द्याह भवाम्यथसहस्रशः ॥५४
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः ।
ज्ञापयामास राजान तामियेष महाव्रत ॥५५
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरिता वरा ।
पुत्र सर्वगुणोपेत बभ्रुं देवावृधान्नृपात् ॥५६

बन्धुओं का मित्र वर्धन राजा देववृध ने जन्म ग्रहण किया था किन्तु वह राजा पुत्रहीन ही हुआ था और इसने परम उग्र तप का समाचरण किया था। उसकी यही इच्छा थी कि मेरा जो पुत्र हो वह समस्त गुणों से सुसम्पन्न होना चाहिये ॥५१॥ इसके अनन्तर मन्त्र का संयोजन करके उसने पर्णाशा के जल का उपस्पर्शन किया था। उस समय में उसके

उपस्पर्शन से उस सरिता ने उसका प्रिय कर दिया था ।।५२।। नरपति के कल्याण के हेतु से वह नदी उसके लिये अत्युत्तमा हुई थी । वह चिन्ता से परीत आत्मा वाला था किन्तु इसके उपरान्त वह विनिश्चय को प्राप्त हो गया था ।५३। मेरे पास ऐसी नारी ही नहीं प्राप्त है जिसमें इस प्रकार का सकल गुणाढ़्य यथाभिलषित पुत्र समुत्पन्न होवे । इसलिये मैं आज सहस्रशः होता हूं ।। ५४ ।। इसके अनन्तर वह परम सुन्दर शरीर धारण करने वाली कुमारी होकर उसने राजा को संवित किया था और उस महाव्रत ने उस कुमारी को प्राप्त करने की इच्छा की थी ।।५५।। फिर इसके उपरान्त उस सरिताग्रा ने परम श्रेष्ठा ने नवम मास में देववृध नृप से समस्त गुणगणों से युक्त बभ्रु नामक पुत्र को प्रसूत किया था ।।५६।।

> अनुवंशे पुराणज्ञा गायन्तीतिपरिश्रुतम् ।
> गुणान् देवावृधस्यापि कीर्तयन्तो महात्मनः ।।५७
> यथैव शृणुमो दूरादपश्यामस्तथान्तिकात् ।
> बभ्रुः श्रेष्ठोमनुष्याणां देवैर्देवावृधःसम ।।५८
> षष्टिश्च पूर्वपुरुषाः सहस्राणि च सप्ततिः ।
> एतेऽमृतत्वं सम्प्राप्ता बभ्रोर्देवावृधान्नृप ! ।।५९
> यज्वा दानपतिर्वीरो ब्रह्मण्यश्च दृढव्रतः ।
> रूपवान्सुमहातेजाः श्रुतवीर्यधरस्तथा ।।६०
> अथ कङ्कस्य दुहिता सुषुवे चतुरः सुतान् ।
> कुकुरं भजमानञ्च शमिं कम्बलबर्हिषम् ।।६१
> कुकुरस्यसुतोवृष्णिर्वृष्णेस्तुतनयाधृतिः ।
> कपोतरोमातस्याथतत्तिरिस्तस्यचात्मजः ।।६२
> तस्यासीत्तनुजापुत्रो सखाविद्वान्नल किल ।
> ख्यायतेतस्यनाम्नाचनन्दनादरदुन्दुभि ।।६३

पुराणों के ज्ञाता विद्वान् इस अनुवंश में इस परिश्रुत आख्यान का गायन किया करते हैं और महान् आत्मा वाले देववृध के गुणों का भी

कीर्त्तन किया करते हैं। जिस तरह से हम दूर से श्रवण किया करते हैं उसी भाँति समीप मे पहुँच कर देखते हैं—वभ्रु मनुष्यो में परम श्रेष्ठ है और देवा वृधदेवों के ही समान है ॥५७, ५८॥ हे नृप! साठ और सत्तर सहस्र पूर्व पुरुष देवावृध वभ्रु के अमृतत्व को प्राप्त हो गये थे। ॥५९॥ यह यजन करने वाला—दानवलि—वीर—ब्रह्मण्य—दृढव्रत वाला—रूप लावण्य से युक्त—महान् तेज वाला तथा श्रुतवीर्य्यधर था ॥६०॥ इसके अनन्तर कङ्क की पुत्री ने चार सुतो को प्रसूत किया था। उनके नाम कुकुर—भजमान—शशि और कम्बल बर्हि थे ॥६१॥ कुकुर का पुत्र वृष्णि समुत्पन्न हुआ था और वृष्णि का सुत धृति हुआ था। इसका दायाद कपोतरोमा था और उसका आत्मज तैत्तिरि समुत्पन्न हुआ था। ॥६२॥ उसके तनुजा का पुत्र सखा तथा विद्वान् नल था। उसके नाम न नन्द नोदर दुन्दुभि ख्यात होता है ॥६३॥

तस्मिन्प्रवितते यज्ञे अभिजातः पुनर्वसुः।
अश्वमेध च पुत्रार्थमाजहार नरोत्तम. ॥६४
तस्यमध्येतिरात्रस्यसभामध्यात्समुत्थित.।
अतस्तुविद्वान्कर्मज्ञोयज्वादातापुनर्वसु ॥६५
तस्यासीत् पुनर्मिथुन बभूवाविजित किल।
आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातमतिमतावर। ॥६६
इमाश्चोदाहरन्त्यत्रश्लोकान्प्रतितमाहुकम्।
सोऽासङ्ग नुकर्पाणासध्वजानावरूथिनाम् ॥६७
रथाना मेघघोषाण सहस्राणि दशैव तु।
नासत्यवादी नातेजा नायज्वा नासहप्रद ॥६८
नाशुचिर्नाप्यविद्वान् हिय।भोजेष्वभ्यजायत।
आहुकस्यभृति प्र।प्नाइ-येतद्वै।ग्दुच्यते ॥६९
आहुकश्चाप्यवन्तीषुस्वसारवाहुकी ददौ।
आहुकस्यात्मदुहिता द्वौ पुत्रौसमसूयत। ७०

उस यज्ञ के वितत होने पर पुनर्वसु अभिजात हुआ था। नरों में उत्तम उसने पुत्र की प्राप्ति के लिये अश्वमेध यज्ञ किया था ॥ ६४ ॥ अतिरात्र उसके मध्य में सभा के मध्य से समुत्थित हुआ था। इसीलिये पुनर्वसु यज्वा (यज्ञ न करने वाला)—विद्वान्—कर्मों का ज्ञान रखने वाला और दानशील था। हे मतिमानों में परमश्रेष्ठ! आपके प्रविजित पुत्रों का एक जोड़ा समुत्पन्न हुआ था जिनके नाम आहुक और आहुकी प्रसिद्ध हुए थे ॥ ६५ ॥ यहाँ पर उस आहुक के प्रति इन श्लोकों को उद्धृत करते हैं कि उपासङ्गानुकर्षों के सहित और ध्वजाओं के सहित—वरूथी—मेघघोष रथों की दस सहस्र संख्या उसके पास थी। वह असत्यवादी नहीं था—तेजहीन—यजमन करने वाला और एक सहस्र से कम देने वाला नहीं था ॥ ६६, ६७ ॥ वह अशुचि—अविद्वान् भी नहीं था। जो भोजों में अभिजात हुआ था। आहुक की भृति को प्राप्त हुए थे—यही कहा जाता है ॥ ६८, ६९ ॥ आहुक ने अवन्तीयों में आहुकी को दिया था। आहुक से काश्य दुहिता ने दो पुत्रों को प्रसूत किया था ॥ ७० ॥

देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ ।
देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः ॥७१
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः ।
तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ ॥७२
देवकी श्रुतदेवी च यशोदा च यशोधरा ।
श्रीदेवी सत्यदेवी च सुतापी चेति सप्तमी ॥७३
नवाग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषां तु पूर्वजः ।
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुश्च भूयसः ॥७४
सुतन्तू राष्ट्रपालश्च युद्धमुष्टिः सुमुष्टिदः ।
तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसा कंसवती तथा ॥७५
सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का नेवपराङ्गना ।

उग्रसेन सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः ॥७६
भजमानस्य पुत्रोऽथ रथिमुख्यो विदूरथः ।
राजाधिदेव. शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत् ॥७७

उन दोनों का देवक और उग्रसेन ये दो नाम थे । ये दोनों देवगर्भ के समान थे । देवक के सुत परम वीर और देवों के ही समान थे ॥ ७१ ॥ उनके नाम देववान्—उपदेव—सुदेव और उपरक्षित थे । इनकी सात भगिनियाँ थीं जो वे सब वसुदेव के लिये ही गयी थीं ॥ ७२ ॥ इन सातों के नाम देवकी—श्रुतदेवी—यशोदा—यशोधरा—श्रीदेवी—सत्यदेवी और इनमें सातवी बहिन का नाम वसुतापी हुआ था ॥ ७३ ॥ महाराज उग्रसेन के नौ सुत हुए थे उन सबमे कंस सबसे बड़ा प्रथम पुत्र था। शेष नौ में से आठ के नाम—न्यग्रोध—सुनामा—कङ्क—शङ्कु—सुतन्तु—राष्ट्रपाल—युद्धमुष्टि और समुष्टिद थे । उनकी बहिनें भी पाँच थीं—कंसा—कंसावती—सुतन्तु—राष्ट्रपाली और कङ्का ये उन पाँचों के नाम हैं । ये सभी वराङ्गनाएं थीं । उग्रसेन सहापत्य कुकुरोद्भव व्याख्यान किया गया है । भजमान का पुत्र रथियों में प्रमुख और राजाधिदेव विदूरथ हुआ था । विदूरथ के यहाँ शूर नामक पुत्र ने जन्म लिया था । ॥ ७४, ७५, ७६, ७७ ॥

राजाधिदेवस्य सुतौ जज्ञाते देवसम्मितौ ।
नियमव्रतप्रधानौ शोणाश्व श्वेतवाहन. ॥७८
शोणाश्वस्य सुताः पञ्चशूरा रणविशारदाः ।
शमीच वेदशर्मा च निकुन्त.शत्रुश जित् ॥७९
शमिपुत्रः प्रतिक्षत्र प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः ।
प्रतिक्षेत्र सुतोभोजोहृदीकस्तस्य चात्मजः ॥८०
हृदीकस्याभवन् पुत्रा दश भीमपराक्रमाः ।
कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वा च मध्यम. ॥८१
देवार्हश्चैव नाभश्च भीषणश्च महाबल. ।

अजातो वनजातश्च कर्नीयकारम्भकौ ।।८२
देवाहस्य सुतोविद्वान्जज्ञे कम्बलबर्हिषः ।
असमञ्जाः सुतस्तस्य तमोजास्तस्यचात्मजः ।।८३
अजातपुत्रा विक्रान्तास्त्रयः परमकीर्त्तयः ।
सुदंष्ट्रश्च सुनामश्च कृष्ण इत्यन्धकामता ।।८४
अन्धकानामिमं वंशं यः कीर्त्तयतिनित्यशः ।
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुते नरः ।।८५

राजाधिदेव के दो पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था और ये दोनों ही देवों के सदृश थे। दोनों के नियम और व्रत की प्रधानता थी। इनके शुभ नाम शोणाश्व और श्वेत वाहन थे ॥ ७८ ॥ शोणाश्व के परम शूरवीर और रण विशारद महा विद्वान् पाँच पुत्रों ने जन्म धारण किया था। शमी-वेदशर्मा-निकुन्त-शक्रशत्रुजित-ये उन पाँचों के शुभ नाम हैं। शमी का पुत्र प्रतिक्षत्र हुआ और प्रतिक्षत्र का आत्मज प्रतिक्षेत्र था। प्रतिक्षेत्र का सुत भोज और उसका आत्मज हृदीक उत्पन्न हुआ था ।।७९, ८० ॥ हृदीक के भीम पराक्रम वाले दश पुत्रों ने जन्म लिया था। उनमें कृतवर्मा सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ था और शतधन्वा उनमें मध्यम पुत्र था ।। ८१ ।। शेष देवाह—नाभ—भीषण—महाबल—अजात—वनजात कनीयक—करम्भक ये नाम हैं ॥ ८२ ॥ देवाह की भार्या में देवाह से अतिशय विद्वान् कम्बल बर्हि ने प्रसव प्राप्त किया था। उसके पुत्र असमञ्जा था और इसके पुत्र तमोजा समुत्पन्न हुआ था ॥ ८३ ॥ अजात के परम विक्रान्त अर्थात् बल विक्रम वाले और उत्तम कीर्तिशाली तीन पुत्र हुए थे। सुदंष्ट्र-सुनाम और कृष्ण ये उन तीनों के शुभ नाम थे। ये सब अन्धक माने गये हैं ॥ ८४ ॥ अन्धकों के इस वंश का जो कोई पुरुष नित्य ही कीर्त्तन किया करता है वह प्रजावान नर अपने आपका विपुल वंश प्राप्त किया करता है ॥८५॥

२३—स्यमन्तकमणि का संक्षिप्त चरित्र

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतु: ।
गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम् ॥१
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम् ।
अनमित्रं शिबिंचैव पञ्चमं कृतलक्षणम् ॥२
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापिसुतौ सुतौ ।
प्रसेनश्चमहावीर्यः शक्तिसेनश्च तावुभौ । ३
स्यमन्तकः प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम् ।
पृथिव्या सर्वरत्नानाराजावै सोऽभवन्मणि ॥४
हृदिकृत्वातुबहुशो मणिन्तमभियाचितम् ।
गोविन्दोऽपिनतं लेभेशक्तोऽपिनञ्जहारसः ॥५
कदाचिन्मृगया यातः प्रसेनस्तेन भूषितः ।
यथाशब्दं स शुश्राव बिले सत्वेन पूरिते ॥६
ततः प्रविश्य स बिलं प्रसेनो ऋक्षमैक्षत ।
ऋक्षः प्रसेनञ्च तथा ऋक्ष चैवप्रसेनजित् ॥७

ने भी उसको प्राप्त नहीं किया था। वह सर्व समर्थ होने हुए भी उसका हरण उन्होंने नहीं किया था ॥ ५ ॥ किसी समय में उसी मणि से भूषित होकर प्रसेन मृगया की क्रीड़ा करने के लिये चला गया था। किसी ह्रिदर पशु जैसा उसने बिल में शब्द का श्रवण किया था जो कि ऋक्ष पूरित था ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् मृगया के मत्त प्रसेन ने उसमें प्रवेश किया था। वहाँ पर उसने ऋक्ष को देखा था। वहाँ पर दोनों ऋक्ष और प्रसन में युद्ध हुआ अन्त में ऋक्ष ने प्रसेन पर विजय प्राप्त करली थी ॥ ७ ॥

हत्वा ऋक्षः प्रसेनन्तु ततस्त मणिमाददात् ।
अदृष्टस्तु हतस्तेन अन्तर्बिलगतस्तदा ॥८
प्रसेनन्तु हतं ज्ञात्वा गोविन्द परिशङ्कितः ।
गोविन्देन हतो व्यक्तं प्रसेनो मणिकारणात् ॥६
प्रसेनस्तु गतोऽरण्य मणिरत्नेन भूषित. ।
तं दृष्ट्वा स हतस्तेन गोविन्दः प्रत्युवाच ह ॥
हन्मि नैन दुराचारं शत्रुभूत हि वृष्णिषु ॥१०॥
अथ दीर्घेण कालेन मृगयानिर्गत.पुन ।
यदृच्छयाच गोविन्दो बिलस्याभ्यासमागमत् ॥११
तं दृष्ट्वा तु महाशब्दसचक्रे ऋक्षराड् बली ।
शब्दं श्रुत्वा तु गोविन्द खड्गपाणि प्रविश्य सः ॥
अपश्यज्जाम्बवन्तं त ऋक्षराजं महाबलम् ॥१२॥
ततस्तूर्णं हृषीकेशस्तमृक्षपतिमञ्जसा ।
जाम्बवन्तं स जग्राह क्रोध सरक्त लोचनः ॥१३
तुष्टावैन तदा ऋक्ष. कर्मभिर्वैष्णवैः प्रभुम् ।
ततस्तुष्टस्तु भगवान् वरेणैनमरोचयत् ॥१४

ऋक्ष ने प्रसेन का वध करके उससे वह मणि ग्रहण करली थी। उस समय में वह हत हुआ किसी के द्वारा भी नहीं देखा गया था और

बिल के अन्दर चला गया था ॥ ८ ॥ प्रसेन को हत जानकर गोविन्द बहुत अधिक परिशङ्कित हो गये थे। यही उस समय में स्पष्टतया प्रतीत हो गया था कि गोविन्द ने ही स्यमन्तक मणि के कारण से उसका हनन किया है ॥ ९ ॥ प्रसेन तो उस मणि रत्न से विभूषित होकर ही अरण्य में गया था। उसको देखकर उसी के द्वारा उसको हत किया गया है—यही गोविन्द ने उत्तर दिया था। मैं वृष्णियों शत्रु के समान उस दुराचारी का अवश्य ही हनन करूँगा ॥ १० ॥ इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय के पश्चात् यह इच्छा से गोविन्द पुनः मृगया के लिये निकल कर गये थे। विचरण करते हुए यह इच्छा से ही गोविन्द उसी बिल के समीप में प्राप्त हो गये थे ॥ ११ ॥ उनको देख कर बली ऋक्षराट् ने महान् शब्द किया था। उस ऋक्ष के महारव को श्रवण करके गोविन्द ने हाथ में खड्ग धारण करके उस बिल में प्रवेश किया था और वहाँ पर महान् बलशाली ऋक्षराज उस जाम्बवन्त को जाकर देखा था ॥ १२ ॥ उसको देखकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले होकर हृषीकेश ने तुरन्त ही एकदम उस ऋक्षपति जाम्बवन्त को पकड़ लिया था ॥ १३ ॥ उस समय में ऋक्षराज जाम्बवन्त ने वैष्णव कर्मों के द्वारा इन प्रभु की स्तुति की थी। इसके पश्चात भगवान् परम सन्तुष्ट हो गये थे और वरदान के द्वारा इसको भी प्रसन्न कर दिया था ॥१४॥

इच्छे चक्र प्रहारेणत्वत्तोऽहं मरणंप्रभो ! ।
कन्याचेयममशुभा भर्त्तारंत्वामवाप्नुयात् ॥
योऽय मणि· प्रसेनन्तु हत्वा प्राप्तो मया प्रयो ॥१५॥
तत सजाम्ववन्त त हत्वाचक्रेणवै प्रभुः ।
कृतकर्मा महाबाहुः सत्न्यं मणिमाहरत् ॥१६
ददौ सत्राजितायैन सर्वसात्वदससदि ।
तेन मिथ्यापवादेन सन्तप्ता ये जनार्दने ॥१७
ततस्ते यादवाः सर्वे वासुदेवमथाब्रुवन् ।

अस्माकन्तु मतिर्ह्यासीत्प्रसेनस्तुत्वयाहतः ॥१८
कैकेयस्य सुता भार्यादशसत्राजितः शुभाः ।
तासूत्पन्नाः सुतास्तस्य सर्वलोकेपुविश्रुता ॥
ख्यातिमन्तो महावीर्य्या भङ्गकारस्तु पूर्वजः ॥१६
अथ व्रतवती तस्मात् भङ्गकारात्तु पूर्वजात् ।
सुषुवे सुकुमारीस्तु तिस्रःकमललोचनाः ॥ २०
सत्यभामा वरास्त्रीणां व्रतिनीचदृढव्रता ।
तथा पद्मावतीचैवत्ताश्च कृष्णायसोऽददात् ॥२१

जाम्बवन्त ने कहा—हे प्रभो ! मैं तो अब आप से ही चक्र के प्रहार के द्वारा मृत्यु की ही इच्छा करता हूं । यह एक मेरी परम शुभ एक कन्या है वह आप को ही अपना भर्त्ता प्राप्त कर लेवे । हे प्रभो ! मैंने ही प्रसेन का हनन करके यह मणि प्राप्त की है ॥१५॥ इसके अनन्तर उन प्रभु ने चक्र के द्वारा जाम्बवन्त का उसी की इच्छा के अनुसार हनन कर दिया था और कर्म समाप्त करके महान् बाहुओं वाले प्रभु उस कन्या के साथ ही मणि का समाहरण कर लिया था ॥१६॥ फिर द्वारका में समस्त सात्वतों की सभा में बुलाकर उस मणि को सत्राजित को दे दिया था । फिर जो जनार्दन प्रभु के विषय में मिथ्या अपवाद लगा रहे थे वे बहुत ही सतप्त हुए थे ॥१७॥ इसके उपरान्त सभी यादवों ने भगवान् वासुदेव से कहा था कि हमारा सबका विचार तो यही निश्चित हो गया था कि प्रसेन को आपने ही मार दिया है ॥१८॥ कैकेय की दश शुभ सुताएँ सत्राजित् की भार्याएँ थीं । उस सत्राजित् के उन दशों भार्य्याओं में समुत्पन्न पुत्र समस्त लोकों में विश्रुत थे ॥१६॥ ये सब बड़ी ही अधिक ख्याति वाले थे और महान् बल-वीर्य से सुसम्पन्न हुए थे । इनमें भृङ्गकार सबसे प्रथम उत्पन्न वाला ज्येष्ठ था । इसके अनन्तर उस पूर्वज भृङ्गकार से व्रतवती पत्नी ने कमल के सदृश नेत्रों वाली परम सुन्दरी तीन सुकुमारी कन्याओं को प्रसूत किया था ॥२०॥ सत्यभामा सभी स्त्रियों में परम श्रेष्ठ थी—

वतिनी सुदृढवत वाली थी और तीसरी पद्मावती थी। उन तीनों को ही उसने श्रीकृष्ण के लिये दे दिया था ॥२१॥

अनमित्रात् शनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात् ।
सत्यवांस्तस्य पुत्रस्तु सात्यकिस्तस्य चात्मजः ॥२२

सत्यवान्युयुधानस्तु शिनेर्नप्ताप्रतापवान् ।
असङ्गो युयुधानस्य द्युम्निस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥२३
द्युम्नेयु गन्धरःपुत्रइतिशैन्याः प्रकीर्तिताः ।
अनमित्रान्वयोह्येषव्याख्यातः वृष्णिवंशजः ॥२४

अनमित्रस्य सञ्जज्ञे पृथ्व्या वीरोयुधाजितः ।
अन्यौतु तनयौ वीरौ वृषभः क्षत्रएव च ॥२५
वृषभः काशिराजस्य सुता भार्यामविन्दत ।
जयन्तस्तु जयन्त्यान्तुपुत्र समभवच्छुभः ॥२६
सदा यज्ञोऽति वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः ।
अक्रूरःसुषुवे तस्मात्सदायज्ञोऽतिदक्षिणः ॥ २७

॥३१॥इन के पश्चात् आश्विनी जो पुत्र हुए थे उनके शुभ नाम ये होते हैं—पृथु, विपृथु, अश्वत्थामा, सेवाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, वृष्टिनेमि, सुधर्मा, शर्याति, अभूमि, वर्णभूमि, श्रमिष्ठ, श्रवण। इस मिथ्या अभिशस्ति को जो जो भगवान् कृष्ण से अपोहित की गयी है जो भी कोई जानता है तथा नित्य नियम से इसका पाठ तथा श्रवण किया करता है वह पुरुष कभी भी किसी के भी द्वारा मिथ्याभिशाप से अभिशाप्य नहीं होगा ॥३२।३३।३४॥

२४—कृष्णोत्पत्ति वर्णन

ऐक्ष्वाकी सुषुवे शूर ख्यातमद्भुतमीढुषम्।
पौरुषाज्जज्ञिरे शूरात् भोजायांपुत्रकादश ॥१
वसुदेवो महाबाहु पूर्वमानकदुन्दुभिः।
देवमार्गस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः॥ २
अनाधृष्टिः शिनिश्चैव नन्दश्चैव ससृञ्जयः।
श्याम शमीक संयूप पञ्चचास्यवराङ्गनाः॥ ३
श्रुतकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवी श्रुतश्रवाः।
राजाधि देवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ॥४
कृतस्य तु श्रुता देवी सुग्रह सुषुवे सुतम्।
कैकेय्यां श्रुतकीर्त्यान्तु जज्ञे सोऽनुव्रतोनृप. ॥ ५
श्रुतश्रवसि चैद्यस्य सुनीथः समपद्यत।
वार्षिका धर्मशारीर स बभूवारिमर्दनः ॥६
अथ सख्येन वृद्धेऽसौ कुन्तिभोजेसुतांददौ।
एवकुन्तीसमाख्यातावसुदेवस्वसा पृथा॥ ७

षष्ठो भद्र विदेहश्च कंसः सर्वानघातयत् ॥१३
प्रथमाया अमावास्या वार्षिकी तु भविष्यति ।
तस्या जज्ञे महाबाहुः पूर्वंकृष्ण प्रजापतिः ॥१४

वसुदेव ने उस को पाण्डु के लिये प्रदान कर दी थी जो कि उस की परम प्रशस्त भार्य्या हुई थी । उसने पाण्डु के अर्थ के द्वारा महारथ देव पुत्रों का जन्म दिया था ॥८॥ धर्म से युधिष्ठर ने जन्म लिया था। वायु देव से वृकोदर ने प्रसव प्राप्त किया था। इन्द्रदेव ने धनञ्जय को समुत्पन्न किया था जो शक्र के ही तुल्य बल पराक्रम वाला हुआ था। ॥९॥ माद्रवती ने तो ऐसा सुनते हैं अश्विनी कुमारों से दो पुत्र नकुल और सह समुत्पन्न हुए थे जो रूप लावण्य शील और अनेक गुण गणों से समन्वित थे ॥ १० ॥ पौरवी रोहिणी नाम वाली भार्य्या ने आनक दुन्दुभि से परम विख्यात ज्येष्ट सुत बलराम की प्राप्ति का लाभ उठाया था और उस प्रिय सुत का सारण भी हुआ था ॥११॥ अन्य पुत्र जो हुए थे उनके नाम इस प्रकार से हैं—दुर्द्दम—दमन—सुभ्र—पिण्डारक महाहनु। उस समय मे चित्रा अक्षी दो कुमारियो ने भी रोहिणी मे जन्म ग्रहण किया था ॥१२॥ देवकी मे शौरि से कीतिमान् सुषेण—उदासी—भद्रसेन तथा ऋषिवास—छटवाँ पुत्र भद्र नाम वाला था और विदेह ये पुत्र समुत्पन्न हुए थे किन्तु कंस ने सभी का घात कर दिया था ॥१३॥ प्रथम अमावस्या से वार्षि की होगी। उसमे महान् बाहुओ वाले प्रजापति श्री कृष्ण पूर्व मे समुत्पन्न हुए थे ॥१४॥

अनुजात्व भवत् कृष्णात् सुभद्राभद्रभाषिणा ।
देवकयान्तु महातेजा जज्ञे शूरोमहायशा. ॥१५
सहदेवस्तु ताम्रायां जज्ञे शौरिकुलोद्वहः ।
उपासङ्गधर लेभे तनय देवरक्षिता ॥
एवा वन्य ञ्च सुभगाङ्क सस्तामभ्यघातयत् ॥१६॥
विजय रोचमानञ्च वद्ध मानन्तु देवलम् ।

एते सर्वे महात्मानोह्यपदेव्याः प्रजज्ञिरे ॥१७
अवगाहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत ।
वृकदेव्यां स्वयं जज्ञे नन्दको नामनामतः ॥१८
सप्तमं देवकी पुत्रं मदन सुषुवे नृप ।
गवेषण महाभाग सग्रामेष्व पराजितम् ॥१९
श्रद्धा देव्या विहारे तु वने हि विचरन् पुरा ।
वैश्यायामदधात् शौरि.पुत्रं कौशिकमग्रजम् ॥२०
सुतनूरथराजो च शौरेरास्तां परिग्रहो ।
पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजो बली ॥२१

कृष्ण से पीछे एक अनुजा सुभद्रा नाम वाली समुत्पन्न हुई थी जो परम भद्र भाषण करने वाली थी। देवकी में तेजस्वी तथा महा यशस्वी शूर ने जन्म ग्रहण किया था ॥१५॥ शौरिकुल का उद्वहन करने वाले सहदेव ने ताम्रा में जन्म प्राप्त किया था और देवरक्षिता ने उपासङ्ग-धर पुत्र प्राप्त करने का लाभ उठाया था। परम सुमना एक कन्या समुत्पन्न हुई थी किन्तु उसी समय में दुष्ट कंस ने उसका घात कर दिया था ॥१६॥ विजय–रोचमान—वर्द्धमान–देवल ये समस्त महान् आत्माओं वाले पुत्रों ने उपदेवी के उदर से जन्म प्राप्त किया था ॥१७॥ महात्मा अवगाह वृकदेवी से उत्पन्न हुआ था। वृकदेवी में नन्दक नाम धारी ने स्वयं जन्म प्राप्त किया था ॥१८॥ हे नृप! देवकी ने सातवां पुत्र मदन का प्रसून किया था और संग्रामों में पराजित न होने वाले महाभाग गवेषण नामक पुत्र को उत्पन्न किया था ॥१९॥ परम प्राचीन समय में श्रद्धा देवी के वन में विहार के समय में विचरण करते हुए शौरि ने वैश्या में अग्रज पुत्र कौशिक को धारण किया था ॥२०॥ सुतनु रथराजो ये दो शौरि के परिग्रह हुए थे ॥२१॥

जरानाम निषादोऽभूत् प्रथम. स धनुर्धरः ।
सौभद्रश्च भवश्चैव महासत्वो बभूवतुः ॥२२

देवभागसुतश्चापि नाम्नाऽसावुद्धवः स्मृतः ।
पण्डितं प्रथमं प्राहुर्देवश्रवः समुद्धवम् ॥२३
ऐक्ष्वाक्यलभतापत्य अनाधृष्टेर्यशस्विनी ।
निर्धूतसत्वं शत्रुघ्न श्राद्धस्तस्मादजायत ॥२४
करूपायानपत्याय कृष्णस्तुष्टः सुतन्ददौ ।
सुचन्द्रन्तु महाभाग वीर्यवन्त महाबलम् ॥२५
जाम्बवत्याः सुतावेतौ द्वौ च सत्कृतलक्षणौ ।
चारुदेष्णश्च साम्बश्चवीयवन्तौ महाबलौ ॥२६
तन्तिपालश्च तन्तिश्च नन्दनस्य सुतावुभौ ।
शमीकपुत्राश्चत्वारोविक्रान्ताःसुमहाबलाः ॥
विराजश्च धनुश्चैव श्याम्यश्च सञ्जयस्तथा ॥२७
अनपत्योऽभवच्छ्याम शमीकस्तुवनंययौ ।
जुगुप्समानोभोजत्वं राजर्षित्वमवाप्तवान् ॥२८
कृष्णास्य जन्माभ्युदय य कीर्तयतिनित्यशः ।
शृणोति मानवोनित्यसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२९

थे जिनके नाम विराज—धनु—श्याम और सृञ्जय थे ॥२७॥ इनमें श्याम अपत्य से रहित हो गया था अर्थात् उसके कोई भी सन्तति नहीं हुई थी। शमीक तो वन में चला गया था और भोजत्व की जुगुप्सा करता हुआ वह राजर्षि के पद को प्राप्त हो गया था ॥२८॥ यह श्रीकृष्ण के जन्म का अभ्युदय है इसको जो पुरुष नित्य ही नियम से कीर्तित किया करता है अथवा इसका श्रवण किया करता है वह मानव समस्त प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ॥२९॥

२५—कृष्णसन्तान वर्णन

अथ देवो महदेव पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः ।
विहारार्थं स देवेशो मानुषेष्विह जायते ॥१
देवक्यां वसुदेवस्य तपसा पुष्करेक्षण ।
चतुर्बाहुस्तदा जातोदिव्यरूपोज्वलन्श्रिया ॥२
श्रीवत्सलक्षणं देवं दृष्ट्वा लक्षणैः ।
उवाच वसुदेवस्त रूप संहर वै प्रभो ॥३
भीतोऽहं देव ! कंसस्य ततस्त्वेतद्ब्रवीमि ते ।
ममपुत्राहतास्तेनज्येष्ठास्तेभीमविक्रमाः ॥४
वसुदेववचः श्रुत्वा रूप संहरतेऽच्युत. ।
अनुज्ञाप्य तत. शौरि नन्दगोपगृहेऽनयत् ॥५
• दत्वैन नन्दगोपस्य रक्ष्यतामिति चाब्रवीत् ।
अतस्तु सव कल्याणंयादवानांभविष्यति ॥६

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर महान् देव देव प्रजापति श्री कृष्ण पूर्व मे विहार के लिये ही वह देवेश्वर यहाँ संसार मे मनुष्यों में समुत्पन्न हुआ करते है ॥१॥ वसुदेव की तपस्या से ही देवकी मे पुष्करेक्षण—चार भुजाओं वाले दिव्य रूप से समन्वित थे। वे ज्वालाद-

मान होते हुए उस समय मे प्रादुर्भूत हुए थे ॥२॥ श्रीवत्स के धारण करने के लक्षण वाले तथा दिव्य लक्षणो से संयुत देव का उस समय मे दर्शन करके ही वसुदेव ने उनसे प्रार्थना की थी कि हे प्रभो ! आप अपने स्वरूप को संहृत कर लीजिए ॥३॥ हे देव ! मैं राजा कंस से अत्यन्त ही भय-भीत हो रहा हू इसीलिये आपसे यह निवेदन करता हू । इस दुष्ट कंस ने आपसे पहिले समुत्पन्न हुए आपके ज्येष्ठ भाई मेरे पुत्रों का हनन कर डाला है जो कि भीम बल पराक्रम स युक्त थे ॥४॥ वसुदेव की प्रार्थना के इन वचनो का श्रवण करके भगवान् अच्युत ने अपने उस दिव्य स्वरूप का संवरण कर लिया था । इसके उपरान्त उन्होने शौरिको अनुज्ञापन दिया था और वह उनको नन्द गोप के गृह मे ले गये थे ॥ ५ ॥ इनको वसुदेव ने नन्द गोप के सुपुर्द करके यह कहा था कि आप ही मेरे इस पुत्र की रक्षा कीजिए । इनसे ही सब यादवों का कल्याण होगा ॥६॥

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी ।
नन्दगोपश्च कस्त्वेष यशोदा च महाव्रता ॥७
यो विष्णुं जनयामास यश्च तातेत्यभाषत ।
या गर्भं जनयामास यायेन स्वभ्यवर्द्धयत् ॥८
पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता ।
ब्रह्मणः कश्यपस्त्वांशः पृथिव्याश्च दितिस्तथा ॥९
अथ कामान् महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत् ।
ते तया काङ्क्षितान्नित्यमजातस्य महात्मनः ॥१०
सोऽवतीर्णो मही देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।
मोहयन्सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥११
नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः ।
कर्तुं धर्मस्य संस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥१२
रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती तथा ।

सुभामाचतथाशैब्यागान्धारीलक्ष्मणा तथा ।।१२
मित्रविन्दा चकालिन्दीदेवीजाम्ववतीतथा ।
सुशीलाचतथामाद्रीकौशल्याविजयातथा ।।
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश ।।१४

मुनिगण ने कहा—यह वसुदेव कौन थे और परम यशस्विनी यह देवकी कौन थी ? नन्द नाम वाला यह जो गोप आपने बतलाया था यह भी कौन हुआ था तथा महान् व्रत वाली यशोदा कौन थी ? ।।७।। जिसने भगवान् विष्णु को पुत्र के रूप मे जनन दिया था और जिसने लाल कह कर पुकारा था जिसने अपने गर्भ में रखकर इनको जन्म ग्रहण कराया था और जिसने इनका बाल्यावस्था मे परिवर्द्धन किया था ।।८।। सूतजी ने कहा—कश्यप नाम वाले पुरुष थे और अदिति नाम वाली उनकी प्रिया बताई गयी है । यह कश्यप तो ब्रह्मा जी के अंश थे और अदिति पृथ्वी का अंश हुई थी ।। ९ ।। इसके उपरान्त महान् बाहुओं वाले प्रभु ने देवकी की कामनाओं को पूर्ण कर दिया था । जो नित्य ही अजात है ऐसे अजन्मा प्रभु को उसने पुत्र के रूप मे देखने की इच्छा की थी ।।१०।। इसी लिये वह देव इस मही मण्डल में अवतीर्ण हुए थे और फिर मानुषी तनु में उन्होंने प्रवेश किया था । यह प्रभु तो योगात्मा थे । इन्होंने अपनी योग माया से ही समस्त भूतों को मोहित कर दिया था ।।११। जिस समय में इस मही मण्डल मे धर्म नष्ट हो गया था उसी समय मे प्रभु विष्णु ने वृष्णि कुल में जन्म ग्रहण किया था । इनके वृष्णि कुल मे उत्पन्न होकर अवतार धारण करने का प्रमुख प्रयोजन ही धर्म का संस्थापित करना और बढ़े हुए दुष्ट असुरों का नाश करना ही था ।। १२ ।। जब प्रभु ने श्री कृष्णावतार धारण किया था उस समय मे प्रभु की षोडश सहस्र पत्नियाँ थीं । उनमें प्रमुख नामों का ही थोड़ा सा प्रदर्शन यहाँ पर किया जाता है—रुक्मिणी—सत्यभामा - [illegible]या—नाग्नजिनी—सुभामा—शैब्या—गान्धारी—लक्ष्मणा—मित्रविन्दा—कालिन्दी देवी—

जाम्बवती—सुशीला—माद्री—कौशल्या तथा विजया एवं आदि देवियाँ थी ॥१३, १४॥

> रुक्मिणी जनयामास पुत्रं रणविशारदम् ।
> चारुदेष्णं रणे शूरं प्रद्युम्नञ्च महाबलम् ॥१५
> सुचारुं भद्रचारुं च सुदेष्णं भद्रमेव च ।
> परशुञ्चारु गुप्तञ्च चारु भद्रं सुचारुकम् ॥
> चारुहास कनिष्ठञ्च कन्या चारुमती तथा ॥१६॥
> जज्ञिरे सत्यभामाया भानुर्भ्रमरतेक्षणः ।
> रोहितोदीप्तिमाश्चैव ताम्रश्चक्रो जलन्धमः ॥१७
> चतस्रोजज्ञिरेतेषास्वसारस्तुयवीयसी. ।
> जाम्बवत्या.सतोजज्ञे साम्ब समिति शोभन. ॥१८
> मित्रवान्मित्रविन्दश्चमित्रविन्दावसङ्गना ।
> मित्रबाहु.सुनीथश्चना.नजित्याःप्रजाहिता ॥१९
> एवमादीनि पुत्राणा सहस्राणि निबोधत ।
> अशीतिश्च सहस्राणिवासुदेव सुतास्तया ॥
> लक्षमेक तथा प्रोक्तं पुत्राणाञ्च द्विजोत्तमा ॥२०
> उपासङ्गस्य तु सुतो वज्र. सक्षिप्त एव च ।
> भूरी.द्रमनो भूरिश्च गवेपण सुतावुभौ ॥२१

रुक्मिणी देवी ने रण मे विशारद पुत्र को जन्म दिया था। चारुदेष्ण रणविद्या में महान् शूर था—प्रद्युम्न महान् बलवान् था—सुचारु—भद्रचारु—सुदेष्ण—भद्र—परशु—चारुगुप्त चारुभद्र—सुचारुक—चारुहास—कनिष्ठ ये पुत्र हुए थे तथा चारुमती नाम वाली एक कन्या थी ॥१५, १६॥ सत्यभामा मे भानुभ्रमरतेक्षण—रोहित—दीप्तिमान्—ताम्रचक्र—जलन्धम ये पुत्र हुए थे और उन सबकी चार छोटी बहिनो ने जन्म ग्रहण किया था। जाम्बवती के समिति शोभन साम्ब पुत्र ने जन्म लिया था ॥१७॥ ॥१८॥ मित्रविन्दा से मित्रवान् और मित्रविन्द पुत्र हुए थे। नाग्नजिता

की प्रजा मित्रबाहु और सुनीथ हुई थी अर्थात् इन नामों वाले पुत्र ने प्रसव प्राप्त किया था। इस प्रकार से सहस्रों ही पुत्र समुत्पन्न हुए थे— ऐसा ही समझ लेना चाहिए। अस्सी सहस्र तो वासुदेव प्रभु के ही पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे द्विजों में परमोत्तम गण! फिर उन पुत्रों के जो पुत्र हुए थे उनकी संख्या एक लाख थी ॥१९, २०॥ उपासङ्ग के वज्र और क्षिप्त ये दो पुत्र हुए थे। भूरीन्द्र सेन और भूरि ये दो पुत्र गवेषण के समुत्पन्न हुए थे ॥२१॥

प्रद्युम्नस्य तु दायादो वैदर्भ्यां बुद्धिसत्तमः ।
अनिरुद्धो रणे रुद्धः जज्ञेऽस्य मृगकेतनः ॥२२
काश्या सुपार्श्वतनया साम्बाल्लेभे तरस्विनः ।
सत्यप्रकृतयो देवाः पञ्च वीराः प्रकीर्तिताः ॥२३
तिस्रः कोट्यः प्रवीराणां यादवानां महात्मनाम् ।
षष्टिः शतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः ।
देवांशाः सर्व एवेह उत्पन्नास्ते महौजसः ॥२४
देवासुरे हता ये च असुरा ये महाबलाः ।
इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान् ॥२५
तेषामुत्सादनार्थाय उत्पन्ना यादवे कुले ।
कुलानां शतमेकञ्च यादवानां महात्मनाम् ॥२६
सर्वमेतत् कुलं यावद्वर्तते वैष्णवे कुले ।
विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः ॥
निदेशस्थायिनस्तस्य कथ्यन्ते सर्वयादवाः ॥२७॥

वाले और महान् बलवान् हुए थे। ये महान् ओज वाले सभी यहा पर देवताओ के अंशावतार ही समुत्पन्न हुए थे ॥२४॥ देवासुर संग्राम मे जो महान् बलवान् असुर हत हो गये थे। वे ही सब यहाँ पर मनुष्यों में समुत्पन्न होगये थे जो कि सब मानवो को बाधाएँ पहुँचाया करते हैं। उन सबके उत्पादन करने के लिये ही यादव कुल मे उत्पन्न हुए थे। महात्मा यादव कुलो का एक शत परिवार था यह समस्त कुल अब तक वैष्णव कुल मे वर्त्तमान है। भगवान् विष्णु उनके प्रणेता थे और प्रमुख में व्यवस्थित थे। समस्त यादवगण उनके निर्देश मे स्थित रहने वाले कहे जाते हैं ॥२६, २७॥

२६— ययाति वंश की शाखाओं का वर्णन

तुर्वसोस्तुसुतोगर्भोगोभानुस्यचात्मज.।
गोभानोस्तुसुतोवीरस्त्रिसारिरपराजितः ॥१
करन्धमस्तु त्रैसारिर्मरुतस्तस्य चात्मजः।
दुष्यन्त पौरवस्यापि तस्यपुत्रो ह्यकल्मषः ॥२
एवं ययातिशापेन जरासंक्रमणे पुरा।
तुर्वसो पौरव वंश प्रविवेश पुरा किल ॥३
दुष्यन्तस्य तु दायादोवरूथोनामपार्थिवः।
वरूथात्तु तथावीरः सन्धानस्तस्यचात्मज. ॥४
पाण्ड्यश्चकेरलश्चैवचोल.कर्णस्तथैवच।
तेषा जनपदास्फीताः पाण्ड्याश्चोला.सकेरलाः ॥५
द्रुह्यस्य तनयौ शूरौ सेतु. केतुस्तथैव च।
सेतु पुत्रः शरद्वांस्तु गन्धारस्यस्यचात्मजः ॥६
ख्यायते यस्य नाम्नास गन्धारविषयो महान्।
आरट्टदेशजास्तस्य तुरगावाजिनावराः ॥७

महा महर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—तुर्वसु का सुत गर्भ हुआ था और इसका आत्मज गोभानु था। गोभानु का पुत्र अपराजित वीर

त्रिसारि उत्पन्न हुआ था ।।१।। करन्धम त्रिसारि का आत्मज था और इसका पुत्र भरत समुत्पन्न हुआ था । पौरव का पुत्र दुष्यन्त था तथा उसका पुत्र अकल्मष हुआ था ।।२।। इस प्रकार से प्राचीन काल में ययाति के शाप से पहिले जरा के संक्रमण में तुवसु के पौरव वंश ने प्रवेश किया था । ३।। दुष्यन्त का दायाद वरुथ नाम वाला पार्थिव हुआ था । वरुथ में सन्धान वीर पुत्र हुआ था । इसके आत्मज पाण्ड्य-केरल-चोल और कर्ण थे । इनके जनपद भी महान् स्फीत थे जो पाण्ड्य-चोल और केरल नाम वाले ही हुए थे ।।४, ५।। द्रुह्य के दो पुत्र थे जो बड़े ही शूर थे उनके नाम सेतु और केतु थ । सेतु का पुत्र शरद्वान् हुआ था और फिर इसका पुत्र गान्धार नाम वाला था ।। ६।। इसी के नाम से महान् देश भी गान्धार ख्यात हुआ था । उसके आरट्ट देश में उत्पन्न होने वाले तुरग आजों में परम श्रेष्ठ थे ।।७।।

गन्धारपुत्रोऽभवत्तु धृतस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
धृता च विदुषोजज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मज ।।८
प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते ।
म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे उदीचीन्दिशमाश्रिता ।।९
अनोश्चैव सुता वीरास्त्रय परमधार्मिकाः ।
समानरश्चाक्षुपश्च परमेषु तथैव च ।। १०
सभान स्यपुत्रस्तु विद्वान्कोलाहलो नृप. ।
कोलाहलस्य धर्मात्मा सञ्जयोनामविश्रुतः ।।११
सञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो नाम पुरञ्जयः ।
जनमेजयो महाराज ! पुरञ्जयसुतोऽभवत् ।।१२
जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुत ।
आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशाभवत् ।।१३
महामना सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिक ।
सप्तद्वीपेश्वरो जज्ञे चक्रवर्ती महामनाः ।।१४

उस गान्धार का पुत्र धर्म हुआ था और उसका आत्मज धृत नाम वाला था। विद्वान् धृत से प्रचेता ने जन्म प्राप्त किया था ।।८।। प्रचेता के एक सौ पुत्र हुए थे वे सभी राजा हुए थे। ये सब म्लेच्छ राष्ट्रों के अधिप थे और सभी ने उत्तरी दिशा का समाश्रय ग्रहण किया था। ।।९।। अनु के तीन परम धार्मिक तथा वीर पुत्रों ने जन्म प्राप्त किया था। उन तीनों के नाम सभानर—चाक्षुप और परमेषु ये तीन थे ।।१०।। सभानर का पुत्र परम विद्वान् कोलाहल नामधारी नृप हुआ था फिर इस कोलाहल का पुत्र भी धर्मात्मा सञ्जय नाम से विश्रुत उत्पन्न हुआ था। ।।११। सञ्जय के पुत्र का नाम वीर पुरञ्जय हुआ था। हे महाराज! के जनमेजय पुरञ्जय के ही आत्मज हुए थे ।१२।। राजर्षि जनमेजय महाशाल नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया थ । यह राजा इन्द्र के ही समान प्रतिष्ठित यश वाला हुआ था ।।१३।। इस महाशाल के महामना नाम वाला परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ था। महामना सातों द्वीपों का स्वामी चक्रवर्ती सम्राट पैदा हुआ था ।।१४।।

महामनास्तु द्वौ पुत्रौ जनयामास विश्रुतौ ।
उशीनरञ्च धमज्ञ तितिक्ष चैव तावुभौ ।।१५
उशीनरस्य पुत्रस्तु पञ्चराजर्षिसम्भवा ।
भृशा कृशानवा दर्शा या च देवी दृषद्वती ।।१६
उशीनरस्य पुत्रास्तु तासु जाता कुलोद्वहा ।
तपसा ते तु महता जातावद्वस्यधार्मिका ।
भृशायास्तु नृग पुत्रो नवायानव एवच ।
कृशायास्तु कृशो जज्ञे दर्शाया सुव्रतोऽभवत ।।
दृषद्वत्या सुतश्चापि शिविरौशीनरो नृप ।।१८
शिवेस्तु शिवय पुत्राश्चत्वारो लोक विश्रुता ।
पृथुदर्भ सुवीरश्च केकयो भद्रकस्तथा ।।१९
तेषां जनपदा स्फीता कयाभद्रकास्तथा ।

सौवीराश्चैवपौरश्च नृगस्यकेकयास्तथा ॥२०
सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा कृशस्य वृषला पुरी ।
नवस्य नवराष्ट्रन्तु तितिक्षोस्तु प्रजा शृणु ॥२१

महाराज महामना ने परम प्रसिद्ध दो पुत्रों को जन्म दिया था। उन दोनों में धर्म का ज्ञाता एक उशीनर था और दूसरे का नाम तितिक्षु था ॥ १५ ॥ उशीनर के पुत्र पञ्च राजर्षि सम्भव थे। उशीनर की मृषा कृशानवा-दर्शा और दृषद्वती देवी ये पत्नियाँ थीं ॥ १६ ॥ उन्हीं में उशी-नर के कुल के उद्वहन करने वाले पुत्र समुत्पन्न हुए थे। वे महान् तप के कारण परम धार्मिक हुए थे ॥ १७ ॥ मृषा के पुत्र का नाम नृग था। नवा का नव था। कृशा का कृश हुआ था और दर्शा के पुत्र का नाम सुव्रत था। तथा दृषद्वती के पुत्र का शुभ नाम औशीनर शिवि नृप हुआ था ॥ १८ ॥ राजा शिवि के शिवय चार पुत्र लोक में परम प्रसिद्ध समु-त्पन्न हुए थे। उनके नाम वृषदर्भ-सुवीर-कैकय और मद्रक थे ॥ १९ ॥ इन चारों के जो जनपद थे वे भी अतीव ऊँचे हुए विशाल थे जो उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध थे। कैकय-मद्रक-सौवीर-पौर तथा नृग केकय थे। सुव्रत की अम्बष्ठा तथा कृश की पुरी का नाम वृषला था। नव के नव राष्ट्र था। अब यहाँ से आगे तितिक्षु की जो प्रजा हुई थी उसको सुनिये ॥२०, २१ ॥

तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः ।
वृषद्रथः सुतस्तस्य तस्य सेनोऽभवत्सुतः ॥ २२
सेनस्य सुतपा जज्ञे सुतपस्तनयोबलि ।
जातो मानुषयोन्यान्तु क्षीणे वंशे प्रजेच्छया ॥२३
महायोगी तु स बलिर्बद्धो यर्धर्महात्मना ।
पुत्रानुत्पादयामास क्षेत्रजान्पञ्चपार्थिवान् ॥२४
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च ।
पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा बालेय क्षेत्रमुच्यते ॥

वालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वशकरा प्रभो ॥२५
बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन धीमतः ।
महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम् ॥२६
संग्रामे च प्यजेयत्व धर्मे चैवोत्तमा मतिः ।
त्रैकाल्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा ॥२७
जयञ्चाप्रतिमं युद्धे धर्मे तत्त्वार्थदर्शनम् ।
चतुरो नियतान् वर्णान् सर्वं स्थापयिताप्रभु ॥२८
तेषाञ्च पञ्च दायादावङ्गाङ्गा सुह्मकास्तथा ।
पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा अङ्गस्यतुनिबोधत ॥२९

तितिक्षु पूर्व दिशा मे एक महान् प्रसिद्ध राजा हुआ था। इसके जो पुत्र उत्पन्न हुआ था उसका नाम वृषद्रथ था और इसके पुत्र का नाम सेन था ॥ २२ ॥ सेन के यहाँ सुतपा नामधारी पुत्र ने जन्म लिया था तथा सुतपा का पुत्र बलि हुआ था। अश के क्षीण होने पर प्रजा की इच्छा से यह मानुष योनि मे प्रसूत हुआ था ॥२३॥ यह महान् योगी बलि महात्मा के द्वारा बन्धों से बद्ध हुआ था। इसने क्षेत्रज पाँच पार्थिव पुत्रों को समुत्पादित किया था। उसने अङ्ग—बङ्ग—सुह्म—पुण्ड्र और कलिङ्ग को जन्म दिया था। बालेयक्षेत्र कहा जाता है। हे प्रभो! बालेय और ब्राह्मण उसके वशकर हुए थे ॥ २४, २५ ॥ बुद्धिमान बलि को परम प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने वरदान प्रदान किया था कि महायोगित्व प्राप्त होवे—एक कल्प पर्यन्त आयु हो जावे—संग्राम में अजेयत्व की प्राप्ति हो—धर्म मे अत्युत्तम मति होवे—तीनों कालो के देखने का ज्ञान होवे—प्रसव में प्रधानता हो तथा युद्ध मे अप्रतिम विजय हो और धर्म मे तत्त्वार्थ का दर्शन प्राप्त होवे। ये सभी ब्रह्माजी के प्रदान किये हुए वरदान थे। वह चारो नियत वर्णों का स्थापन करने वाला प्रभु हुआ था ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ उनके पाँच दायाद थे—बङ्ग—अङ्ग—

सुह्यक—पुण्ड्र और कलिङ्ग। अब अङ्ग के विषय में ज्ञान प्राप्त करो ॥ २६ ॥

बलिस्तानभिनन्द्याहपञ्चपुत्रानकल्मषान् ।
कृतार्थः सोऽपिधर्मात्मायोगमायावृतःस्वयम् ॥३०
अदृश्यः सर्वभूतानां कालापेक्षः स वै प्रभुः ।
तत्राङ्गस्यतुदायादोराजासीद् धिवाहनः ॥३१
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः ।
आसीद्दिविरथापत्य विद्वान् धर्मरथोनृप ॥३२
स हि धर्मरथः श्रीमांस्तेन विष्णुपदे गिरौ ।
सोमः शुक्रेण वै राज्ञासहपीतो महात्मना ॥३३
अथ धर्मरथस्याभूत् पुत्रश्चित्ररथः किल ।
तस्य सत्यरथः पुत्रस्तस्माद्दशरथः किल ॥३४
लोमपाद इति ख्यातस्तस्य शान्ता सुताभवत् ।
अथ दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गोमहायशाः ॥३५

महाराज बलि ने उन अकल्मष पाँचों पुत्रों का अभिनन्दन किया था और वह धर्मात्मा भी कृतार्थ हो गया था। फिर वह स्वयं योग-माया वृत हो गया था ॥ ३० ॥ वह सब प्राणियों से अदृश्य रहते हुए काल की अपेक्षा करने वाला हो गया था। उसमें अङ्ग का जो दायाद था वह दधिवाहन राजा हुआ था ॥ ३१ ॥ दधिवाहन का जो पुत्र हुआ वह दिविरथ नाम से कहा गया था। फिर दिविरथ से जो सन्तति हुई थी वह परम विद्वान् धर्मरथ नृप हुआ था ॥ ३२ ॥ वह धर्मरथ परम श्रीमान् नृप था। उसने विष्णुपद गिरि में महात्मा शुक्र के साथ राजा में सोम का पान किया था ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर उस धर्मरथ के यहाँ चित्ररथ नाम वाले आत्मज ने जन्म लिया था। इसका पुत्र सत्यरथ पैदा हुआ था और सत्यरथ से दशरथ ने जन्म ग्रहण किया था ॥ ३४ ॥ वह लोमपाद—इस शुभ नाम से विख्यात हुआ था। इसके शान्ता नाम-

धारिणी एक कन्या हुई थी । इसके अनन्तर दशरथ का पुत्र महान् यश वाला दाशरथि चतुरङ्ग हुआ था ॥३५॥

ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे स्वकुलवर्धनः ।
चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः ॥३६
पृथुलाक्षसुतश्चापि चम्पनामा बभूव ह ।
चम्पस्य तु पुरी चम्पा पूर्वं या मालिनीऽभवत् ॥३७
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ।
जज्ञे विभाण्डकाच्चास्य वारण शत्रुवारणः ॥३८
अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ।
हर्यङ्गस्य तु दायादो जातो भद्ररथः किल ॥३९
अथ भद्ररथस्यासीत् बृहत्कर्मा जनेश्वरः ।
बृहद्भानु सुतस्तस्यतस्माज्जज्ञे महात्मवान् ॥४०
बृहद्भानुस्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ।
नाम्नाजयद्रथं नाम तस्माद्दृढरथो नृपः ॥४१
आसीद्दृढरथाच्चापि विश्वजिज्जनमेजयः ।
दायादस्तस्यचाङ्गोवैतस्मात्कर्णोऽभवन्नृपः ॥४२

यह ऋष्यशृङ्ग के प्रसाद से ही कुल के वर्धन करने वाला समुत्पन्न हुआ था । चतुरङ्ग के पुत्र का नाम पृथुलाक्ष कहा गया है ॥३६॥ पृथुलाक्ष के पुत्र चम्प नाम वाला समुत्पन्न हुआ था । चम्प की पुरी चम्पा थी जो पहिले मालिनी की थी ॥ ३७ ॥ पूर्णभद्र के प्रसाद से इसके यहाँ हर्यङ्ग नाम वाले पुत्र ने प्रसव प्राप्त किया था । विभाण्डक से इसके शत्रुओं का वारण करने वाला वारण ने जन्म लिया था । इसने मन्त्रों के द्वारा इस मही मण्डल में उत्तम वाहन अवतारित किया था । हर्यङ्ग का दायाद अर्थात् आत्मज भद्ररथ ने जन्म ग्रहण किया था ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त उस भद्ररथ बृहत्कर्मा जनेश्वर समुत्पन्न हुआ था । उसके पुत्र का नाम बृहद्भानु था और फिर उससे महात्मा वान् ने जन्म प्राप्त किया

था।४०॥ राजाओं में इन्द्र के समान महान् प्रतापी बृहद्भानु ने एक सुत को प्रसूत किया, जिसका नाम जयद्रथ था फिर इससे बृहद्रथ नृप समुत्पन्न हुआ था॥४१॥ इस बृहद्रथ से विश्वजित् जनमेजय ने जन्म प्राप्त किया था। इसका आत्मज अङ्ग हुआ और उस अङ्ग से कर्ण नाम वाले नृप ने जन्म ग्रहण किया था॥४२॥

कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तथात्मजः।
एतेऽङ्गस्यात्मजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया॥
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च पूरोस्तु श्रृणुत द्विजा॥४३॥
कथं सूतात्मजः कर्णः कथमङ्गस्य चात्मजः।
एतदिच्छामहे श्रोतुमत्यन्तकुशलो ह्यसि॥४४
बृहद्भानुसुतो जज्ञे राजा नाम्ना बृहन्मनाः।
तस्य पत्नीद्वय ह्यासीच्चैद्यस्य तनये ह्युभे॥
यशोदेवी च सत्या च तयोर्वंशञ्च मे शृणु॥४५॥
जयद्रथन्तु राजानं यशोदेवी ह्यजीजनत्।
सा बृहन्मनसः सत्या विजयनाम विश्रुतम्॥४६
विजयस्य बृहत्पुत्रस्तस्य पुत्रो बृहद्रथः।
बृहद्रथस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महामनाः॥४७
सत्यकर्मणोऽधिरथः सूतश्चाऽधिरथः स्मृतः।
यः कर्णं प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः॥
तच्चैव सर्वमाख्यातं कर्णं प्रति यथोदितम्॥४८॥

कर्ण नृप का पुत्र वृषसेन हुआ और फिर इससे पृथुसेन ने जन्म लिया था। इतने ये सब अङ्ग के आत्मज हुए थे जो सभी राजा थे। मैंने इन सबके नामों को बतला दिया है। अब हे द्विजगण! विस्तारपूर्वक तथा आनुपूर्वी के क्रम से जैसे भी एक के पीछे दूसरा हुआ था उसी पूर्वापर के क्रम से पुरु के विषय में आप लोग श्रवण करो॥४३॥ ऋषियों ने कहा—हे भगवन्! सूत का आत्मज कर्ण था वह राजा अङ्ग का आत्मज

कैसे हुआ था ? हम अब यही सुनना चाहते हैं । आप तो सभी कुछ के ज्ञाता एवं परम कुशल हैं ॥४४॥ श्री सूतजी ने कहा—बृहद्भानु का पुत्र बृहन्मना नाम वाला राजा उत्पन्न हुआ था । इस राजा की दो पत्नियाँ थीं जो कि शैब्य की परम शुभ पुत्रियाँ थी । एक यशोदेवी थी और दूसरी सत्या थी । अब उन दोनों के वंश को मुझसे आप श्रवण कीजिये ॥४५॥ यशोदेवी ने जयद्रथ नाम वाले राजा को प्रसूत किया था, वह जो दूसरी सत्या नाम वाली पत्नी थी उसने बृहन्मना से विजय नाम वाले परम विश्रुत पुत्र को जन्म दिया था ॥ ४६ ॥ विजय का बृहत्पुत्र और फिर इसका पुत्र बृहद्रथ था । इस बृहद्रथ के पुत्र का नाम महामना सत्यकर्मा हुआ था ॥ ४७ ॥ सत्यकर्मा का पुत्र अधिरथ था और वह अधिरथ ही सूत कहा गया था जिसने कर्ण को प्रतिग्रहीत किया था । इसी कारण से कर्ण सूतज कहा गया था । यह मैंने सभी कुछ कह दिया है जो कि कर्ण के प्रति कहा गया है ॥४८॥

२७—पूरुवंश वर्णन

पूरोः पुत्रो महातेजा राजा स जनमेजयः ।
प्राचीततःसुतस्तस्य यःप्राचीमकरोद्दिशम् ॥१
प्राचीततस्य तनयोमनस्युश्च तथाभवत् ।
राजा पीतायुधो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥२
दायादस्तस्यचाप्यासीद्धुन्धुर्नाममहीपतिः ।
धुन्धोर्बहुविध पुत्रःसम्पातिस्तस्यचात्मजः ॥३
सम्पातेस्तु रहं वर्चा भद्राश्वस्तस्यचात्मजः ।
भद्राश्वस्यसुताःपाँतुदशाप्सरसि सूनवः ॥४
औचेयुश्च हृषेयुश्च कक्षेयुश्च सनेयुकः ।
घृतेयुश्च विनेयुश्च स्थलेयुश्चैव सत्तमः ॥५

घर्मेयु सन्नतेयुश्च पुण्येयुश्चेति ते दश।
ओचयोर्ज्वलना नाम मार्या वैतक्षकात्मजा ॥६
तस्या स जनयामास अन्तिनार महीपतिम्।
अन्तिनारो मनस्विन्या पुत्रान् जज्ञे परान् सुभान्।७

पुरु का पुत्र महान् तेज वाला वह राजा जनमेजय हुआ था। उससे फिर प्राची नाम धारी पुत्र हुआ था जिसने प्राची दिशा को किया था ॥१॥ उसके पुत्र का नाम प्रवीत था और फिर इसका तनय मनस्यु हुआ था। मनस्यु का सुत पीतायुध राजा हुआ था ॥२॥ उसका भी दायाद धुन्धु नाम वाला महीपति हुआ था। धुन्धु के यहां बहुविध नामक पुत्र ने जन्म लिया था फिर इसका आत्मज सम्पाति प्रसूत हुआ था ॥३॥ सम्पाति का दायाद रहवर्चा था और इसका पुत्र भद्राश्व ने प्रसव प्राप्त किया। भद्राश्व के घृता नाम वाली अप्सरा से दश पुत्र समुत्पन्न हुए थे। ॥४॥ उन दशों के नाम औचेयु—हृषेयु—कक्षयु—सनयुक—घृतेयु—विनेयु—स्थनयु-घर्मेयु—सन्नतयु और पुण्येयु ये थे। औचेयु की ज्वलना नाम वाली भार्या थी जो कि तक्षक की आत्मजा थी ॥५, ६॥ उस भार्या में औचेयु ने अन्तिनार नामक महीपति को जन्म ग्रहण कराया था। उस अन्तिनार ने मनस्विनी नाम वाली भार्या में परम शुभ पुत्रों को जन्म प्रदान किया था ॥७॥

अमूतरयसवीर त्रिवतञ्चैवधार्मिकम्।
गौरी कन्या तृतीया च मान्धातुजननी शुभा ॥८
इलिनातुयमस्यासीत्कन्यायाजनयत् सुतान्।
ब्रह्मवादपराक्रान्ताश्शुम्भमात्विलिनाह्वयन ॥६
उपदानवी सुतान् लेभे चतुरस्त्विलिनात्मजान्।
ऋष्यन्तमथ दुष्यन्त प्रवीरमनव तथा ॥१०
चक्रवर्ती ततो जज्ञे दुष्यन्तात् समितिञ्जय।
शकुन्तलाया भरतो यस्य नाम्नाचभारता ॥११

दौष्यन्ति प्रति राजान वागूचे चाशरीरिणी ।
माताभस्त्रापितु.पुत्रोयेनजात सएवस ॥१२
भर स्वपुत्र दुष्यन्त ! मावमस्थ। शकुन्तलाम् ।
रेतोधा नयते पुत्र परेत यमसादनात् ॥
त्व चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥१३
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु पुरा किल ।
पुत्राणामातृकात कोपात् सुमहान् सत्त्वय. कृत ॥१४
ततो मरुद्भिरानीय पुत्र स तु बृहस्पते. ।
सङ्क्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतस्य तु ॥१५

उन पुत्रो के नाम अमूर्तरय सबीर और परम धार्मिक त्रिवन थे। तीसरी गौरी नाम वाली कन्या थी जो मान्धाता की शुभ जननी हुई थी। ॥८॥ इलिना यम की कन्या थी जिसने सुता को समुत्पन्न किया था । ये ब्रह्मवाद मे पराक्रान्त हुए थे और इलिना सुम्मदा हुई थी।।६।। उपदानवी ने इलिना से आत्मज से चार पुत्रो का जन्म प्राप्त किया था उन चारों के नाम ऋष्यन्त—दुष्यन्त-प्रवीर और अनघ थे ॥१०॥ इसके पश्चात् राजा दुष्यन्त से चक्रवर्ती समितिञ्जय ने जन्म ग्रहण किया था तथा शकुन्तला नाम वाली पत्नी मे भरत नाम वाला महान् प्रतापी राजा उत्पन्न हुआ था जिसके नाम से भारत हुए हैं ॥११॥ राजा दौष्यन्ति के प्रति बिना शरीर वाली वाणी ने कहा था कि माता भस्त्रा पिता का पुत्र है जिससे वह ही समुत्पन्न हुआ है । हे दुष्यन्त ! अपने पुत्र का भरण करो और इस रेतोधा शकुन्तला का अवमान मत करो । पुत्र परेत को यम सदन से प्राप्त किया करता है । आप ही इसके गर्भ के धाता हैं—यह बात शकुन्तला जो इस समय में कह रही है वह बिल्कुल सत्य है ॥१२, १३॥ पुरातन समय में निश्चय ही भरत के पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर मातृक कोप से पुत्रों का महान् सञ्चय किया गया था ॥१४॥ इसके अनन्तर वह बृहस्पति का पुत्र मरुतों के द्वारा भरद्वाज ने भरत का सङ्क्रामित किया था ॥१५॥

ततो जाते हि वितथे भरतश्च दिवं ययौ ।
भरद्वाजो दिवं यातो ह्यभिषिच्य सुतं ऋषिः ॥१६
दायादो वितथस्यासीद्भुवमन्युर्महायशाः ।
महाभूतोपमाः पुत्राश्चत्वारो भुवमन्यवः ॥१७
बृहत्क्षेत्रो महावीर्यो नरो गर्गश्च वीर्यवान् ।
नरस्य सङ्कृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो महायशाः ॥१८
गुरुधीरन्तिदेवश्च सत्कृत्यान्ताबुभौ स्मृतौ ।
गर्गस्य चैव दायादः शिविर्विद्वानजायत ॥१९
स्मृताः शैव्यास्ततो गर्गाः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।
आहार्यतनयश्चैव धीमानासीदुरुक्षवः ॥२०
तस्य भार्या विशाला तु सुषुवे पुत्रकत्रयम् ।
त्र्यूषणं पुष्करिं चैव कविं चैव महायशाः ॥२१

इसके अनन्तर वितथ के समुत्पन्न होने पर भरत दिवलोक को चला गया था। भरद्वाज ऋषि भी सुत का अभिषेक करके दिवलोक को चले गये थे ॥१६॥ वितथ नामधारी महीपति का आत्मज महान् यश वाला भुवमन्यु समुत्पन्न हुआ था। इस भुवमन्यु के महाभूतों के तुल्य चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था। इन चारों के नाम बृहत्क्षेत्र—महा वीर्य—नर और वीर्यवान् गर्ग थे। इस नर का पुत्र सङ्कृति हुआ था और सङ्कृति का सुत महायशा समुत्पन्न हुआ था ॥१७, १८॥ गुरुधी और अन्तिदेव ये उसके नाम थे। ये दोनों सत्कृत्यान्त कहे गये थे। गर्ग का जो दायाद उत्पन्न हुआ था उसका नाम शिवि था और वह बहुत बड़ा विद्वान् हुआ था। इसके उपरान्त गर्ग शैव्य और क्षत्रोपेत द्विजाति कहे गये हैं। आहार्य का पुत्र परम बुद्धिमान् उरुक्षव उत्पन्न हुआ था ॥१९, २०॥ उसकी भार्या विशाला थी जिसने तीन पुत्रों को प्रसूत किया था। ये महान् यश वाले थे और इन तीनों के नाम त्र्यूषण—पुष्करि और कवि थे ॥२१॥

उरुक्षवाः स्मृता ह्येते सर्वे ब्राह्मणतां गताः ।
काव्यानां तु वरा ह्येते त्रयः प्रोक्ता महर्षयः ॥२२
गर्गाः संकृतयः काव्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।
संभृताङ्गिरसो दक्षा बृहत्क्षत्रस्य च क्षितिः ॥२३
बृहत्क्षत्रस्य दायादो हस्तिनामा बभूव ह ।
तेनेदं निर्मितं पूर्वं पुरं तु गजसाह्वयम् ॥२४
हस्तिनश्चैव दायादास्त्रयः परमकीर्तयः ।
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च ॥२५
अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रः कुरुकुलोद्वहाः ।
नीलिनी धूमिनी चैव केशिनी चैव विश्रुताः ।
स तासु जनयामास पुत्रान् वै देववर्चसः ।
तपसोऽन्ते महातेजा जाता वृद्धस्य धार्मिकाः ॥२७
भारद्वाजप्रसादेन विस्तरं तेषु मे शृणु ।
अजमीढस्य केशिन्यां कण्वः समभवत् किल ॥२८

मे विस्तार का श्रवण आप लोग मुझसे भली भाँति करिये। अब उस अजमीढ का पुत्र केशिनी मे जो उत्पन्न हुआ था उसका नाम कण्व था ॥ २८ ॥

मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात्काण्वायना द्विजाः ।
अजमीढस्य भूमिन्याजज्ञे बृहदनुर्नृपः ॥२९
बृहदनोर्बृहन्तोऽथ बृहन्तस्य बृहन्मनाः ।
बृहन्मनः सुतश्चापि बृहद्धनुरितिः श्रुतः ॥३०
बृहद्धनोर्बृहदिपुः पुत्रस्तस्य जयद्रथः ।
अश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चात्मजः ॥३१
अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ।
रुचिराश्वश्च काव्यश्च राजा दृढरथस्तथा ॥३२
वत्सश्चावर्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः ।
रुचिराश्वस्य दायादः पृथुसेनो महायशाः ॥३३
पृथुसेनस्य पौरस्तु पौरान्नीपोऽथ जज्ञिवान् ।
नीपस्यैकशतं त्वासीत् पुत्राणाममितौजसाम् ॥३४
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एवते ।
तेषां वंशकरः श्रीमान् नीपानां कीर्तिवर्द्धनः ॥३५

उस कण्व के पुत्र का नाम मेधातिथि था इसलिये वे काण्वायन द्विज कहे गये थे। उसी अजमीढ की भूमिनी नाम वाली पत्नी मे बृहदनु नृप ने जन्म प्राप्त किया था ॥ २९ ॥ बृहदनु का पुत्र बृहन्त और इसके जो पुत्र हुआ वह बृहन्मना नामधारी था। इसके सुत का नाम बृहद्धनु था जो कि विश्रुत था ॥ ३० ॥ बृहद्धनु का दायाद बृहदिपु था और इसके आत्मज का नाम जयद्रथ हुआ। जयद्रथ का सुत अश्वजित और इसका पुत्र सेनजित समुत्पन्न हुआ था ॥३१॥ इस सेनजित के चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था जो लोक मे अधिक विश्रुत थे। जिनके नाम ये थे—रुचिराश्व-काव्य-राजा दृढरथ-वत्स और आवर्तक राजा था जिसके

ये परिवत्सक हैं। दधिवाहन का दायाद महान यशस्वी पृथुसेन हुआ। पृथुसेन का पुत्र पौर और इसका आत्मज नीप ने जन्म लिया था। इस नीप के एक सौ अमित ओज वाले पुत्रों की समुत्पत्ति हुई थी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ये सभी राजा लोग 'नीपा'—इस नाम से समाख्यात हुए थे। उन नीपों का वंश करने वाला श्रीमान् कीर्तिवर्धन था ॥ ३५ ॥

> काव्याच्च समरो नाम सदेष्टसमरोऽभवत् ।
> समरस्य पारसम्पारा सदश्व इति ते त्रयः ॥३६
> पुत्राः सर्वगुणोपेता जाता वै विश्रुता भुवि ।
> पारपुत्रः पृथुर्जात पृथोस्तु सुकृतोऽभवत् ॥३७
> जज्ञे सर्वगुणापेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः ।
> विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम वीर्यवान् ॥३८
> बभूव शुकजामाता कृत्वीभर्ता महायशाः ।
> अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महीपतिः ॥३९
> युगदत्त· सुतस्तस्य विष्वक्सेनो महायशाः ।
> विभ्राज पुनराजातो सुकृतेनेह कर्मणा ॥४०
> विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह ।
> भल्लाटस्तस्य पुत्रस्तु तस्यासीज्जनमेजयः ॥
> उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः ॥४१
> उग्रायुध· कस्य सुतः कस्य वंशे स कथ्यते ।
> किमर्थं तेन ते नीपाः सर्वे चैव प्रणाशिता ॥४२

काव्य से समर नाम वाला सदेष्ट समर हुआ था। उस समर के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे—पार—सम्पार और सदश्व ये उनके नाम थे ॥ ३६ ॥ ये सभी सुत सकल गुण गण से समन्वित थे और भूमण्डल में परम प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले हुए थे। पार का पुत्र पृथु हुआ और पृथु से सुकृत पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥ ३७ ॥ इसका दायाद सब गुणों से

युक्त विभ्राज ने जन्म लिया था। विभ्राज का पुत्र महान् बलवीर्य वाला अणुह नाम वाला हुआ था ॥ ३८ ॥ शुक जामाता और महायशा कृत्वी भर्ता हुआ। इस अणुह का आत्मज महीपति ब्रह्मदत्त समुत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ उसका दायाद युगदत्त हुआ था और फिर इसका पुत्र महायश ला विष्वक्सेनो हुआ था। यहाँ पर सुकृत कर्म से विभ्राज पुनः जात हुआ था ॥ ४० ॥ विष्वक्सेन के पुत्र का नाम उदक न था और इसका पुत्र मल्लाट था मल्लाट का पुत्र जनमेजय था। उग्रायुध ने उसके लिये समस्त नीपों को प्रणाशित कर दिया था ॥ ४१ ॥ ऋषियों ने कहा—उग्रायुध किसका पुत्र था और किसके वंश में कहा जाता है उसने किसलिये सब नीपों का विनाश कर दिया था? ॥ ४२ ॥

उग्रायुधः सूर्य्यवंशस्तपस्तेपे वराश्रमे ।
स्थाणुभूतोऽष्टसाहस्रन्न भेजे जनमेय ॥ ४३
तस्य राज्य प्रतिश्रुत्य नीपानाजघ्निवान्प्रभु ।
उवाचसान्त्वविविध जघ्नुन्तेवहु भावा ॥ ४४
हन्यमाना गतानुचे यस्माद्वे तोनं मे वच ।
शरण्यागतरक्षार्थं तस्मादेव शपामि व ॥ ४५
यदि मेऽस्ति तपस्तप्त सर्वान्नयतु वो यमः ।
ततस्तात् कृष्यमाणान्तु यमेन पुरत स तु ॥ ४६
कृपया परयाविष्टो जनमेजयमूचिवान् ।
गतानेतांनिमान् वीरास्त्व मे रक्षितुमर्हसि ॥ ४७
अरे पापा ! दुराचारा ! भवितारोऽत्यकिङ्कराः ।
तयेत्युक्तस्ततो राजायमेनयुयुधेचिरम् ॥ ४८
व्याधिभिर्नारकैर्घोरैर्यमेन सह तान् बलात् ।
विजित्य मनयेपादात्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४९

ऋषि श्वर सूतजी ने कहा—उग्रायुध सूर्य वंश में समुत्पन्न हुआ

था इसने वराश्रम में अत्यन्त घोर तपस्या की थी। इसने अणु भूत होकर आठ सहस्र वर्ष तक तप किया था उसका जनमेजय ने मर्दित किया था ॥४३। उसके राज्य को प्रतिश्रुत करके उस प्रभु ने दोनों का हनन किया था। विविध प्रकार के सान्त्वना के वचन बोला था। उन्होंने दोनों का हनन कर दिया था ॥४४॥ हन्यमान गये हुओं से बोला था कि जिस कारण से मेरा वचन नहीं है। इसी से शरणागत रक्षा के लिये मैं आपको शाप देता हूँ ॥४५॥ यदि मेरा तप सत्य है तो यमराज आप सबको ही ले जावे। इसके पश्चात् यम के द्वारा कृष्यमाण उनका आगे होकर उसने अत्यन्त दया से समाविष्ट होकर जनमेजय से कहा था कि गये हुए इन मेरे वीरों की आप रक्षा करने के योग्य हैं ॥४६, ४७॥ जनमेजय ने कहा—अरे पापियो! हे दुष्ट आचार वालो! इसके किङ्कर हो ओगे। इसके पश्चात् तथा इस प्रकार से कहे गये उस राजा ने चिर काल तक यम के साथ युद्ध किया था। नारकीय घोर व्याधियों से यम के साथ बलपूर्वक उसको विजित करके मुनि को दे दिया था—यह सब परम अद्भुत सा ही हुआ था ॥४८-४९॥

यमस्तुष्टस्ततस्तस्मै मुक्तिज्ञानं ददौ परम् ।
सर्वे यथाचितं कृत्वा जग्मुस्ते कृष्णमव्ययम् ॥५०
येषां तु चरितं गृह्य हन्यन्ते नापमृत्युभिः ।
इह लोके परे चैव सुखमक्षय्यमश्नुते ॥५१
अजमीढस्य धूमिन्या विद्वाञ्जज्ञे यवीनरः ।
धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः स्मृतः ॥
अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान् ॥५२
दृढनेमिस्तस्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः ।
आसीत् सुतस्तनयः सार्वभौमः प्रतापवान् ॥५३
सार्वभौमेति विख्यातः पृथिव्यामेकराड्वशी ।
तस्यान्ववाये महति महापौरवनन्दनः ॥५४

महापौरवपुत्रस्तु राजा स्वमरथ-स्मृतः ।
अथस्वमरथःस्यात्सोत् सुपार्श्वोनामपार्थिवः ॥४५
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः ।
सुमतेरपि धर्मात्मा राजा सन्नतिमानपि ॥४६

इसके अनन्तर यमराज उससे परम सन्तुष्ट हो गया था और उसने परम मुक्ति का मान प्रदान किया था। उसने फिर यथोचित किया था और फिर वे यमराज श्री कृष्ण के समीप चले गये थे ॥४०॥ जिनके चरित को ग्रहण करके अपमृत्युओं से कभी भी हनन नहीं हुआ करते हैं। इस लोक में और परलोक में उत्तम अक्षय सुख का उपभोग किया करता है ॥४१॥ अजमीढ की एक धर्म पत्नी धूमिनी नाम वाली थी उन में परम विद्वान् यवीनर ने जन्म प्राप्त किया था। उनका पुत्र धृतिमान् और इसका पुत्र फिर सत्यधृति समुत्पन्न हुआ था। इसके पश्चात् सत्यधृति का दायाद महान् प्रताप वाला दृढनेमि हुआ था ॥४२॥ इस दृढनेमि से सुधर्मा नामधारी राजा ने जन्म ग्रहण किया था। इस सुधर्मा का पुत्र प्रताप वाला सार्वभौम हुआ था ॥४३॥ यह सार्वभौम-इसी नाम से विख्यात था यह इस पृथिवी में एक ही राजा शोभित हुआ था। उस के वंश में जो एक महान् था महापौरव नाम वाला पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥४४॥ इन महापौर का जो पुत्र हुआ था वह राजा स्वमरथ नाम से कहा गया था। इसके पश्चात् इसका जो दायाद उत्पन्न हुआ था वह सुपार्श्व नाम वाला महीपति था ॥४५॥ सुपार्श्व का पुत्र परम धार्मिक सुमति प्रसूत हुआ था। इस सुमति का आत्मज भी अत्यन्त धर्मात्मा राजा सन्नतिमान् था ॥४६॥

तस्यासीत् सन्नतिमतः कृतो नाम सुतो महान् ।
हिरण्यनाभिनःशिष्य कौशल्यस्य:वौचलस्यमहात्मनः॥४७
चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता व सामस हिताः ।
स्मृतास्तेप्रा-च्यसामान.कार्तानामेहसामगाः ॥४८

कार्तिरुग्रायुधः सो वै महापौरववर्द्धनः ।
बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हृतः ॥५६
नालो नाम महाराजः पञ्चालाधिपतिर्वशी ।
उग्रायुधस्य दायादः क्षेमा नाम महायशाः ॥६०
क्षेमात् सुनोथ. सजज्ञं सुनीथस्य नृपञ्जयः ।
नृपञ्जयाच्च विरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः ॥६१

इस सन्नतिमान् का पुत्र कृत नाम वाला एक महान् पुरुष हुआ था । यह महान् आत्मा वाले हिरण्य नाम कौशल्य का शिष्य था ॥५७॥ जिसने सामवेद की संहिता के चौबीस भेद कहे हैं । वे प्राच्य सामान स्मृत किये गये हैं यहाँ पर कार्त्तों के सामग थे ॥५८॥ वह उग्रायुध कीर्ति महा पौरव वर्धन हुआ था जिसने अपना विक्रम करके पृथुक के पिता को हृत कर दिया था ॥ ५६ ॥ नील नाम वाला महाराज वशी और पश्चाल का अधिपति था । उग्रायुध के दायाद का नाम महायशस्वी क्षेम था । क्षेम से सुनीथ हुआ और सुनीथ का पुत्र नृपञ्जय था । नृपञ्जय से विरथ हुआ था—ये सब पौरव कहे गये थे ॥६०, ६१ ॥

२८—कुरुवंश वर्णन

अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः ।
नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरुपपद्यत ॥ १
पृरुजानुः सुशान्तेस्तु पृथुस्तु पुरुजानुतः ।
भद्राश्वः पृथुदायादो भद्राश्वतनयान्शृणु ॥२
मुद्गलश्च जयश्चैव राजा वृहदिषुस्तथा ।
यवीनरश्च विक्रान्तः कपिलश्चैव पञ्चमः ॥३

पञ्चानाञ्चैव पञ्चलानेतान् जनपदान् विदुः ।
पञ्चाल रक्षिणो ह्येते देशानामिति नः श्रुतम् ॥४
मुद्गलस्यापि मौद्गल्या क्षत्रोपेता द्विजातयः ।
एते ह्यङ्गिरसः पक्ष संश्रिताः काण्वमुद्गलाः ॥५
मुद्गलस्य सुतो जज्ञे ब्रह्मिष्ठ सुमहायशाः ।
इन्द्रसेनः सुतस्तस्य विन्ध्याश्वस्तस्य चात्मजः ॥६
विन्ध्याश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः ।
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी ॥७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—अजमीढ की एक पत्नी का नाम नलिनी था उसमें नील नृप ने जन्म ग्रहण किया था। नील का अति उग्रतप था उसके प्रभाव से उसके सुशान्ति नाम वाले पुत्र की समुत्पत्ति हुई थी ॥१॥ सुशान्ति का सुत पुरुजानु और इसका आत्मज पृथु उत्पन्न हुआ था। पृथु का पुत्र भद्राश्व हुआ था। अब भद्राश्व के जो तनय समुत्पन्न हुए थे उनके विषय में श्रवण करिए ॥२॥ मुद्गल-जय राजा वृहदिषु—यवीनर और पाँचवाँ महान् विक्रमशाली कपिल था ॥३॥ इन पाँचों के ही ये पञ्चाल जनपद हुए थे। हमने ऐसा श्रवण किया है कि पञ्चाल देशों के ये रक्षा करने वाले महीपति हुए हैं ॥४॥ मुद्गल के भी जो हुए थे वे मौद्गल्य क्षत्रोपेत द्विजाति थे। ये काण्व मुद्गल अङ्गिरस पक्ष के समाश्रय करने वाले हुए थे ॥५॥ मुद्गल के जो सुत समुत्पन्न हुआ था वह सुन्दर और महान यश वाला ब्रह्मिष्ठ था। इसका पुत्र इन्द्रसेन नामधारी हुआ था तथा फिर इस इन्द्रसेन का सुत विन्ध्याश्व हुआ। इस विन्ध्याश्व से मेनका में एक जोड़ा समुत्पन्न हुआ था—ऐसा सुना जाता है। दिवोदास एक राजर्षि हुआ था और परम यशस्विनी अहल्या ने जन्म ग्रहण किया था ॥६, ७॥

शरद्वतस्तु दायादमहल्या सम्प्रसूयत ।
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहातपाः ॥८

सुत सत्यघृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारग ।
आसीत् सत्यधृतेः शुक्रममोघ धार्मिकस्य तु ॥६
स्कन्न रेत सत्यधृतेर्दृष्ट्वा चाप्सरसजले ।
मिथुन तत्र सम्भूत तस्मिन् सरसिसम्भृतम् ॥१०
तत सरसि तस्मिंस्तु क्रममाण महीपति ।
दृष्ट्वा जग्राह कृपया शन्तनुर्मृगया गत ॥११
एते शारद्वत पुत्रा आख्याता गौतमवरा ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य वंशजा ॥१२
दिवोदासस्य दायादो धर्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः ।
मैत्रायणावर सोऽस्यमैत्रेयस्तुतत स्मृत ॥१३
एतेवश्यायते पक्षा क्षत्रोपेतास्तु भार्गवा ।
राजा चैद्यवरो नाममैत्रेयस्य सुत स्तुत ॥१४

उस अहल्या ने शरद्वान् से एक दायाद का प्रसव किया था जो शतानन्द परम श्रेष्ठ ऋषि थे । उसके भी सुमहान् तपस्वी सत्यधृत नाम वाला सुत समुत्पन्न हुआ था जो धनुर्विद्या पारगामी प्रौढ विद्वान था। परम धार्मिक उस सत्यधृति का शुक्रवीर्य अमोघ था ॥८ ६॥ उस सत्यधृति का वीर्यजल मे स्कन्न हो गया था । उसको देख कर वहीं पर सरोवर मे अप्सराओ का एक मिथुन सम्भूत हो गया था ॥१०॥ इसके पश्चात् उस सर मे क्रममाण होते हुए उसको देखकर मृगया करने के लिये गये हुए महीपति शन्तनु ने कृपा करके उसे ग्रहण कर लिया था ॥११॥ ये सब गौतम वर शरद्वान् के पुत्र विख्यात हुए थे । अब इसके आगे मैं दिवोदास की जो सन्तति समुत्पन्न हुई थी उसे बतलाता हूं ॥१२॥ दिवोदास का पुत्र अतीव धर्मिष्ठ नृप मित्रयु उत्पन्न हुआ था । वह मैत्रायण वर था और और इसके अनन्तर मैत्रेय कहा गया था ॥१३॥ ये वश्यापति के पक्ष हैं जो क्षत्रोपेत भार्गव थे । मैत्रेय के पुत्र का नाम चैद्यवर हुआ था ॥१४॥

कुरुक्षेत्र की कल्पना की थी ॥२०॥ बहुत वर्षों तक महाराज कृष्य हुए थे इस प्रकार से जब कृष्यमाण हुए तो इन्द्र ने मय से उसको वरदान दिये थे ॥२१॥

पुण्यञ्चरमणं यञ्चकुरुक्षेत्रन्तु ततस्तृतम् ।
तस्यान्ववाय सुमहान् यस्यानाम्नातुकौरवा ।२२
कुरोस्तु दयिता. पुत्रा सुधन्व. जह्नु रेवच ।
परीक्षिच्चमहातेजा प्रजनश्चारिमदन ॥२३
सुधन्वनस्तुदायाद पुत्रो मतिमतावर ।
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थतत्त्ववित् ॥२४
च्यवनस्य कृमि पुत्र ऋक्षाज्जज्ञे महातपा ।
कृमे पुत्रो महावीय ख्यात इन्द्रसमो विभु ॥२५
चैद्योपरिचरो वीरो वसुर्नामान्तरिक्षग ।
चैद्यो परिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त वै सुतान् ॥२६
महारथो मगधराट् विश्रुतो यो वृहद्रथ ।
प्रत्यश्रवा कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहन ॥२७
पञ्चमश्च यजुश्चैव मत्स्य कालीच सप्तमी ।
वृहद्रथस्य दायाद कुशाग्रो नामविश्रुतः ॥२८

परम पुण्यमय और अत्यन्त रमणीय वह कुरुक्षेत्र विस्तृत हुआ था । उसका वंश भी बहुत विशाल था जिसके नाम से ये सब कौरव हुए हैं ॥ २२ ॥ महाराज कुरु के प्रिय पुत्र सुधन्वा और जह्नु थे । तथा महान् तेजयुक्त परीक्षित और शत्रुओं का मर्दन करने वाला प्रजन था ॥ २३ ॥ उस सुधन्वा का पुत्र मतिमानो में परम श्रेष्ठ च्यवन हुआ जो धर्मार्थ तत्व का वेत्ता राजा हुआ था ॥ २४ ॥ च्यवन के पुत्र का नाम कृमि था जो महान् तपस्वी ऋक्ष से समुत्पन्न हुआ था । इस कृमि का पुत्र इन्द्र के समान विभु और महावीय ख्यात हुआ था ॥ २५ ॥ चैद्य परिचर वीर वसु नाम वाला अन्तरिक्ष गामी था । चैद्य ने परिचर से

जरासन्ध महान् बलवान् हुआ था ।। ३२ ।। इस जरासन्ध का पुत्र प्रताप-शाली सहदेव उत्पन्न हुआ । सहदेव का आत्मज श्रीमान् सोमविद् था और वह महा तपस्वी था ।। ३३ ।। फिर सोमादि से श्रुतश्रवा हुआ था । ये सब मागध नाम से ही परिकीर्तित हुए हैं । जह्नु ने सुरथ नामक भूमिपति पुत्र को उत्पन्न किया था ।। ३४ । इस सुरथ का दायाद परम वीर राजा विदूरथ हुआ और विदूरथ का पुत्र सार्वभौम नाम से प्रसिद्ध हुआ ।। ३५ ।।

सार्वभौमात् जयत् सेनो रुचिरस्तस्य चात्मज ।
रुचिरात्तु ततो भौमस्त्वरितायुस्ततोऽभवत् ।।३६
अक्रोधनस्त्वायुसुतस्तस्माद्देवातिथि स्मृत ।
देवातिथेस्तु दायदो दक्ष एव बभूव ह ।।३७
भीमसेनस्ततोदक्षाद्दिलीपस्तस्य चात्मज ।
दिलीपस्यप्रतीरस्तुतस्यपुत्रास्त्रय स्मृताः ।।३८
देवापि. शन्तनुश्चैवते वाह्लीकश्चैवते त्रय ।
बाह्लीकस्य तु दायादा सप्त बाह्लीश्वरान्नृप ।
देवापिस्तु ह्यपध्यात प्रजाभिरभवन् मनि ।।३९
प्रजाभिस्तु किमर्थं वै अपध्यातो जनेश्वर ।
को दोषो राजपुत्रस्य प्रजाभि समुदाहृत ।।४०
किलासीद्राजपुत्रस्तुकुष्ठित नाभ्यपूजयन् ।
भविष्यकीर्तयिष्यामिशन्तनोस्तुनिबोधत ।।४१
श तनुस्त्वभवद्राजा विद्वान् सो वै महाभिषक् ।
इद चोदाहरन्त्यत्र श्लोक प्रति महाभिषक् ।।४२

सार्वभौम से जयत्सेन ने जन्म ग्रहण किया तथा फिर इसका पुत्र रुचिर उत्पन्न हुआ । रुचिर का पुत्र भौम और भौम का सुत त्वरितायु हुआ ।। ३६ ।। त्वरितायु का अक्रोधन और फिर इससे देवतिथि ने समुत्पत्ति प्राप्त की थी । देवातिथि का दायाद दक्ष नाम वाला हुआ

॥ ३७ ॥ उस वंश में भीमसेन ने जन्म प्राप्त किया था और इसका आत्मज दिलीप हुआ था। दिलीप का पुत्र प्रतीप उत्पन्न हुआ और इसके फिर तीन पुत्र बताये गये हैं ॥ ३८ ॥ वे तीन देवापि—शान्तनु और वाह्लीक ये थे। वाह्लीक के दायाद हे नृप! सात बाह्लीश्वर हुए थे ॥ ३९ ॥ देवापि अप ध्यात होकर प्रजाओं से फिर मुनि हो गया। मुनिगण ने कहा—वह जनेश्वर प्रजाओं से किस प्रकार अपध्यात हो गया था। प्रजाओं ने उस राजपुत्र का कौनसा दोष बतलाया था? ॥ ४० ॥ सूतजी ने कहा—वह राजपुत्र कुष्ठित था अतएव प्रजाओं ने उसका पूजन नहीं किया। मैं भविष्य का कीर्तन करूँगा अब शन्तनु के विषय में समझ लो ॥ ४१ ॥ शन्तनु जो राजा हुआ था परमोत्तम कोटि का विद्वान् था और महान् भिषक् भी था। इस विषय में यह श्लोक उस महाभिषक् के सम्बन्ध में उदाहृत किया जाता है ॥४२॥

> यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं रोगिणमेव च ।
> पुनर्युवा च भवति तस्मात्तं शन्तनुं विदुः ॥४३
> तत्तस्य शान्तनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते ।
> ततो वृणुत भार्यार्थं शन्तनुर्जाह्नवीं नृप ॥४४
> तस्यां देवव्रतं नाम कुमारं जनयद् विभुः ।
> काली विचित्रवीर्यं तु दाशेयाऽजनयद् सुतम् ॥४५
> शन्तनोर्दयितपुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम् ।
> कृष्णद्वैपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ॥४६
> धृतराष्ट्रञ्च पाण्डुञ्च विदुरं चाप्यजीजनत् ।
> धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्यां पुत्रानजनयत् शतम् ॥४७
> तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वक्षत्रस्य वै प्रभुः ।
> माद्री कुन्ती तथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः ॥४८
> देवदत्ताः सुताः पञ्च पाण्डोरर्थेऽभिजज्ञिरे ।
> धर्माद् युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्च वृकोदरः ॥४९

उस राजा शन्तनु मे ऐसी एक विशेषता थी कि वह जिस-जिसके शरीर का अपने करो से केवल स्पर्श ही करता था वह चाहे कैसा ही जीर्ण रोगी क्यो न हो सब रोगो से मुक्त होकर पुनः युवा हो जाया करता था। इसी कारण से इसका नाम शन्तनु यह कहा गया ॥ ४३ ॥ उस राजा के शन्तनु होने को उसकी प्रजाओ के द्वारा कीर्तित किया जाता था। इसके उपरान्त उस राजा शन्तनु ने अपनी भार्या बनाने के लिये जाह्नवी का वरण किया था ॥ ४४ ॥ उस गङ्गा मे उस विभु ने देवव्रत नाम वाले कुमार को उत्पन्न किया था। काली ने विचित्र वीर्य को जन्म दिया था। जिसने दास मे सुत को जन्म दिया ॥ ४५ ॥ शन्तनु का पुत्र अत्यन्त प्रिय—शान्तात्मा और कल्मष रहित था। कृष्ण द्वैपायन ने विचित्रवीर्य के क्षेत्र मे धृतराष्ट्र—पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्र ने गान्धारी नाम वाली भार्या मे सौ पुत्रो को जन्म दिया था ॥ ४६, ४७ ॥ उन एक सौ पुत्रो मे दुर्योधन श्रेष्ठ था जो समस्त क्षत्रियो का प्रभु हुआ था। माद्री और कुन्ती ये दो भार्याऐ पाण्डु की हुईं थीं ॥४८॥ देवो के द्वारा दिये हुए पाँच पुत्र पाण्डु के अर्थ मे समुत्पन्न हुए थे। धर्म से युधिष्ठिर ने जन्म ग्रहण किया और मारुत से वृकोदर की समुत्पत्ति हुई थी ॥४९॥

इन्द्राद्धनञ्जयश्चैव इन्द्रतुल्यपराक्रमः।
नकुल सहदेवञ्च माद्र्यश्विवाभ्यामजीजनत् ॥५०
पञ्चैते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्या जज्ञिरेसुताः।
द्रौपद्यजनयच्छेष्ठप्रतिविन्ध्ययुधिष्ठिरात् ॥ १
श्रुतसेन भीमासेनाच्छ्रुतकीर्ति धनञ्जयात्।
चतुर्थं श्रुतकर्माणं सहदेवाद जायत ॥५२
नकुलाच्च शतानीक द्रौपदेया. प्रकीर्त्तिताः।
तेभ्योऽपरे पाण्डवेया.षडेवान्येमहारथाः ॥५३
हैडम्बो भीमसेनात्तु पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः।

काशीवलधरात्भीमाज्जज्ञे सर्वंगसुतम् ॥५४
सुहोत्रं तनयं माद्री सहदेवादसूयत ।
करेणुमत्या चैद्याया निरमित्रस्तुनाकुलिः ॥५५
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।
यौधेयं देवकीचैव पुत्रं यज्ञे युधिष्ठिरात् ॥५६

महाराज इन्द्रदेव से धनञ्जय का जन्म हुआ था जो पूर्णरूप से इन्द्र के समान ही पराक्रम वाला था । माद्री ने नकुल और सहदेव को अश्विवायों से जन्म दिया था ॥ ५० ॥ ये पाँच पाण्डवों से द्रौपदी में सुत समुत्पन्न हुए थे । द्रौपदी ने युधिष्ठिर से श्रेष्ठ पुत्र प्रतिविन्ध्य को जन्म दिया था । भीमसेन से श्रुतसेन को और श्रुतिकीर्ति को धनञ्जय से तथा चौथे श्रुतकर्मा को सहदेव से एवं शतानीक नामक सुत को नकुल से उत्पन्न किया था । ये सभी पुत्र द्रौपदेय कीर्तित हुए थे । इनसे भी दूसरे छः अन्य महारथ भी पाण्डवेय हुए थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ भीमसेन से हिडम्बा का पुत्र हैडम्ब घटोत्कच उत्पन्न हुआ । काशीवलधर भीम से सर्वग सुत ने जन्म ग्रहण किया था ॥ ५४ ॥ माद्री ने सहदेव से सुहोत्र नामक तनय को उत्पन्न किया था । करेणुमती चैद्या में नकुल से नाकुलि निरमित्र नामक पुत्र ने जन्म धारण किया ॥ ५५ ॥ पार्थ अर्जुन से सुभद्रा पत्नी में रथी अभिमन्यु ने समुत्पत्ति प्राप्त की थी । देवकी ने यौधेय नामधारी पुत्र धर्मपुत्र युधिष्ठिर से जन्म दिया था ॥ ५६ ॥

अभिमन्योः परिक्षित्तु पुत्रः परपुरञ्जयः ।
जनमेजयः परिक्षितः पुत्रः परमधार्मिकः ॥५७
ब्रह्माणं कल्पयामास स वै वाजसनेयकम् ।
स वैशम्पायनेनैव शप्तः किल महर्षिणा ॥५८
न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे ! तवैतद्वचनं भुवि ।

यावत् स्थास्यसि त्व लोकेतावदेःप्रपत्स्यति ॥५६
क्षत्रस्य विजय ज्ञात्वा तत. प्रभृति सर्वशः ।
अभिगम्य स्थिताश्चैव नृपञ्च जनमेजयम् ॥६०
ततः प्रभृति शापेन क्षत्रियस्य तु याजिनः ।
उत्सन्ना याजिनो यज्ञे ततः प्रभृति सर्वशः ॥६१
क्षत्रस्ययाजिनःकेचित् शापात्तस्यमहात्मनः ।
पौर्णमासेनहविषा इष्ट्वातस्मिन्प्रजापतिम् ।
स वैशम्पायनेनैव प्रविशन् वारितस्तत ॥६२
परिक्षितः सुतः सो वै पौरवो जनमेजयः ।
द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः ॥६३

अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से परञ्जय अर्थात् शत्रुओ के पुरों पर विजय प्राप्त करने वाले परीक्षित नामक पुत्र का जन्म हुआ था। परीक्षित से परम धार्मिक जनमेजय पुत्रने ज म धारण किया था।५७। उसने समस्त वेद को वाजसनेयक कल्पित किया था। उसको महर्षि वैशम्पायन ने शाप दे दिया था।५८। महर्षि ने यही शाप दिया था कि हेदुष्ट बुद्धि वाले! यह तेरा वचन भूमण्डल मे स्थित नहीं रहेगा। जब तक तू इस लोक मे स्थित रहेगा तभी तक यह रहेगा।५६। क्षत्रिय की विजय को जानकर तभी से लेकर सभी ओर से नृप जनमेजय के समीप मे अभिगमन करके स्थित हो गये थे।६०। तब से ही लेकर यजन करने वाले क्षत्रिय के शाप से सभी ओर से याजोगण यज्ञ मे उत्पन्न हो गये थे ॥६१॥ कुछ क्षत्रिय के याजी उस महात्मा के शाप से पौर्णमास रवि के द्वारा उसमे प्रजापति का यजन करके फिर वह वैशम्पायन के द्वारा ही प्रवेश करते हुए वारित हुआ था।६२। उस परीक्षित के पुत्र पौरव जनमेजय ने दो अश्वमेधो का आहरण करके वह महावाजसनेयक होगया था ॥६३॥

प्रवर्तयित्वा त सर्वेमृषि वाजसनेयकम् ।
विवादे ब्राह्मणै. सार्धमभिशप्तो वन ययौ ॥६४

जनमेजयाच्छतानीकस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान् ।
जनमेजयः शतानीक पुत्रं राज्येऽभिषिक्तवान् ॥६५
अथाश्वमेधेनततःशतानीकस्यवीर्यवान् ।
जज्ञेऽधिसोमकृष्णाख्यःसाम्प्रत यो महायशाः ॥६६
तस्मिन् शासति राष्ट्रेतु युष्माभिरिदमाहृतम् ।
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे ॥
वर्षद्वय कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः ॥६७
भविष्य श्रोतुमिच्छामः प्रजा लोमहर्षणे ।
पुरा किल यदेतद्वै व्यतीत कीर्तितं त्वया ॥६८
येषुर्वे स्थास्यतेक्षत्रं उत्पत्स्यन्ते नृपाश्चये ।
तेषामायुः प्रमाणञ्चनामतश्चैव तान्नृपान् । ६६
कृतयुगप्रमाणञ्च त्रेताद्वापरयोस्तथा ।
कलियुगप्रमाणञ्च युगदोष युगक्षयम् ॥७०

उस सब वाजसनेयक को श्रुति मे प्रवृत्त कराकर ब्राह्मणों के साथ विवाद मे अभिशप्त होकर वह फिर वन मे चला गया था ॥६४॥ उस जनमेजय से महान् बल वीर्य वाले शतानीक ने जन्म धारण किया था। जनमेजय ने उस अपने पुत्र शतानीक को राज्य के सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया था ॥६५॥ फिर शतानीक के अश्वमेध मे भ र्यवान् अधिसोम कृष्ण नामधारी ने ज म ग्रहण किया था जो इस समय मे महा

बतलाने की कृपा कीजिए। कृतयुग का प्रमाण तथा त्रेता और द्वापर का प्रमाण और कलयुग का प्रमाण भी बतलाइये युगों के दोष तथा युगों का क्षय भी करने की अनुकम्पा कीजिएगा ॥६६, ७०॥

सुखदुःखप्रमाणञ्च प्रजादोष युगस्य तु ।
एतत्सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि नः प्रभो ॥७१
यथा मे कीर्तितं पूर्वं व्यासेनाक्लिष्टकर्म्मणा ।
भाव्यं कलियुगञ्चैव तथा मन्वन्तराणि च ॥७२
अनागतानिसर्व्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत ।
अत ऊर्ध्व प्रवक्ष्यामि भविष्या ये नृपास्तथा ॥७३
ऐडेक्ष्वाकान्वये चव पौरवे चान्वयेतथा ।
येषु मस्थास्यये तच्च ऐडेक्ष्वाकुकुलं शुभम् ॥
तान् सर्वान् कीर्त्तयिष्यामि भविष्ये कथितान्नृपान्॥७४
तेभ्योऽपरेऽपियेत्वन्येह्युत्पत्स्यन्तेनृपाःपुनः ।
क्षत्रा पारशवाःशूद्रास्तथान्येये महीश्वराः ॥७५
अन्धाःशकाः पुलिन्दाश्चचूलिकायवनास्तथा ।
कैवर्त्ताभीरशबरायेचान्येम्लेच्छसम्भवाः ॥
पर्य्यायतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान्नृपान् ॥७६
अधिसोमकृष्णश्चतेषां प्रथमंवर्त्ततेनृपः ।
तस्यान्ववायंवक्ष्यामि भविष्येकथितान्नृपान् ॥७७

जिनमे सस्थित रहेगा वह एक्ष्वाकुन्वय शुभ है। उन सभी भविष्य मे कथित नृपो को मैं बतलाऊँगा ॥७४॥ उन से भी और दूसरे जो अन्य नृप पुनः उत्पन्न होंगे वे क्षत्रिय—पारशवा—शूद्र तथा अन्य जो भी महीश्वर भविष्य मे होंगे उन्हें भी बतला दिया जायगा ॥७५॥ अन्ध—शक—पुलिन्द-चूलिक-यवन-कैवर्त-आभीर-शबर और जो अन्य म्लेच्छ सम्भव हैं उन सबको मैं पर्य्याय से तथा नाम से नृपो को बतलाऊँगा ॥७६॥ इन सब मैं अधिसोम कृष्ण प्रथम नृप है। अब उसके अन्वाय (वश) मे भविष्य मे कथित नृपों को मैं आप लोगों को सब बतलाऊँगा आप लोग सब ध्यानपूर्वक श्रवण कीजिए ॥७७॥

अधिसोमकृष्णपुत्रस्तु विवक्षर्भवितानृपः।
गङ्गया तु हृते तस्मिन नगरे नागसाह्वये ॥७८
त्यक्त्वा विवक्षुर्नगरकौशाम्ब्यान्तुनिवत्स्यति।
भविष्याष्टौमृतास्तस्यमहावलपराक्रमाः ॥७९
भूरिर्ज्येष्ठ.सुतस्तस्यतस्यचित्ररथ. स्मृतः।
शुचिद्रवश्चित्ररथात् वृष्णिमाश्चशुचिद्रवात् ॥८०
वृष्णिमत सुषेणश्चभविष्यतिशुचिर्नृपः।
तस्मात् सुषेणात्भवितासुनीथोनामपार्थिवः ॥८१
नृपात् सुनीथाद्भविता नृचक्षु सुमहायशाः।
नृचक्षुस्तु दायादो भविता वै सुखीवल ॥८२
सुखीवलसुतश्चापि भावी राजा परिप्लवः।
परिप्लवसुतश्चापि भविता सुतपा नृपः ॥८३
मेधावी तस्य दायादोभविष्यति न संशय.।
मेधाविनः सुतश्चापि भविष्यति पुरञ्जयः ॥८४

अधिसोम कृष्ण का पुत्र विवक्षु नाम वाला नृप होगा। उन नागसाह्वय नगर मे गङ्गा के द्वारा हृत हो जाने पर अर्थात् गङ्गा के नगर का त्याग कर देने पर वह राजा विवक्षु उस अपने नगर का त्याग

करके फिर कौशाम्बी मे निवास करेगा। उसके आठ पुत्र समुत्पन्न होंगे जो महान् बल और पराक्रम से समन्वित होगे ॥ ७८ ॥ ७६ ॥ उनमे सबसे ज्येष्ठ जो पुत्र होगा वह भूरि होगा। फिर इसका जो पुत्र होगा उसका नाम चित्ररथ होगा। उस चित्ररथ से शुचिद्रव जन्म लेगा। फिर उस शुचिद्रव से वृष्णिमान् समुत्पन्न होगा ॥ ८० ॥ वृष्णिमान् राजा का पुत्र परम शुचि नृप सुषेण जन्म ग्रहण करेगा। फिर उस सुषेण से सुनीथ नाम वाला नृप समुत्पन्न होगा ॥ ८१ ॥ इसके अनन्तर उस सुनीथ नामक नृप का पुत्र महान् यश से समुत्पन्न नृचक्षु होगा। इस नचक्षु राजा का दायाद सुखीबल जन्म ग्रहण करेगा ॥ ८२ ॥ सुखीबल का पुत्र भविष्य मे होने वाला राजा परिप्लव उत्पन्न होगा। इस परिप्लव का पुत्र सुतया नाम वाला नृप होगा ॥ ८३ ॥ इस सुतया का दायाद मेधावी उत्पन्न होगा—इसमे कुछ भी संशय नही है। मेधावी का पुत्र पुरञ्जय होगा ॥८४॥

उर्वोभाव्य सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चात्मज ।
तिग्मात वृहद्रथो भाव्यो वसुदामा वृहद्रथात् ॥८५
वसुदाम्न शतान का भविष्योदयनस्तत ।
भविष्यते च दयनात् वीरो राजा वहीनर ॥८६
वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति ।
दण्डपाणे निरामित्रो निरामित्रात्तु क्षेमक ॥ ८७
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रै पुरातनै ।
ब्रह्मक्षत्रस्ययो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृत ।
क्षेमक प्राप्य राजानं संस्थास्यति कलौ युगे ।८८
इत्येष पौरवो वंशो यथावदिह कीर्त्तित ।
धीमत पाण्डुपुत्रस्य अर्जुनस्य महात्मन ॥८९

इस पुरञ्जय का भावी पुत्र उर्व उत्पन्न होगा और उसका आत्मज तिग्मात्मा होगा। तिग्मात्मा का पुत्र वृहद्रथ जन्म लेगा और

वृहद्रथ से व सुनामा का पुत्र शतानीक जन्म धारण करेगा और फिर शतानीक से दमन पैदा होगा। इस दमन के पुत्र का नाम वीर राजा वही नर होगा। वही नर राजा का आत्मज दण्ड पाणि समुत्पन्न होगा फिर दण्ड पाणि से निरामित्र पुत्र की उत्पत्ति होगी और निरामित्र से क्षेमक नाम वाला जन्म लेगा। यहाँ पर पुरातन विप्रों के द्वारा यह अनुवंश का श्लोक गाया गया है। ब्रह्मण और क्षत्रिय की योनि है वह वंश देवर्षियों के द्वारा सत्कृत है। क्षेमक राजा को प्राप्त करके इस कलियुग में संस्थित होगा ॥ ८६, ८७, ८८ ॥ इस प्रकार से यह पौरव वंश यहाँ पर यथावत् कीर्तित कर दिया गया है जो धीमान् पाण्डु के पुत्र महान् आत्मा वाले अर्जुन का है ॥८६॥

२६- अग्नि वंश वर्णन

ये पूज्या.स्युर्द्विजातीनामग्नय.सूत ! सर्वदा ।
तानिदानीं समाचक्ष्व तद्वंशं चानुपूर्वशः ॥१
योऽसावग्निरभीमानी स्मृतः स्वायम्भुवेन्तरे ।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात् स्वाहा व्यजीजनत् ॥२
पावकं पवमानञ्चशुचिरग्निश्च यः स्मृतः ।
निमथ्य पवमानोऽग्निर्वैद्युतः पावकात्मजः ॥३
शुचिरग्निःस्मृतःसौरः स्थावराश्चैवतेस्मृताः ।
पवमानात्मजो ह्यग्निर्हव्यवाह सउच्यते ॥४
पावकिः सहरक्षस्तु हव्यवाहमुखः शुचिः ।
देवानां हव्यवाहोऽग्निः प्रथमो ब्रह्म पुत्रः ॥५
सहरक्ष सुराणान्तु त्रयाणान्ते त्रयोऽग्नयः ।
एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशत्तथैव च ॥६

प्रवक्ष्ये नामतस्तांस्त्वैप्रतिभागेन तान् पृथक् ।
पावनोन्लौकिको ह्यग्निःप्रथमोब्रह्मणश्च य. । ७

ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! जो अग्नियाँ द्विजातियों की परम पूज्य हैं उनके विषय मे इस समय मे बतलाइये और उनका वंश की आनुपूर्वी के क्रम से कहने की कृपा कोजिये ॥ १ ॥ महर्षि श्री सूतजी ने कहा—जो यह अग्नि अभी मानी है जो कि स्वायम्भुव अन्तर मे कहा गया है वह तो ब्रह्मा का मानस अर्थात् मन से समुत्पन्न पुत्र है फिर उससे स्वाहा ने जन्म ग्रहण किया था ॥ २ ॥ पावक-पवमान-शुचि और अग्नि ये नाम इसके कहे गये हैं। निर्मथ्य-पवमान अग्नि है तथा पावक.त्मज वैद्युत अग्नि है ॥ ३ ॥ शुचि अग्नि सौर होता है। वे सब स्थावर ही कहे गये हैं। पवमानात्मज जो अग्नि है वह हव्यवाह कहा जाता है ॥ ४ ॥ पावकि सहरक्ष होता है और हव्यवाह मुख शुचि होता है। देवों का अग्नि हव्यग ह होता है। प्रथम अग्नि ब्रह्मा का सुत था ॥ ५ ॥ सुरो का सहरक्ष होना है। वे तीनो क तीन अग्नियाँ हैं। इन अग्नियों के पुत्र और पौत्र चालीस हैं। अब उनके नाम लेकर प्रतिभाग के द्वारा उनका पृथक् बतलायंगे। लौकिक अग्नि पावन होना है जो प्रथम ब्रह्मा का सुत है ॥ ६, ७ ॥

ब्रह्मोदनाग्निस्तत् पुत्रोभरतो नाम विश्रुतः ।
वैश्वानरो हव्यवाहो वहन् हव्यममारसः ॥८
समृतोऽथर्वणः पुत्रो मथित. पुष्करोदधिः ।
योऽथर्वा लौकिको ह्यग्निर्दक्षिणाग्नि स उच्यते ॥९
भृगो प्रजायताथर्वाह्यङ्गिराथर्वणःस्मृत ।
तस्यह्यलौकिकोह्ययग्निर्दक्षिणाग्निस्तः ॥१०
अथय पवमानस्तु निर्मथ्योऽग्नि.श्च उच्यते ।
सच वै गार्हपत्योऽग्निः प्रथमोब्रह्मण.स्मृतः ॥११
तत सभ्यावसथ्यौच सशत्यास्तौ सुतावुभौ ।

ततः षोडशनद्यस्तु चक्रमे हव्यवाहनः ॥
यः खल्वाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः ॥१२
कावेरी कृष्णवेणीञ्च नर्मदां यमुनां तथा।
गोदावरी वितस्ताञ्च चन्द्रभागामिरावतीम् ॥१३
विपाशां कौशिकीञ्चैव शतद्रू सरयूतथा।
सीतां मनस्विनीञ्चैव ह्लादिनीं पावनां तथा ॥ १४

जो ब्रह्मादौनाग्नि है उसका पुत्र भरत— इस नाम से विश्रुत है। वैश्वानर-हव्यवह और हव्य को वहन करता हुआ महारस और समृग यह अथर्वण अग्नि होता है। मथित पुष्करी ऋषि पुत्र है। जो अथर्वा है वह लौकिक अग्नि है और वह दक्षिणाग्नि कहा जाया करता है ।।८, ६।। अथर्वा भृगु से प्रजात हुआ था और अथर्वण अङ्गिरा कहा गया है। उसका अलौकिक अग्नि है वह दक्षिणाग्नि कहा गया है ।।१०।। इसके अनन्तर जो पवमान है वह निमथ्य अग्नि कहा जाता है। और वह गार्हपत्य अग्नि है जो प्रथम ब्रह्मा का कहा गया है ।।११।। इसके पश्चात् सभ्य और अव-सभ्य ये दोनों शंसनि के सुत थे। इसके अनन्तर हव्य वाहन ने षोडश नदियों को पादविक्षिप्त किया था। जो आहव नीय अग्नि है वह द्विजों के द्वारा अभिमानी कहा गया है ।।१२।। कावेरी—कृष्णवेणी—नर्मदा—यमुना—गोदावरी—वितस्ता—चन्द्रभागा—इरावती-विपाशा-कौशिकी-शतद्रू—सरयू—सीता—मनस्विनी—ह्लादिनी—पावना ये सोलह नदियां हैं उनमें सोलह रूपों में आत्मा को पृथक् २ प्रविभक्त करके उस समय में उन नदियों में विहार करते हुए वह धिष्ण्यछ हो गया था ।।१३।। ।।१४, १५।।

तासुषोडशधात्मानं प्रविभज्य पृथक्पृथक्।
तदा तु विहरंस्तासु धिष्ण्ये-छ समभूद्वह ॥१५
स्वानिधानस्थिता धिष्ण्यास्तासुत्पन्नाश्च धिष्णवः।
धिष्ण्येषु जज्ञिरे यस्मात् ततस्ते धिष्णवः स्मृता ॥१६

इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्ण्येषु प्रतिपेदिरे ।
तेषा विहरणीया ये उपस्थेयाश्च तान्शृणु ॥
विभुः प्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्रस्थ धिष्णवोऽपरे ॥१७॥
विहरन्ति यथास्थान पुण्याहे समुपक्रमे ।
अनिर्देश्यानिवार्याणामग्नीना शृणुत क्रमम् ॥१८
वासवोऽग्निःकृशानुर्योद्वितीयोत्तरवेदिक. ।
सम्राडग्नि सुतोह्यष्टावुपतिष्ठन्तिानृद्विजा ॥१६
पर्जन्य. पावमानस्तुद्वितीयःसोऽनुद्वश्यते ।
पात्रकोष्णःसमुह्यस्तुवोत्तरेसोऽग्निरुच्यते ॥२०
हव्यसूदोह्यसमृज्यः शामित्र. सविभाव्यते ।
शतधामासुधाज्योति रौद्रैश्वर्य.सउ यते ॥२१

अपने अभिधान मे स्थित धिष्ण्य उनमे समुत्पन्न है और धिष्णु हैं। क्योकि उन्होंने धिष्ण्यो मे जन्म ग्रहण किया था अतएव वे धिष्णु में प्रतिपन्न हुए थे । जो उनके विहरणीय तथा उपस्थेय हैं उनके विषय मे भी सुनलो । प्रवाहण अग्नीध्र विभु है और उसमे स्थित अपर धिष्णु हैं। ॥१७॥ किसी पुण्याह क समुपक्रम होने पर यथास्थान मे विहार किया करते हैं । अनिर्देश्य और अनिवार्य्य अग्नियो का क्रम श्रवण करो ॥१८॥ वसव अग्नि—कृशानु और जो द्वितीय उत्तरवेदिक है । सम्राट् अग्नि है द्विजगण ये आठ उनका उपस्थान किया करते हैं ॥१९॥ पर्जन्य—पवमान वह द्वितीय अनुदृश्यमान होता है । पात्रकोष्ण और समुह्य अग्नि उत्तर मे कहा जाता है ॥२०॥ हव्य सूद और असमृज्य शामित्र सविभावित होना है । शतधामा—सुधा ज्योति वह रौद्रैश्वर्य कहा जाया करता है ॥ २१ ॥

ब्रह्मज्योतिवसुधामा ब्रह्मस्थानीय उच्यते ।
अजएकपादुपस्थेय स वै शालामुखीयतः ॥२२

अनिर्देश्योह्यहिर्बुध्नो बहिरन्ते तु दक्षिणे ।
पुत्राह्येते तु सर्वस्य उपस्थेयाद्विजैः स्मृता ॥२३
ततोविहरणीयास्तुवक्ष्याम्यष्टौनुनान् सुतान् ।
होत्रियस्यसुतो ह्यग्निर्बर्हिषो ह यवाहन ॥२४
प्रशस्योऽग्नि प्रचेतास्तुद्वितीय समहायक. ।
सुताह्यग्नेर्विश्ववेदाब्राह्मणाच्छंसिरुच्यते ॥२५
अपायोनि स्मृत स्वाम्भ सेतुर्नाम विभाव्यते ।
धिष्ण्यआहरणाह्येनेसोमेनेज्यन्तवैद्विज ॥२६
ततो य पावको नाम्ना य सद्भिर्योग उच्यते ।
अग्नि सोऽवभृथेज्ञे योवरुणेन सहेज्यते ॥२७
हृदयस्य सुतो ह्यग्नेजठरेऽग्नौ नृणा पचन् ।
मन्युमान् जाठरश्चाग्निर्विद्धाग्नि सतत स्मृत ॥२८

ब्रह्म ज्योति और वसुधामा अग्नि ब्रह्मस्थानीय कहा जाता है। अजैकपाद उपस्थेय है क्योंकि वह शालामुख होता है ॥२२॥ अनिर्देश्य—अहिर्बुध्न बाहिर अन्त में दक्षिण हैं ये सर्व के पुत्र हैं और द्विजों के द्वारा उपस्थान करने योग्य कहे गए हैं ॥२३॥ इसके अनन्तर विहरणीय उन आठ सुतों के विषय में बतलाते हैं। होत्रिय का बर्हिष हव्य वाहन अग्नि सुत है ॥२४॥ प्रशस्य अग्नि प्रचेता दूसरा समहायक होता है। विश्ववेदा अग्नि का सुत है और ब्राह्मणाच्छंसि कहा जाता है ॥२५॥ अपायोनि स्वाम्भ कहा गया है तथा सेतु नाम विभावित होता है। ये सब धिष्ण्य आहरण हैं और द्विजों के द्वारा सोम से इज्यमान होते हैं ॥२६॥ इसके पश्चात् जो पावक जो सत्पुरुषों के नाम से योग कहा जाता है वह अग्नि अवभृथ में ही जानना चाहिए यह वरुण के साथ इज्यमान होता है ॥२७॥ जो मनुष्यों के जठर में खाये हुए पदार्थों का पाचन करता है वह हृदय की अग्नि का सुत है। जाठर अग्नि बड़ा मन्युमान् है निरन्तर वह विद्धाग्नि कहा गया है ॥२८॥

परस्परार्त्थितो ह्यग्निर्भूतानीह विभुर्दहन् ।
अग्नेमन्युतम पुत्रो घोर सम्वर्त्तक स्मृत ॥२६
पिबन्नाि न स वसति समुद्रे वडवामुखे ।
समुद्रवासिन पुत्र सह रक्षो विभाव्यते ॥३०
सहरक्षस्तुवँश्कामान्गृहसवसतेनृणाम् ।
क्रव्यादग्नि सुतस्तस्य पुरुषान्योऽत्तिवै मृतान् ॥३१
इत्येतेपावकस्या नेद्विजै पुत्रा प्रकीर्त्तिता ।
तत सुतास्तु सौवीर्य्याद्गन्धर्वैरसुरहृता ॥३२
मथितोयस्त्वरण्यान्तुमाऽग्निरापसमिन्धनम् ।
आयुर्नाम्नातुभगवान् पशौयस्तुप्रणीयते ॥३३
आयुपो महिमान्पुत्रो दहनस्तु तत सुत ।
पाकयज्ञष्वभोमानोहुत हव्य भुनक्ति य ॥३४
सवस्माद्देवनोकाच्च ह य कव्य भुनक्ति य ।
पुत्रोऽस्य सहितो ह्यग्निद्भुत समहायशा ॥३५

परस्पर मे समुत्थित अग्नि यहा पर विभुभूतो का दाह करता है वह अग्निका मन्युनम घोर पुत्र सम्वर्त्तक कहा गया है। पीता हुआ वह अग्नि समुद्र मे वडवा के मुख म वास किया करता है। समुद्र मे वास करने वाले का वह पुत्र सहरक्ष विभावित होता है ॥२६, ३०॥ जो सहरक्ष नाम वाला अग्नि है वह सब कामो को पूर्ण किया करता है और मनुष्यो के घर मे ही निवास करता है। क्रव्याद नामक अग्नि उसका पुत्र है जो मृत हुए मनुष्यों को खा जाता है अर्थात् शव को भस्मीभूत जलाकर कर दिया करता है ॥३१॥ ये इतने द्विजो के द्वारा पावक अग्नि के पुत्रो का प्रकीर्त्तन किया गया हैं। इसके अनन्तर जो सुत हुए थे वे सौवीर्य्य से गन्धर्व और असुरो के द्वारा हृत हो गये हैं ॥३२॥ जो अरणी मे मथित करने से उत्पन्न हुआ अग्नि है वह आप समिन्धन होता है। वह भगवान् [illegible] नाम से आयु [illegible] होता है जो [illegible] मे प्रणीयमान होता है

वान् ये ही आठ कीर्तित किये गये हैं। यह समस्त प्रजा शुच्यग्नि का है और इस तरह से चौदह अग्नि है। इतने ये अग्नि बतला दिये गये हैं जो अध्वर मे प्रणीत होते हैं। सर्ग के समतीत होने पर जो सुरोत्तम यामो के सहित स्वायम्भुवअन्तर मे पूर्व मे अग्नि हैं वे सब अभोमाना हैं। ये विहार करने के योग्य चेतन और अचेतनो मे यहाँ पर स्थानाभिमानी हव्य वाहन अग्नीध्र पहिले थे ॥३६, ४०, ४१॥ सकाम और नैमित्तिक श्राद्ध वे हैं जो कर्मों मे समवस्थित रहा करते हैं ॥४२॥

पूर्वे मन्वन्तरेऽतीते शुक्रैर्यामैश्च तं सह ।
एते देवगणैः सार्द्धं प्रथमस्यान्तरे मनोः ॥४३
इत्येता योनयो ह्यक्ता स्थानाख्याजातवेदसाम् ।
स्वारोचिषादिषुज्ञया सवर्णान्तेषुसप्तसु ॥४४
तैरेवन्तु प्रसंख्यात साम्प्रतानागतेष्विह ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षण जातवेदसाम् ॥४५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः ।
वर्त्त ते वर्त्तमानश्च यामदेवैः सहाग्नयः ॥४६
अनागतैः सुरैः सार्द्धं वत्स्यन्त्यानागतास्त्वथ ।
इत्येष प्रचयोऽग्नीनामयाप्रोक्तोयथाक्रमम् ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥४७

पूर्व मन्वन्तर के अतीत हो जाने पर उन शुक्र यामो के सहित प्रथम मनु के अन्तर मे ये सब देव गणो के साथ मे हैं ॥ ४३ ॥ इतनी ये सब स्थानाख्य जात वेदाओ की योनियाँ बतला दी गई हैं वे सब सवर्णान्त सात स्वारोचिष आदि मे जाननी चाहिए ॥ ४४ ॥ इस प्रकार से उनके द्वारा ही प्रसख्यान हैं। इस समय में यहाँ पर अनागत सब मन्वन्तरो मे नाना रूप वाले प्रयोजनों से युक्त और वर्त्तमान याम तथा देवो के साथ अग्नि हैं ॥ ४६ ॥ अनागत सुरों के साथ वे भी आगत नहीं हैं—इस प्रकार से यह अग्नियों का प्रचय मैंने क्रम के अनुसार बता दिया है जो

विस्तार के साथ और आनुपूर्वी के सहित ही कहा गया है। अब इसके आगे आप लोग मुझसे क्या श्रवण करना चाहते हैं ॥४७॥

३०—कर्मयोग वर्णन

इदानीं प्राह यद्विष्णुः पृष्टः परममुत्तमम् ।
तमिदानीं समाचक्ष्व धर्माधर्मस्य विस्तरम् ॥१
एवमेकार्णवे तस्मिन् मत्स्यरूपी जनार्दनः ।
विस्तारमादिसर्गस्य प्रतिसर्गस्य चाखिलम् ॥२
कथयामास विश्वात्मा मनवे सूर्यसूनवे ।
कर्म्मयोगञ्च साङ्ख्यञ्च यथावद्विस्तरान्वितम् ॥३
श्रोतुमिच्छामहे सूत ! कर्म्मयोगस्य लक्षणम् ।
यस्मादविदितं लोके नकिञ्चित्तवसुव्रत ॥४
कर्म्मयोगञ्च वक्ष्यामि यथाविष्णुविभाषितम् ।
ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्म्मयोगःप्रशस्यते ॥५
कर्म्मयोगोद्भवं ज्ञानं तस्मात्तत्परमंपदम् ।
कर्म्म ज्ञानोद्भवं ब्रह्म नच ज्ञानमकर्म्मणः ॥६
तस्मात्कर्मणियुक्तात्मातत्त्वमाप्नोतिशाश्वतम् ।
वेदोऽखिलोधर्ममूलमाचारश्चैवतद्विदाम् ॥७

कर्म योग तथा सांख्य योग को भी बतलाया था ॥ २, ३ ॥ ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! हम इस समय में कर्म योग का लक्षण श्रवण करना चाहते हैं। हे सुव्रत ! कारण यह है कि आप तो सर्व ज्ञाता महान् पुरुष हैं फिर ऐसा अवसर हमको कब मिलेगा। ऐसी कोई भी बात नहीं है जिसको आप नहीं जानते हो ॥ ४ ॥ सूतजी ने कहा—जिस प्रकार से ठीक २ भगवान् विष्णु ने भाषित किया था। उसी कर्म योग को हम बतलाते है। कर्म योग की बड़ी प्रशंसा भी है। यह एक सहस्र ज्ञानयोग से भी कहीं अधिक प्रशस्त माना जाता है ॥ ५ ॥ कर्मयोग से समुत्पन्न जो ज्ञान है उसी से वह परम पद प्राप्त होता है। कर्म ज्ञान से उद्भूत होने वाला ब्रह्म है ज्ञान कर्म से उद्भव होने वाला नहीं है ॥ ६ ॥ इस लिये कर्मयोग की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ है। जो मनुष्य कर्म में युक्त आत्मा वाला है वह शाश्वत तत्त्व को प्राप्त किया करता है। अखिल वेद मूल धन है और उसका हित करने वाला आधार भी है ॥ ७ ॥

अष्टावात्मगुणास्तस्मिन् प्रधानत्वेन संस्थिताः ।
दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्तीरक्षातुरस्य च ॥८
अनसूया तथा लोके शौचमन्बाहृद्विजा ।
अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारमेवनम् ॥९
न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषू ।जितेषु च ।
तथा स्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा ॥१०
अष्टावात्मगुणा प्रोक्ता पुराणस्यतुकोविदै ।
अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्यसाधक ॥११
कर्मयोग विना ज्ञान कस्यचिन्नेह दृश्यते ।
श्रुतिस्मृत्युदित धर्ममुपतिष्ठेत्प्रयत्नतः ॥१२
देवताना पितृणाञ्च मनुष्याणाञ्च सर्वदा ।
कुर्यादहरहर्यज्ञैर्भूतर्षिगणतर्पणम् ॥१३
स्वाध्यायैरर्चयेच्चर्षीन् होमैर्विद्वान् यथाविधि ।
पितॄन् श्राद्धै रन्नदानैर्भूतानिबलिकर्मभिः ॥१४

आत्मा के आठ गुण हैं जो कि इन आत्मा में प्रधान रूप से संस्थित हैं। समस्त प्राणी मात्र पर दया और जो आतुर पुरुष हो उसकी रक्षा करना भी आत्मा का एक प्रधान गुण है। लोक में अनूया (किसी के भी गुण-दोषों का वर्णन करके बुराई न करना) हे द्विजगण! बाहिर और अन्दर की शुचिता बिना ही अभ्यास (श्रम) के होने वाले कार्यों में माङ्गल्य आचार का सेवन करना भी गुण है। जो आते हैं उनके विषय में उपार्जित किये हुए धनों में कृपणता नहीं करनी चाहिए। यह उदार भाव भी एक विशेष गुण होता है। पराई स्त्री और पराया धन में कभी भूल कर भी स्पृहा नहीं करनी चाहिए। माता के समान पराई स्त्री और पराया सुवर्ण को भी मिट्टी के ढेले के समान ही देखना आत्मा का एक विशेष गुण है ॥ ९, १० ॥ इस प्रकार से पुराणों के विद्वानों ने ये आठ आत्मा के गुण बतलाये हैं—यही आत्मयोग का साधक क्रिया योग है ॥ ११ ॥ इस कर्मयोग के बिना यहाँ पर ज्ञान किसी को भी नहीं हुआ करता है जो कि दिखलाई देवे। अतएव श्रुति तथा स्मृति के द्वारा कहा गया जो धर्म है उसी पर प्रयत्न पूर्वक उपस्थित रहना चाहिए। १२ ॥ देवगणों का—पितृवर्यों का और फिर मनुष्यों का सर्वदा प्रति दिन यज्ञों के द्वारा पूजन और ऋषिगण का तर्पण करना चाहिये। १३ ॥ ऋषियों का अर्चन वेदों के स्वाध्याय के द्वारा करना चाहिए और विद्वान् पुरुष को विधान के अनुसार होमों के द्वारा भी यजन करना परमावश्यक है। पितृगण अभ्यर्चन श्राद्धों के द्वारा करे अन्न के दानों से तथा बलि कर्मों के द्वारा समस्त भूतों का समर्चन करना चाहिए ॥ १४ ॥

> पञ्चैते विहिता यज्ञा पञ्चसूनापनुत्तये।
> कण्डनं पेषणी चुल्ली जलकुम्भो प्रमार्जनी ॥ १५
> पञ्चसूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति।
> तत्पापनाशनायामी पञ्चयज्ञाः प्रकीर्तिता ॥ १६

द्वाविंशति तथाष्टौ च ये संस्काराः प्रकीर्त्तिता ।
तद्युक्तोऽपि न मोक्षाय यस्त्वात्मगुणवर्जित. ॥१७
तस्मादात्मगुणोपेतः श्रुतिकर्म्म समाचरेत्
गोब्राह्मणानां वित्तेन सर्वदा भद्रमाचरेत् ॥१८
गोभूहिरण्यवासोभिर्गन्धमाल्योदकेन च ।
पूजयेद् ब्रह्मविष्ण्वर्कद्रवस्वात्मकं शिवम् ॥१९
व्रतोपवासैर्विधिवत् श्रद्धया च विमत्सरः ।
योऽसावतीन्द्रिय शान्त. सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातन ॥
वासुदेवो जगन्मूर्त्तिस्तस्य सम्भूतयोह्यमा ॥२०
ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् मार्त्तण्डो वृषवाहन ।
अष्टौ च वसवस्तद्वदेकादशगणाधिपाः ॥
लोकपालाधिपालश्च पितरो मातरस्तथा ॥२१
इमा विभूतय प्रोक्ताश्चराचरसमन्विताः ।
ब्रह्माद्याश्चतुरो मलमव्यक्ताधिपति स्मृत. ॥२२

गार्हस्थ्य आश्रम मे रहने वालो को प्रतिदिन स्वाभाविक स्वरूप से ही स्वतः पाँच प्रकार के पाप कर्म अनजान मे बन जाया करते हैं। उन पाँच पाप कर्मों की अपनुत्ति के लिये ये पाँच प्रकार के यज्ञो के करने का विधान करना परमावश्यक है। वे पाँच पाप ये हैं—कण्डनी कर्म जो आवश्यक रूप से घरो मे होता ही है। छननी से छानना हा कण्डनी कहा जाता है। पेषणी चक्की आदि से पीसने का काम—चुल्ली चूल्हा जलाना- जलकुम्भी वह स्थल जहाँ पर जल आदि को रखा जाता है है और पाँचवाँ प्रमार्जनी—बुहारी आदि परिष्कार करना। ये पाँच सून (पाप या हत्या गृहस्थ का हुआ ही करते हैं। इसी से वह स्वर्ग की प्राप्ति नही किया करता है। उनक होर वाल पापों क नाश क लिये ही ये पाँच दैनिक परमावश्यक यज्ञ कीर्तित किये गये हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ बाईस और आठ जो आत्मा क संस्कार बताये गये हैं जिनसे आत्मा की

शुद्धि हुआ करती है इन संस्कारों से युक्त भी हो तो भी जो आत्मा के वक्ष्यमाण सद्गुणों से रहित होता है उसको मोक्ष नहीं होती है। अतः यह सिद्ध है कि कल्याण के लिये अभीष्ट आत्मा के गुणों का होना परमावश्यक है ॥ १७ ॥ अतएव आत्मा के गुणों युक्त होकर श्रुतिविहित कर्मों का समाचरण करना चाहिए। जो धन धाम में न्यायोपार्जित हो उसमें सर्वदा गौ और ब्राह्मणों का कल्याण कर्म करना चाहिए ॥ १८ ॥ गौ-हिरण्य-वस्त्र-गन्ध-माला-जल आदि के द्वारा ब्रह्मा—विष्णु—सूर्य—रुद्र और वसु स्वरूप शिव का नित्य पूजन करना चाहिए ॥ १९ ॥ मत्सरता के भाव से रहित होकर परम श्रद्धा से विधि पूर्वक व्रत एवं उपवासों का समाचरण करे। जो इन्द्रियों की पहुँच से भी परे है—परम शान्त—सूक्ष्म स्वरूप वाला—अव्यक्त—सनातन—शान्तमूर्ति साक्षात् वासुदेव हैं उन्हीं की ये सब सम्मूर्तियाँ हैं ॥ २० ॥ ब्रह्मा-विष्णु-भगवान् मार्तण्ड-वृषवाहन—आठ वसुगण—एकादश गणों के अधिप—लोक पाल और अधिकारों के सहित पितृगण तथा मातृ वर्ग—ये सब चराचर के समन्वित विभूतियाँ बन दी गयी हैं। ब्रह्मा आदि चार मूर्ति हैं जो अव्यक्त के अधिष्ठित बताये गये हैं ॥२१, २२॥

ब्रह्मणा चाथ सूर्येण विष्णुनाथ शिवेन वा ।
अभेदात्पूजितेन स्यात्पूजितं सचराचरम् ॥२३
ब्रह्मादीनां परस्थाने त्रयाणामपि संस्थिति ।
वेदमूर्त्तावतः पूज्या पूजनीयः प्रयत्नतः ॥२४
तस्मादतिद्विजमुख्यान् कृत्वा सम्पूजयेदिमान् ।
दानैर्व्रतोपवासैश्च जपहोमादिना नरः ।
इति क्रियायोगपरायणस्य वेदान्तशास्त्रस्मृतिवत्सलस्य ।
विकर्मभीतस्य सदा न किञ्चित् प्राप्तव्यमस्तीह परे च लोके ॥२५

ब्रह्मा—सूर्य—विष्णु और शिव ये सब एक ही हैं इनको अभेद समझ कर ही इनको पूजित करे ऐसा अभेद भाव : इनका समर्थन करने

पर सभी चराचर का समर्चन हो जाया करता है ॥२३। ब्रह्मा आदि तीनो की जहा संस्थिति है वही परम धाम है। वेद मूर्ति पूपा का सदा प्रयत्न पूर्वक पूजन करना चाहिए ॥२४॥ इसीलिये इन सबका पूजन कर अग्नि और द्विजो को मुख बनाकर ही करना चाहिए अर्थात् अग्नि तथा द्विजो के द्वारा ही इनका अभ्यर्चन हुआ करता है। दान—व्रत-उपवास-जप और होम आदि के द्वारा मनुष्य को उक्त अभीष्ट देवो का समर्चन करते रहना चाहिए ॥२५। इसी क्रियायोग मे तत्पर तथा वेदान्त शास्त्र और स्मृति से प्यार करने वाला और विकर्म्मों अर्थात् बुरे कर्मों से भीत रहने वाले को सदा इस लोक और पर लोक मे कुछ भी प्राप्त करने के योग्य नही हुता है ॥२६॥

३१— पुराणसंख्या वर्णन

पुराणसंख्यामाचक्ष्व सूत ! विस्तरशः क्रमात् ।
दानधर्म्ममशेषन्तु यथावदनुपूर्वशः ॥१
इदमेव पुराणेषु पुराणपुरुषस्तदा ।
यदुक्तवान् स विश्वात्मा मनवे तन्निबोधत ॥२
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ॥३
पुराणमेकमेवासीत् सदा कल्पान्तरेऽनघ ।

मुनिगण ने कहा—हे सूतजी ! अब आप पुराणों की संख्या बतलाइये और विस्तार के साथ क्रम से कहने की कृपा कीजिए और यथावत् सम्पूर्ण दान धर्म आनुपूर्वी के सहित बतलाइये ॥१॥ सूतजी ने कहा—उस समय में विश्व की आत्मा उन पुराण पुरुष ने यह ही जो पुराणों में मनु को कहा था उस को आप लोग समझ लीजिए ॥२॥ भगवान् ने कहा—ब्रह्माजी ने समस्त शास्त्रों में पुराण को ही सबसे प्रथम कहा था। इसके अनन्तर उनके मुखों से वेदों का निर्गमन हुआ था ॥३॥ हे अनघ ! उस समय में कल्पान्तर में एक ही पुराण था। यह त्रिवर्ग का साधन—पुण्यमय और शतकोटि विस्तार वाला था ॥ ४ ॥ जब सब लोक निर्दग्ध हो गये थे तब मैंने वाजि रूप से चारों वेद—उनके अङ्ग शास्त्र—पुराण—न्याय का विस्तार—मीमांसा और धर्म शास्त्र परिगृहीन करके मैंने दिए थे। फिर कल्प के आदि में उदकार्णव में मत्स्यरूप से यह अशेष उदक से अन्तर्गत रहते हुए कहे थे। इनका श्रवण करके चतुर्मुख ब्रह्माजी ने मुनियों और देवों के प्रति इनको कहा था ॥ ५, ६, ७ ॥

प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप ! ॥८
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ॥९
तथाऽष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते ।
अद्यापि देवलोकेऽस्मिन् शतकोटिप्रविस्तरम् ॥१०
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम् ।
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ॥११
नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ! ।
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ॥१२
ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते ।
लिखित्वा तच्च यो दद्याज्जलधेनुसमन्वितम् ॥

वैशाखपूर्णिमायाञ्च ब्रह्मलोके महीयते ॥१३
एतदेव यथा पद्ममभूर्द्ध रण्मय जगत् ।
तद्वृत्तान्ताश्रय तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ॥
पाद्य तत् पञ्च पञ्चाशत् सहस्राणीह कथ्यते ॥१४॥

फिर समस्त शास्त्रो की प्रवृत्ति पु ाण से ही हुई थी। फिर कुछ काल मे पुराणो का ग्रहण न देखकर हे नृप ! मैं फिर व्यास रूप को धारण करके युग-युग मे सहरण किया करता हूँ। सदा द्वापर मे चार लाख के प्रमाण से सहरण किया था ॥८॥६॥ फिर उन पुराणो के अठारह भेद करके इस लोक मे प्रकाशित किया जाता है। इस समय मे भी इस देव लोक मे सौकराड विस्तार है ॥१०॥ तदर्थ यहाँ पर चार लाख सक्षेप से त्रिशेषित किया है ? ॥११॥ हे मुनि सत्तमो ! अब उनके नाम लेकर कहता हू। आप श्रवण कीजिए। पहिले ब्रह्माजी ने मरीचि के लिये यावन्मात्र कहा था ॥१२॥ ब्राह्म पुराण तरह सहस्र परिकीर्तित किया जाता है। जो कोई उसको हाथ से लिखकर जलधेनु से सयुक्त करके वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि मे दान करता है वह अन्त मे ब्रह्म लोक मे जाकर प्रतिष्ठित होता है ॥१३॥ यह ही जैसे जगत् हैरण्मय पद्म हो गया था उसी के वृत्तान्त का आश्रय ग्रहण करके उसी की भाँति बुध लोगो के द्वारा 'पाद्मम'—यह नाम कहा जाता है। वह पद्मपुराण यहाँ पर पचपन सहस्र कहा जाता है ॥१४॥

तत्पुराणञ्च यो दद्यात् सुवर्णकलशान्वितम् ।
ज्येष्ठेमासि तिलैर्युक्तमश्वमेधफललभेत् ॥१५
वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशर ।
यत्प्राह धर्मानखिलान् तद्युक्त वैष्णव विदु. ॥१६
तदाषाढे च यो दद्यात् घृतधेनुसमन्वितम् ।
पौर्णमास्याविपूतात्मा स पदयातिवारुणम् ॥
त्रयो विंशतिसाहस्र तत्प्रमाण विदुर्बुधाः ॥१७

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत् ।
यत्र तद्वायवीयस्याद् रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ॥
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ॥१८
श्रावण्यां श्रावणे मासि गुडधेनुसमन्वितम् ।
यो दद्यात् वृषसंयुक्तं ब्राह्मणायकुटुम्बिने ॥
शिवलोके ॥ पूतात्मा कल्पमेकं वसेन्नर. ॥१९ ।
यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः ।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥२०
सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरोत्तमाः ।
तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते ॥२१

इस पुराण को जो कोई पुरुष सुवर्ण की कलश से युक्त करके तथा तिलों से समन्वित ज्येष्ठ मास में दान में देता है वह अश्वमेध यज्ञ के पुण्य - फल को प्राप्त किया करता है ॥१५॥ वाराह कल्प के वृत्तान्त का आश्रय लेकर पराशर ने जो समस्त धर्मों का कहा था उससे युक्त वैष्णव जानना चाहिए ॥ १६॥ उसको आषाढ़ मास में घृत धेनु से समन्वित कर के पूर्णमासी तिथि में जो मनुष्य दान में देता है वह विशेष रूप से पूत आत्मा वाला होकर वारुण पद को प्राप्त किया करता है। बुध लोग इस का प्रमाण तेईस सहस्र पुराण बताया करते हैं ॥१७॥ यहाँ पर वायुदेव ने श्वेत कल्प के प्रसङ्ग में धर्मों को बताया था। जिसमें इन धर्मों का कथन किया था वही वायवीय अर्थात् वायुपुराण हुआ था जो भगवान् रुद्र के महात्म्य से समन्वित था। यह पुराण चौबीस सहस्र श्लोकों की संख्या के प्रमाण वाला पुराण कहा जाता है ॥१८॥ श्रावण मास में श्रावणी पूर्णिमा तिथि में गुड और धेनु से समन्वित तथा वृष से संयुक्त करके जो कोई कुटुम्बी ब्राह्मण के लिए दान में देता है वह मनुष्य पवित्र आत्मा वाला होकर एक कल्प पर्यन्त शिवलोक में निवास किया करता है ॥ १९ ॥ जिसमें गायत्री का अधिकार करके जो धर्म के विस्तार

का वर्णन किया जाता है वह वृत्रासुर के वध की कथा से युक्त भागवत पुराण कहा जाता है ॥ २० ॥ सारस्वत कल्प के मध्य मे जो नरोत्तम हुए थे उनके वृत्तान्त के उद्भव वाले को लोक मे उसी को भागवत कहा जाता है ॥ २१॥

> लिखित्वा तच्च योदद्याद्धेमसिंहसमन्वितम् ।
> पौणमास्यांप्रोष्ठपद्यां स यातिपरमांगतिम् ॥
> अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत् प्रचक्षते ॥२२॥
> यत्राह नारदो धर्मान् वृहत्कल्पाश्रयाणिच ।
> पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥२३
> तदिदं पञ्चदश्यान्तु दद्याद्धेनुसमन्वितम् ।
> परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥२४
> यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा ।
> व्याख्यातावैमुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः ॥२५
> मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु ।
> पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ॥२६
> प्रतिलिख्यचयोदद्यात् सौवर्णकरिसंयुतम् ।
> कार्तिक्यांपुण्डरीकस्ययज्ञस्यफलभाग्भवेत् ॥२७
> यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
> वशिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत्प्रचक्षते ॥२८

इसको हाथ से लिखकर हेम के सिंह से समन्वित करके जो प्रोष्ठपदी पूर्णिमा तिथि में अर्थात् भाद्रपद मास की पूर्णमासी मे दान किया करता है उस मनुष्य की परम गति हो जाया करती है। इस पुराण के अनुष्टुप श्लोकों का प्रमाण अठारह सहस्र कहा जाता है ॥२२॥ जिसमें वृहत् कल्प का आश्रय लेकर देवर्षि नारदजी ने धर्मों का वर्णन किया है। यह नारदीय अर्थात् नारद पुराण कहा जाता है। इसके श्लोकों का प्रमाण पच्चीस सहस्र है। इस पुराण को पूर्णिमा तिथि में

तु से समन्वित करके दान में दिया जाता है तो वह दानदाता पुरुष
रम सिद्धि को प्राप्त किया करता है जो सिद्धि पुनरावृत्ति दुर्लभ होती
॥२३, २४॥ जिसमें ऋतुनियो को अधिकृत करके धर्म और अधर्म
विषय में विचार किया गया है और यह व्याख्यान मुनि के प्रश्न पर
मचारी मुनियो के द्वारा ही किया गया है ॥२५॥ मार्कण्डेय मुनि ने
ह सभी कुछ बड़े विस्तार के साथ कहा है। यह पुराण नौ सहस्र अनु-
टुप् श्लोक के प्रमाण वाला है और यहाँ पर यह मार्कण्डेय पुराण के
ाम से कहा जाता है ॥२६॥ इस पुराण को हाथ से लिखकर सुवर्ण
निर्मित हाथी सहित जो इसका कोई दान दिया करता है और वह भी
ार्तिकी पूर्णिमासी को दिया जाता है तो उस दान के दाता को पुण्डरीक
ज्ञ के पुण्य का फल प्राप्त हो जाता है ॥२ ॥ जो वह ईशानक कल्प
ा वृत्तान्त है उसको अधिकृत करके वसिष्ठ ने महर्षि वसिष्ठ जी से कहा
ा वही पुराण आग्नेय नाम से प्रसिद्ध है अर्थात् इसी को अग्निपुराण कहा
ाता है ॥२८॥

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमपद्मसमन्वितम् ।
मार्गशीर्ष्यां विधानेन तिलधेनुसमन्वितम् ॥
तच्च षोडशसाहस्रं सवक्रतुफलप्रदम् ॥२९
यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः ।
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितिम् ॥
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम् ॥३०॥
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
भविष्यचरितप्रायं भविष्यन्तदिहोच्यते ॥३१
तत्पौषमासि यो दद्यात् पौर्णमास्यां विमत्सरः ।
गुडकुम्भसमायुक्तमग्निष्टोमफलं भवेद् ॥३२
रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
सावर्णिर्नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ॥३३

यत्र ब्रह्मवराहस्य चोदन्तं वर्णित मुहुः ।
तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्त्तमुच्यते ॥३४
पुराण ब्रह्मवैवर्त्तं यो दद्यान्माघमासि च ।
पौर्णमास्या शुभदिने ब्रह्मलोके महीयते ॥३५

इसको हाथ से लिख कर जो हेमनिर्मितपद्म से समन्वित दान देता है। और मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा मे धान पूर्वक तिल तथा धेनु से सयुत करके यह दान दिया जाता है तो समस्त क्रतुओं के पुण्य फल को प्रदान करने वाला होता है। इस पुराण के श्लोकों का प्रमाण सोलह सहस्र है ॥२९॥ जिस पुराण मे चतुर्मुख भगवान् ने आदित्य देव के माहात्म्य का आश्रय प्राप्त करके अघोर कल्प के वृत्तान्त के प्रसङ्ग से इस जगत् की स्थिति को भूतग्राम का लक्षण महाराज मनु से कहा था। ॥३०॥ जिसका प्रमाण चौदह सहस्र पाँच सौ है और जिसमे बहुधा भविष्य मे होने वाले चरित हैं उसको ही भविष्य पुराण कहा जाता है। ॥३१॥ उसको पौष मास की पूर्णिमा तिथि के दिन विगत मत्सरता वाला होकर दान दिया करता है और इसके साथ गुड कुम्भ भी होना चाहिए तो इस दाता को अग्निष्टोम याग का फल मिला करता है ॥३२॥ रथतर एक कल्प है उस कल्प मे जो कुछ घटित हुआ उसी वृत्तान्त को अधिकृत करके सावर्णि ने देवर्षि नारद के लिये सत्युत्तम वासुदेव कृष्ण का माहात्म्य बता दिया है जिसमे पुनः ब्रह्मवराह का प्रेरणा किये हुए को वर्णित किया है वह अठारह सहस्र अनुष्टुप् श्लोकों के प्रमाण वाला पुराण ब्रह्मवैवर्त नाम से कहा जाता है ॥३३, ३४॥ माघ मास की पूर्णिमा तिथि में शुभ दिन में जो कोई इसका लिखकर दान दिया करता है वह ब्रह्मलोक मे महान् प्रतिष्ठित पद पर प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥३५॥

यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः ।
धर्मार्थकाममोक्षांश्च माग्नेयमधिकृत्य च ॥३६
कल्पान्ते लैङ्गमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम् ।

तदेकाशसाहस्र फल्गुन्यांय प्रयच्छति ॥
तिलधेनुसमायुक्त स याति शिवसाम्यताम् ॥३७
महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च ।
विष्णुनाभिहित चोर्ध्वं तद्वाराहमिहोच्यते ॥३८
मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्यमुनिसत्तमा. ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि तत् पुराणमिहो्यते ॥३९
काञ्चन गरुड कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम् ।
पौर्णमास्या मधौदद्यात् ब्राह्मणायकुटुम्बिने ।
वराहस्य प्रसादेन पदमप्नोति वैष्णवम् ॥४०
यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः ।
कल्पे तत् पुरुष वृत्तञ्चरितरुपवृ हितम् ॥४१
स्कन्द नाम पुराणञ्च ह्यं काशीति निगद्यते ।
सहस्राणि शत चैकमिति मर्त्येषु गद्यते ॥४२

वाला परम शिव पुराण है जिसका प्रमाण दश सहस्र श्लोकों का होना है। जो कोई पुरुष शरद् विषुव में इसका दान दिया करता है वह वैष्णव पद की प्राप्ति किया करता है ॥४४, ४५॥ जिसमें भगवान् कूर्म रूप-धारी जनार्दन ने धर्म—अर्थ—कर्मों का और रसातल में मोक्ष का माहात्म्य कहा है तथा इन्द्रद्युम्न के प्रसङ्ग में इन्द्र की सन्निधि में ऋषिगण को बताया गया है वह लक्ष्मीकल्प का आनुषङ्गिक है तथा इसका प्रमाण अठारह सहस्र माना गया है। इसको जो भी कोई सुवर्ण के द्वारा निर्माण कराये हुए कूर्म से युक्त कूर्म पुराण का दान किया करता है वह मनुष्य एक हजार गौओं के दान करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है। ॥४६, ४७, ४८॥ जिस कल्प के आदि में भगवान् जनार्दन ने मुनियों की प्रवृत्ति के लिये मत्स्य के स्वरूप से मनु के लिये नरसिंह भगवान् का वर्णन किया है। हे मुनीश्वरो! सात कल्पों का हाल का आश्रय लेकर बोला है उसी को मात्स्य जान लो। इसका प्रमाण चौदह सहस्र होता है ॥४९, ५०॥

विषुवे हेममत्स्येन धेन्वा चैव समन्वितम् ।
योदद्यात्पृथिवी तेन दत्ताभवति चाखिला ॥५१
यदाचगारुडकल्पेविश्वाण्डात् गरुडोद्भवम् ।
अधिकृत्याब्रवीत्कृष्णोगारुडंतदिहोच्यते ॥५२
तदष्टादशकञ्चैव सहस्राणीह पठ्यते ।
सौवर्ण हंससंयुक्त यो ददाति पुमानिह ॥
स सिद्धि लभते मुख्या शिवलोके च संस्थितिम् ॥५३॥
ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् पुनः ।
तच्चद्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डद्विशताधिकम् ॥५४
भविष्याणाञ्च कल्पाना श्रूयते यत्र विस्तरः ।
तद्ब्रह्माण्डपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥५५
दद्यात्तद्व्यतीपाते पीतोर्णायुगसंयुतम् ॥

नन्दाया यत्र माहात्म्य कार्तिकेयेन वर्ण्यते ।
नन्दीपुराण तल्लोकैराख्यातमिति कीर्त्यते ॥६०

यत्र शाम्ब पुरस्कृत्यभविष्येऽपिकथानकम् ।
प्रोच्यतेतत्पुनर्लोके शाम्बमेतन्मुनिव्रता ॥६१

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः ।
धन्य यशस्यमायुष्य पुराणानामनुक्रमम् ॥
एवमादित्यसज्ञा च तत्रैव परिगद्यते ॥६२॥

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणयत्प्रदिश्यते ।
विजानीध्वद्विजश्रेष्ठा ! स्तदेतेभ्योविनिर्गतम् ॥६३

अद्भुत कर्मों वाले भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने इसको चार लाख प्रमाण वाला बतलाया है मेरे पितामह ने पिताजी को पिताजी ने मुझको मैंने आप से निवेदित कर दिया है।५७। परमर्षि ने लोक के हित का सम्पादन करने के लिये इसको संक्षिप्त किया है। यह आज भी देवों में सौ करोड़ विस्तार से सम्पन्न है।५८॥ अब इसके उपभेदों को बतलाऊँगा जो कि लोक सम्प्रतिष्ठित हैं। वहाँ पादम पुराण में नरसिंह भगवान् का उपवर्णन किया गया है। उसका प्रमाण अठारह सहस्र है और यहा पर वह नारसिंह पुराण के नाम से कहा जाता है ॥५९॥ जिसमे नन्दा के माहात्म्य को स्वामी कार्तिकेय भगवान् के द्वारा वर्णन किया जाता है उसी को लोगो के द्वारा नन्दी पुराण नाम से कहा जाता है—ऐसा ही कीर्तन किया जाता है ॥६०॥ जिसमे भगवान् शाम्ब को पुरस्कृत करके भविष्य में कथानक है ऐसा कहा जाता है कि वह पुन लोक मे हे मुनिव्रतो ! शाम्ब—इस नाम वाला हो गया है। परम पुरातन कल्प के पुराणो को बुध पुरुष जानते हैं। यह पुराणों का अनुक्रम परम धन्य-आयु की वृद्धि करने वाला है। इस प्रकार से वहीं पर आदित्य सज्ञा भी कही जाती है ॥६१, ६२॥ अठारह पुराणों से पृथक् पुराण

जो भी कुछ प्रदिष्ट किया जाता है हे द्विज श्रेष्ठो ! उसे इन्हीं पुराणों से विनिर्गत हुआ समझ लेना चाहिए ॥६३॥

पञ्चाङ्गानि पुराणेषु आख्यानकमिति स्मृतम् ।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणिच ॥
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥६४॥
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्यच ।
ससंहारप्रदानाञ्च पुराणे पञ्चवर्णके ॥६५
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चवात्र कीर्त्यते ।
सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धञ्चयत्फलम् ॥६६
सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ।
राजसेषुच माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणोविदुः ॥६७
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्यच ।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणाञ्च निगद्यते ॥६८
अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुत ।
भारताख्यानमखिलञ्चक्रे तदुपबृंहितम् ॥
लक्षणैकेन यत् प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम् ॥६९
वाल्मीकिना तु यत् प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम् ।
ब्रह्मणाऽभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥७०

इन समस्त पुराणो के पाँच अङ्ग हुआ करते हैं जो आख्यानक कहा गया है । सर्ग—प्रतिसर्ग—वंश और मन्वन्तर तथा वंशों का अनुचरित जिनमे होता है—वही पुराण कहा जाता है और यही पुराणो का पंच लक्षण होता है ॥६४॥ ब्रह्मा—विष्णु—सूर्य्य और रुद्र इनका माहात्म्य और भुवनका संहार प्रदानो का वर्णन होता है जो भी उपर्युक्त पाँच वर्गं वाला पुराण होता है अर्थात् जिसके पाँचो लक्षण हो ऐसा पुराण होता है ॥६५॥ इसमे धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष का कीर्त्तन किया जाया करता है । सभी पुराणो मे उसके विरुद्ध जो फल है सात्विक पुराणो

में हरि का माहात्म्य ही अधिक होता है। जो राजस पुराण होते हैं उनमें ब्रह्माजी का माहात्म्य अधिक होता है। उसी भाँति तामस पुराणों में अग्नि का और शिव का माहात्म्य अधिकांश रूप से हुआ करता है। जो सकीर्ण पुराण हैं उनमें सरस्वती देवी का तथा पितृगण का माहात्म्य अधिक कहा जाया करता है ॥६६, ६७, ६८॥ सत्यवती के पुत्र भगवान् श्री कृष्ण द्वैपायन मुनि ने अठारह पुराणों की रचना करके उनसे समुपबृंहित सम्पूर्ण भारत के आख्यान का वर्णन किया है जो एक लक्षण से वेदों के अर्थ से परिबृंहित ही बनाया है अर्थात् कहा है ॥६६॥ वाल्मीकि महर्षि ने जो परमोत्तम श्रीराम का आख्यान कहा है और जो ब्रह्माजी ने कहा है वह सौ करोड़ विस्तार वाला है ॥७०॥

ब्राह्मत्य नारदायैव तेन वाल्मीकये पुन ।
वाल्मीकिनाच लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम् ॥
एव सपादा पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिता ॥७१
पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधा ।
धन्य यशस्यमायुष्य पुराणानामनुक्रमम् ॥
य पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमाङ्गतिम ॥७२॥
इद पवित्र यशसो निधान इद पितृणामतिवल्लभञ्च ।
इदञ्च देवेष्वमृतायितञ्च नित्य त्विद पापहरञ्च पुसाम ॥७३॥

उसका आहरण करके नारद के लिये और फिर उनसे वाल्मीकि के लिये कहा था और फिर इसके पश्चात् आदि काव महर्षि वाल्मीकि ने लोगों में इसको धर्म कामार्थ का साधन स्वरूप कहा था। इस प्रकार से ये सभी सवा पाँच लाख की संख्या वाले हैं जो इस मनुष्य लोक में प्रकीर्तित किये जाते हैं ॥७१॥ परम प्राचीन कल्प में जो भी पुराण हुए हैं उनको तो विद्वान् पुरुष ही जानते हैं। यह अवश्य ही है कि ऐसा यह पुराणों का जो अनुक्रम है वह परम धन्य है—आयु के वर्धन करने वाला तथा यश की वृद्धि प्रदान करने वाला है ॥ २ ॥ इन पुराणों का

जो भी कोई भाग्यशाली पुरुष पठन किया करता है या इनका केवल श्रवण ही करता है वह निश्चित रूप से परम गति को प्राप्त करता है ॥७२॥ यह परम पवित्र है—यश की खान है और यह पितृगण का अत्यन्त प्यारा होता है। यह देवों मे अमृतायित होता है और पुरुषो का यह नित्य ही पापो के हरण करने वाला होता है ॥७३॥

३२— नक्षत्रपुरुष नाम व्रत कथन

अतः पर प्रवक्ष्यामि दानधर्मानशेषत ।
व्रतोपवाससयुक्तान् यथा मत्स्यादितानिह ॥१
महादवस्य सवादे नारदस्य च धीमत. ।
यथा वृत्त प्रवक्ष्यामि धर्म्मकामार्थसाधकम् ॥२
कैलासशिखरासीनमपृच्छन्नारदः पुरा ।
त्रिनयनमनङ्गारिमनङ्गाङ्गहर हरम् ॥३
भगवन् ! देव ! देवेश ! ब्रह्मविष्णिवन्द्रनायक ! ।
श्रीमदारोग्यरूपायुर्भा ग्यसौभाग्यसम्पदा ॥
सयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमान् भक्त. कथ भवेद् ॥४॥
नारोवाविधवासर्वगुणसौभ्यसयुता ।
क्रमान्मुक्तिप्रदन्देव ! किञ्चिद्व्रतमिहोच्यताम् ॥५
सम्यक पृष्टत्वयाब्रह्मन् ! सर्व लोकहितावहम् ।
श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्य तद्व्रतश्रृणुनारद !॥६
नक्षत्रपुरुष नाम व्रत नारायणात्मकम् ।
पादादि कुर्याद्विधिवत् विष्णुनामानुकीर्तनम् ॥७

महामहिम महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसस आग अब हम दान के धर्मों का पूर्ण रूप से कहता हूँ जो कि व्रत और उपवासो से ही

समन्वित हैं। जिस प्रकार से भगवान् मत्स्य ने यहाँ पर कहे हैं ॥ १ ॥ धीमान् देवर्षि नारद के और महादेव के सम्वाद में जो जिस तरह से धर्मार्थ नाम का साधक हुआ था उसे ही मैं कहता हूँ ॥ २ ॥ परम प्राचीन समय की बात है जब कि देवर्षि नारद जी ने कैलास गिरि के शिखर पर समासीन—तीन नेत्रों वाले—अनङ्ग को भस्म करने वाले तथा अनङ्ग के अङ्गों का हरण करने वाले—भगवान् हर से पूछा था ॥ ३ ॥ देवर्षि नारद जी ने कहा—हे भगवन् ! हे देव ! हे देवों के स्वामिन ! आप तो ब्रह्मा—विष्णु और इन्द्र इन सबके नायक हैं तथा श्रीमान्—आयु—आरोग्य—रूप—भाग्य और सौभाग्य की सम्पदा से संयुत हैं। कृपया यह बतलाइये कि आपका तथा भगवान् विष्णु का नक्ष पुरुष कैसे होता है ? ॥ ४ ॥ हे देव ! नारी चाहे वह विधवा हो अथवा सर्वगुण और सौभाग्य से संयुत हो, आप ऐसा कोई व्रत बतलाइए जो क्रम से मुक्ति के प्रदान करने वाला हो ॥५॥ ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने इस समय में यह बहुत ही श्रेष्ठ प्रश्न पूछा है। यह सभी लोकों के हित का आवाहन करने वाला है। यहाँ पर शान्ति के लिये ऐसा श्रुत भी किया है। हे नारद ! उसी व्रत का श्रवण करो ॥ ६ ॥ एक नक्षत्र व्रत नाम वाला व्रत है जो साक्षात् नारायण के स्वरूप से परिपूर्ण है। इसका पादादि विधिपूर्वक विष्णु नामों का अनुकीर्तन करे ॥ ७ ॥

प्रतिमा वासुदेवस्यमूलर्क्षादिषु चार्चयेत् ।
चैत्रमासं समासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥८
मूले नमो विश्वधराय पादौ गुल्फावनन्ताय च रोहिणीषु ।
जंघेऽभिपूज्य वरदाय चैव द्वे जानुनी वाश्विकुमार ऋक्षे ॥६
पूर्वोत्तराषाढयुगे तथोरू नम शिवायेत्यभिपूजनीयौ ।
पूर्वोत्तराफल्गुनि युग्मके च मेढ्रं नम पञ्चशराय पूज्यम् ॥१०
कटिं नम शार्ङ्गधराय विष्णो सम्पूजयेन्नारद ! कृत्तिकासु ।

यथाऽर्चयेत् भाद्रपदाद्वये च पार्श्वे नम केशिनिषूदनाय ॥११
कुक्षिद्वय नारद ! रेवतीषु दामोदरायेत्यभिपूजनीयम् ।
ऋक्षेऽनुराधासु च माधवाय नमस्तथोरस्थलमेव पूज्यम् ॥१२
पृष्ठ धनिष्ठासु च पूजनीयमघौघविध्वसकराय तच्च ।
श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय नमो विशाखासु भुजाश्च पूज्या ॥१३
हस्ते तु हस्ता मधुसूदनाय नमोऽभिपूज्या इति कैटभारेः ।
पुनर्वसावङ्गुलिपर्वभागा साम्नामधीशाय नमोऽभिपूज्या ॥१४

मूल नक्षत्र आदि मे भगवान् वासुदेव की प्रतिमा का अर्चन करना चाहिए । जब चैत्र मास आ जावे तो उसको प्राप्त करके ही ब्राह्मणो का वाचन करना चाहिए । इसमे प्रत्येक नक्षत्र मे भगवान के प्रत्येक अङ्गो का अभ्यर्चन करे । मूल नक्षत्र मे विश्वधर के लिए उनके चरणो को नमस्कार करे । अनन्त भगवान् के लिए उनके गुल्फो को रोहिणी नक्षत्र मे समर्पित करना चाहिए । अश्विनी नक्षत्र मे वरद प्रभु के लिय उनकी दोनो जघाओ का तथा जानुओ का अभिपूजन करे ॥ ८, ९ ॥ पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा इन दोनो नक्षत्रो मे भगवान् शिव के लिये उनके दोनो ऊरुओ का पूजन करना चाहिए । पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी—इन दोनो नक्षत्रो म पञ्चशर प्रभु के मेढ़ का पूजन करे ॥ १० ॥ हे नारद ! कृत्तिका आदि नक्षत्रो म शार्ङ्गधर भगवान् विष्णु की कटि का अर्चन करना चाहिए । पूर्वा भाद्रपद और उत्तरा भाद्रपद इन दोनो नक्षत्रों में भगवान् केशिनिषूदन को नमस्कार करे और उनके दोनो पार्श्वों का पूजन करना चाहिए ॥ ११ ॥ हे नारद ! रेवती नामक नक्षत्र म भगवान् दामोदर की दोनो कुक्षियो का अर्चन करे । अनुराधा नक्षत्र में माधव प्रभु का नमस्कार कर उनके उरःस्थल का अभिपूजन करना चाहिए ॥ १२ ॥ अघो के ओघ का विध्वंस करने वाले प्रभु के पृष्ठ भाग का पूजन धनिष्ठाओ म करे । श्री शंख-चक्र-असि और गदा के धारण करने वाले प्रभु को नमन करके विशाखा नक्षत्र म

उनकी भुजाओं का पूजन करना चाहिए ॥ १३ ॥ हस्त नक्षत्र में कैटभ के अरि प्रभु मधुसूदन के लिए नमस्कार करके छाया का पूजन करे। सामा के अधीश प्रभु को नमस्कार पुनर्वसु नक्षत्र में उनके अंगुलियों के पूर्व भागों का अभिरंजन करना चाहिए ॥१४॥

मूलर्क्षनक्षत्रदिने नखानि सम्पूजयेन्मत्स्यशरीरभाज ।
कूर्मस्य पादौ शरणं व्रजामि ज्येष्ठासु कण्ठे हरिरर्चनीय ॥१५
श्रोत्रे वराहाय नमोऽभिपूज्य जनार्दनस्य श्रवणेन सम्यक ।
पुष्ये मुखं दानवसूदनाय नमो नृसिंहाय च पूजनीयम् ॥१६
नमामि कारणवामनाय स्वातीषु दन्ताग्रमथार्चनीयम् ।
आस्यं हरेर्भार्गवनन्दनाय सम्पूजनीयं द्विजवारुणे तु ॥१७
नमोऽस्तु रामाय मघासु नासा सम्पूजनीया रघुनन्दनस्य ।
मृगोत्तमाङ्गे नयनेऽभिपूज्य नमोऽस्तु ते रामविघूर्णिताक्ष ! ॥१८
बुद्धाय शान्ताय नमो ललाटं चित्रासु सम्पूज्यतमं मुरारेः ।
शिरोऽभिपूज्य भरणीषु विष्णोर्नमोऽस्तु विश्वेश्वर ! कल्किरूपिणे ॥१९
आर्द्रासु केशाः पुरुषोत्तमस्य सम्पूजनीया हरये नमस्ते ।
उपोषित नक्षदिनेषु भक्तया द्विजः पूज्या स्यु ॥२०

मूलर्क्ष नक्षत्र के दिन में मत्स्य स्वरूप के धारण करने वाले भगवान् के नखों का पूजन करना चाहिए। भगवान् कूर्म के चरणों की शरणागति में आता हूँ—यह निवेदन करते हुए ज्येष्ठा नक्षत्र में भगवान् हरि के कण्ठ का समर्चन करना चाहिए ॥ १५ ॥ श्रवण नक्षत्र में वराह के लिए नमन करके जनार्दन प्रभु के श्रोत्रों का भली भाँति पूजन करे। पुष्य नक्षत्र में दानवों के सूदन करने वाले प्रभु को प्रणाम करके और नृसिंह प्रभु को नमस्कार करके उनके श्रीमुख का पूजन करना चाहिए ॥ १६ ॥ स्वाती नक्षत्र में कारण के अर्थ वामन स्वरूप धारण करने वाले प्रभु को बारम्बार नमस्कार करके उनके दाँतों के अग्रभाग का पूजन करे। भार्गव नन्दन के लिए नमन करके द्विज नक्षत्र में भगवान् हरि के

वास्य का भली भाँति अर्चन करना चाहिए ॥ १७ ॥ राघवेन्द्र श्रीराम के लिये नमस्कार हो—इस मन्त्र का उच्चारण करके मघा नक्षत्र में श्री रघुनन्दन भगवान् की नासिका का पूजन करना चाहिए। हे विघूर्णित नेत्रों वाले श्रीराम ! आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित हो—यह प्रार्थना करते हुए मृगोत्तमाङ्ग में भगवान् के दोनों नयनों का पूजन करे ॥१८॥ परम शान्त स्वरूप भगवान् बुद्ध के लिए नमस्कार है—यह कहकर चित्रा नक्षत्र में मुरारि प्रभु के ललाट का भली भाँति पूजन करना चाहिए। हे विश्वेश्वर ! कल्कि रूप वाले आपके लिये नमस्कार है—यह मन्त्र उच्चारण करके भरणी नक्षत्र में भगवान् विष्णु के शिर का अभिपूजन करना चाहिए ॥ १९ ॥ भगवान् हरि के लिये नमस्कार है—यह कहकर आर्द्रा नक्षत्र में पुरुषोत्तम प्रभु के केशों का समर्चन करे। उपोषित होने पर श्रेष्ठ दिनों में भक्ति की भावना से द्विज श्रेष्ठों का अच्छी रीति से पूजन करना चाहिए ॥ २० ॥

३२—आदित्य शयन व्रत कथन

उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः ।
अनभ्यासेन रोगाद्वा किमिष्टं व्रतमुत्तमम् ॥१
उपवासेऽप्यशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते ।
यस्मिन् व्रते तदप्यत्र श्रूयतामक्षयं महत् ॥२
आदित्यशयनं नाम यथावच्छङ्करार्चनम् ।

उमापतेरवेश्चापि न भेदोदृश्यते क्वचित् ।
यस्मात्तस्मान्मुनिश्रेष्ठ ! गृहे शम्भुं समर्चयेत् ॥६
हस्ते च सूर्याय नमोऽस्तु पादावर्काय चित्रासु तु गुल्फदेशम् ।
स्वातीषु जङ्घे पुरुषोत्तमाय धात्रे विशाखासु च जानुदेशम् ॥७

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—यदि कोई उपवास करने में असमर्थ हो और फल वही चाहता हो तो उसके लिये कौनसा व्रत इष्ट एवं उत्तम होता है। उपवास करने से मनुष्य को अभ्यास के न होने से अथवा किसी भी रोग के कारण हो सकती है ॥१॥ ईश्वर ने कहा—जो दिन भर का पूरा उपवास न कर सकें उनको रात्रि में एक बार भोजन करना भी अभीष्ट हो जाता है। जो अहोरात्र के पूरे व्रत का फल होता है वही इसमें भी होता है। इसका समस्त महत्व श्रवण करो ॥२॥ आदित्य शयन नाम वाला व्रत यथारीति भगवान् शङ्कर का समर्चन है। पुराणों के ज्ञाता विद्वान् जिन नक्षत्रों के योगों में यह होता है उसे कहते हैं ॥३॥ जिस समय में हस्त नक्षत्र के साथ सप्तमी तिथि में आदित्य का दिन होवे और सूर्य की संक्रान्ति होवे तो वह तिथि समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। ४॥ उमा और महेश्वरी की अर्चा को सूर्य के नामों से अर्चित करना चाहिए। और सूर्य की अर्चा को शिव के लिङ्ग में करता हुआ पूजना चाहिए ॥५॥ उमा के पति भगवान् शिव का और रवि का कहीं पर भी कोई भेद नहीं दिखलाई देता है। इस कारण से हे मुनिश्रेष्ठ ! गृह में ही शम्भु का यजन करना चाहिए ॥६॥ हस्त नक्षत्र में भगवान् सूर्य के लिये नमस्कार हो यह उच्चारण कर चरणों का पूजन करे। चित्रा नक्षत्र में अर्क के लिये नमस्कार हो—यह कहकर गुल्फ देश का अर्चन करना चाहिए। स्वाती में पुरुषोत्तम के लिये नमस्कार है—इसके द्वारा दोनों जङ्घाओं का पूजन करे और विशाखा में धाता के लिए नमस्कार हो—इससे जानु देश का यजन करे ॥७॥

तथानुराधासु नमोऽभिपूज्यमूरुद्वयञ्चैव सहस्रभानोः

ज्येष्ठास्वनङ्गाय नमोऽस्तु गुह्यमिन्द्राय सोमाय कटी च मूले ।।८
पर्वोत्तराषाढयुगे च नाभिन्त्वष्ट्रे नम. सप्ततुरङ्गमाय ।
तीक्ष्णांशवे च श्रवणे च कुक्षौ पृष्ठ धनिष्ठासु विकर्तनाय ।६
चक्षुस्थल ध्वान्तविनाशनाय जलाधिपर्क्षे परिपूजनीयम् ।
पूर्वोत्तराभाद्रपदाद्वये च बाहू नमश्चण्डकराय पूज्यौ ॥१०॥
साम्नामधीशाय करद्वयञ्च सपूजनीय द्विज ! रेवतीपु ।
नखानि पूज्यानि तथाश्विनीषु नमोऽस्तु सप्ताश्वधुरन्धराय ॥११॥
कठोरधाम्ने भरणीपु कण्ठ दिवाकरायेत्यभिपूजनीया ।
ग्रीवाग्नि ऋक्षे धरमम्बुजेशे सपूजयेन्नारद ! रोहिणीपु ।।१२
मृगोत्तमाङ्गे दशना मुरारे सपूजनीया हरये नमस्ते ।
नम सवित्रे रसना शङ्करे च नासाभिपूज्या च पुनर्वसौ च ।।१३
ललाटमम्भोरुहवल्लभाय पुष्पेलकान्वेदशरीरधारिणे ।
शर्वेऽथ मौलि विबुधप्रियास मघासु कर्णाविति गोगणेशे ।।१४

तथा अनुराधा नक्षत्र मे नमस्कार करके सहस्रभानु के दोनो ऊरुओं का अभिपूजन करना चाहिए । ज्येष्ठा नक्षत्र मे अनङ्ग के लिये नमस्कार होवे—इससे द्वारा गुह्यका यजन करे । इन्द्र सोम के लिये नमस्कार होवे—इससे कोटि और मूल मे पूजन करे ।।८।। पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा इन दोनो मे त्वष्टा के लिये तथा सप्ततुरङ्गमो वाले के लिये नमस्कार होवे—यह उच्चारण करके नाभि का पूजन करे । श्रवण मे तीक्ष्ण किरण वाले के लिये नमस्कार अर्पित होवे—इससे कुक्षि मे पूजन करे तथा धनिष्ठा में विकर्तन के लिये नमस्कार हो—इसके द्वारा पृष्ठ भाग का अर्चन करना चाहिए ।। ६ ।। ध्वान्तर (अन्धकार) के विनाश करने वाले के लिए प्रणाम समर्पित होवे—यह कहकर चक्षुस्थल का पूजन करे और इस यजना का जलाधिप नक्षत्र मे करना चाहिए । पूर्वा भाद्रपदा मे और उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र मे चण्ड करके लिये नमस्कार हो—इसके द्वारा दोनो बाहुओं का पूजन करना चाहिए।। १०।। हे द्विज !

रेवती में सामों के अधीश के लिये नमस्कार हो—इस मन्त्र को कहकर दोनों करो का पूजन करना चाहिए। तथा अश्विनी मे सात अश्वो के धुरन्धर को प्रणाम अर्पित हो—इसके द्वारा नखो का अभ्यर्चन करे ॥ ११ ॥ भरणी मे कठोर धाम दिवाकर की सेवा मे नमस्कार होवे—इसे कहकर कण्ठ का अभिपूजन करे और अग्नि नक्षत्र मे ग्रीवा का यजन करना चाहिए। हे नारद! रोहिणी मे अम्बुनेश को प्रणाम हो—इससे धर का पूजन करे ॥ १२ ॥ मृगोत्तमाङ्ग मे हरि को नमन हो—इससे मुरारि के दशनों का यजन करना चाहिए। पुनर्वसु मे सविता के लिये नमस्कार हो—इसके द्वारा रसना का तथा शङ्कर को नमस्कार हो—इससे नासिका का अभिपूजन करना चाहिए ॥ १३ ॥ अम्भोरुहों के वल्लभ के लिये नमस्कार हो—इसके द्वारा पुष्य नक्षत्र मे ललाट का पूजन करे। वेदो के शरीर को धारण करने वाले को प्रणाम होवे—इससे घ्राण मे पूजन करे। विबुधो के प्रिय के लिए नमस्कार हो—इससे मौलिका यजन करे और मघा मे गणेश को प्रणाम हो—इससे दोनो कानो का पूजन करना चाहिए ॥१४॥

पूर्वासु गोब्राह्मणवन्दनाय नेत्राणि सम्पूज्यतमानि शम्भो ।
अथोत्तराफल्गुनि मे भ्रुवौ च विश्वस्वरायेति च पूजनीये ॥१५
नमोऽस्तु पाशाङ्कुशशूलपद्मकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।
गजासुरानङ्गपुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय ॥१६
इत्यादि चास्त्राणि च नित्य विश्वश्वरायेति शिरोऽभिपूज्य ।
भातव्यमत्रं वमतलशाकममासमक्षारमभुक्तशेषम् ॥१७

पूर्वा फाल्गुनी मे गौ और ब्राह्मणो क वन्दन के लिए नमस्कार है—इसे कहकर शम्भु क नत्रो का भली भांति से पूजन करे। इसक अनन्तर उत्तराफल्गुनी मे विश्वेश्वर के लिये नमस्कार हो—इस मन्त्र क द्वारा दोनों भ्रुओ का पूजन करना चाहिए ॥ १५ ॥ पाश-अङ्कुश-शूल-पद्म-कपाल-सर्प-इन्दु और धनुष धारण करने वाले तथा गज-

असुर–अनङ्ग–पुर–अन्धक आदि के विनाश करने के मूल भगवान् शिव के लिये नमस्कार समर्पित होवे—इस मन्त्र के द्वारा इत्यादि अङ्गों का पूजन करके विश्वेश्वर के लिये प्रणाम है—इससे शिरा का अभिपूजन करे और फिर यहाँ पर ही तैल शाक मांस और क्षार से रहित अमुक्त शेष का भोजन करना चाहिये ॥१६, १७॥

३४--रोहिणीचन्द्र शयन व्रत कथन

दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धियुक्त पुमान् भूपकुलायत स्यात् ।
मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यक् व्रत समाचक्ष्व तदिन्दुमौले ! ॥१॥
त्वया पृष्टमिदं सम्यक् उक्तञ्चाक्षय्यकारकम् ।
रहस्य तव वक्ष्यामि यत्पुराणविदोविदु ॥२
रोहिणीचन्द्रशयन नामव्रतमिहोत्तमम् ।
तस्मिन्नारायणस्य-र्यामर्चयेदिन्दुनामभि ॥३
यदा सोमदिने शुक्ला भवेत् पञ्चदशी क्वचित् ।
अथवा ब्रह्मनक्षत्र पौर्णमास्या जायते ॥४
तदा स्नान नर कुर्यात् पञ्चगव्येन सर्षपै ।
आप्यायस्वेति तु जपेत् विद्वानष्टशत पुन ॥५
शूद्रोऽपि परया भक्तयापाषण्डलापवर्जित ।
सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमोनम ॥६
कृतजप्य स्वभवनादागत्य मधुसूदनम् ।
पूजयेत् फलपुष्पश्च सोमनामानि कीर्तयन् ॥७

देवर्षि नारद जो ने कहा—बार बार जन्म में जिससे भली भाँति से पुरुष दीर्घ आयु वाला—स्वस्थता में सम्पन्न तथा कुल की अभिवृद्धि से युक्त और भूप के कुल से सयुत होता है। हे इन्दु को मौलि में धारण करने वाले ! उस व्रत को आप कहने की दया कीजिए ॥१॥ श्री भगवान्

ने कहा—आपने यह बहुत ही अच्छा पूछ लिया है इसको अक्षय कारक बतलाया है। अब उसका जो रहस्य है उसे बतलाता हूँ जिस पुराणों के ज्ञाता विद्वान् जानते हैं ॥२॥ रोहिणी चन्द्र शयन नाम वाला व्रत यहाँ पर एक अति उत्तम व्रत है। उस व्रत में भगवान् नारायण की अर्चा होती है जो इन्दु के नामों के द्वारा अर्चन करना चाहिए ॥३॥ जब भी किसी समय में सोमवार के दिन में मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चदशी पूर्णिमा तिथि हो अथवा ब्रह्म नक्षत्र पूर्णमासी होता हो उस समय में मनुष्य को सर्षप (सरसों) और पञ्चगव्य से स्नान करना चाहिए। फिर विद्वान् पुरुष को "आप्यायस्व"—इत्यादि मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए ॥ ४, ५ ॥ यदि कोई शूद्र वर्ण वाला भी हो तो उसको भी पराकादि की भक्ति से पाषण्ड और आलाप से रहित होकर "वरदान देने वाले सोम और विष्णु के लिये बारम्बार प्रणाम है"—इसका जप करके अपने भवन आकर सोम के नामों का कीर्तन करते हुए फल पुष्पों के द्वारा भगवान् मधुसूदन का पूजन करना चाहिए ॥६, ७॥

सोमाय शान्ताय नमोऽस्तु पादावनन्तधाम्नेति च जानुजङ्घे ।
ऊरुद्वयञ्चापि जलोदराय सम्पूजयेन्मेढ्रमनन्तबाहवे ॥८
नमो नमः कामसुखप्रदाय कटिः शशाङ्कस्य सदार्चनीया ।
तथोदरञ्चाप्यमृतोदराय नाभिं शशाङ्काय नमोऽभिपूज्या ॥९
नमोऽस्तु चन्द्राय मुखञ्च पूज्य दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः ।
हास्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यमोष्ठौ कुमुदन्तवनप्रियाय ॥१०
नासा च नाथाय वनौषधानामानन्दभूताय पुनर्भ्रुवौ च ।
नेत्रद्वयं पद्मनिभमनयेन्दोरिन्दीवरश्यामकराय शौरेः ॥११
नमः समस्ताध्वरवन्दिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय ।
ललाटमिन्दोरुदधिप्रियाय केशाः सुषुम्नाधिपतेः प्रपूज्याः ॥१२
शिरः शशाङ्काय नमो मुरारेर्विश्वेश्वरायेति नमः किरीटिने ।
पद्मप्रिये रोहिणि नाम लक्ष्मीः सौभाग्यसौख्यामृतसागरायै ॥१३

देवी च संपूज्य सुगन्धपुष्पैर्नैवेद्यपुष्पादिभिरिन्दुपत्नीम् ।
सुप्त्वाऽथ भूमौ पुनरुत्थितेन स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः ॥१४

पूजन करने का क्रम और प्रत्येक अङ्ग तथा उनके अर्चन करने के भिन्न २ मन्त्रों को बतलाते हुए कहते हैं—शान्त सोम के लिये प्रणाम है-इसे कहकर मधुसूदन के सर्व प्रथम चरणों का अभ्यर्चन करे। अनन्तधाम वाले को नमस्कार है—इससे जानु और जङ्घाओं का यजन करे। जलोदर को नमन है—इसके द्वारा दोनों ऊरुओं को पूजे। अनन्त बाहुओं वाले की सेवा में प्रणाम है—इससे मेढ्र का अर्चन करे ॥८॥ काम के सुख को प्रदान करने वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है—इस मन्त्र से सर्वदा शशाङ्क की कटि का अर्चन करना चाहिए। अमृतोदर की सेवा में प्रणाम अर्पित है—इससे उदर का अभ्यर्चन करे और शशाङ्क के लिये नमस्कार है—इसे कहकर नाभि का पूजन करे ॥९॥ चन्द्र को प्रणाम है—इससे मुख और द्विजों के अधिप के लिये नमस्कार है—इसके द्वारा दाँतों का पूजन करना चाहिए। चन्द्रमस को प्रणाम है—इससे हास्य कुमुदों के वन के परम प्रिय की वन्दना है—इसका उच्चारण करके दोनों ओ‍ठों का पूजन करना चाहिये ॥१०॥ वनौषधियों के नाथ की वन्दना है—इसके द्वारा तथा फिर आनन्द स्वरूप को नमस्कार है—इससे पुन दोनों भौंहों का यजन करे। इन्दीवर के समान श्याम करों वाले को प्रणाम है—इससे शौरिके तथा पद्मिनी के भर्त्ता—इन्दु के दोनों नेत्रों का अर्चन करे ॥११॥ समस्त अध्वरों में वन्दित और दैत्यों के निषूदन करने वाले को प्रणाम है—इससे दोनों कर्णों की अर्चना करे। उदधि के परम प्रिय की सेवा में प्रणाम है—इस मन्त्र से इन्दु के ललाट का तथा सुषुम्ना के अधिपति के केशों का पूजन करना चाहिए ॥१२॥ शशाङ्क के लिये प्रणाम है—इससे शिर का पूजन करे तथा विश्वेश्वर किरीट धारी को नमस्कार है इससे मुरारि का शिर का यजन करे। हे पद्मों की प्यारी ! हे रोहिणी ! [illegible] नाम लक्ष्मी है। हे सौभाग्य और सौख्य

रूपी अमृत से चारु काया वाली ! ये कहते हुए सुगन्धित पुष्पों के तथा नैवेद्य आदि अन्य उचित पूजनोपचारों से इन्दु की पत्नी देवी का भली भाँति पूजन करना चाहिए और फिर भूमि में ही शयन करे और पुनः उठकर स्नान करे तथा हविष्य युक्त होकर विप्र के लिये प्रभातवेला में पापों के विनाश करने वाले को नमस्कार है—इससे सुवर्ण का निर्मित जल का कुम्भ दान करना चाहिए ॥१३, १४॥

यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः ।
भुक्तिमुं क्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चन्द्रास्तु मेसदा ॥१५
ति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ ! ।
रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम् ॥१६
इदमेव पितॄणां च सर्वदा वल्लभं मुने ! ।
त्रैलोक्याधिपतिर्भू त्वा सप्तकल्पशतत्रयम् ॥
चन्द्रलोकमवाप्नोति विद्यु द्भूत्वा तु मच्यते ॥१७
नारी वा रोहिणीचन्द्रशयनं या समाचरेत् ।
साऽपितत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१८
इति पठति शृणोति वा य इत्थं ।
मधुमथनार्चनमिन्दुकीर्तनेन नित्यम् ॥१६
मतिमपि च ददाति सोऽपि शौरेर्भवनगतः ।
पारपूज्यतेऽमरौघैः ॥२०

इसके अनन्तर प्रार्थना करे—हे देव ! जिस प्रकार से आप ही सबको परम आनन्द और मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं उसी तरह से हे चन्द्र ! मेरी सदा आप में भक्ति होवे और भुक्ति एवं मुक्ति भी मुझे प्राप्त होवे । हे अनघ ! यह व्रत संसार की बाधाओं से भीत और मुक्ति प्राप्त करने की कामना वाले को अतीव उत्तम है जो रूप-आरोग्य और आयु का करने वाला होता है ॥१५॥ हे मुने ! यही व्रत पितृगण को भी सर्वदा प्रिय होता है । इसको करने वाला पुरुष सम्पूर्ण त्रिलोकी का

स्वामी होकर तीन सौ सात कल्प तक चन्द्र लोक की प्राप्ति किया करता है तथा विद्युत् होकर ही मुक्त हुआ करता है ॥१६॥ चाहे कोई पुरुष हो या नारी हो जो भी इस रोहिणी चन्द्र शयन नामक व्रत का समाचरण करता है वह नारी भी पुन आवृत्ति अर्थात् ससार मे जन्म ग्रहण करने को दुबारा आगमन से दुलभ यह व्रत है और उसी फल को प्राप्त किया करती है ॥१७॥ इस तरह से भगवान् मधु दैत्य के मथन करने वाले का अभ्यचन जो इन्दु के शुभ नामो के कीर्त्तन के द्वारा सम्पन्न किया जाता है उसका पठन या श्रवण मात्र किया करता है और अपनी बुद्धि को भी इसमे लगा देता है वह पुरुष भी भगवान् शौरि के ही भवन मे पहुँच कर अमरो के समुदाय के द्वारा परिपूजित हुआ करता है ऐसा इस व्रत के श्रवण—पठन और मनन मात्र का ही माहात्म्य होता है ॥ १८, १९, २० ॥

३५—तड़ागारामकूपादि प्रतिष्ठा विधि वर्णन

जलाशयगत विष्णुवाच रविनन्दन' ।
तडागारामकूपाना वापीपु नलिनीपु च ॥१
विधि पृच्छामि देवेश ! देवतायतनेपु च ।
के तत्र चत्विजोनाथ ! वेदी वा कोदृशीभवेत ॥२
दक्षिणावलय काल स्थानमाचार्य्यएवच ।
द्रव्याणिकानि शस्तानिसर्वमाचक्ष्वतत्त्वत ॥३
शृणुराजन्महाबाहो ! तडागादिपुयो विधि ।
पुराणेष्विहासोऽय पठ्यतेवेदवर्दिभि ॥४
प्राप्य पक्षं शुभ शुक्लमतीते चोत्तरायणे ।
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥५
प्रागुदक्प्रवणे देशे तडागस्य समीपतः ।

चतुर्हस्ता शुभा वेदिं चतुरस्रां चतुर्मुखाम् ॥६
तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः ।
वेद्याश्च परितोगर्ता रत्निमात्रास्ति मेखला ॥७

महामहिम महर्षि श्री मुनजी ने कहा—रवि के पुत्र ने एक बार जलाशय अर्थात् क्षार सागर में मत्र अर्थात् शेष शय्या पर शयित भगवान् विष्णु से कहा था—तालाब—आराम (उद्यान) और कूपों का तथा बावड़ी और नलिनियों के निर्माण कराने की विधि मैं आपसे पूछता हूं । हे देवेश्वर ! हे नाथ ! और देवा के आयतनों की रचना कराने में वहाँ पर कौन ऋत्विज होते हैं और किस प्रकार की वेदी की रचना की जाया करती है ? दक्षिणावलय-काल-स्थान और आचार्य कैसा कौन होना चाहिये तथा इनके सम्पादन करने के लिये प्रशस्त द्रव्य कौन से होते हैं ? यह सभी तात्विक रूप से वर्णन करने की कृपा कीजिए । ॥ १, २, ३ ॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—हे महान् बाहुओं वाले राजन् ! अब आप श्रवण करिये । तालाब आदि की रचना कराने में जो भी कुछ विधान है उसे बतलाया जाता है । पुराणों में वेदों के बाद करने वाले विद्वानों के द्वारा यह इतिहास पढ़ा जाया करता है ॥ ४ ॥ उत्तरायण के अधीन होने पर मास के परम शुभ शुक्लपक्ष को प्राप्त करके किसी भी द्विज के द्वारा बताये गये परम पुण्य दिवस में ब्राह्मण वाचन करे । ॥ ५ ॥ जो देश ऐसा हो जिसमें जल की आवश्यकता रहती है उस तरह प्रथम देश में तडाग के ही समीप में एक शुभ वेदी की रचना करावे जो चार हाथ प्रमाण वाली हो—चौकोर और चार मुखों वाली होनी चाहिए ॥ ६ ॥ तथा वहाँ पर सोलह हाथ प्रमाण वाला एक चतुर्मुख मण्डप बनावे । और वेदी के चारों ओर गर्त होवें तथा रत्नि प्रमाण वाली मेखला होनी चाहिए ॥ ७ ॥

नव सप्ताथ वा पञ्च नातिरिक्ता नृपात्मज ! ।
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता । ८

गर्ताः प्रशस्ताः स्युस्त्रिपर्वोच्छ्रितमेखलाः ।
सर्वतस्तु सवर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः ॥६
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि तु ।
मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत् ॥१०
शुभास्तत्राष्ट होतारो द्वारपालास्तथाष्ट वै ।
अष्टौ तु जापका कार्या ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥११
सर्वलक्षणसम्पूर्णो मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः ।
कुलशीलसमायुक्तः पुरोधाः स्याद्द्विजोत्तमः ॥१२
प्रतिगर्तेषु कलशा यज्ञोपकरणानि च ।
व्यजनं चामरे शुभ्रे ताम्रपात्रे सुविस्तृते ॥१३
ततस्त्वनेकवर्णाः स्युश्चरवः प्रतिदैवतम् ।
आचार्यः प्रक्षिपेद्भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः ॥१४

हे नृपात्मज ! वह मेखला नौ-सात अथवा पाँच होनी चाहिए इससे अतिरिक्त न होवें । छै-सात अँगुलियों के समान विस्तृत एक वितस्ति (विलश्त) प्रमाण उस वेदी की योनि होनी चाहिए ॥ ८ ॥ चार ही गर्त्त प्रशस्त होते हैं और तीन पर्वों के तुल्य उच्छ्रित मेखल ये होनी चाहिये । सभी ओर से वर्णों से युक्त तथा पताका एवं ध्वजाओं से युक्त होनी चाहिए ॥ ६ ॥ अश्वत्थ (पीपल) उदुम्बर (गूलर) प्लक्ष (पाखर) और वट (बड़) की शाखाओं के द्वारा बनाये गये प्रत्येक दिशा में मण्डप के द्वार बनवाने चाहिए ॥ १० ॥ वहाँ पर आठ ही होता परम शुभ है तथा आठ ही द्वारपाल होने चाहिए । आठ ही जप करने वाले जापक रक्खे जो कि वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मण होने चाहिये ॥ ११ ॥ इसका जो पुरोहित हो वह सभी लक्षणों से परिपूर्ण हो— मन्त्रों का ज्ञाता–विजित इन्द्रियों वाला तथा कुल और शील से समन्वित श्रेष्ठ द्विज होना चाहिए ॥ १२ ॥ प्रत्येक गर्त्त में कलश होवे और यज्ञ के सभी उपकरण भी रहने चाहिए—व्यजन—शुभ्रचार तथा

सुविस्तृत तथा ताम्र पात्र होवें ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त वहाँ पर अनेक वर्ण वाले प्रत्येक देवता के चरु होने चाहिए। विचक्षण अर्थात् परम कुशल आचार्य को अनुमन्त्रित करके भूमि में प्रक्षेप करना चाहिए ॥१४॥

> त्र्यरत्निमात्रोयूप स्यात्क्षीरवृक्षविनिर्मित ।
> यजमानप्रमाणोवासस्थाप्याभूतिमिच्छता ॥१५
> शुक्लमाल्याम्बरधर शुक्लगन्धानुलेपन ।
> सर्वौषध्युदकैस्तत्र स्नापितो वेदपारगै ॥१६
> यजमान सपत्नीक पुत्रपौत्रसमन्वित ।
> पश्चिम द्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ॥१७
> ततो मङ्गलशब्देन भेरीणा निस्वनेन च ।
> अब्जसा मण्डल कुर्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित् ॥१८
> षोडशारन्ततश्चक्र पद्मगर्भं चतुर्मुखम् ।
> चतुरस्रञ्च परितो वृत्त मध्ये सुशोभनम् ॥१९
> वेद्याश्चोपरि तत् कृत्वा ग्रहान् लोकपतीस्तत ।
> सन्यसेन्मन्त्रत सर्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षण ॥२०
> पूर्वादि स्थापयेन्मध्ये वारुण्या मन्त्रमाश्रित ।
> ब्रह्माणञ्चशिवविष्णु तत्रैवस्थापयेद्बुध ॥२१

तीन अरत्नि के प्रमाण वाला वहाँ पर यूप होना चाहिये जो किसी ऐसे वृक्ष से बनाया गया है जिसमें दूध रहता हो। अथवा भूति की इच्छा रखने वाले का यूपका यजमान के तुल्य ही प्रमाण रखना चाहिए ॥ १५ ॥ यजमान को शुक्ल वर्ण के वस्त्र और माला धारण करने वाला रहना चाहिए। जो गन्ध का अनुलेपन किया जावे वह भी शुक्ल ही होना चाहिए। वहाँ पर जो वेदों का ज्ञान रखने वाले पारगामी मनीषी हैं उनके द्वारा सर्वौषधि समन्वित जलों के द्वारा ही उस यजमान का स्नापित कराना चाहिए ॥ १६ ॥ फिर वह यजमान अपनी

पत्नी के सहित तथा पुत्रपौत्रादि से संयुत होकर जो मण्डप का पश्चिम दिशा म द्वार है उसी से वह याग मण्डप मे प्रवेश प्राप्त करे ।। १७ ।। इसके अनन्तर मङ्गलमय शब्दो की ध्वनि से तथा भेरियों के उद्घोष के साथ ही यजमान का प्रवेश होना है। तत्त्वों के वेता आचार्य को चाहिए कि तुरन्त ही मण्डल को पञ्चवर्ण से युक्त कर देवे ।। १८ ।। इसके पश्चात् सोलह अरो वाला चक्र करे जिसके गर्भ में पद्म हो और चार मुखो से युक्त हो–चौकोर चारो ओर से वृत्त तथा मध्य मे शोभन होना चाहिए ।। १९ ।। फिर विद्वान् पुरोधा को वेदी के ऊपर समस्त ग्रहो तथा लोकपालो को स्थापित करे और प्रत्येक दिशाओ मे सबका न्यास मन्त्रो के द्वारा ही करना चाहिए ।। २० ।। मन्त्रो का समाश्रय ग्रहण करने वाले को वारुणी दिशा मे मध्य मे कूर्म आदि की स्थापना करनी चाहिए और बुध पुरुष का कर्त्तव्य है कि वही पर ब्रह्मा–शिव और भगवान् विष्णु की स्थापना भी कर देवे ।। २१ ।।

विनायकञ्च विन्यस्य कमलामम्बिका तथा ।
शान्त्यर्थंसवलोकाना भूतग्राम न्यसेत्तत ।।२२
पुष्पभक्ष्यफलैर्युक्तमेवकृत्वाऽधिवासनम् ।
कुम्भान्सजलगर्भा स्तान्वासोभि.परिवेष्टयेद् ।।२३
पुष्पगन्धैरलङ्कृत्य द्वारपालान् समन्तत. ।
पठध्वमिति तान् ब्रूयादाचार्यस्त्वभिपूजयेत् ।।२४
बह्वृचौ पूर्वत स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्विदौ ।
सामगौ पश्चिमे तद्वदुत्तरेण त्वथर्वणौ ।।२५
उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत् ।
यजध्वमितितान्ब्रूयाद् हौत्रिकान्पुनरेव तु ।।२६
उत्कृष्टान् मन्त्रजापेन तिष्ठध्वमिति जापकान् ।
एवमादिश्य तान् सर्वान् पर्युक्ष्याग्नि स मन्त्रवित् ।।२७
जहुयाद्वारुणैर्मन्त्रै राज्य च समिधस्तथा ।

ऋत्विग्भिश्चाथ होतव्य वारुणैरेव सर्वत ॥२८

वहाँ पर विघ्न विनाशक विनायक–कमला–अम्बिका का विशेष रूप से न्यास करे तथा सम्पूर्ण लोकों की शान्ति-रक्षा के लिये भूतग्राम का भी न्यास वहाँ पर करे ॥ २२ ॥ पुष्प-भक्ष्य फलों से युक्त इस प्रकार से वहाँ अधिवास करे । जो कुम्भ वहाँ पर जलों से भरे-पूरे स्थापित हैं उनको वस्त्रों से परिवेष्टित कर देना चाहिए ॥ २३ ॥ धर्म और में जो द्वारपाल हों उनको पुष्प और गन्धों से समभ्यर्चित करके फिर उनसे आचार्य को निदेश देना चाहिए कि आप लोग पाठ आरम्भ कर देवें और उसे फिर अभिपूजन करना चाहिए ॥ २४ ॥ ऋत्विजों में बह्वृच हों उन्हीं को पूर्व दिशा में स्थापित करे अर्थात् ऋग्वेद के ज्ञाताओं को पूर्व दिशा में रक्खे । यजुर्वेद के विद्वानों को दक्षिण में—सामवेद के ज्ञाताओं को पश्चिम में और जो अथर्व के विद्वान् हों उनको उत्तर दिशा में सन्स्थापित करे ॥ २५ ॥ जो यजमान है उसको उत्तर की ओर मुख करके दक्षिण दिशा में उपविष्ट होना चाहिए । जब यह व्यवस्था पूर्ण होकर सभी यथास्थान स्थित हो जावें तो पहिले आचार्य को चाहिए कि उन सबको निदेश देवे कि यजन का आरम्भ कर देवें फिर जो होमिक हों उनको भी आदेश देवे ।। २६ ॥ जो वहाँ पर मन्त्रों के जापक ब्राह्मण हैं उनको भी ऐसा निदेश करना चाहिये कि आप लोग उत्कृष्ट मन्त्रों के जप का आरम्भ करने वाले सस्थित होवें । इस तरह से उन सबको यथोचित कर्म्म के समारम्भ करने का आदेश देकर फिर उन मन्त्रों के वेत्ता आचार्य को अग्नि का पर्युक्षण करना चाहिए ॥ २७ ॥ फिर वारुण मन्त्रों के द्वारा घृत और समिधाओं का हवन करे और जो ऋत्विक् होता वहाँ पर हैं उन सबको भी सब ओर से वारुण मन्त्रों के द्वारा ही हवन करना चाहिए ॥ २८ ॥

ग्रहेभ्यो विधिवद्हुत्वातथेन्द्रायेश्वराय च ।
मरुद्भ्योलोकपालेभ्योविधिव द्विश्वकर्मणे ॥२९

राक्षिसूक्तञ्च रौद्रञ्च पावमानं सुमङ्गलम् ।
जपेयुः पौरुष सूक्तं पूर्वतो बह्वृचाः पृथक् ॥३०
शाक्रं रौद्रञ्च सौम्यच कूष्माण्ड जातवेदसम् ।
सौरसूक्त जपेन्मन्त्र दक्षिणेन यजुर्विद. ॥३१
वैराज्य पौरुष सूक्त सौवर्णं रुद्रसहिताम् ।
शैशव पञ्च निधन गायत्रं ज्येष्ठसाम च ॥३२
वामदेव्य बृहत्साम रौरवं सरथन्तरम् ।
गवा व्रत च काण्वञ्च रक्षोघ्न वयसस्तथा ॥
गायेयु· सामगा राजन् ! पश्चिम द्वारमाश्रिता ॥३३
अथर्वणश्चोत्तरत: शान्तिक पौष्टिक तथा ।
जपेयुर्मनसा देवमाश्रित्य वरुण प्रभुम् ॥३४
पूर्वेद्युरभितो रात्रावेव कृत्वाधिवासनम् ।
गजाश्वरथ्यावल्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ॥
मृदमादाय कुम्भेषु प्रक्षिपेच्चत्वरात्तथा ॥३५

वेला हो जावे तो उस समय मे एक सौ अथवा अडसठ गौओं का दान ब्राह्मणो के लिये देना चाहिए। इतनी न हो सकें तो पचास अथवा छत्तीस या पच्चीस ही गौओ का दान अवश्य करना चाहिए ॥३८॥ इसके अनन्तर साम्वत्सर प्रोक्त अर्थात् वर्ष मे कथित शुभ लग्न और शुभ दिन में वेदो के शब्दो की ध्वनियो से तथा अनेक प्रकार के गान्धर्व वाद्यो से सुवर्ण से समलंकृत करके गौ को जल में अवतारित कर। हे विशाम्पते! फिर उस गौ को साम वेद के गायक ब्राह्मण के लिये दान मे दे देनी चाहिए। ॥३६, ४०॥ सुवर्ण के द्वारा विनिर्मित तथा पाँच प्रकार के रत्नों से सयुत लेकर फिर सब मकर-मत्स्य आदि का निपेक्ष कर के वेदो और वेदो के अङ्ग शास्त्रो के पारगामी विद्वान् चार प्रकार के विप्रो के द्वारा वह धारण कीजिये।॥४१॥

महानदीजलोपेतां दध्यक्षतसमन्विताम्।
उत्तराभिमुखीं धेनुं जलमध्ये तु ारयेत् ॥४२
आथर्वणेन सस्नाता पुनर्मामित्यथेति च।
आपोहिष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डलम् ॥४३
पूजयित्वा सरस्तत्र वलिं दद्यात् समन्ततः।
पुनर्दिनानि होतव्य चत्वारि मनिसत्तमाः ॥४४
चतुर्थी कर्म कर्तव्य देया तत्रापि शक्तित।
दक्षिणा राजशार्दूल! वरुणक्षमापनं ततः ॥४५

किसी महा नदी के जल से समुपेत तथा दधि अक्षतों से युक्त और उत्तर दिशा की ओर मुख करने वाली उस धेनु को जल के मध्य मे करा देवे ॥४२॥ अथर्व वेद के "पुनर्माम" इत्यादि मन्त्र मे सस्नान करके फिर "आपोहिष्ठा" इत्यादि मन्त्रो से क्षेपण करे और फिर मण्डल मे आगमन करे ॥४३॥ वहा पर सर का पूजन करके सभी ओर वलि देनी चाहिए। हे मुनिश्रेष्ठो! पुनः चार दिन पर्यन्त हवन करना चाहिए। इसके पश्चात् चतुर्थी कर्म करना चाहिए वहा पर शक्ति पूर्वक दक्षिणा

भी देनी चाहिए। हे राज शार्दूल! इसके अनन्तर वरुण देव से क्षमापन करना चाहिए ॥४४, ४५॥

३६—सौभाग्य शयन व्रत कथन

तथैवान्यत् प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् ।
सौभाग्यशयन नाम यत्पुराणविदो विदु ॥१
पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुव स्वर्महादिषु ।
सौभाग्य सर्वभूतानामेकस्थमभवत्तदा ॥
वैकुण्ठ स्वगमासाद्य विष्णोर्वक्षस्थलस्थितम् ॥२॥
तत कालेन महता पुन सर्गविधौ नृप ! ।
अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते ॥३
स्पर्धायाञ्च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णयो ।
लिङ्गाकारासमुद्भूता वह्नेर्ज्वालातिभीषणा ॥
तयाभितप्तस्य हरेर्वक्षस्तद्विनिसृतम् ॥४
वक्षस्थलसमाश्रित्यविष्णो सौभाग्यमास्थितम् ।
रसरूपन्तनोयावत्प्राप्नोतिवसुधानलम् ॥५
उत्क्षिप्तमन्तरिक्षे तद्ब्रह्मपुत्रेण धीमता ।
दक्षेण पीतमात्रन्तद्रूपलावण्यकारकम् ॥६
बल तेजो महज्जात दक्षस्य परमेष्ठिन. ।
शेष यदपतद्भूमावष्टधा समजायत ॥७

मत्स्य भगवान् ने कहा—उसी प्रकार से एक अन्य समस्त मनोरथों के फलों का प्रदान करने वाले व्रत का वर्णन करता हूँ जिस व्रत का नाम सौभाग्य शयन है जिसे पुराणों के वेत्ता विद्वान् पुरुष भली भाँति जानते हैं ॥१॥ पुरातन समय में भू—भुव—स्व और महर्लोक आदि लोकों के

दग्ध हो जाने पर उस महान् भीषण काल में समस्त भूतों का सौभाग्य एक मे ही स्थित हो गया था ।२। यह सौभाग्य बैकुण्ठ और स्वर्ग में पहुँच कर भगवान् विष्णु के वक्ष स्थल में स्थित हो गया था। हे नृप ! इसके पश्चात् बहुत अधिक काल के हो जाने पर पुनः सर्ग की विधि प्राप्त हुई तो उस समय मे यह लोक अहङ्कार से आवृत और प्रधान पुरुष से समन्वित था ।।३।। भगवान् श्री कृष्ण और कमलासन ब्रह्माजी इन दोनों में स्पर्धा की भावना की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई थी। ऐसी दशा मे एक लिङ्ग के आकार वाली अग्निकी भीषण ज्वाला समुद्भूत हुई थी और अत्यन्त अभितप्त भगवान् हरि के वक्षस्थल से वह निःसृत हुई थी ।। ४ ।। इस वसुधा के तल में जो भी कुछ रस और रूप जितना भी प्राप्त होता है वह सभी भगवान् विष्णु के वक्ष स्थल का समाश्रय ग्रहण करके समस्त सौभाग्य वहीं पर समास्थित हो गया था ।।५।। परम धीमान् ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष ने पीतमात्र उस रूप लावण्य के करने वाले को अन्तरिक्ष में उत्क्षिप्त कर दिया था ।।६।। परमेष्ठी दक्ष का बल और तेज महान् हो गया था। शेष जो भी कुछ भूमण्डल में गिरा था वह आठ प्रकार का हो गया था ।।७।।

ततोजनानासञ्जाता.सप्तसौभाग्यदायकाः ।
इक्षवोरसराजाश्चनिष्पावाजाजिधान्यकम् ।।८
विकारवच्च गोक्ष र कुसुम्भ कु कुम तथा ।
लवण चाष्टमन्तद्वत् सौभाग्याष्टकमुच्यते ।।९
पीत यत ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा पुन ।
दुहिता साऽभवत्तस्य या सतीत्यभिधीयते ।।१०
लोकानतीत्य लालित्यात् ललिता तेन चोच्यते ।
त्रैलोक्यसुन्दरीमेनामुपयेमे पिनाकधृक् ।।११
यादेवीसौभाग्यमयी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
तामाराध्य पुमान् भक्तयानारीवाकिन्नविन्दति ।।१२

स्नापयित्वाऽर्चयेत् गौरीमिन्दुशेखरसंयुताम् ॥१७
नमाऽस्तुपाटलायैतुपादौदेव्या.शिवस्यतु ।
शिवायेतिचसंकीर्त्यजयायैगुल्फयोर्द्वयोः ॥१८
त्रिगुणायेति रुद्राय भवान्यै जंघयोर्युगम् ।
शिवः रुद्रेश्वराय च विजयायेति जानुनी ॥
सङ्कीर्त्य हरिकेशाय तयोरू वरदे नम. ।।१६
ईशायैच कटिं देव्याः शङ्करायेति शङ्करम् ।
कुक्षिद्वयञ्च कोटव्यै शूलिने शूलपाणये ॥२०
मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुन्दर चाभि पूजयेत् ।
सर्वात्मने नमो रुद्रमीशान्यैच कुचद्वयम् ॥२१

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे जन प्रिय ! बसन्त मास को प्राप्त करके शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि में पूर्वाह्न के समय में तिलों से स्नान करना चाहिए ॥१४॥ उस दिन में वर वर्णिनी वह देवी सती विश्वात्मा के साथ पाणिग्रहण के मन्त्रों में निवास करने वाली हुई थी ।।१५।। उसी देवी के साथ ही तृतीया में देवेश का भी अर्चन करना चाहिये । फल जो अनेक प्रकार के हों उनसे—धूप—दीप और नैवेद्य से संयुत करके प्रतिमा का पञ्चगव्य से और गन्धोदक से स्नपन कराकर फिर इन्दुशेखर से समन्वित गौरी का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥१६-१७॥ ... के लिये

है—इससे भगवान् शंकर की कटिका पूजन करे। कोठवो तथा शूलपाणि शली की सेवा मे प्रणाम अर्पित हो—इन से दोनो कुक्षियो का अर्चन करना चाहिये ॥२ ॥ मङ्गला आपके लिये नमस्कार है—इसका उच्चारण करके उदर का पूजन करे। सर्वात्मा के लिये नमस्कार है—इससे हृद का अर्चन करे तथा ईशानी की सेवा मे प्रणाम है—इससे देवी दोनों स्तनो का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥२१॥

शिवं वेदात्मने तद्वद्रुद्राण्यै कण्ठमर्चयेत् ।
त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम ॥२२
त्रिलोचनाय च हरं बाहुकालानलप्रिये ।
सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत् ॥
स्वाहा स्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम् ॥२३॥
अशोकमधुवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ ।
स्थाणवेतु हरं तद्वदास्य चन्द्रमुखप्रिये ॥२४
नमोऽर्द्धनारीशहरमसिताङ्गीति नासिकाम् ।
नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ ॥२५
शर्वाय पुरहन्तारं वासःयैतु तथालकान् ।
नम: श्रीकण्ठनाथायै शिवकेशास्ततोऽर्चयेत् ॥
भामोग्रसमर्त्यायै शिरः सर्वात्मने नमः ॥२६
शिवमभ्यर्च्यविधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः ।
स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीरकान् ॥२७
रसराजञ्च लवणं कस्तुम्बरुमथाष्टकम् ।
दत्त सौभाग्यमित्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्यतः ॥२८

वेदात्मा को प्रणाम है—इससे शिवका और रुद्राणी को प्रणाम है—इससे देवी के कण्ठ का पूजन करे। त्रिपुर के हनन करने वाले को प्रणाम है—इससे देवी के दोनो करो का पूजन करे ॥२२॥ त्रिलोचनाय नम अर्थात् तीन लोचनो वाले को प्रणाम है—इस मन्त्र को पढ़कर

भगवान् हर का तथा हे बाहु कालानन प्रिये ! सौभाग्य भवना के लिये प्रणाम है—इस से सर्वदा भूषणों का अभ्यर्चन करना चाहिए। स्वाहा स्वधा को नमस्कार है—इससे देवी के मुख का और ईश्वर के लिए नमस्कार है—इससे शूलि की अर्चना करे ॥२३॥ अशोक मधुवासिनी को प्रणाम अर्पित हो—इस मन्त्र से देवी के मूर्ति प्रदान करने वाले ओष्ठों का पूजन करना चाहिए। उसी भाँति स्थाणु के लिए नमस्कार है—इससे हर का अर्चन करे। हे चन्द्रमुख प्रिये ! आपको नमस्कार है—इससे धारप अर्चन करे अर्धनारीश हर को तथा आसिताङ्गी को नमस्कार है—इन मन्त्रों के द्वारा नासिका का अभ्यर्चन करे। उग्र के लिये प्रणाम है—इससे लोकेश का तथा ललिता को प्रणाम है—इससे देवी के दोनों भृकुटियों का अर्चन करना चाहिए ॥२४, २५॥ 'शर्वाय नमः' अर्थात् शर्व की सेवा मे नमस्कार अर्पित है—इस मन्त्र से पुर के हनन करने वाले प्रभु का और "वासुर्व्यै नमः" अर्थात् वासुकी के लिये प्रणाम है—इससे देवी के अलकों का अर्चन करे। 'श्री कण्ठनाथायै नमः' अर्थात् श्री कण्ठ की स्वामिनी को नमस्कार है इससे देवी के केशों का और फिर शिव के केशों का पूजन करे। "भीमोग्र सम रुपिण्यै नम "—इस मन्त्र से देवी के तथा "सर्वात्मने नमः"—इस मन्त्र से देवेश के शिर का पूजन करना चाहिए ॥२६॥ इस प्रकार से विधि के साथ भगवान् शिव का समर्चन करके उनके आगे फिर सौभाग्याष्टक की स्थापना करनी चाहिए। उस सौभाग्य के आठ पदार्थों के नाम, घृत, निष्पाव, कुसुम्भ, क्षीर, जीरक, रसराज, लवण और तुम्बक य हैं। इन्हीं का सबका समुदाय अष्टक होता है इस अष्टक से सौभाग्य का प्रदान किया था अतएव इसका नाम सौभाग्याष्टक हो गया है ॥२७, २८॥

> एवं निवेद्य तत्सर्वमग्रत शिवयो. पुन ।
> गात्रो शृङ्गोदकं प्राश्य तद्वद् भूमावरिन्दम् ! ॥२९
> पुन प्रभाते तु नयः कृतस्नानजपः शुचि ।
> सपूज्य द्विजदाम्पत्यं वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥३०

सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सुवर्णचरणद्वयम् ।
प्रीयतामत्र ललिता ब्राह्मणाय निवेदयत् ॥३१
एवसम्वत्सरंयावत्तृतीयायासदामनो ! ।
कर्त्तव्यविधिवद्भक्तयासवसौभाग्यमीप्सुभिः ॥३२
प्राशने दानमन्त्र च विशेषोऽयंनिबोधमे ।
शृङ्गोदकञ्चैत्रमासे वैशाखे गोमय पुन ॥३३
ज्येष्ठेमन्दारकुसुम बिल्वपत्रं शुचौस्मृतम् ।
श्रावणेदधि सम्प्राश्य नभस्येचकुशोदकम् ॥३४
क्षीरमाश्वयुजेमासि कार्तिके पृषदाज्यकम् ।
मार्गमासेतु गामूत्रं पौषे सम्प्राशयेद्घृतम् ॥३५

इस प्रकार से उन सबको शिव और शिवाके आगे निवेदन करके रात्रि में शृङ्गोदक का प्राशन करके उसी भाँति भूमि में अरिन्दम को करावे ॥ २६ ॥ पुनः प्रातःकाल की बेला में स्नान और जाप करके परम शुचि होकर वस्त्र—माला और भूषणों के द्वारा ब्राह्मण दम्पति का भली भाँति पूजन करना चाहिए ॥ ३० ॥ सौभाग्याष्टक से समन्वित सुवर्ण निर्मित दो चरणों को इससे ललिता देवी प्रसन्न हो—यह उच्चारण करते हुए ब्राह्मण को दान देना चाहिए इसी प्रकार से एक वर्ष पर्यन्त हे मनो ! तृतीया तिथि में सदा विधि के सहित भक्ति की भावना से सर्व सौभाग्य के इच्छुक पुरुषों को इस व्रत को करना चाहिए ॥ ३१, ३२ ॥ प्राशन में और दान के मन्त्र में यह यहाँ पर विशेषता है उसे आप मुझसे समझ लो । चैत्र मास में शृङ्गोदक—वैशाख में गोमय का प्राशन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ ज्येष्ठ मास में मन्दार का कुसुम और आषाढ़ में बिल्व पत्र कहा गया है । श्रावण में दधि का सम्प्राशन करे और भाद्रपद में कुशोदक का प्राशन करना चाहिए ॥ ३४ ॥ आश्विन मास में क्षीर और कार्तिक में पृषदाज्य तथा मार्गशीर्ष में गोमूत्र का प्राशन करे । पौष मास में घृत का प्राशन करना चाहिए ॥३५॥

माघे कृष्णतिलतद्वत् पञ्चगव्यञ्ज फाल्गुने ।
ललिाविजयता भद्राभवानी कुमुदाशिवा ॥३६
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमलासती ।
उमाच दानकालेतु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥३७
मल्लिकाशोककमल कदम्बोत्पलमालती ।
कुब्जक करवीरञ्च वाणमम्लामकुंकुमम्॥३८
सिन्दुवारञ्च सर्वेषु मासेषु क्रमशः स्मृतम् ।
जापकुसुम्भकुसुम मालती शत पत्रिका ॥३९
यथालाभ प्रशस्तानि करवीरञ्च सर्वदा ।
एव सम्वत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नर ॥४०
स्त्रीभक्ता वा कुमारी वा शिवमभ्यर्च्य भक्तितः ।
व्रतान्ते शयन दद्यात् सर्वोपस्कर संयुतम् ॥४१
उमा महेश्वर हैम वृषभञ्च गवा सह ।
स्थापयित्वाऽथ शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥४२

माघ मास मे काले तिलो का तथा फाल्गुन मे पञ्चगव्य का प्राशन करना चाहिए । बारहो मासो के दान काल के भी पृथक २ नाम हैं क्रम से समझ लेना चाहिए—ललिता—विजया—भद्रा—भवानी—कुमुदा—शिवा—वासुदेवी—गौरी—मङ्गला—कमला—सती और उमा ये बारह नाम पूर्वोक्त क्रम से दान के समय मे प्रत्येक नाम का उच्चारण करके प्रसन्न हों ऐसा कीर्तन करे यथा 'उमा प्रीयताम्' यही क्रम है । ॥ ३६ । ३७ ॥ इसी प्रकार से पुष्पो का भी एक क्रम है उसी के अनुसार ग्रहण करके अभ्यर्चन करे—मल्लिका—अशोक—कमल—कदम्ब—उत्पल मालती—कुब्जक—करवीर—बाण—अम्लानकुंकुम—सिन्दुवार इन पुष्पों से सभी मासों मे क्रमपूर्वक पूजन करना कहा गया है । यथा—कुसुम्भ कुसुम मालती शत पत्रिका ये पुष्प यथा लाभ ही प्रशस्त होते हैं । और करवीर तो सभी समयों मे प्रशस्त है । इस तरह से एक वर्ष जब तक पूर्ण हो

मनुष्य को विधि के साथ उपवास करना चाहिए ॥ ३९, ३६, ४० ॥ भक्त कोई स्त्री हो या कोई कुमारी हो भगवान् शिव का भक्त भाव से पर्चन करके जब व्रत की समाप्ति हो तो उस व्रत करने वाले को सभी उपस्करों से युक्त शय्या का दान करना चाहिए । उमा और महेश्वर और वृषभ सुवर्ण के निर्मित कराकर गौ के साथ शयन में स्थापित कराकर ब्राह्मण को दान में देनी चाहिए ॥४१, ४२॥

अन्यान्यपि यथाशक्त्या मिथुनान्यम्बरादिभि
धान्यालङ्कारगोदानैरभ्यर्चेद्धनसञ्चयः ॥
वित्तशाठ्येन रहित पूजयेत् गतविस्मः ॥४३॥
एव करोतिय सम्यक् सौभाग्यशयनव्रतम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति पदमत्यन्तमश्नुते ॥
फलस्यैकस्य त्यागेन व्रतमेतत्समाचरेत् ॥४४
य इच्छन् कीर्तिमाप्नोति प्रतिमासनराधिप ।
सौभाग्यारोग्यरूपायुर्वस्त्रालङ्कारभूषणं ॥
न वियुक्तो भवेद्राजन् ! नवार्बु दशतत्रयम् ॥४५॥
यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम् ।
करोति सप्त चाष्टौवा श्रीकण्ठभवनेऽमरं ।
पूज्यमानो वसेत् सम्यक् यावत्कल्पायुतत्रयम् ॥४६
नारीवा कुरुते वापि कुमारीवा नरेश्वर ! ।
सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ॥४७
शृणुयादपियश्चैव प्रदद्यादथवा मतिम् ।
सोऽपिविद्याधरो भूत्वास्वर्लोकके चिरवसेत् ॥४८
इदमिह मदनेन पूर्वमिष्ट शतधनुषा कृतवीर्यसूनुना च ।
वृतमथ वरुणेन नन्दिना वा किमु जननाय ततो यदुद्भवस्यात् ॥४९

अन्य-अन्य भी मिथुनों का यथा शक्ति वस्त्र आदि के द्वारा तथा धान्य-अलङ्कार और गौ-दान एवं धन के सञ्चयों के द्वारा अभ्यर्चन

करे। पूजन वित्त की शठता से रहित होकर ही विस्मय से हीन रह कर ही करना चाहिए ॥ ४३ ॥ इस विधान से जो भी कोई इस सौभाग्य शयन व्रत को भली भाँति किया करता है वह सभी कामनाओं का फल प्राप्त कर लिया करता है और फिर अत्यन्त उन्नत पद का लाभ करता है एक फल के त्याग से इस व्रत का समाचरण करना चाहिए ।४४। जो नराधिप चाहता है वह प्रतिमास कीर्ति की प्राप्ति किया करता है। हे राजन् ! इस व्रत को करने वाला पुरुष सौभाग्य—आयु—आरोग्य—रूप—लावण्य—वस्त्र—अलङ्कार और भूषणों से तीन सौ तक अर्बुद पर्यन्त कभी वियुक्त नहीं हुआ करता है ॥ ४५ ॥ जो पुरुष बारह वर्ष तक इस सौभाग्य शयन व्रत को करता रहता है अथवा सात या आठ वर्ष तक किया करता है वह अमर गणों के साथ भगवान् श्री रुद्र के भवन में पूज्यमान होकर तीन अयुत कल्प तक अच्छी तरह निवास किया करता है ॥ ४६ ॥ हे नरेश्वर ! नारी हो या कुमारी हो जो भी कोई इस व्रत को करती है वह भी देवी के अनुग्रह से लालित होकर इसके फल को पूर्णतया प्राप्त कर लिया करती है ॥ ४७ ॥ जो कोई इस व्रत की कथा का श्रवण भी कर लेता है या इसमें अपनी मति को लगा देता है वह पुरुष भी विद्याधर होकर स्वर्गलोक में चिरकाल पर्यन्त निवास किया करता है ॥ ४८ ॥ इस व्रत को पूर्व में यहाँ पर मदन ने किया था फिर शत धनुषों वाले कृतवीर्य के पुत्र ने इसको किया था। इसके अनन्तर वरुण ने, नन्दी ने किया था। हे सत्तों के नाथ ! इससे जो कुछ भी उत्पन्न होता है उसके विषय में क्या कहाँ तक कहा जावे। तात्पर्य है कि कोई भी प्राप्तव्य शेष नहीं रहता है—यह इस महाव्रत का माहात्म्य है ॥४८, ४९॥

२७—अक्षय तृतीया और सरस्वती व्रत

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां सर्वकामदाम् ।
यस्यां दत्तं हुतं जप्तं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥१
वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीया यैरुपोषिता ।
अक्षयं फलमाप्नोति सर्वस्य सुकृतस्य च ॥२
सा तथा कृत्तिकोपेता विशेषेण सुपूजिता ।
तत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वमक्षयमुच्यते ॥३
अक्षयासन्ततिस्तस्यास्तस्यां सुकृतमक्षयम् ।
अक्षतैस्तु नराः स्नाता विष्णोर्दत्त्वा तथाक्षतान् ॥४
विप्रेषु दत्त्वा तानेव तथा सक्तून् सुसंस्कृतान् ।
यथान्नभुक् महाभागः फलमक्षयमश्नुते ॥५
एकामप्युक्तवत् कृत्वा तृतीयां विधिवन्नरः ।
एतासामपि सर्वासां तृतीयानां फलं भवेत् ॥६
तृतीयायां समभ्यर्च्य सोपवासो जनार्दनम् ।
राजसूयफलं प्राप्य गतिमग्र्यां च विन्दति ॥७

ईश्वर ने कहा—इसके अनन्तर मैं अक्षय तृतीया के व्रत का भी वर्णन करता हूँ जो सब कामनाओं को प्रदान करने वाला है। जिसमें दिया हुआ जो भी हो हवन-जप आदि सभी अक्षय हो जाया करते हैं ॥१॥ वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की जो तृतीया होती है उसका जिन पुरुषों ने उपवास किया है या किया करते हैं वे सभी सुकृत का अक्षय फल पाने का लाभ लिया करते हैं ॥२॥ यह तिथि कृत्तिका से उपेत होती विशेष रूप से सुपूजित होती है। उसमें सभी दान किया हुआ—हवन किया हुआ और जाप किया हुआ अक्षय कहा जाता है ॥३॥ उसकी सन्तति भी अक्षय अर्थात् कभी भी क्षीण न होने वाली होती है और उसमें किया हुआ सुकृत भी अक्षय होता है। अक्षतों से स्नान किए

हुए मनुष्य भगवान् विष्णु की सेवा में अक्षतों को समर्पित करते उन्हीं को सुसस्कृत सतुआ कराकर विप्रो को दान मे दिया करते हैं वे यथा अन्नमुक् महाभाग उसका अक्षय फल प्राप्त किया करते हैं ॥ ४, ५ ॥ उक्त विधान के अनुसार मनुष्य एक भी तृतीया का व्रत किया करते हैं वे इन सब तृतीयाओ का फल प्राप्त कर लिया करते हैं। तृतीया के दिन उपवास के सहित रह कर जो भगवान् जनार्दन का अभ्यर्चन करता है वह मनुष्य राजसूय यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त करके अत्युत्तम गति की प्राप्ति किया करते हैं ॥ ६, ७ ॥

मधुरा भारती केन व्रतेन मधुसूदन ! ।
तथैव जनसौभाग्य मति विद्यासुकौशलम् ॥८
अभेदश्चापि दम्पत्यो स्तथा बन्धुजनेन च ।
आयुश्च विपुल पुंसा तन्मे कथय माधव ! ॥९
सम्यक् पृष्ट त्वया राजन् ! श्रृणुसारस्वतव्रतम् ।
यस्य स ।तमादेव तुष्यतोह सरस्वती ॥१०
यो यद्भक्त:पुमान् कुर्यातएतद्व्रतमनुत्तमम् ।
तद्वासराादौसम्पूज्यविप्रानेतान्समाचरेत् ॥११
अथवाादित्यवारेण ग्रहताराबलेन च ।
पायस भोजयेद्विप्रान् कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥१२
शुक्लवस्त्राणि दत्त्वा च सहिरण्यानि शक्तित. ।
गायत्री पूजयेद्भक्तया शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥१३
यथा न देवि ! भगवान् ब्रह्मलोके पितामहः ।
त्वा परित्यज्य सन्तिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा ॥१४

मनु ने कहा—हे मधुसूदन ! यह मधुरा भारती किस व्रत से प्राप्त हुआ करती है ? तथा जनों का सौभाग्य—मति और विद्याओं मे परमाधिक कौशल—दम्पति मे किसी भी प्रकार के भेद—भाव का न होना तथा बन्धु जन के साथ भी भेद की भावना का अभाव—आयु की विपुलता ये सब

पुरुषों को कौन से व्रत—विधान से हुआ करता है ? हे माधव ! यह आप कृपा करके हमको बतलाइये ॥८, ६॥ भगवान् मत्स्य ने कहा—हे राजन् ! आपने यह तो बहुत ही अच्छा इस समय में प्रश्न पूछा है। अच्छा तो अब सारस्वत व्रत का श्रवण कीजिए जिसके करने की तो बात ही क्या है केवल कीर्तन मात्र के करने ही से देवी सरस्वती लोक में परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाया करती हैं ॥१०॥ जो इसका भक्त पुरुष इस परमोत्तम व्रत को करता है उस उसका स्वर के आदि में इन विप्रों का भली भाँति पूजन करके ही इस व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥११॥ अथवा रविवार को ग्रहों के और तारागणों के बल से इसका आरम्भ करे। ब्राह्मण वाचन करके विप्रों को पायस का भोजन कराना चाहिए ॥१२॥ परमोज्ज्वल शुक्ल वसन और इनके साथ में अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण भी देकर शुक्ल माल्य और शुक्ल ही अनुलेपन आदि उपचारों के द्वारा भक्ति की भावना से गायत्री देवी का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥१३॥ पूजन की वेला में देवी से यही प्रार्थना करे—हे देवि ! जिस प्रकार से ब्रह्म लोक में भगवान् पितामह आपका परित्याग करके क्षण मात्र को भी स रहित नहीं रहा करते हैं उसी प्रकार से आप वरदान देने वाली हो जाइये ॥१४॥

> वेदा शास्त्राणिसर्वाणिगीतनृत्यादिकञ्चयत ।
> न विहीनं त्वयादेवि ! तथामेसन्तुसिद्धयः ॥१५
> लक्ष्मीर्मेधा धरापुष्टिर्गौरीतुष्टाप्रभामतिः ।
> एताभि पाहि अष्टाभि स्तनुभिर्मां सरस्वती ॥१६
> एवं सम्पूज्यगायत्रीं वीणाक्षयनिवारिणीम् ।
> शुक्लपुष्पाक्षतैर्भक्त्यासकमण्डलुपुस्तकाम् ॥
> मौनव्रतेन भुञ्जीत सायं प्रातश्च धर्म्मवित् ॥१७॥

. वेद और सम्पूर्ण शास्त्र तथा गीत और नृत्य आदि सभी हे देवि ! आप से हीन न होवें उसी प्रकार की मेरी सिद्धियाँ हो जानी चाहिए

।।१५।। हे सरस्वती देवि ! आप लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टा, प्रभा, इन आठ तनुओं से संयुता होकर मेरी रक्षा करिए ।।१६।। इस प्रकार से क्षय का निवारण करने वाली वाणी गायत्री देवी का भली भाँति अर्चन करके जो शुक्ल पुष्प और अक्षतों से सयुत है और भक्ति के द्वारा कमण्डलु एवं पुस्तक को धारण करने वाली है फिर मौन व्रत पूर्वक धर्म के ज्ञाता पुरुष को सायकाल मे और प्रातः काल मे अशन करना चाहिए ।।१७।।

३८--चन्द्रादित्योपराग में स्नान विधि कथन

चन्द्रादित्योपरागेतु यत्स्नानमभिधीयते ।
तदहृश्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रविधानवित् ।।१
यस्य राशिसमासाद्य भवेद्ग्रहणसप्लवः ।
तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधविधानतः ।।२
चन्द्रोपरागसम्प्राप्य कृत्वाब्राह्मणवाचनम् ।
सपूज्यचतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनं ।।३
पूर्वमेवोपरागस्य समासाद्यौषधादिकम् ।
स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सागरानिति ।।४
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात ।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय चाक्षिपेत् ।।५
पञ्चगव्यञ्च कुम्भेषु शुद्धमुक्ताफलानि च ।
रोचना पद्मशङ्खौ च पञ्चरत्नसमन्वितम् ।।६

मत्स्य भगवान् ने कहा—जिस राशि को प्राप्त करके ग्रहण का सुप्लव होता है उसका स्नान मन्त्र और औषधि के विधान से मैं आपको बतलाता हूँ ॥ १, २ ॥ जब चन्द्रमा का उपराग (ग्रहण) सम्प्राप्त हो तो उस समय में ब्राह्मण वाचन करे और चार विप्रों का शुक्ल माल्या तथा शुक्ल अनुलेपनों के द्वारा भली भाँति पूजन करे। जब उपराग का आरम्भ हो उससे पूर्व ही औषधि आदि का समासादन करे। चार कुम्भों की स्थापना करे जो व्रणों से रहित हों। ये कुम्भ सागर स्थानीय होते हैं ॥ ३, ४ ॥ गजशाला—अश्वशाला—वल्मीक (चींटी की बामी) सङ्गम-ह्रद-गोकुल (गायों के बैठने तथा बँधने का खिरक) राजद्वार का प्रदेश—इन स्थलों में मृत्तिका का आनयन करके उसका प्रक्षेप करना चाहिए ॥ ५ ॥ कुम्भों में पञ्चगव्य (गौ का दूध-दही-घृत मूत्र और गोमय—इन सबका सम्मिश्रण) शुद्ध मुक्ताफल रोचना, पद्म, शङ्ख तथा पाँचों प्रकार के रत्न, स्फटिक, चन्दन श्वेत, तीर्थों का जल, सरसों, राजदन्त, कुमुद उशीर (खस) और गुग्गुल इन समस्त पदार्थों को एकत्रित कर लेना चाहिए ॥ ६ ॥

स्फटिकं चन्दनं श्वेतं तीर्थवारि ससर्षपम् ।
राजदन्तं सकुमुदं तथैवोशीरगुग्गुलम् ॥
एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत् सुरान् ॥७
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥८
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः ।
सहस्रनयनश्चेन्द्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥९
मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः ।
चन्द्रोपरागसम्भूतामग्निः पीडां व्यपोहतु ॥१०
यः कर्मसाक्षी भूतानां धर्मो महिषवाहनः ।
यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥११

नागपाशधरो देव. साक्षान्मकरवाहन ।
स जलाधिपतिश्चन्द्रग्रह पीडा व्यपोहतु ॥१२
प्राणरूपेण यो लोकान् पाति कृष्ण मृगप्रिय ।
वायुश्चन्द्रोपरागोत्था पीडामत्र व्यपोहतु ॥१३
योऽसौ निधिपतिर्देवः खङ्गशूलगदाधर. ।
चन्द्रोपरागकलप धनदो,मे व्यपोहतु ॥१४

उपर्युक्त पदार्थों का सबका उन कुम्भो मे निक्षेप करके फिर उनमें सुरो का आवाहन करना चाहिए।।७।। आवाहन के समय मे प्रार्थना करे-सब समुद्र, समस्त सरिताऐ, तीर्थ, जलद, नद यहाँ पर आने की कृपाकरें जो कि यजमान के दुरितो के क्षय करने मे समर्थ हैं।८। जो यह वज्र के धारण करने वाले देव आदित्यों के प्रभु माने गये हैं वही सहस्र नेत्रो वाले इन्द्रदेव ग्रहों की पीडा का व्यपोहन करे।९। अपरिमित द्युतिवाले सप्तर्चि समस्त देवों का मुख है । अग्नि, चन्द्र के उपराग से होने वाली पीडा का व्यपोहन कर जो भूतो के विहित कर्मों का (बुरे-भले जैसे भी हो) साक्षी है वह धर्म महिष के वाहन वाला यमराज चन्द्र के उपराग से समुत्पन्न मेरी पीडा को दूर करे ॥१०, ११॥ नागो के पाश को धारण करने वाले साक्षात् मकर के वाहन वाले देव जल के अधिपति चन्द्र ग्रह की पीडा का व्यपोहन करें।१२। कृष्ण मृग पर प्यार करने वाले वायुदेव जो प्राणो के रूप से समस्त लोको का प्रतिपालन किया करते हैं यहाँ पर इस चन्द्रमा के उपराग से समुत्थित पीडा का निवारण कर देवे । जो यह निधियो का स्वामी खङ्ग, शूल और गदा के धारण करने वाले देव धनद हैं वे मेरे चन्द्रोपराग के कलुष को दूर करे ॥१३, १४॥

योऽसौ विन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ।
चन्द्रोपरागजा पीडा विनाशयतुशङ्कर ॥१५
त्रैलोक्ययानिभूतानि स्थावराणिचराणिच ।
ब्रह्माविष्ण्वर्कयुक्तानि तानि पापदहन्तुवै ॥१६

एवमामन्त्र्य तैः कुम्भैरभिषिक्तो गुणान्वितैः ।
ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥
पूजयेद्वस्त्रगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवताः ॥१७॥
एतानेव ततो मन्त्रान् विलिखेत् रकान्वितान् ।
वस्त्रपट्टे ऽथवा पद्मे पञ्चरत्नसमन्वितान् ॥१८
यजमानस्य शिरसि निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः ।
ततोऽतिवाहयेद्वेलामुपरागानुगामिनीम् ॥१९
प्राङ्मुखः पूजयित्वा तु नमस्यन्निष्टदेवताम् ।
चन्द्रग्रहे विनिवृत्ते कृतगोदानमङ्गलः ॥
कृतस्नानाय तत्पट्टं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२०॥
अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत् ।
न तस्य ग्रहपीडा स्यान्नच बन्धुजनक्षयः ॥२१
परमा सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ।
सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् ॥२२

जो ग्रह बिन्दु के प्रारम्भ करने वाले वृष के वाहन वाले जिन की देव शङ्कर हैं वे मेरी चन्द्र के ग्रहण से उत्पन्न होने वाली पीड़ा का विनाश कर देवें ॥ १५ ॥ इस त्रिलोकी में जो भी स्थावर और चर भूत हैं जो ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य से संयुक्त हैं वे सब पापों का दाह करें ॥ १६ ॥ इस तरह से आमन्त्रित करके फिर गुणों से समन्वित उन कुम्भों से अभिषिक्त होकर ऋक्-यजु और सामवेद के मन्त्रों के द्वारा एवं शुक्ल माल्य और अनुलेपनों से इष्ट देवों का अर्चन करे तथा वस्त्र और गोदानों के द्वारा ब्राह्मणों का यजन करना चाहिए ॥ १७ ॥ फिर इन्हीं मन्त्रों को करका न्वित करके लिखे जो पाँच रत्नों से भी समन्वित हों । इन मन्त्रों को किसी वस्त्र पट्ट पर अथवा पद्म पर लिखना चाहिए ॥ १८ ॥ उत्तम द्विजों को यजमान के सिर पर उन्हें रखना चाहिए । फिर उस उपराग की अनुगामिनी बेला का अतिवाहन करे ॥ १९ ॥ पूर्व

दिशा की ओर मुख वाला होकर पूजन करे तथा अपने इष्ट देवों को नमस्कार करे। जब यह चन्द्रमा का ग्रहण निवृत्त हो जावे तो गोदान और मङ्गल कर्म करने वाले को स्नान किये हुए ब्राह्मण के लिए उस पट्ट को निवेदित कर देना चाहिये ॥ २० ॥ इस विधान के साथ जो ग्रह स्नान का समाचरण किया करता है उसको कभी भी ग्रहों की पीड़ा नहीं हुआ करती है और न कभी बन्धुजनों का ही क्षय होता है। वह मनुष्य पुनरावृत्ति दुर्लभ परम सिद्धि की प्राप्ति किया करता है। सूर्य ग्रह में सूर्य देव के नामों का सदा मन्त्रों से कीर्तित करना चाहिए। ॥ २१ ॥ २२ ॥

३६—सप्तमीस्नपन व्रत कथन

किमुद्वेगाद्भुते कृत्यमलक्ष्मी. केन हन्यते।
मृतवत्साभिषेकादि कार्येषु च किमिष्यते ॥१
पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यस्मिंस्तपोधन।
रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टवधेन च ॥२
तद्विघाताय वक्ष्यामि सदा कल्याणकारकम्।
सप्तमीस्नपननाम जनपीडाविनाशनम् ॥३
बालाना मरण यत्र क्षीरपाना प्रदृश्य तम्।
तद्वत्वृद्धेतराणाञ्च यौवने चापिवर्तताम् ॥४
शान्तये तत्र वक्ष्यामि मृतवत्साभिषेचनम्।
एतदेवाद्भुतोद्वेगचित्तभ्रमविनाशनम् ॥५
भविष्यतिच वाराहो यत्र कल्पस्तपोधन।
वैवस्वतश्च तत्रापि यदा तु मनुरुत्तम ॥६
भविष्यति च तत्रैव पञ्चविंशतिम यदा।

कृतं नामयुग तत्र हैहयान्वयवर्द्धनः ।
भावता नृपतिर्वीरः कृतवीर्यः प्रतापवान् ।।७।

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—उद्वेग से अद्भुत दशा के प्राप्त होने पर क्या कृत्य करना चाहिए ? किस कर्म के करने से यह अनर्थों का हनन किया जाता है तथा मृतवत्सा आदि कार्यों में क्या इष्ट प्रद हुआ करता है ? श्री भगवान् ने कहा—हे तपोधन ! इस मनुष्य जीवन में पूर्व जन्मों मे किये हुए पाप ही फल दिया करते हैं। इस जीवन में रोगों की उत्पत्ति—महा दुर्गति के स्वरूप से और इष्ट के वध हो. से अर्थात् जो भी कुछ अभीष्ट हो उसका विनाश के होने से मनुष्य को उन पूर्व कृत पापों का फल मिला करता ।।१, २।। इन सब के विघात करने के लिये सदा कल्याण के करने वाले तथा जनों की पीड़ा का विनाश कर देने वाले सप्तमी स्नपन नाम वाले व्रत को बतलाते हैं ।।३।। जहां पर दुधमुँहे छोटे २ बच्चों का मरण दिखलाई दिया करता है और उसी भाँति जो अभी वृद्धावस्था में प्राप्त नहीं हुए हैं ऐसे यौवन में रहने वालों का मरण होता है वहाँ पर शान्ति के सम्पादन करने के लिये मृतवत्साभिषेचन बतलाते हैं। यही अद्भुत उद्वेग और चित्त के भ्रम का विनाश करने वाला होता है ।।४, ५।। हे तपोधन ! जिस समय में वाराह कल्प होगा और वहीं पर जब उत्तम वैवस्वत मनु होगा। वही पर जब पच्चीसवां कृत युग नाम वाला युग होगा और उस समय में हैहय के वंश की वृद्धि करने वाला महान् प्रताप वाला वीर कृतवीर्य नामक एक नृप से होगा ।।६, ७।।

समस्तद्वीपमखिलं पालयिष्यति भूतलम् ।
यावद्वर्षसहस्राणि सप्तसप्तति नारद ! ।।८
जातमात्रञ्च तस्यापि यावत् पुत्रशतं तथा ।
च्यवनस्यतु शापेन विनाशमुपयास्यति ।।६
सहस्रबाहुश्च यदा भविता तस्यवं सुतः ।

कुरङ्गनयनः श्रीमान् सम्भृतो नृपलक्षणः ॥१०
कृतवीर्य्यस्तदाराध्य सहस्रांशुं दिवाकरम् ।
उपवासैर्व्रतैर्दिव्यैर्वेदसूक्तैश्च नारद ! ।
पुत्रस्य जीवनायालमेतत्स्नानमवाप्स्यति ॥११
कृतवीर्य्येण वै पृष्ट इद वक्ष्यति भास्करः ।
अशेषदुष्टशमन सदा कल्मषनाशनम् ॥१२
अल क्लेशेन महता पुत्रस्तव नराधिप ! ।
भविष्यति चिरञ्जीवी किन्तु कल्मषनाशनम् ॥१३
सप्तमी स्नपन वक्ष्ये सर्वलोकहिताय वै ।
जातस्य मृतवत्साया सप्तमे मासि नारद ! ।
अथवा शुक्लसप्तम्यामेतत् सर्वं प्रशस्यते ॥१४

वह राजा सातों द्वीपों के सहित समस्त भूतल का परिपालन करेगा । हे नारद ! सतत्तर सहस्र वर्ष पर्यन्त वह पालन करेगा ॥८॥ उसके भी उत्पन्न मात्र हुए एक सौ पुत्र सबके सब च्यवन के शाप से विनाश को प्राप्त हो जावेंगे ॥९॥ जिस समय में उसका पुत्र सहस्रबाहु होगा जो मृग के समान सुन्दर नेत्रों वाला—श्री से सम्पन्न और सम्पूर्ण नृप के लक्षणों से युक्त होगा ॥१०॥ उस समय में राजा कृतवीर्य सहस्रांशु भगवान् दिवाकर की आराधना करके जो कि उपवास-व्रत-और हे नारद ! दिव्य वेदों के सूक्तों के द्वारा की गयी थी-पुत्र के जीवन के लिए यह पर्याप्त स्नान प्राप्त करेगा ॥११ । राजा कृतवीर्य के द्वारा पूँछे गये भास्कर प्रभु इस व्रत को उसे बतलायेंगे । यह व्रत सम्पूर्ण कल्मषों का नाश करने वाला और अशेष दुष्टों का भी शमन करने वाला है ॥१२॥ भगवान् भुवन भास्कर ने कहा था—हे नराधिप ! अब आप यह महान् क्लेश मत करो आपका पुत्र चिरञ्जीवी होगा किन्तु कल्मषों के नाश करने वाला सप्तमी स्नपयन करना होगा जिसको कि मैं सब लोगों के हित सम्पादन के लिये अभी बतला दूंगा । हेनारद ! मृतवत्सा स्त्री से समुत्पन्न

होने वाले के सातवें मास में अथवा शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि में यह सब प्रशस्त होता ॥१३, १४॥

ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।
बालस्य जन्मनक्षत्रं वर्जयित्वा तिथि बुधः ।
तद्वद्वृद्धेतराणाञ्च कृत्यम्यादितरेषु च ॥१५
गोमयेनानुलिप्तायां भूमावेकाग्निवत्तदा ।
तण्डुलैरक्तशालीयैश्चरुमगोक्षीरसंयुतम् ॥
निर्वपेत् सूर्य्यरुद्राभ्यां तन्मन्त्राभ्यां विधानतः ॥१६
कीर्त्तयेत् सूर्य्यदैवत्य सप्तर्चि च घृताहुतौ ।
जुहुयाद्रुद्रसूक्तेन तद्वद्रुद्राय नारद ! ॥१७
होतव्याः समिधश्चात्र तथैवार्कपलाशयोः ।
यवकृष्णतिलहोमः कर्त्तव्योऽष्टशतं पुनः ॥१८
व्याहृतीभिस्तथाज्येन तथैवाष्टशतं पुनः ।
हुत्वा स्नानञ्च कर्त्तव्यं मङ्गलं पञ्च शोभनम् ॥१९
विप्रेण वेदविदुषा विधिवद्दर्भपाणिना ।
स्थापयित्वा तु चतुरः कुम्भान्कोणेषु शोभनान् ।२०

यहाँ के तथा ताराओं के बल को प्राप्त करके अर्थात् जब सब ग्रह और तारा अपने अनुकूल शुभ हों ऐसे समय में ब्राह्मण वाचन करावे। बुध पुरुष को चाहिए कि बालक के जन्म का नक्षत्र और उस तिथि को वर्जित कर देवे। इसी भाँति जो वृद्धों से इतर अर्थात् युवा हैं उनका और इतरों का भी कृत्य होता है ॥१५॥ गोमय से अनुलिप्त भूमि में एकाग्नि के समान उस समय में रक्त शालीय तण्डुलों से गो के क्षीर से संयुत चरु का सूर्य रुद्र के उन मन्त्रों से विधान पूर्वक निर्वपन करना चाहिए ॥१६॥ सूर्यदैवत्य का कीर्त्तन करे तथा सप्तर्चि की घृत की आहुतियों के द्वारा हवन करना चाहिए। हे नारद ! उसी प्रकार से रुद्र के लिए रुद्रसूक्त से हवन करे। १७॥ उसी प्रकार से अर्क (आक) और पलाश (ढाक) की समिधाओं का हवन करना चाहिए। फिर यव और काले तिल

से अष्टोत्तर शत होम करना चाहिए ॥१८॥ तथा आज्य (घृत) के द्वारा व्याहृतियों से एक सौ आठ बार पुनः हवन करके मङ्गल स्नान करना चाहिए। वेदों के विद्वान् धीमान् दर्भ हाथ में रखने वाले विप्र के द्वारा चार परम शोभन कुम्भों को कोणों में स्थापित कराकर विधि को सुसम्पन्न करे ॥१६, २०॥

पञ्चमञ्च पुनर्मध्ये दध्यक्षतविभूषितम् ।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं सप्तर्चेनाभिमन्त्रितम् ॥२१
सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णं रत्नसमन्वितम् ।
सर्वान्सर्वौषधैर्युक्तान् पञ्चगव्यसमन्वितान् ॥
पञ्चरत्नफलैः पुष्पैर्वासोभिः परिवेष्टयेत् ॥२२॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ।
सशुद्धां मृदमानीय सर्वेष्वेव विनिक्षिपेत् ॥२३
चतुर्ष्वपि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम् ।
गृहीत्वा ब्राह्मणस्तत्र सौरान्मन्त्रानुदीरयेत् ॥२४
नारीभिः सप्तसङ्ख्याभिरव्यङ्गाङ्गीभिरत्र च ।
पूजिताभिर्यथाशक्तया माल्यवस्त्रविभूषणैः ॥
सविप्राभिश्च कर्त्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम् ॥२५
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवत्पुत्राच भामिनी ।
आदित्यश्चन्द्रमा सार्द्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलैः ॥२६
सशक्रा लोकपाला वै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
एते चान्येच देवौघाः सदापान्तुकुमारकम् ॥२७
मित्रोशनिर्वा हुतभुक् ये च बालग्रहाः क्वचित् ।
पीडा कुर्वन्तु बालस्यमामातुर्जनकस्यवै ॥२८

फिर मध्य में पाँचवें कुम्भ को दधि-अक्षत से विभूषित करके बिना व्रण वाले कुम्भ को सात ऋचाओं से अभिमन्त्रित करके स्थापित करना चाहिए ॥२१॥ सौर ऋचाओं से अभिमन्त्रित करके तीर्थों के जल से परिपूर्ण करे तथा रत्नों से समन्वित करे। सभी कुम्भों को सर्वौषधि

चरुञ्च पुत्रसहिता प्रणम्य रविशङ्करौ ।।३३
हुतशेष तदाश्नीयादादित्याय नमोऽस्त्विति ।
इदमेवाद्भुतोद्वेगदु स्वप्नेषु प्रशस्यते ।। ३४
कर्तु र्जन्मदिनक्षञ्च त्यक्त्वा संपूजयेत् सदा ।
शान्त्यर्थं शुक्लसप्तम्यामेतत्कुर्वन्न सीदति ।।३५

इसके अनन्तर शुक्ल वस्त्र धारण करने वाली कुमार और पति से समन्वित भक्ति से स्त्रियो के सत्तन का पूजन करे पुनः इसके बाद गुरु का यजन करे ।।२६।। इसके उपरान्त ताम्रपात्र के ऊपर स्थित धर्मराज की सुवर्ण की प्रतिमा को करे और फिर उस गुरुजी के लिये निवेदित कर देना चाहिये । ३०।। वित्त की शठता से रहित होकर अर्थात् धन होते हुए कृपणता न करके उसी भाँति ब्राह्मणों का वस्त्र-सुवर्ण-रत्नो का समूह-भक्ष्य-घृत और पायस से पूजन करना चाहिए। ।।३ ।। भोजन करके गुरु को यह मन्त्रो की सन्तति का उच्चारण करना चाहिए—यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्ष तक सुखी रहे ।।३२।। जो कुछ भी इसका दुरित (प प) हो उसको बडवानल मे क्षिप्त कर दिया जावे ब्रह्मा-रुद्र-वसु-स्कन्द-विष्णु-शक्र-हुताशन ये सब दुष्टों से रक्षा करें और सर्वदा वरदान देने वाले होवें—इस प्रकार के वाक्यो को बोलने वाले गुरु का अभ्यर्चन करे ।।३३।। अपनी शक्ति के अनुसार एक कपिला गौ का दान करे फिर प्रणाम करके गुरु का विसर्जन कर देना चाहिए। पुत्र के सहित रवि और भगवान् शकर को प्रणाम करके उस चरु को जो हुत से शेष बचकर रह गया है उसको—"आदित्याय नमोऽस्तु"—इस मन्त्र के साथ उसी समय मे प्राशन कर लेवे । यह ही अद्भुतोद्वेगदु:स्वप्नो म प्रशस्त माना जाता है ।। ३४ ।। कर्त्ता का जन्म दिन और नक्षत्र का त्याग करके सदा ही पूजन करे ।- मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी मे शान्ति के लिय करता हुआ मानव कभी दु खित नहीं होता ।।

सदनेन विधानेन दीर्घायुरभवन्नर ।
सम्वत्सराणा प्रयुत शशास पृथिवीमिमाम् ॥३६
पुण्य पवित्रमायुष्य सप्तमीस्नपन रवि. ।
कथयित्वा द्विजश्रेष्ठ ! तत्रैवान्तरधीयत ॥३७
एतत् सर्वं समाख्यात सप्तमीस्नानमुत्तमम् ।
सर्वदुष्टोपशमन बालाना परम हितम् ॥३८
आरोग्य भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात् ।
ईश्वराज्ज्ञानमिच्छेच्च मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥३९
एतन्महापातकनाशन स्य त्पर हित बालविवर्द्धनञ्च ।
शृणोति यश्चनमन यचेत,स्तस्यापि सिद्धि मुनयो वदन्ति॥४०

इसी विधान से मनुष्य दीर्घायु हुआ है एक प्रयुत सम्वत्सरो तक इस पृथ्वी का शासन किया था ॥ ३६ ॥ भगवान् रविदेव इस परम पुण्यमय-महान् पवित्र और आयु की वृद्धि करने वाले सप्तमी स्नपन नामक व्रत को कहकर हे द्विज श्रेष्ठ ! वहीं पर अन्तर्हित होगये थे ॥ ३७ ॥ यह सब उत्तम सप्तमी स्नपन वर्णित कर दिया गया है जो सब दुष्टों के उपशमन करने वाला तथा बालों का परम हितप्रद है ॥ ३८ ॥ आरोग्य भास्कर देव से चाहे और यदि धन की इच्छा करे तो हुताशन देव से करे । ईश्वर से ज्ञान की इच्छा करनी चाहिए तथा जनार्दन प्रभु से मोक्ष की इच्छा करे ॥ ३९ ॥ यह सप्तमी स्नपन महान् पातकों का नाश करने वाला है और परम हितकर तथा बालों का विशेष वर्धन करने वाला है । जो कोई अनन्य चित्त वाला होकर इसका श्रवण करता है उसको भी सिद्ध होती है—ऐसा मुनिगण कहा करते हैं ॥ ४० ॥

४०—भीमद्वादशी व्रत कथन

पुरा रथन्तरे कल्पे परिपृष्टो महात्मनः ।
मन्दरस्थो महादेवः पिनाकी ब्रह्मणा स्वयम् ॥१
कथमारोग्यमैश्वर्यमनन्तममरेश्वर ! ।
स्वल्पेन तपसा देव ! भवेन्मोक्षोऽथवा नृणाम् ॥२
किमज्ञातं महादेव ! त्वत्प्रसादादधोक्षज ! ।
स्वल्पकेनाथ तपसा महत्फलमिहोच्यताम् ॥३
एवं पृष्टः स विश्वात्मा ब्रह्मणो लोकभावनः ।
उमापतिरुवाचेदं मनसः प्रीतिकारकम् ॥४
अस्माद्रथन्तरात्कल्पात् त्रयोविंशात्पुनर्यदा ।
वाराहो भविता कल्पस्तस्य मन्वन्तरे शुभे ॥५
वैवस्वताख्ये सञ्जाते सप्तमे सप्तलोककृत् ।
द्वापराख्यं युगं तद्वदष्टाविंशतिमञ्जगु ॥६
तस्यान्ते स महादेवो वासुदेवो जनार्दनः ।
भारावतरणार्थाय त्रिधा विष्णुर्भविष्यति ॥७

मत्स्य भगवान् ने कहा—प्राचीन काल में रथन्तर नाम वाले कल्प में महान् आत्मा वाले ब्रह्माजी के द्वारा मन्दराचल में समवस्थित पिनाकधारी महादेवजी से स्वयं पूछा गया था ।१। ब्रह्माजी ने कहा था—हे अमरेश्वर हे देव ! अनन्त ऐश्वर्य और आरोग्य कैसे हुआ करता है जो कि अत्यन्त स्वल्प तप से ही हो सकता हो अथवा मनुष्यों का आवागमन से छुटकारा मोक्ष किस प्रकार से होता है ? हे महादेव ! हे अधोक्षज ! आपका जब प्रसाद हो जावे तो फिर क्या कुछ अज्ञात रह सकता है ? अर्थात् आपके प्रसाद से तो सभी का ज्ञान हो जाया करता है । अत्यन्त स्वल्पतपश्चर्या से महान् फल का वर्णन अब आप कीजिए ।।२। ३।। मत्स्य प्रभु ने कहा—इस प्रकार से ब्रह्माजी के द्वारा वह विश्वात्मा पूछे गये थे

तो लोक भावन उमापति ने मनकी प्रीति को करने वाला यह वचन कहा था ।।४।। ईश्वर ने कहा था—जिस समय में इसके मनन्तर इस तेईसवें रथन्तर कल्प से वाराह कल्प होगा। उसके परम शुभ मन्वन्तर में सप्तम वैवस्वत नाम वाले के समुत्पन्न होने पर सप्तलोक कृत द्वापर नामक युग होगा जिसको अट्ठाईसवां कहते हैं ।।५।६।। उसके अन्त में यह महादेव वासुदेव जनार्दन भार को अवतारण करने के लिये विष्णु के तीन प्रकार के स्वरूप होंगे ।।७।।

> द्वैपायन ऋषिस्तद्वद्रौहिणेयोऽथ केशव ।
> कंसादिदर्पमथनः केशवः क्लेशनाशनः ।।८
> पुरी द्वारवती नाम साम्प्रतं या कुशस्थली ।
> दिव्यानुभावसंयुक्तामधिवासाय शार्ङ्गिणः ।।
> त्वष्टा ममाज्ञया तद्वत् करिष्यति जगत्पते ।।९।।
> तस्यां कदाचिदासीनः सभायाममितद्युतिः ।
> भार्याभिर्वृष्णिभिश्चैव भूभृद्भिर्भूरिदक्षिणैः ।।१०
> कुरुभिर्देवगन्धर्वैरभितः कैटभार्दनः ।
> प्रवृत्तासु पुराणासु धर्मसम्बन्धिनीषु च ।।११
> कथान्ते भीमसेनेन परिपृष्टः प्रतापवान् ।
> त्वया पृष्टस्य धर्मस्य रहस्यस्यास्य भेदकृत् ।।१२
> भविता स तदा ब्रह्मन् ! कर्ता चैव वृकोदर ।
> प्रवक्ता चास्य धर्मस्य पाण्डुपुत्रो महाबलः ।।१३
> यस्य तीक्ष्णो वृकोनाम जठरे हव्यवाहनः ।
> मया दत्तः स धर्मात्मा तेनासौ वृकोदरः ।।१४

इसी भाँति से द्वैपायन ऋषि—रौहिणेय केशव और कंस आदि दुष्टों के दर्प का मन्थन कर देने वाले क्लेश के नाश करने वाले केशव होंगे ।।८।। इस समय में द्वारवती नाम वाली पुरी जो कुशस्थली है उसको जो दिव्य अनुभाव से संयुत है मेरी ही आज्ञा से त्वष्टा विश्वकर्मा

भगवान् शार्ङ्गी के अधिवास करने के लिये वो इस सम्पूर्ण जगत् का पति है उसी प्रकार से निर्मित करेगा ॥९॥ उस द्वारावती पुरी मे किसी समय मे सभा मे विराजमान अमित द्युति वाले भार्याओं से—वृष्णि गणों से—भूरिदा क्षीण वाले भूभृतो से—कुरु गणो से—देवो से ओर गन्धर्वो से चारो ओर से कैटभार्दन प्रभु घिरे हुए थे। उसी समय मे धर्म की बढाने वाली पुराणो की कथाऐं प्रवृत्त हो रही थी ॥१०॥११॥ जब कथा का अन्त हो गया तो भीमसेन ने प्रतापवान् प्रभु से पूछा था। आपके द्वारा पूछे गये इस धर्म के रहस्य का भेदकृत हे ब्रह्मन्! उस समय मे वृकोदर ही कर्त्ता होगा। इस धर्म का प्रवर्त्तक महान् बलवान् पाण्ड पुत्र ही है। जिसके जठर मे परम तीक्ष्ण वृक नाम वाला हव्यवाहन है। मेरे ही द्वारा वह धर्मात्मा दिया गया है इसी से वह वृकोदर नाम से कहा जाया करता है ॥१२॥१३॥१४॥

मांसमन्दानशीलश्च नागायुतबलोमहान् ।
भविष्यत्यरजाः श्रीमान् कन्दर्प इव रूपवान् ॥१५
धार्मिकस्याप्यशक्तस्य तीव्राग्नित्वादुपोषणे ।
इद व्रतमशेषाणा व्रतानामधिकं यतः ॥१६
कथयिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो जगद्गुरुः ।
अशेषयज्ञफलदमशेषाघविनाशनम् ॥१७
अशेषदुष्टशमनमशेषसुरपूजितम् ।
पवित्राणां पवित्रञ्च मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् ।
भविष्यञ्च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम् ॥१८
यद्यष्टमी चतुर्दश्योर्द्वादशीष्वथ भारत ! ।
अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम् ॥१९
ततः पुण्यान्तिथिमिमां सर्वपापप्रणाशनीम् ।
उपोष्यविधिनानेन गच्छविष्णोः परम्पदम् ॥२०
माघमासस्य दशमी यदा शुक्ला भवेत्तदा ।

घृतेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत् ।।२१

मतिमान्—दान देने के शील स्वभाव वाला और एक अयुत नागों के बल से सुसम्पन्न महान्—श्रीमान् और कन्दर्प के तुल्य रूप लावण्य से परिपूर्ण अरजा होगा ।। १५ ।। परम धार्मिक था तो भी तीव्राग्नि के होने के कारण से उपोषण करने में असक्त था । इसके लिये ही यह व्रत कहा गया है जो कि अशेष अन्य व्रतों से यह अधिक है ।।१६।। इस जगत् के गुरु विश्व की आत्मा भगवान् वासुदेव कहे गये हैं । यह अशेष यज्ञों के फलों का प्रदान करने वाला और समस्त प्रकार के अघों का विनाश कर देने वाला है ।।१७।। सब दुष्टों के शमन करने वाला और समस्त सुरगण के द्वारा समर्पित है । सभी पवित्रों में यह महा पवित्र है और सब मङ्गलों में महान् मङ्गल स्वरूप है भविष्यों का भविष्य और पुराणों में परम पुरातन है ।।१८।। भगवान् वासुदेव ने कहा था—हे भारत ! यदि अष्टमी, चतुर्दशी और द्वादशी इनमें तथा अन्य दिनों और नक्षत्रों में भी किसी में भी आप उपवास करने में समर्थ नहीं हैं ।।१९।। तो परम पुण्यमयी और सब पापों का विनाश करने वाली इस तिथि का इस विधान से उपवास करो जिससे विष्णु के परम पद को चले जाओ । ।।२०।। माघ मास की दशमी तिथि जिस समय में शुक्ल पक्ष में हो उस समय में घृत से अभ्यञ्जन करके तिलों से स्नान का समाचरण करना चाहिए ।२१।

तथैव विष्णुमभ्यर्च्य नमोनारायणेति च ।
कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः सर्वात्मनेनम ।।२२
वकुण्ठायेति वकुण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे ।
शङ्खिने चक्रिणे तद्वद् गदिने वरदाय व ।।
सर्वं नारायणस्यांत सम्पूज्या वाहुवं क्रमात् ।।२३
दामोदरायेत्युदरं मेढ्रं पञ्चशराय वै ।
ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुनी भूतधारिणे ।।२४

नमो नीलायवैजदेपादौ विश्वसृजे नमः ।
नतो देव्यै नमः शान्त्यै नमोलक्ष्म्यैनम श्रियै ॥ ५
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै घृष्ट्यै हृष्ट्यै: नमोनमः ।
नमो विहङ्गनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे ॥
विषप्रमाथिने नित्य गरुड्ञ्चाभिपूजयेत् ॥२६
एव सपूज्य गोविन्द उमापतिविनायकौ ।
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैभक्ष्यैर्नानाविधैरपि ॥२७
गव्येन पयसा सिद्धङ्कुसरामथ वाग्यतः ।
सर्पिषा सह भुक्तवा च गत्वाशतपद बुधः ॥२८

उसी भांति "नमो नारायण"—इस मन्त्र के द्वारा भगवान् विष्णु का अभ्यर्चन करना चाहिए । श्रीकृष्ण के लिए नमस्कार है—इससे कृष्ण के चरणो का अच्छी तरह पूजन करके "सर्वात्मने नमः" —इससे शिर का यजन करे । "वैकुण्ठाय नम."—इससे वैकुण्ठ का तथा "श्री वत्स धारिणे नमः"—इससे उरः स्थलका पूजन करे । "शङ्खिने नमः— चक्रिणे नमः—गदिने नम.—वरदाय नमः"—इन चार मन्त्रों के द्वारा नारायण की सब बाहुओं का भली भांति क्रमसे पू न करना च हिए । ॥२२।२३॥ "दामोदराय नम."—इससे उदर और "पञ्चशराय नम"—इससे मेढ़ू का पूजन करे । "सौभाग्यनाथाय नम"—इससे दोनो ऊरुओं का और "भूतधारिणे नम"—इस मन्त्र का उच्चारण कर दोनों जानुओं का अभ्यर्चन विधि सहित करना चाहिए ॥२४॥ "नीलाभ नमः"

दृष्टि :--इन आठों देवियों का पूजन उक्त मन्त्रों का उच्चारण करके ही करना चाहिए। "विहङ्गनाथाय नमः--वायुवेगाय नमः--वायु वेगाय पक्षिणे नमः--विष प्रमाथिने नमः"--इन मन्त्रों के द्वारा नित्य ही गरुड का पूजन करना चाहिए ॥२५॥२६॥ इस तरह से श्री गोविन्द प्रभु का पूजन करके उमापति और विनायक का पूजन करे। गन्ध-माल्य-धूप-भक्ष्य जो अनेक प्रकार के हों--गव्य पय से यजन करना चाहिए। फिर तिल कुमरा को मौन रहकर घृत के साथ खाकर बुध पुरुष को सौ कदम भ्रमण करना चाहिए ॥२७॥२८॥

नैयग्रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः।
गृहीत्वा धावयेद्दन्तानाचान्तः प्रागुदङ्मुखः ॥२९
ब्रूयात् सायन्तनी कृत्वा सन्ध्यामस्तमिते रवौ।
नमोनारायणायेति त्वामहं शरणङ्गतः ॥३०
एकादश्यांनिहारःसमभ्य र्यचकेशवम्।
रात्रिञ्चशकलांस्थित्वास्नानञ्चपयसातथा ॥३१
सर्पिषा चापि दहन हुत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः।
सहैव पुण्डरीकाक्ष ! द्वादश्यां क्षीरभाजनम् ॥
करिष्यामि यतात्माऽहं निर्विघ्नेनास्तु तच्च मे ॥३२॥
एवमुक्त्वा स्वपेद्भूमावितिहासकथा पुनः।
श्रुत्वा प्रभाते सञ्जाते नदीगत्वा विशाम्पते ! ॥
स्नान कृत्वा मृदा तद्वत् पाखण्डानभिवर्जयेत् ॥३३॥
उपास्य सन्ध्यांविधिवत् कृत्वा चपितृतर्पणम्।
प्रणम्य च हृषीकेशसप्तलोकैकमीश्वरम् ॥३४
गृहस्य पुरतो भक्तया मण्डप कारयेद् बुधः।
दशहस्तमथाष्टौ वा करान् कुर्याद्विशाम्पते ! ॥३५

न्यग्रोध (बड़) का का दन्त काष्ठ (दाँतुन) अथवा खदिर का दाँतुन बुध को ग्रहण करके फिर उससे धावन करे अर्थात् दातुन करे।

फिर आचान्त होकर अर्थात् आचमन करके पूर्व में उत्तर की ओर मुख वाला हो जावे। रवि के अस्ताचलगामी हो जाने पर सायन्तनी सन्ध्योपासना करे और हे नारायण! आपके लिये मेरा नमस्कार है—मैं तो अब आपकी शरणागति में सम्प्राप्त होगया हूं। एकादशी में निराहार रहकर भगवान् केशव का समभ्यर्चन करके तथा सम्पूर्ण रात्रि में स्थित होकर और पय से स्नान और घृत से दहन में हवन करके हे पुण्डरीकाक्ष! श्रेष्ठ ब्राह्मणों के ही साथ द्वादशी में क्षीर का भोजन करूंगा। मैं यतात्मा होकर ही इसको करूंगा और वह मेरे लिए निर्विघ्नता के साथ हो जावे—यह इस प्रकार से कहकर रात्रि में भूमिपर सो जावे। हे विश्वाम्पते! इतिहास की कथा का श्रवण कर फिर प्रभात के हो जाने पर नदी पर जाकर स्नान करके मृत्तिका से तद्वत् पाखण्डों का अभिवर्जन कर देवे ॥ २६॥ ३०॥ ३१॥ ३२॥ ३३॥ विधिपूर्वक सन्ध्या की उपासना करके पितृगण का तर्पण करे और फिर सातों लोकों के एक स्वामी भगवान् हृषीकेश को प्रणाम करे। गृह के आगे ही बुध पुरुष को भक्ति की भावना से मण्डप की रचना करानी चाहिए। हे विश्वाम्पते! दश हाथ अथवा आठ हाथ का करना चाहिए। ॥३४।३५॥

चतुर्हस्ता शुभा कुर्याद्वेदीमरिनिषूदन।
चतुर्हस्तप्रमाणञ्च विन्यसेत्तत्र तोरणम् ॥३६
प्रणम्य कलश तत्र माष(प)मात्रेण सयुतम्।
छिद्रेण जलसम्पूर्णमथ कृष्णाजिनस्थितः॥
तस्य धारा च शिरसा धारयेत् सकलान्निशम् ॥३७
तथैव विष्णो शिरसि क्षीरधारां प्रपातयेत्।
अरत्निमात्रं कुण्डञ्च कुर्यात्तत्र त्रिमेखलम्।३८
योनिवक्त्रञ्च तत् कृत्वा ब्राह्मण-पयसर्पिषी।
तिलांश्च विष्णुदैवत्यैर्मन्त्रैरेकाग्निवत्तदा ॥३९

हुत्वा च वैष्णवंसम्यक्चरुं गोक्षीरसंयुतम् ।
निष्पावार्द्धप्रमाणांवेधारामाज्यस्यपातयेत् ॥४०
जलकुम्भान् महावीर्य्य ! स्थापयित्वा त्रयोदश ।
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तान् सितवस्त्रैरलङ्कृतान् ॥४१
युक्तानौदुम्बरैः पात्रैः पञ्चरत्नसमन्वितान् ।
चतुर्भिर्बह्वृचैर्होमस्तत्र कार्य्य उदङ्मुखैः ॥४२
रुद्रजापश्चतुर्भिश्च यजुर्वेदपरायणैः ।
वैष्णवानि तु सामानि चतुरः सामवेदिनः ॥४३
अरिष्टवर्गसहितान्यभितः परिपाठयेत् ॥४४

हे अरिनिषूदन ! चार हाथ प्रमाण वाली परम शुभ वाली परम शुभ वेदी बनावे और चार हाथ प्रमाण वाला तोरण का विन्यास करना चाहिए। वहाँ पर कलश को प्रमाण करके जो माष मात्र से संयुत है और जल से सम्पूर्ण है। कृष्णा जिन पर स्थित होकर छिद्र के द्वारा पूरी रात्रि में उसकी धारा को शिर से धारण करे ॥ ३६, ३७ ॥ उसी तरह से भगवान् विष्णु के शिर पर क्षीर की धारा का प्रपातन करे। वहाँ पर एक अरत्नि मात्र प्रमाण वाला तथा तीन मेखलाओं से समन्वित एक कुण्ड की रचना करनी चाहिए। योनिवक्त्र वाला उसे करके फिर ब्राह्मणों के द्वारा यव-घृत और तिलों का उस समय में एकाग्नि की तरह विष्णु दैवत्य मन्त्रों से हवन करे और सम्यक् वैष्णव चरु बनावे जो गौ के क्षीर से संयुत होवे। निष्पावार्द्ध प्रमाण वाली घृत की धारा का प्रपातन करावे ॥ ३८, ३९, ४० ॥ हे महावीर्य्य ! वहाँ पर तेरह जल के कुम्भों को स्थापित कराकर नाना भाँति के भक्ष्यों से उन्हें संयुत करे और सफेद वस्त्रों से अलंकृत करे। उदुम्बर से निर्मित पात्रों से युक्त तथा पाँचों रत्नों से समन्वित करे, वहाँ पर चार बह्वृचों के द्वारा जिनका मुख उत्तर की ओर हो होम करना चाहिए। चारों के द्वारा रुद्र का जाप करावे जो कि यजुर्वेद के परायण हों। वैष्णव सामों का चार

सामवेदी करे। अरिष्ट एवं मांदृश मन और परिपाठ बनाना चाहिए ४१, ४२, ४३, ४४ ।।

४१—कल्याण सप्तमी व्रत कथन

भगवन् ! भव ! संसारसागरोत्तारकारक ! ।
किञ्चिद्व्रतमाचक्ष्व स्वर्गारोग्यसुखप्रदम् ।।१
सौरं धर्मं प्रवक्ष्यामि नाम्ना कल्याणसप्तमीम् ।
विशोकसप्तमी तद्वत् फलाढ्यां पापनाशिनीम् ।।२
शर्करासप्तमी पुण्या तथा कमलसप्तमीम् ।
मन्दारसप्तमी तद्वच्छुभदा शुभसप्तमीम् ।।३
सर्वानन्तफला. प्रोक्ताः सर्वा देवविपूजिताः ।
विधानमासां वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।।४
यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् ।
सा तु कल्याणिनी नाम विजया च निगद्यते ।।५
प्रातर्गव्येन पयसा स्नानमस्या समाचरेत् ।
ततः शुक्लाम्बरः पद्ममक्षताभि प्रकल्पयेत् ।।६
प्राङ्मुखोऽष्टदल मध्ये तद्वद् वृत्ताञ्च कर्णिकाम् ।
पुष्पाक्षताभिर्देवेश विन्यसेत् सर्वतः क्रमात् ।।७

ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवन् ! हे भव ! आपतो इस संसार रूपी महार्णव से उत्तारण कराने वाले हैं। ऐसा कोई व्रत हमको बतलाइये जो स्वर्ग और आरोग्य तथा सब प्रकार का सुख प्रदान करने वाला हो ।।१।। ईश्वर ने कहा—अब मैं सौर (सूर्य से सम्बन्धित) धर्म को बतलाता हू जो नाम से कल्याण सप्तमी व्रत कहा जाया करता है उसी प्रकार से विशोक सप्तमी भी होती है जो फलों से आढ्य है और समस्त पापों का नाश कर देने वाली होती है ।।२।। उसी भाँति परम पुण्यमयी शर्करा

सप्तमी होती है और कमल सप्तमी भी हुआ करती है तथा इसी भाँति मन्दार सप्तमी और शुभों का प्रदान करने वाली शुभ सप्तमी भी होती है ॥३॥ ये सभी सप्तमियाँ अनन्त फलों वाली होती हैं—ऐसा ही कहा गया है। सभी देवर्षियों के द्वारा पूजित हैं। अब हम इन समस्त सप्तमियों का विधान बतलाते हैं जो ठीक २ यथावत् और आनुपूर्वी के सहित होगा ॥४॥ जिस समय में मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में आदित्य का दिन होवे वही सप्तमी कल्याण करने वाली विजया नाम भी जिसका कहा जाता है इस सप्तमी के दिन में प्रातःकाल ही में गव्य पय से स्नान करना चाहिए। इसके अनन्तर शुक्ल वस्त्रधारी होकर अक्षतों से पद्म की कल्पना करनी चाहिये ॥ ५, ६ ॥ प्राङ्मुख होकर अष्ट दल वाले कमल के मध्य में उसी भाँति वृत्ताकार कणिका की रचना करे और सब ओर क्रम से पुष्प अक्षतों से देवेश का विन्यास करना चाहिए ॥७॥

पूर्वेण तपनायेति मार्त्तण्डायेति चानले ।
याम्ये दिवाकरायेति विधान इति नैर्ऋते ॥८
पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति चा नले ।
सौम्ये वेकर्तनायेति रवये चाष्टमे दले ॥९
आदावन्तेच मध्येच नमोऽस्तु परमात्मने ।
मन्त्रैरेभि समभ्यर्च्य नमस्कारान्तदीपितैः ॥१०
शुक्लवस्त्रैः फलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनैः ।
स्थण्डिले पूजयेद्भक्त्या गुडेन लवणेन च ॥११
ततो व्याहृतिमन्त्रेण विसर्जद्द्विजपुङ्गवान् ।
शक्तितः पूजयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः ।
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१२
एव नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।
कृतस्नानजपो विप्रै. सहैव घृतपायसम् ॥१३

भुक्तवा च वेदविदुषि विडालव्रतवर्जिते ।
घृतपात्रं सकनकं सोदकुम्भं निवेदयेत् ॥१४
प्रीयतामत्र भगवान् परमात्मा दिवाकरः ।
अनेन विधिना सर्वं मासिमासि व्रतचरेत् ॥१५

पूर्व दिशा मे 'तपनाय नमः'—इस मन्त्र से अग्निकोण में 'मार्त्तण्डाय नमः'—इससे—याम्य दिशा मे 'दिवाकराय नमः'—इससे—नैर्ऋत्य मे 'विधात्रे नमः'—इससे पश्चिम में 'वरुणाय नमः'—इस मन्त्र से—अनिल दिशा मे 'भास्कराय नमः'—इससे सौम्य दिशा में 'वैकर्त नमः' इससे 'रवये नमः'—इससे अष्टम दल मे पूजन करे ॥८, ६॥ आदि में और अन्त मे "परमात्मने नमोऽस्तु" इस मन्त्र से समभ्यर्चन करे। इन उपर्युक्त मन्त्रो से समभ्यर्चन करके जो अन्त में नमस्कार से दीपित होते हैं फिर शुक्ल वस्त्रो के द्वारा फल–भक्ष्य–धूप–माल्य और अनुलेपनो से गुड और लवण से भक्तिभाव के साथ स्थण्डिल में पूजन करना चाहिए ॥१०, ११॥ इसके अनन्तर व्याहृति मन्त्र से द्विजश्रेष्ठों का विसर्जन करे। शक्ति से भरसक पूर्णतया भक्ति पूर्वक गुड–क्षीर और घृत आदि पदार्थों के द्वारा अर्चन करे। तिलो से परिपूर्ण पात्र और सुवर्ण ब्राह्मण की सेवा मे निवेदित करना चाहिए ॥ २॥ इस प्रकार से नियमो को करने वाला पुरुष शयन करके प्रातः काल की बेला मे उठकर खड़ा हो जावे। स्नान और जाप करके विप्रो के हो साथ ही घृत और पायस का भोजन करे। वेदो का विद्वान् हो और विडाल व्रत से रहित हो ऐसे किसी योग्य ब्राह्मण को सुवर्ण के सहित घृत का पात्र अर्थात् घृत से भरा हुआ पात्र और जल से युक्त कुम्भ निवेदित करे। उस समय मे यह कहे कि यहा पर भगवान् परमात्मा प्रसन्न होवें। इसी विधान से सब मास-मास मे इस व्रत का समाचरण करना चाहिये ॥१३, १४, १५॥

विशोकसप्तमी तद्वद्वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव ! ।
यामुपोष्य नरः शोकं न कदाचिदिहाश्नुते ॥१६

ही द्वारा शोक से रहित रहता है—यह प्रार्थना करे। फिर यह भी निवेदन करे कि उसी प्रकार से मेरी भी विशोकता होवे अर्थात् मैं भी शोक से बिल्कुल रहित हो जाऊँ और प्रत्येक जन्म में आपके चरणों में मेरी सुदृढ़ भक्ति भी होवे ॥१६॥ इस प्रकार से षष्ठी तिथि में पूजन करके फिर भक्ति पूर्वक द्विजगणों का अभ्यर्चन करे। गोमूत्र का प्राशन करके शयन करे और उठकर नैत्यिक कृत्य का सम्पादन करे ॥२०॥ विप्रों का अन्न से भली भाँति पूजन करके फिर गुड़ पात्र से संयुक्त ही वस्त्र और वह पद्म ब्राह्मण की सेवा में निवेदित कर देना चाहिए। ॥२१॥ सप्तमी में तेल और लवण से रहित भोजन करके मौन व्रत से संयुत रहे फिर भूति की इच्छा रखने वाले को पुराणों का श्रवण करना चाहिए ॥२२॥ इसी विधि से दोनों पक्षों में सब करे जब तक माघ शुक्ल पक्ष की सप्तमी पुनः आवे करता रहे ॥२३॥

४२—विशोक द्वादशी व्रत कथन

किमभीष्टवियोगशोकसंघादलमुद्धर्तुमुपोषणं व्रतं वा।
विभवोद्भवकारि भूतलेऽस्मिन् भवभीतेरपि सूदनञ्च पुंसः ॥१
परिपृष्टमिदं जगत् प्रियन्ते विबुधानामपि दुर्लभं महत्त्वात्।
तव भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये व्रतमिन्द्रासुरमानवेषु गुह्यम् ॥२
पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम्।
दशम्यां लघुभुग्विद्वानारभेन्नियमेनतु ॥३
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम्।
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्यानुपूर्वकम् ॥
भिय वाऽभ्यर्च्य विधिवद्भोक्ष्यामि स्वपरेऽहनि। ४॥
एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः।

स्नानं सर्वौषधैः कुर्यात्पञ्चगव्यजलेन तु ॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः पूजयेच्छ्रीशमुत्पलैः ॥५॥
विशोकाय नमः पादौ जंघे च वरदाय वै ।
श्रीशाय जानुनी तद्वदूरू च जलशायिने ॥६॥
कन्दर्पाय नमो गुह्यं माधवाय नमः कटिम् ।
दामोदरायेत्युदरम्पार्श्वे च विपुलाय वै ॥७

मनु महाराज ने कहा—हे भगवन् ! क्या कोई भूमण्डल में ऐसा व्रत और उपवास है जो अभीष्ट की सिद्धि करने वाला हो और विशोक तथा शोक के सघात से उद्धार करने के लिये समर्थ हो तथा वैभव के उद्भव को करने वाला हो तथा पुरुष के हृदय में जो एक इस प्रकार का भय छुपा हुआ है उसको नष्ट कर देने वाला भी हो ? ॥१॥ मत्स्य भगवान् ने कहा आप का यह पूछना पूर्ण जगत् के लिये प्रिय है और महत्व की दृष्टि से यह देवों के लिये भी परम दुर्लभ है। यह व्रत तो ऐसा ही सब कुछ कर देने वाला है और इन्द्र-असुर और मानवों में अति गोपनीय है तो भी क्योंकि आप भक्तिमान् हैं इसी लिये बता रहा हूं। ॥२॥ मार्गशीर्ष मास में परम पुण्यतम यह विशोक द्वादशी का व्रत होता है। दशमी तिथि में विद्वान् पुरुष अल्प लघु भोजन करे और फिर नियम पूर्वक इसका समारम्भ कर देना चाहिए ॥३॥ उत्तर की ओर मुख वाला या पूर्व दिशा की तरफ मुख वाला होकर दन्तधावन आदि दैनिक कृत्य को पहिले करते हुए एकादशी में निराहार रहकर पूर्व में समभ्यर्चन करना चाहिए ॥४॥ पहिले विधि पूर्वक श्री का पूजन करके दूसरे दिन में भोजन करूँगा—ऐसे नियम का संकल्प करके शयन करे और प्रभात में उठकर साधक मानव को सर्वौषधियों से मिश्रित जल से और पञ्च गव्य के जल से स्नान करना चाहिए। फिर श्वेत पुष्प दाम धारी होकर उत्पलों से श्रीश प्रभु का यजन करना चाहिए ॥५॥ 'विशोकाय नमः'—इससे चरणों का 'वरदाय नमः' इससे दोनों जांघों का पूजन

करे। "श्रीशाय नमः" इससे जानुओं का, 'जलशायिने नमः' इससे चरणों का पूजन करे ।।६।। 'कन्दर्पाय नमः' इस मन्त्र से गुह्य का तथा 'माधवाय नमः'—इसका उच्चारण कर कटिका पूजन करना चाहिए। 'दामोदराय' इससे उदर का और 'विपुलाय नमः' इससे दोनों पार्श्वों का अर्चन करे ।।७।।

नाभिञ्च पद्मनाभाय हृदयं मनन्थाय व ।
श्रीधराय विभोर्वक्षः करौ मधुजिते नमः ।।८
चक्रिणे वामबाहुञ्च दक्षिणङ्गदिने नमः ।
वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै ।।९
नासामशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी ।
ललाटं वामनायेति हरयेति पुनर्भ्रुवौ ।।१०
अलकान् माधवायेति किरीटं विश्वरूपिणे ।
ततस्तु मण्डपं कृत्वा स्थण्डिलकारयेन्मृदा ।।१२
चतुरस्रं समन्ताच्च रत्निमात्रमुदक्प्लवम् ।
[illegible] ।।१३

द्वारा इस भाँति गोविन्द का भली भाँति पूजन करके फिर इसके उपरान्त मण्डल का निर्माण कराकर मूत्ति का से स्थण्डिल की रचना करनी चाहिए ॥ १२ ॥ सभी ओर से चौकोर और रत्निमात्र उदक्प्लव वाला-श्लक्ष्ण-दृढ़ (मनोहर) दोनों ओर विप्रत्रय से समावृत बनाना चाहिए ॥१३॥

> लङ्गु लेनोच्छ्रृता विप्रास्तद्विस्तारस्तु द्वयङ्गुल. ।
> स्थण्डिलस्योपरिष्टाच्च भित्तिरष्टाङ्गुला भवेत् ॥१४
> नदीवालुकयाशूर्पेलक्ष्म्या प्रतिकृतिन्यसेत् ।
> स्थण्डिलेशूर्पमारोप्यलक्ष्मीमित्यर्चयेद्बुधः ॥१५
> नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमोलक्ष्म्यै नम.श्रियै ।
> नम.पुष्ट्यैनमस्तुष्ट्यैवृष्ट्यैहृष्ट्यैनमोनम ॥१६
> विशोकादुःखनाशायविशोकावरदास्तु मे ।
> विशोकाचास्तुसम्पत्यै विशोकासर्वसिद्धये ॥१७

एक अंगुल विप्र समुच्छ्रृत हो और उसका विस्तार दो अंगुल का होना चाहिए। स्थण्डिल के ऊपर जो भित्ति हो वह आठ अंगुल प्रमाण वाली रहनी चाहिये ॥१४॥ नदी की बालुका से निर्मित हुई लक्ष्मी की प्रतिकृति का न्यास शूर्प में करे। फिर उस स्थण्डिल में शूर्प का आरोप करके बुध पुरुष को इस तरह लक्ष्मी का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥१५॥ अर्चना के समय में उच्चारण किये जाने वाले मन्त्र ये हैं—"देव्यै नमः, शान्त्यै नमः लक्ष्म्यै नमः", श्रियै नमः, पुष्ट्यै नमः, तुष्ट्यै नमः, हृष्ट्यै नमः, । हे देवि ! आप दुःखों का नाश करने के लिये विगत शोक वाली हैं। प्रार्थना है कि मुझ पर भी आप वर विशोका हो जावें। सम्पत्ति के लिये विशोका होवें और सब प्रकार की सिद्धि के लिये भी विशोका हो जावें ॥१६, १७॥

४३—ग्रह शान्ति वर्णनम्

वैशम्पायनमासीनमपृच्छच्छौनकः पुरा ।
सर्वकामाप्तयेनित्यकथंशान्तिकपौष्टिकम् ॥१
श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत् ।
वृध्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन् पुनः ॥
येन ब्रह्मन् ! विधानेन तन्मे निगदतः शृणु ॥२॥
सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्यसंक्षिप्यग्रन्थविस्तरम् ।
ग्रहशान्तिप्रवक्ष्यामिपुराणश्रुतिनोदिताम् ॥३
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।
ग्रहान्ग्रहादिदेवाश्चस्थाप्यहोमं समारभेत् ॥४
ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्रोक्तः पुराणश्रुतिकोविदैः ।
प्रथमोऽयुतहोम स्याल्लक्षहोमस्ततःपरम् ॥५
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः ।
अयुतेनाहुतीनाञ्च नवग्रहमखः स्मृतः । ६
तस्य तावद्विधिं वक्ष्येपुराणश्रुतिभाषितम् ।
गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम् ॥७

महामहिम श्री सूतजी ने कहा—पुरातन समय में एक स्थल पर समासीन वैशम्पायन मुनि से शौनक जी ने पूछा था कि समस्त कामनाओं की प्राप्ति के लिये नित्य ही शान्तिक और पौष्टिक कैसे होगा अर्थात् इसका साधन किस प्रकार से किया जा सकता है—यह बतलाइये ॥१॥ भगवान् वैशम्पायन जी ने कहा—श्री की कामना करने वाला कोई पुरुष हो या शान्ति की इच्छा रखने वाला कोई होवे उन दोनों ही प्रकार के पुरुषों को ग्रह यज्ञ करने का समारम्भ कर देना चाहिए। वृद्धि—आयु तथा पुष्टि की कामना वाला हो तथा कोई अभिचार के करने की इच्छा वाला हो उसको भी वैसा ही करना चाहिये। हे ब्रह्मन् ! जिस विधान

स करना है उसको कथन करते मुझसे श्रवण करलो ।।२।। समस्त शास्त्रों का अनुक्रमण करके और ग्रन्थ के विस्तार का संक्षेप करके पुराण और श्रुति के द्वारा कथित ग्रहों की शान्ति को बतलाते हैं।।३।। विप्रों के द्वारा बताये हुए किसी भी पुण्य दिन में ब्राह्मणों का वाचन करके फिर ग्रहों को-ग्रहों के आदि देवों को स्थापित करके होम का समारम्भ कर देना चाहिए ।।४।। पुराणों ने तथा श्रुति मन्त्र मनीषियों ने ग्रहयज्ञ तीन प्रकार का कहा है। प्रथम तो वह है जिस ग्रह यज्ञ में दश सहस्र आहुतियों का होम किया जाता है, द्वितीय वह होता है जिस ग्रह यज्ञ मे एक लाख आहुतियों का होम किया जाता है।।५।। तीसरा जो इस ग्रह यज्ञ का भेद है उसमें एक करोड़ आहुतियों का होम होता है। यह तो समस्त कामनाओं के फलों का प्रदान करने वाला हुआ करता है। जिसमें अयुत सहस्र आहुतियाँ दी जाया करती हैं वह नवग्रह मख के नाम से कहा गया है।।६।। उसकी जो विधि पुराणों के तथा श्रुति के द्वारा भाषित की गयी है उसे ही बतलाऊँगा। जो गर्त हो उसके उत्तर और पूर्व दिशा में दो वितस्ति (बालिश्त के विस्तार वाली वेदी) बनावे ।।७।।

यग्रहोयावृतावेदिं वितस्त्युच्छ्रयसम्मिताम् ।
सस्थापनायदेवानाञ्चतुरस्रामुदङ्मुखाम् ।।८
अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत्सुरान् ।
देवतानातल स्थाप्याविंशतिर्द्वादशाधिका । ९
सूर्य्य सोमस्तथा भौमाबुधजीवसितार्कजा ।
राहु केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहा ।।१०
मध्येतु भास्करं विन्द्याल्लोहितं दक्षिणेन तु ।
उत्तरेण गुरुं विन्द्यालद्‌बुधं पूर्वोत्तरेण तु । ११
पूर्वेण भार्गवं विन्द्यात् सोमं दक्षिणपूर्वके ।
पश्चिमेन शनिं विन्द्याद्राहुं पश्चिमदक्षिणे ।।
पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयं च्छुक्लतण्डुल ।।१२।।

भास्करस्येश्वरंविन्द्यादुमाञ्चशशिनस्तथा ।
स्कन्दमङ्गारकस्यापिबुधस्यचतथाहरिम् ॥१३
ब्रह्माणञ्च गुरोर्विन्द्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम् ।
शनैश्चरस्यतुयमं राहोःकाल तथैवच ॥१४
केतोर्वै चित्रगुप्तञ्च सर्वेषामधिदेवताः ।
अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्रीच देवताः ॥१५

उस वेदी को दो वप्रो से आवृत करावे और एक वितस्ति (बिलांद) उच्छ्रय (ऊंचाई) से सम्मत करे। यह देवगणों की सस्थापना करने के लिये ही चौकोर और उत्तर की ओर मुख वाली निर्मित करानी चाहिए ॥८॥ अग्नि देव का प्रणयन करके उसी वेदी में सुरगणो का आवाहन करना चाहिए। वहा पर द्वादश अधिक विंशति अर्थात् बत्तीस देवताओं की स्थापना करनी चाहिए ॥९॥ सूर्य्य-सोम-मङ्गल-बुध-गुरु-शुक्र-शनि-राहु-केतु ये लोको के हित के करने वाले ग्रह कहे गये हैं ॥१०॥ उसमे मध्य भाग मे भगवान् भास्कर की स्थापना करे जो लोहित वर्ण का होवे और दक्षिण दिशा की ओर ही रहना चाहिए। उसके उत्तर की ओर गुरु को स्थापित करे और पूर्वोत्तर में बुध ग्रह को स्थापित करना चाहिये ॥११॥ पूर्व दिशा में शुक्र को तथा दक्षिण पूर्व मे सोम की स्थापना करे। पश्चिम में शनि को तथा पश्चिम दक्षिण मे राहु को स्थापित करे। एवं पश्चिम उत्तर भाग में केतु ग्रह की स्थापना शुक्ल तण्डुलो से करनी चाहिये ॥१२॥ भास्कर ग्रह का अधिदेवता ईश्वर है और चन्द्रमा का उमा है। भौम का स्कन्द अधिदेव होता है एवं बुध का हरि है ॥१३॥ गुरु का अधि देवता ब्रह्मा है तथा शुक्र ग्रह का स्वामी शचिपति इन्द्र है। शनैश्चर का अधिदेव यम और राहु का काल बताया गया है तथा केतु का अधिदेवता चित्रगुप्त है—इस प्रकार से सब ग्रहो के अधि देवता होते हैं। अग्नि—आप (जल)-क्षिति-विष्णु-इन्द्र और ऐन्द्री देवता हैं ॥१४, १५॥

भी तदनुकूल ही होता है। सोम के लिए घृत और पायस समर्पित करे। भौम को संयाव अर्पित करे और बुध के लिए क्षीर षष्टिक दे ॥१९॥ गुरु को दधि और ओदन देवे तथा शुक्र को गुडोदन अर्पित करे। शनि को कृसर राहु और केतु को चित्रोदन देवे। इस प्रकार से सबका जो भक्ष्य पदार्थ है उन्हीं से सबका अर्चन करना चाहिए ॥२०॥

प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम्।
चूतपल्लवसञ्छन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम् ॥२१
पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गसमन्वितम्।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत् ॥२२
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रांश्च सरांसि च।
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद् ह्रदगोकुलात् ॥२३
मृदमानाय्य विप्रेन्द्र! सर्वौषधिजलान्वितम्।
स्नानार्थं विन्यसेत्तत्र यजमानस्य धर्मवित् ॥२४
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि च नदास्तथा।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥२५
एवमावाहयेदेतानमरान् मुनिसत्तम!।
होमं समारभेत् सर्पिर्यवव्रीहितिलादिना ॥२६
अर्कपालाशखदिरापामार्गोऽथपिप्पल।
औदुम्बरशमीदूर्वाकुशाश्चसमिधः क्रमात् ॥२७
एकैकस्याष्टकशतमष्टाविंशतिमेव वा।
होतव्यामधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्विता ॥२८

इसके पूर्व और उत्तर में दधि-अक्षतों से विभूषित-आम के पल्लवों से सछन्न-फल और दो वस्त्रों से समन्वित-पाँच प्रकार के रत्नों से युक्त और पञ्चभङ्ग से संयुत बिना व्रण वाला वरुण देवता के कुम्भ की स्थापना कर विन्यास करना चाहिए ॥२१, २२॥ गङ्गा आदि सभी सरिताएँ—समुद्र और सरों का भी विन्यास करे। गज—अश्व की

शाला—रथ्या (गली)—वल्मीक (साँपकी बामी)—सङ्गम—हृद और गौओं के रहने की भूमि इनसे मृत्तिका का आहरण करे। हे विप्रेन्द्र ! वहां पर धर्म के ज्ञाता पुरुष को यजमान के स्नान के लिये सर्वौषधि और जल से परिपूर्ण कुम्भ का विन्यास भी करना चाहिए ॥२३, २४॥ उस समय में निम्न प्रकार से सम्पूर्ण जलाशयों का आवाहन करे—सभी समुद्र-सरिताऐं-सरोवर और नद यहाँ पर आवें जो यजमान के दुरितों (पाप कर्मों) के क्षय करने वाले हैं ॥ २५ ॥ हे मुनियो मे परम श्रेष्ठ ! इसी प्रकार से इन समस्त देवो का भी वहाँ पर आवाहन करना चाहिए और इसके अनन्तर फिर घृत—यव—व्रीहि और तिल आदि के शाकल्य से होम का आरम्भ करे ॥२६॥ क्रम से समिधाएं भी होवें जो अर्क (आक) पलाश (ढाक) खदिर—अपामार्ग—पीपल—गूलर—शमी (छौंकर)—दूर्वा और कुशा ये होती हैं ॥ २७ ॥ एक-एक के लिये अष्टोत्तर शत (एक सौ आठ) अथवा केवल अट्ठाईस ही आहुतियाँ मधु और घृत से और दधि से समन्वित करके देनी चाहिए अर्थात् हवन करे ॥ २८ ॥

प्रादेशमात्राअशिफा अशाखाअपलाशिनी: ।
समिधःयत्पयेत्प्राज्ञः सर्वकर्म्मसुसर्वदा ॥२९
देवानामपि सर्वेषामुपांशु परमार्थवित् ।
स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण होतव्याः समिधः पृथक् ॥३०
होतव्यं च घृताभ्यक्तं चरु भक्ष्यादिकं पुन. ।
मन्त्रं दंशाहुतीर्हुत्वा होमं व्याहृतिभिस्ततः ॥३१
उदङ्मुखाः प्राङ्मुखावाकुर्युर्ब्राह्मणपुङ्गवाः ।
मन्त्रवन्तश्च कर्त्तव्याश्चरव. प्रतिदैवतम् ॥३२
हुत्वा च तांश्चरून् सम्यक् ततो होमं समाचरेत् ।
आकृष्णेति च सूर्य्याय होमः कार्यो द्विजन्मना ॥३३
आप्यायस्वेतिसोमायमन्त्रेणजुहुयात् पुन: ।

अग्निर्मूर्द्धादिवो मन्त्रइतिभौमायकीर्तयेत् ॥३४
अग्ने ! विवस्वदुषस इति सोमसुताय वै ।
वृहस्पते ! परिदीया रथेनेति गुरोर्मतः ॥३५

सर्वदा सभी कर्म्मों में प्राज्ञ पुरुष को प्रादेश मात्र—अशिका—विनाशाखा वाली और पत्रों से रहित ही समिधाओं की कल्पना करनी चाहिए ॥ २६ ॥ परमार्थ के ज्ञाता पुरुष को सभी देवों के लिये उदाशु होते हुए ही अपने २ उनके मन्त्रों के द्वारा पृथक् २ समिधाओं की आहुतियाँ देनी चाहिए ॥ ३० ॥ चरु और मध्यादि को घृत से मन्थ करके ही हवन करना चाहिए। मन्त्रों के द्वारा द्वादश आहुतियों का हवन करके फिर व्याहृतियों के द्वारा होम करना चाहिए ॥ ३१ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण या तो उत्तर की ओर मुखों वाले रहें या पूर्व की ओर मुख करने वाले होने चाहिए। जो मन्त्रों वाले हैं उनको प्रत्येक देव के चरु करने चाहिए। उन चरुओं का हवन करके भली भाँति होम का समाचरण करे। द्विजन्मा के द्वारा 'आकृष्ण'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा ही सूर्य्य के लिये होम करना चाहिए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ "आप्यायस्व"—इत्यादि मन्त्र से चन्द्रमा के लिए हवन करे। "अग्निमूर्द्धादिवो" इत्यादि मन्त्र भौम के हवन के लिये उच्चरित करे ॥ ३४ ॥ "अग्ने ! विवस्वदुषस" इत्यादि मन्त्र का प्रयोग सोम सुत बुध के लिए करे तथा 'वृहस्पते ! परिदीया रथेन' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग गुरु के लिए माना गया है ॥३५॥

शुक्रन्ते अन्यदित्यच शुक्रस्यापि निगद्यते ।
शनैश्चरायेति पुनः शन्नो देवीति होमयेत् ॥
कयानश्चित्र आभुव इति राहोरुदाहृतः ॥३६॥
केतुं कृण्वन्नपि ब्रूयात् केतूनामपि शान्तये ।
आवो राजेति रुद्रस्य बलिहोमं समाचरेत् ॥
आपोहिष्ठेत्युमायास्तु स्योनेयाति स्वामिनस्तथा ॥३७॥
विष्णोरिद विष्णुरिति तमीशेति स्वयम्भुवः ।

इन्द्रमिद्देवतायेति इन्द्राय जुहुयात्ततः ॥३८
तथा यमस्यचायं गौरिति होमः प्रकीर्तितः ।
कालस्यब्रह्मयज्ञानमिति मन्त्रविदो विदुः ॥३९
चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति मन्त्रविदो विदुः ।
अग्निं दूतं वृणीमह इति वह्नेरुदाहृतः ॥४०
उदुत्तम वरुणमित्यपा मन्त्रः प्रकीर्तितः ।
भूमे पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठ्यते ॥४१
सहस्रशीर्षा पुरुष इति विष्णोरुदाहृतः ॥४२
इन्द्रायेन्दो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते ॥४३

'शुक्रन्ते अन्यद्'—इत्यादि मन्त्र के लिये हवन करने मे बोला जाया करता है। "शन्नोदेवी" इत्यादि मन्त्र का उच्चारण शनिदेव के होम के लिये करना चाहिए और "कयानश्चित्र आभुव"—इत्यादि मन्त्र है राहु के लिए होम बताया गया है। ॥ ३६ ॥ "केतुं कृण्वन्नाय" इत्यादि मन्त्र का उच्चारण केतुओं की शान्ति के लिये करना चाहिए। 'आवोराज' इत्यादि मन्त्र के द्वारा रुद्र का बलि होम समाचरित। 'आपोदिष्ठा'—इत्यादि मन्त्र से उमादेवी का तथा 'स्योन' इत्यादि से स्वामि कार्तिकेय का बलि होम करे ॥ ३७ ॥ "इदंविष्णु" इत्यादि मन्त्र से भगवान् विष्णु का तथा 'तमीशेति' इत्यादि के द्वारा स्वयम्भू का और 'इन्द्रायिदेवताय' इत्यादि से इन्द्रदेव के लिये हवन करना चाहिए ॥ ३८ ॥ यम के लिए 'अयं गौरिति' इत्यादि मन्त्र के द्वारा होम करे—ऐसा कीर्तित किया है। 'कालस्य ब्रह्मय जानम्' इत्यादि को काल के लिये मन्त्रों के वेत्ता लोग जानते हैं। ॥ ३९ ॥ चित्रगुप्त के लिये 'अज्ञातम्' इत्यादि को मन्त्रों के ज्ञाता जानते हैं। 'अग्निदूत वृणीमहे'—इत्यादि को मन्त्र वह्निदेव के लिये बताया गया है ॥ ४० ॥ 'उदुत्तम वरुणम्' इत्यादि अपो का मन्त्र कहा गया है और 'पृथ्व्यन्त रिक्षम्' इत्यादि मन्त्र को भूमि के लिये वेदों मे पढ़ा जाया करता है ॥४१॥ 'सहस्रशीर्षा पुरुष'—इत्यादि मन्त्र भगवान्

विष्णु के लिए कहा गया है और 'इन्द्रामेन्द्रो मरुत्वत' इत्यादि मन्त्र शक्र के लिए प्रशस्त माना जाता है।।४२, ४३।।

> उत्तापर्णे सुभगे इति देव्याः समाचरेत् ।
> प्रजापतेः पुनर्होमः प्रजापतिरिति स्मृत. ।।४४
> नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाणा मन्त्र उ यते ।
> एप ब्रह्माय ऋत्विजइतिब्रह्मण्युदाहृत. ।।४५
> विनायकस्य चानृनमिति मन्त्रो बुधैः स्मृत. ।
> जातवेदसे सुनवामितिदुर्गामन्त्रउच्यते ।।४६
> आदिप्रत्नस्य रेतस आकाशस्य उदाहृत ।
> प्राणाशिशुर्महोनाञ्च वायोर्मन्त्र. प्रकीर्त्तितः ।।४७
> एपो उपा अपूर्व्वादित्यश्विनोर्मन्त्र उच्यते ।
> पूर्णाहुतिस्तु मूर्द्धान दिवइत्यभिपातयेत् ।।४८

"उत्तापर्णे सुभगे"—इत्यादि मन्त्र का प्रयोग देवी के लिये करना चाहिए। प्रजापति का पुनः होम "प्रजा पति" इत्यादि के द्वारा बताया गया है ।।४४।। "नमोऽस्तु सर्वेभ्यः" इत्यादि मन्त्र सर्पों का उदाहृत किया गया है। "एप ब्रह्माय ऋत्विज्य" इत्यादि मन्त्र को ब्रह्मा के विषय में प्रयुक्त करना चाहिए। विनायक का 'चानृनम्'—इत्यादि मन्त्र है। जिसको बुध लोगों ने कहा है। जात वेदा के लिये 'सुन वाम्" इत्यादि दुर्गामन्त्र कहा जाता है। 'आदि प्रत्नस्य रेतस" इत्यादि मन्त्र आकाश का उदाहृत किया गया है। "प्राणा शिशु महो नाञ्च" इत्यादि मन्त्र अश्विनी कुमारों के लिये कहा जाता है। इसके पश्चात् जो पूर्णाहुति हो जावे वह 'मूर्द्धान दिव" इत्यादि मन्त्र के द्वारा ही अभिपातित करनी चाहिए ।।४५, ४६, ४७, ४८।।

४४-शिव चतुर्दशी व्रत कथन

भगवन् ! भूतभव्येश ! तथान्यदपि यच्छ्रुतम् ।
भुक्तिमुक्तिफलायाल तत्पुनर्वक्तुमर्हसि ॥१
एवमुक्तोऽब्रवीच्छम्भुरय वाङ्मयपारगः ।
मत्समस्तपसा ब्रह्मन् ! पुराणश्रुतिविस्तरैः ॥२
धर्मोऽय वृषरूपेण नन्दीनाम गणाधिपः ।
धर्मान् माहेश्वरान् वक्ष्यत्यतः प्रभृतिनारद ? ॥३
शृणुष्वावहितोब्रह्मन् ! वक्ष्येमाहेश्वरव्रतम् ।
त्रिषुलोकेषुविख्यात नाम्नाशिवचतुर्दशी ॥४
मार्गशीर्ष त्रयोदश्या सितायामेकभोजनः ।
प्रार्थयेद्देवदेवेश ! त्वामह शरण गतः ॥५
चतुर्दश्या निराहारः सम्यगभ्यर्च्य शङ्करम् ।
सुवर्णवृषम दत्त्वा भोक्ष्यामि च परेऽहनि ॥६
एव नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानव. ।
कृतस्नानजप. पश्चादुमया सह शङ्करम् ॥
पूजयेत्कमलै. शुभ्रै गन्धमाल्यानुलेपनः ॥७॥

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे भगवन् ! हे भूत भव्य के ईश ! आपके मुखारविन्द से अन्य जो भी कुछ श्रवण किया है वह भुक्ति और मुक्ति दोनों के फल प्राप्त करने के लिये पर्याप्त है उसे पुन. आप कहने के योग्य होते हैं ॥१॥ इस प्रकार से जब भगवान् शम्भु से कहा गया तो उन्होंने कहा था कि यह हे ब्रह्मन् ! पुराण और श्रुति के विस्तारों से तथा तपश्चर्या से वाङ्मय का पारगामी मेरे ही समान है ॥२॥ हे नारद ! नन्दियों का गणाधिप वृष रूप से यह धर्म है जो यहा से आगे माहेश्वर धर्मों को बतायेगा ॥३॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब आप पूर्णतया सावधान होकर श्रवण कीजिए । हम माहेश्वर व्रतों के विषय मे कहेंगे । यह शिव चतुर्दशी का व्रत तीनों लोकों में परम

विख्यात है ॥४॥ मार्गशीर्ष मास मे शुक्ल पक्ष मे त्रयोदशी के दिन केवल एक ही बार भोजन करे और प्रार्थना करनी चाहिये—हे देव देवेश ! मैं आपकी शरणागति मे सम्प्राप्त हो गया हूं ॥५॥ चतुर्दशी के दिन पूर्णतया आहार से रहित होकर शकर का भली भाँति अभ्यर्चन कर के ही मैं सुवर्ण का निर्मित वृषभ का दान करके दूसरे दिन भोजन करूँगा—ऐसा मन मे सकल्प करे ॥ ६ ॥ इस प्रकार से नियम करने वाले पुरुष को स्तवन करके शयन करना चाहिए और प्रभात वेला मे उठकर स्नान जप आदि सम्पूर्ण नैत्यिक कर्मों का सुसम्पादन करके फिर जगज्जननी उमा के सहित भगवान् शकर का शुभ्र कमलों और गन्ध तथा माल्य एव अनुलेपन आदि उचित उपचारों से पूजन करना चाहिये ॥७॥

पादौ नम शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः ।
त्रिनेत्रायेति नेत्राणि ललाटं हरये नमः ॥८
मुखमिन्दुमुखायेति श्रीकण्ठायेतिकन्धराम् ।
सद्योजाताय कर्णौ तु वामदेवायवैभुजौ ॥६
अघोरहृदयायेति हृदयञ्चाभिपूजयेत् ।
स्तनौ तत्पुरुषायेति तथेशानाय चोदरम् ॥१०
पार्श्वे चानन्तधर्माय ज्ञानभूतायवै कटिम् ।
ऊरू चानन्तवैराग्यसिंहायेत्यभिपूजयेत् ॥११
अनन्तैश्वर्यनाथाय जानुनीचार्चयेद्बुध. ।
प्रधानायनमोजघे गुल्फौव्योमात्मनेनमः ।.१२
व्योमवेदात्मरूपायपृष्ठमित्यपूजयेत् ।
नमःपुष्टयैनमस्तुष्ट्यै पार्वतीञ्चापिपूजयेत् ॥१३
ततस्तु वृषभं हैमयुदकुम्भसमन्वितम् ।
शुक्लमाल्याम्बरधरं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१४

'नमः शिवाय'—इससे चरणों का यजन करे। 'सर्वात्मने नमः' इस मन्त्र के द्वारा शिर का पूजन करे। 'त्रिनेत्राय नमः'—इससे नेत्रों का 'हरये नमः'—इससे ललाट का पूजन करना चाहिये। 'इन्दुमुखाय नमः'—इसके द्वारा मुख का—'श्रीकण्ठाय नमः' इससे कन्धरा का—'सद्यो जाताय नमः'—इससे कानों का 'वाम देवाय नमः'—इस मन्त्र से भुजाओं का अर्चन करे। 'अघोर हृदयाय नमः'—इससे हृदय का अभिपूजन करना चाहिए। 'तत्पुरुषाय नमः'—इससे स्तनों का यजन करे। 'ईशानाय नमः'—इससे उदर का—'अनन्त धर्माय नमः' इससे पार्श्वों का 'ज्ञानभूताय नमः' इसके द्वारा कटिका—'अनन्त वैराग्य सिंहाय नमः'—इससे अरुओं का अभिपूजन करना चाहिए। 'अनन्तैश्वर्य नाथाय नमः। इससे युग पुरुष को दोनों जानुओं का समर्चन करना चाहिए। 'प्रधानाय नमः'—इसके द्वारा जाँघों का, 'व्योमात्मने नमः'। इसका उच्चारण कर गुल्फों का, व्योमकेशात्मरूपाय नमः' इससे केशों का और पृष्ठभाग का पूजन करे। 'पुष्टयै नमः—तुष्टयै नमः'—इन मन्त्रों से पार्वती का भी पूजन करना चाहिए। इसके अनन्तर वृषभ का यजन करे तथा सुवर्ण निर्मित कुम्भ को जल से पूर्ण करके शुक्ल माल्य और अम्बर को धारण करके माला करके पञ्च रत्नों से युक्त करके तथा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से समन्वित करके ब्राह्मण के लिये दान देना चाहिए ॥८, ९॥ ॥१०, ११, १२, १३, १४॥

ततोविप्रान् समाहूय तर्पयेद्भक्तितः शुभान्।
पृषदाज्यञ्च सम्प्राश्य स्वपेद्भूमावुदङ्मुखः ॥१५
पञ्चदश्यामतःपूज्य विप्रान् भुञ्जीतवाग्यतः।
तद्वत् कृष्णचतुर्दश्यामेतन् सर्वमाचरेत् ॥१६
चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्य्यान् पूर्ववदर्चनम्।
ये तुमासविशेषाः स्युस्तान्निबोधक्रमादिह ॥१७
मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत्।

शङ्कराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते करवीरक ! ॥१८
त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु महेश्वरमतः परम् ।
नमस्तेऽस्तु महादेव ! स्थाणवेच तत॰ परम् ॥१६
नम॰ पशुपते नाथ ! नमस्ते शम्भवे पुनः ।
नमस्ते परमानन्द ! नमः सोमार्द्ध धारिणे ॥२०
नमो भीमाय इत्येव त्वामहं शरणं गतः ।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पि कुशोदकम् ॥२१
पञ्चगव्यं ततोबिल्वं कर्पूरञ्चागुरुर्यवाः ।
तिला॰ कृष्णाश्च विधिवत्प्राशन क्रमशःस्मृतम् ॥
प्रतमास चतुर्दश्योरेकैकं प्राशनं स्मृतम् ॥२२॥
मन्दारमालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि ।
सिन्दुवारैरशोकैश्च मल्लिकाभिश्च पाटलैः ॥२३
अर्कपुष्पै॰ कदम्बैश्च शतपत्रा तथोत्पलैः ।
एकैकेन चतुर्दश्योरचयेत्पार्वतीपतिम् ॥२४

प्रणाम अर्पित होवे। भीम के लिए नमस्कार है—इस प्रकार से कहकर अन्त में प्रार्थना करे कि मैं आपकी शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ। गोमूत्र-गोमय-क्षीर—दधि—घृत—कुशोदक—पञ्चगव्य—बिल्व—कर्पूर—अगुरु—यव—कृष्ण तिल इनका विधिवत् क्रम से प्राशन कहा गया है। प्रति मास में दोनों चतुर्दशियों में एक-एक का प्राशन बताया गया है ॥ ८, २०, २१ २॥ मन्दार-मालती-धतूर-सिन्दुवार अशोक-मल्लिका-पाटल-अर्क पुष्प-कदम्ब-शतपत्री व पुष्प-उत्पल-इन पुष्पों में से क्रमशः एक एक के द्वारा दोनों चतुर्दशियों में पार्वती के स्वामी का अर्चन करना चाहिए ॥२३, २४॥

९४—फल त्याग माहात्म्य कथन

फलत्यागस्य माहात्म्यं यद्भवेत्तच्छृणु नारद !।
यदक्षयं परं लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥१
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुने ! व्रतम्।
द्वादश्यामथवाष्टम्यां चतुर्दश्यामथापि वा।
आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥२॥
अन्येष्वपि हि मसेषु पुण्येषु मुनिसत्तम !।
सदक्षिणम्पायसेन भोजयेच्छक्तितोद्विजान्। ३
अष्टादशानां धान्यानमवद्यं फलमूलकैः।
वर्जयेदब्दमेकन्तु ऋते औषधकारणम् ॥
सवृषं काञ्चनं रुद्रं धर्मराजञ्च कारयेत् ॥४॥
कूष्माण्डं मातुलिङ्गञ्च वार्ताकिम्पनसन्तथा।
आम्राम्रातकपित्थानि कलिङ्गमथवालुकम् ॥५
श्रीफलाश्वत्थबदरञ्जम्बीरं कदलीफलम्।
कारमरन्दाडिमं शक्तया कालधौतानि षोडश ॥६

मूलकामलकं जम्बूतिन्तिड़ीकरमर्दकम् ।
कङ्कोलैलाकतुण्डीरकरीर कुटज शमी ॥७

नन्दिकेश्वर ने कहा—हे नारद ! फल के त्याग करने का जो माहात्म्य होता है उसका श्रवण करो । जो लोक में परम अक्षय होता है और सब कामों के फल का प्रदान करने वाला है ॥ १ ॥ हे मुने ! यह मार्गशीर्ष शुभ मास में तृतीया-द्वादशी-अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथि में होना है । ब्राह्मण वाचन करके शुक्ल पक्ष में इसका समारम्भ करना चाहिए ।। २ ।। हे मुनिसत्तम ! अन्य पुण्य मासों में भी दक्षिणा के सहित यथा शक्ति पायस से द्विजों को भोजन कराना चाहिए ॥ ३ ॥ औषध के कारण के बिना अठारह धान्यों के अवयता का वर्जन कर देना चाहिए और एक वर्ष तक फल मूलों से रहे । वृष के सहित सुवर्ण का रुद्र और धर्मराज निर्मित करावे ॥ ४ ॥ कूष्माण्ड—मातुलिङ्ग—वर्ताक—आम्रातक पित्थ—कलिङ्ग—आलुक—श्रीफल-अश्वत्थ—बदर-जम्बीर-कदली फल-काश्मर दाडिम इन सोलह को शक्ति पूर्वक कलधौत (सुवर्ण) के करावे ॥ ५, ६ ॥ मूली-आंवला जम्बू-तिन्तड़ी-करमर्दक-कङ्कोल-एलाक-तुण्डीर—करीर-कुटज—शमी—और दुम्बर—नालिकेर-द्राक्षा-दोनों वृहती इन षोडश फलों को शक्ति के अनुसार रौप्य अर्थात् चाँदी से निर्मित करावे ॥७॥

औदुम्बरं नालिकेरं द्राक्षाथ वृहतीद्वयम् ।
रौप्यानि कारयेच्छक्त्या फलानीमानिषोड़श ॥८
ताम्रं तालफलं कुर्यादगस्तिफलमेव च ।
पिण्डारकाश्मर्यफलं तथा सूरणकन्दकम् ॥९
रक्तालुकाकन्दकञ्च कनकाह्वञ्च चोभटम् ।
चित्रवल्लीफलं तद्वत्कूटशाल्मलिजम्फलम् ।।१०
आम्रनिष्पावमधुकबटमुद्गपटोलकम् ।
ताम्राणि षोड़शतानि कारयेच्छक्तितोनर. ।।११
उदकुम्भद्वयकुर्याद्धान्योपरि सवस्त्रकम् ।

ततश्च कारयेच्छय्या यथोपरि सुवाससी ॥१२
भक्ष्यपात्रत्रयोपेत यमरुद्रवृषान्वितम् ।
धेन्वा सहैव शान्ताय विप्रायाथ कुटुम्बिने ॥
सपत्नीकाय सपूज्य पुण्येऽह्नि विनिवेदयत् ॥१३

ताल फल और प्रशस्त फल को ताम्र से निर्मित करावे। पिण्डार काश्मर्य फल—सूरण कन्द—रक्तालुक कन्द—नवकाहन—चिर्भिट बिल्ववल्ली फल-इसी भाँति कूटशाल्मलिज फल—आम्र बिल्वाव-मधुक—वट—मुद्ग—पटोलक इन सोलह को मनुष्य के द्वारा शक्ति पूर्वक ताम्र के निर्मित कराना चाहिये ॥ ८, ६, १ , ११ ॥ धान्य के ऊपर दो जल से पूर्ण कुम्भों की वस्त्र के सहित स्थापना करे। इसके अनन्तर सुन्दर वस्त्रों से समन्वित शय्या ऊपर करावे ॥ १२ ॥ तीन भक्ष्य पात्रों से उसे संयुत करे और यम-रुद्र तथा वृष से संयुक्त करे तथा धेनु के सहित किसी परम शान्त स्वभाव वाले कुटुम्बी पत्नी के सहित विप्र का भली भाँति अर्चन करके किसी भी पुण्य दिवस में उसको ये सब विनिवेदित कर देना चाहिए ॥ १ ॥

यथा फलेषु सर्वेषु वसन्त्यमरकोटयः ।
तथा सर्वफलत्यागव्रताद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे ॥१४
यथा शिवश्च धर्मश्च सदानन्तफलप्रदौ ।
तद्युक्तफलदानेन तौ स्याता मे वरप्रदौ ॥१५
यथा फलान्यनन्तानि शिवभक्तेषु सर्वदा ।
तथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि ॥१६
यथा भेदनपश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजान् ।
तथा ममास्तु विश्वात्मा शङ्कर शङ्कर सदा । १७
इति दत्वा च तत्सर्वमलङ्कृत्य च भूषणैः ।
शक्तिश्चेच्छयन दद्यात्सर्वोपस्कर संयुतम् । १८
अशक्तस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः ।

तथैककुम्भसयुक्तौ शिवधर्मौ च काञ्चनौ ॥१६
विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत वाग्यतस्तैलवर्जितम् ।
अन्यान्यपि यथा शक्त्या भोजयेच्छक्तितो द्विजान् ॥

जिस प्रकार से सब फलों में अमरो की कोटिया निवास किया करती है उसी भाँति सब फलो के त्याग करने से मेरी भगवान् शिव में भक्ति होवे ॥ १४ ॥ जिस तरह से भगवान् शिव और धर्म सदा अनन्त फलो के प्रदान करने वाले हैं सो युक्त फलदान के द्वारा वे दोनो मुझे वरदान करने वाले होवे ॥ १५ ॥ जिस भाँति शिव के भक्तो मे सर्वदा अनन्त फल होते हैं उसी तरह से मुझे जन्म - जन्म मे अनन्त फलो की प्राप्ति होवे ॥ १६ ॥ जिस रीति से शिव विष्णु सूर्य और ब्रह्मा के भेद को नहीं देखता हू अर्थात् इनमे कुछ भी भेद भाव नहीं समझता हूँ उसी प्रकार से मेरे लिए विश्वात्मा शङ्कर सदा शङ्कर होवे अर्थात् कल्याणकारी होवे ॥ १७ ॥ यह कहकर वह सब भूषणो से समलङ्कृत करके दान करे और शक्ति हो तो विधान से यथोत्तम फलो का ही दान करे तथा एक से संयुत शिव और धर्म कञ्चन के निर्मित करावे । विप्र को दान करके मौन व्रत पूर्वक तैल से रहित भोजन करे । अपनी शक्ति के अनुसार और दूसरे भी द्विजो [illegible] १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

तदाराध्य पुमान् विप्र प्राप्नोतिकुशलं सदा ।
तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनोभवेत् ॥ ३
यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरम् ।
तदा शनिदिने कुर्यादेकभुक्तं विमत्सरः ॥४
नक्तमादित्यवारेण भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ।
पत्रैर्द्वादशसंयुक्तं रक्तचन्दनपङ्कजम् ॥५
विलिख्य विन्यसेत्सूर्यं नमस्कारेण पूर्वतः ।
दिवाकरं तथाग्नेय विवस्वन्तमतः परम् ॥६
भगन्तु नैऋते देव वरुण पश्चिमे दले ।
महेन्द्रमनिले तद्वदादित्यञ्च तथोत्तरे ॥७

देवर्षि नारद जी ने कहा—हे नन्दीश ! जो भी पुरुषों को आरोग्य के करने वाला हो और जो अनन्त फलों का प्रदान करने वाला हो तथा जो मनुष्यों की शान्ति के लिये हो उसी व्रत को कृपा करके कहिए । ॥१॥ नन्दिकेश्वर ने कहा—जो विश्वात्मा का ब्रह्म सनातन परम धाम है वह सूर्य्य-अग्नि और चन्द्र के रूप से इस जगत् में तीन प्रकार का स्थित है । हे विप्र ! उसकी आराधना करके पुरुष सदा कुशल की प्राप्ति किया करता है । इसलिये सदा आदित्य के वार के दिन अर्थात् रविवार को रात्रि में ही अशन करने वाला होना चाहिए ॥२, ३॥ जिस समय में हस्त से युक्त सूर्य का वार होवे उस समय में शनिवार के दिन मात्सर्य से रहित रहकर एक बार ही भोजन करना चाहिए ॥४॥ रविवार के दिन में रात्रि के समय में द्विजों को भोजन कराकर पत्रों से रक्त चन्दन के पङ्क में बारह से संयुक्त लिखकर सूर्य का विन्यास करे । नमस्कार से पूर्व में दिवाकर को विन्यस्त करना चाहिए 'दिवाकराय नमः'—यह उच्चारण करते हुए ही विन्यास करे । इसके उपरान्त आग्नेय दिशा में विवस्वान् को—नैऋत्य में भग को—पश्चिम दल में वरुण देव को—अनिल कोण में महेन्द्र को तथा उसी प्रकार से उत्तर दिशा में आदित्य को विन्यस्त करना चाहिए ॥५, ६, ७॥

शान्तम शानभागे तु नमस्कारेणविन्यसेत् ।
कर्णिका पूर्वपत्रे तु सूर्य्यस्यतुरगात्न्यसेत् ।।८
दक्षिणेऽयमनामान मार्तण्ड पश्चिमे दले ।
उत्तरे तु रविं देव कर्णिकायाञ्च भास्करम् ।।९
रक्तपुष्पोदकेनार्घ्य सतिलारणचन्दनम् ।
तस्मिन् पद्मे ततो दद्यादिम मन्त्रमुदीरयेत् ।।१०
कालात्मा सवभूतात्मावेदात्मा विश्वतोमुख ।
यस्मादग्नीन्द्ररूपस्त्वमत पहिदिवाकर ! ।।११
अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषेत्वार्जेचभास्कर ।
अग्न आयाहि वरद ! नमस्तेज्योतिषाम्पते ! ।।१२
अर्घ्य दत्त्वा विसृज्याथनिशितैलविवर्जितम् ।।१३

ईशान दिशा के भाग की ओर शान्त को नमस्कार के सहित विन्यस्त करना चाहिए। कर्णिका के पूर्व पत्र मे सूर्य्य देव के अश्वो का विन्यास करना चाहिए ।।८।। दक्षिण मे अर्यमान नाम वाले का तथा पश्चिम दल म मार्त्तण्ड का, उत्तर मे रवि देवका और कर्णिका मे भास्कर का न्यास करके रक्त पुष्पो के सहित जल से जिसमे तिल, अरुण चन्दन भी हो उस पद्म मे निम्न मन्त्र का उच्चारण करत हुए अर्घ्य देना चाहिए ।।८, ९, १०।। वह म त्र यह है—'हे दिवाकर' आप काल की आत्मा हैं या क ल स्वरूप ही है तथा समस्त भूतो क आत्मा हैं— वेदो की आत्मा और आप विश्वतामुख हैं क्योकि आप अग्नि इन्द्र रूप वाले है अतएव आप मेरी रक्षा करो ।।११।। अग्निमीले आपके लिये नमस्कार है। हे भास्कर ! इषेत्वोर्जे आपके लिये प्रणाम है। हे वरद ! आप यहाँ पर पधारिये। हे ज्योतियों क स्वामिन् ! आपके लिये प्रणाम समर्पित है। इस प्रकार से सूर्य्य देव को अर्घ्य देवे और फिर विसर्जन करके रात्रि म तैलीय पदार्थों से रहित भोजन करना चाहिये ।।१२, १३।।

४७—विभूति द्वादशी व्रत कथन

शृणु नारद ! वक्ष्यामि विष्णोर्व्रतमनुत्तमम् ।
विभूतिद्वादशी नाम सर्वदेवनमस्कृतम्
कार्तिके चैत्रवैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने ॥१
आषाढे वा दशम्यान्तु शुक्लायालघुभुङ्नरः ।
कृत्वासायन्तनीसन्ध्यां गृह्णीयान्नियमंबुधः ॥२
एकादश्यां निराहारःसमभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
द्वादश्यांद्विजसयुक्तः करिष्येभोजन विभो ! ॥३
तदविघ्नेन मे यातु सफल स्यान्च केशवा ! ।
नमोनारायणायेति वा यञ्च स्वपता निशि ॥४
ततः प्रभात उत्थायसंविष्यष्टशतञ्जपेत् ।
पूजयेत् पुण्डरीकाक्ष शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥५
विभूतयेनमःपादावशोकायच जानुनी ।
नम शिवायेत्यूरूच विश्वमूर्ते ! नमः कटिम् ॥६
कन्दर्पायनमोमेढ्र फल मारायणायच ।
दामोदरायेत्युदर वासुदेवाय च स्तनौ ॥७

नन्दिकेश्वर प्रभु ने कहा—हे नारद ! आप श्रवण कीजिए । अब हम भगवान् विष्णु का सर्वोत्तम व्रत के विषय मे वर्णन कर रहे हैं । इस व्रत का शुभ नाम विभूति द्वादशी है और यह व्रत ऐसा उत्तम है कि सभी देवगणो के द्वारा वन्द्यमान होता है ॥१॥ इस व्रत को कई मासो मे आरम्भ किया जा सकता है । कार्तिक—चैत्र—वैशाख या फाल्गुन मास मे करे अथवा आषाढ मास मे करे । जब भी इसका समाचरण करे उस समय शुक्ल पक्ष की दशमी दशमी म अत्यन्त ही स्वल्प हलका भोजन करना चाहिए । मनुष्य जो भी करना चाहे उसे सायङ्कालीन सन्ध्या की उपासना करते हुए ही इसके नियम को ग्रहण करना चाहिये ॥२॥

एकादशी के दिन बिल्कुल भी आहार न करके भगवान् जनार्दन का अभ्यर्चन करूँगा और द्वादशी के दिन द्विजो से संयुक्त होकर ही हे विभो ! मैं फिर भोजन करूँगा---इस प्रकार संकल्प करके नियम ग्रहण करे और फिर प्रार्थना करे हे केशव ! सो यह व्रत मेरा निर्विघ्न सफल हो जावे। इसके पश्चात् "नमो नारायणाय"–अर्थात् नारायण प्रभु के लिये नमस्कार है–इसका मुख से उच्चारण करके रात्रि मे शयन करे ॥३, ४॥ इसके उपरान्त प्रभात वेला मे उठकर भगवती सावित्री का अष्टोत्तर शत जाप करना चाहिये और भगवान् पुण्डरीकाक्ष का शुक्ल माल्य एवं अनुलेपन आदि समुचित उपचारो से पूजन करना चाहिये ॥५॥ 'विभूतये नमः'–इस मन्त्र का उच्चारण कर चरणो का यजन करे "अशोकाय नमः"–इससे जानुओं का–"नमः शिवाय"–इसके द्वारा ऊरुओं का "विश्वमूर्त्ते ! तुभ्यं नमः" इससे कटिका अर्चन करना चाहिए ॥६॥ "कन्दर्पाय नमः"-इससे मेढ़ू का तथा 'नारायणाय नमः' इसके द्वारा फल का पूजन करे। 'नमो दामोदराय'–इस मन्त्र से उदर का–"वासुदेवाय नमः"–इससे दोनों स्तनो का अर्चन करना चाहिए ॥७॥

माधवायेत्युरो विष्णो कण्ठमुत्कण्ठिनेनमः ।
श्रीधरायमुखकेशान् केशव.येतिनारद ! ॥८
पृष्ठं शार्ङ्गधरायेतु श्रवणौ वरदाय वै ।
स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदाजलजपाणये ॥६
शिरः सर्वात्मने ब्रह्मन् ! नमइत्यभिपूजयेत् ॥६
अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोकं स्तोकं समाचरेत् ।१०
य.चाप्यतीवनि.स्व स्याद्भक्तिमान्माधवंप्रति ।
पुष्पार्चनविधानेन स कुर्याद्व्रतसत्तमम् ॥११
अनेन विधिना यस्तुविभूतिद्वादशीव्रतम् ।
कुर्यात् पापविनिर्मुक्त पितृणां तारयंच्छतम् ॥१२
जन्मनां शतसाहस्रं न शोकफलभाग्भवेत् ।

न च व्याधिर्भवेत्तस्य न दारिद्र्यं न बन्धनम् ॥१३
वैष्णवोवाथ शैवोवा भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥१४
यावद्युगसहस्राणां शतमष्टोत्तरं भवेत्।
तावतस्वर्गे वसेद्ब्रह्मन्! भूपतिश्च पुनर्भवेत् ॥१५

"माधवाय नमः—इस मन्त्र के द्वारा विष्णु के उर: स्थल का "वैकुण्ठाय नमः" इससे कण्ठ का—'श्रीधराय नमः' इसका उच्चारण करके मुख का और हे नारद! "केशवाय नमः"—इसके द्वारा केशों का अर्चन करे ॥८॥ 'शार्ङ्गधराय नमः' इस मन्त्र को बोलकर पृष्ठ भाग का, 'वरदाय नमः' इससे श्रवणों का पूजन करना चाहिये। अपने नाम से शङ्ख चक्र असि गदा अब्ज पाणये 'सर्वात्मने नमः' इससे हे ब्रह्मन्! प्रभु के शिर का अर्चन करना चाहिए ॥९॥ जिसके पास बहुत ही थोड़ा सा धन है उसको थोड़ा-थोड़ा ही दान आदि से इस व्रत के अङ्गों का सम्पादन करना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार ही करे ॥१०॥ जो अत्यन्त ही धनहीन हो और जिसके पास कुछ भी साधन न हों वह भी निर्धन इसको कर सकता है। उसे तो केवल भगवान् माधव के प्रति भक्ति होनी चाहिये और वह केवल पुष्पों के द्वारा ही अर्चन का विधान करके ही वर्ष पूर्ण करे ॥११॥ इस विधि से जो भी कोई इस विभूति द्वादशी का व्रत किया करता है वह समस्त पापों से निर्मुक्त होकर अपने घन-गत पितृगणों का उद्धार कर दिया करता है ॥१२॥ सौ सहस्र जन्मों तक भी उसको कभी भी शोक का फल नहीं होता है और उसे कोई भी व्याधि नहीं होती है। न कभी दरिद्रता होती है और न बन्धन ही हुआ करता है। १३॥ वह जन्म-जन्म में या तो वैष्णव होता है या शिवका भक्त शैव ही हुआ करता है ॥१४॥ हे ब्रह्मन्! इस व्रत का बहुत बड़ा माहात्म्य है जब तक एक सहस्र युगों की अष्टोत्तर शत संख्या सम्पूर्ण नहीं होती है तब तक वह स्वर्ग में निवास किया करता है और वहाँ पर राजा के यहाँ जन्म ग्रहण कर भूपति होता है ॥१५॥

४८—स्नान महत्त्व वर्णनम्

नमल्य भावशुद्धिश्च विना स्नानं न विद्यते ।
तस्मान्मनोविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते ॥१
अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत् ।
तीर्थञ्च कल्पयेद्विद्वान्मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥
नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृत ॥२॥
दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः प्रयतः शुचिः ।
चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥
प्रकल्प्यावाहयेद्गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षण ॥३॥
विष्णोः पादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता ।
त्राहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥४
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।
दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्तु जाह्नवि ॥५
नन्दिनीत्येव ते नाम देवपुनलिनीति च ।
दक्षा पृथ्वी च विहगा विश्वकाया ऽमृता शिवा ॥६
विद्याधरी सुप्रशान्ता तथा विश्वप्रसादिनी ।
क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥७
एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् ।
भवेत्सन्निहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥८

भगवान् नन्दिकेश्वर ने कहा—स्नान के किये बिना निर्मलता और भावों की शुद्धि नहीं हुआ करती है। इसलिये मन की विशुद्धि के लिए सबसे आदि में मानव को स्नान करना चाहिए ।।१।। जल या तो घर आदि से उद्धृत किये गये हों या किसी जलाशय के अनुद्धृत जल हों उन्हीं से स्नान का समाचरण करे। विद्वान् पुरुष को जो कि मन्त्रों का पूर्ण ज्ञाता है उस मूल मन्त्र के द्वारा उन्हीं जलों में तीर्थ की कल्पना

कर लेनी चाहिये ॥२॥ "नमो नारायणाय" यही मूल मन्त्र बताया गया है। विचक्षण पुरुष को हाथ में दर्भ का ग्रहण करके विधि पूर्वक आचान्त होकर परम प्रयत और शुचि हो जाना चाहिये। चार हाथ के प्रमाण से समायुक्त और सभी ओर से चोकोर स्थल की प्रकल्पना करके नीचे दिये हुए मन्त्रों से भागीरथी गङ्गा का आवाहन करना चाहिए ॥३॥ आवाहन मन्त्र ये हैं—हे इन्दिरे! आप भगवान् विष्णु के चरणों से प्रसूत हुई हैं। आप परम वैष्णवी और विष्णु के ही देवता वाली हैं। इससे मेरे जन्म मरणान्तिक पाप से मेरी रक्षा कीजिए ॥४॥ भगवान् वायुदेव ने कहा है कि आप साढ़े तीन करोड़ तीर्थों का निवास स्थल हैं। दिवलोक—भूमि और अन्तरिक्ष में वे सब आप में रहते हैं ॥५॥ हे देवि! आपका देवों में नन्दिनी और नलिनी यह नाम है। आपके अन्य भी बहुत से परम पुण्य मय शुभ नाम हैं—जैसे—दक्षा-पृथ्वी-विश्वकाया-अमृता-शिवा—विद्याधरी-सुप्रशान्ता-विश्व प्रसादिनी-क्षेमा-शान्ता-शान्ति प्रदायिनी और जाह्नवी हैं। इन परम पुण्यमय नामों का स्नान के समय में कीर्तन करना चाहिए। इस कीर्तन के करने से वहीं पर भागीरथी गङ्गा जो त्रिपथों में गमन करने वाली है अर्थात् स्वर्ग-भूमि और पाताल तल में जाने वाली है स्वयं सन्निहित हो जाया करती हैं ॥६, ७, ८॥

सप्तवाराभिजप्तेन करसंपुटयोजित ।
मूर्द्धिन कुर्याज्जलं भूयस्त्रिचतुः पञ्चसप्तकम् ॥
स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्य तु विधानतः ॥९॥
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके! हर मे पापं यन्मयादुष्कृतंकृतम् ॥१०
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते ॥११
एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः।
उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधायवै ॥

ततस्तु तर्पणं कुर्य्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय वै ॥१२
देवायक्षास्तथानागागन्धर्वाप्सरसः सुराः ।
क्रूरा सर्पा सुपर्णाश्चतरवोजम्बुका खगाः ॥१३
वाय्वाधारा जलाधारास्तथैवाकाशगामिन ।
निराधाराश्च ये जीवा येतु धर्म्मरतास्तथा ॥१४
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिल मया ।
कृतोपवीती देवेभ्यो निवीती च भवेत्ततः ॥१५

हाथो के सम्पुट मे जल को योजित करके स त बार अभिजाप करे और फिर मूर्द्धा मे जल को डाले । फिर तीन–चार–पाँच और सात बार स्नान करना चाहिए । इसी भाँति विधान के साथ आमन्त्रित करके मृत्तिका से स्नान करे । अभिमन्त्रित करने का मन्त्र यह है—हे मृत्तिके ! आप अश्वों के खुरो से क्रान्त होने वाली है—रथो के चक्रो के द्वारा भी क्रान्त होती हैं । आप विष्णु भगवान् के द्वारा क्रान्त हैं । हे वसुन्धरे ! जो भी मैंने दुष्कृत किये हो उस सम्पूर्ण पाप का आप सहरण कर दो। ॥६, १०॥ हे सुव्रते ! शत बाहुओ वाले वराह श्रीकृष्ण ने आपका उद्धरण किया है अर्थात् आपको उठा लिया है । समस्त लोको के प्रभव (जन्म) के लिये अरणी के समान विनाश करने वाली आप हैं । तात्पर्य यह है कि जन्म-मरण के आवागमन को छुडाकर मोक्ष प्रदान किया करती हैं ऐसी आपकी सवा मे मेरा नमस्कार अर्पित है । इस प्रकार से स्नान करके पीछे विधिपूर्वक आचमन करे और स्नान स उठकर फिर परम शुद्ध एव शुक्ल वस्त्रो को धारण करना चाहिए । इसके अन तर त्रलोक्य की सतृप्ति के लिये तर्पण करना चाहिए ॥११, १२॥ देव—यक्ष—नाग—गन्धर्व—अप्सराऐं—सुर—क्रूर—सर्प—सुपर्ण—तरुगण—जम्बुक—खग-वायु वे आधार वाले प्राणी–जल का आश्रय ग्रहण करने वाले जीव—आकाश मे गमन करने वाले प्राणी और ऐसे जीव जिनका कोई भी आधार ही नहीं होता है तथा धर्म्म में रति रखने वाले जीव

उन सबको तृप्ति के लिये मेरे द्वारा यह जल दिया जाता है। देवों के लिये कृतोपवीती होकर तर्पण करे और फिर निवीती हो जाना चाहिए ॥१३, १४, १५॥

मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा ।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥१६
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा ।
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुनासदा ॥१७
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वशिष्ठञ्च भृगुनारदमेव च ॥
देवब्रह्मऋषीन् सर्वास्तर्पयेदक्षतोदकैः ॥१८
अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले ।
अग्निष्वात्तास्तथा सोम्या हविष्मन्तस्तथोष्मपाः ॥१९
सुकालिनो बर्हिषदस्तथान्ये चाज्यपाः पुनः ।
सन्तर्प्य पितरो भक्तयासतिलोदकचन्दनैः ॥२०
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥२१
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ॥
दर्भपाणिस्तु विधिना पितॄन् सन्तर्पयेद् बुधः ॥२२॥

भक्ति की भावना से मनुष्यों का तर्पण करे—ब्रह्मा के पुत्रों का [illegible]ा ऋषियों का तर्पण करे। सनक-सनन्द और तीसरे सनातन, कपिल, [illegible]सुरि, वोढु, पञ्चशिखये सभी मेरे द्वारा प्रदत्त किये हुए जल से सदा [illegible]प्ति प्राप्त करें ॥१६, १७॥ मरीचि अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, [illegible]तु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद इन देवर्षि और ब्रह्मर्षि सबको [illegible]तों से मिश्रित जलों से तर्पण करना चाहिए ॥१८॥ इसके पश्चात् [illegible]पसव्य करके सव्य जानु भूतल में टेककर अग्निष्वात्ता—बर्हिषद—अन्य

श्राउप्य पितरों का भक्ति भाव से तिलोदक चन्दन के द्वारा भली भाँति तर्पण करना चाहिए। फिर धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल सर्वभूत क्षय—औदुम्बर—पद्म—नील—परमेष्ठी—वृकोदर—चित्र और चित्रगुप्त के लिए नमस्कार है। दाभ हाथ में ग्रहण करने वाले बुध पुरुष को विधि के साथ पितगणों का तर्पण करना चाहिए ॥ १६, २०, २१, २२ ॥

पित्रादीन्नामगोत्रेण तथा मातामहानपि ।
सन्तर्प्य विधिना भक्तया इम मन्त्रमुदीरयेत् ॥२३
ये बान्धवा बान्धवेया येऽन्यजन्मनि बान्धवा ।
ते तृप्तिमखिला यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति ॥२४
ततश्चाचम्य विधिवदालिखेत्पद्ममग्रत ।
अक्षताभि सपुष्पाभि सजलारुणचन्दनम् ॥
अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानि कीतयेत् ॥२५॥

पिता आदि का नाम और गोत्र का उच्चारण करके तथा माता-मह आदि का भी नाम गोत्र कहकर विधि पूर्वक भली भाँति तर्पण करके भक्ति के साथ इस मन्त्र को उच्चारित करे। २३॥ जो मेरे बान्धव और बान्धवेय हों तथा जो मेरे अन्य जन्म में बान्धव रहे हों वे सब तृप्ति को प्राप्त हों और वह भी सन्तृप्त हो जावे जो मुझसे अर्थात् मेरे द्वारा दिये हुए जल प्राप्त करने की इच्छा रखता हो ॥ २४ ॥ इसके पश्चात् आचमन करके विधिपूर्वक आगे पद्म का विलेख न करे। पुष्पों के सहित अक्षतों से अरुण चन्दन से समन्वित जल का अर्घ्य देना चाहिये तथा प्रयत्न सूर्य के नामों का कीर्तन करे ॥ २५ ॥

नमस्ते विष्णुरूपाय नमो विष्णुमुखाय वै ।
सहस्ररश्मये नित्य नमस्ते सर्वतेजसे ॥२६
नमस्तेशिव ! सर्वेश ! नमस्तेसर्ववत्सल ।
जगत्स्वामिन्नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित ॥२७

पद्मासन ! नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित ।
नमस्ते सर्वलोकेश ! जगत्सर्वं विबोधसे ॥२८
सुकृत दुष्कृत चैव सर्वं पश्यसि सर्वग ।
सत्यदेव ! नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर ॥२९
दिवाकर ! नमस्तेऽस्तुप्रभाकर ! नमोऽस्तुते ।
एवंसूर्य्यंनमस्कृत्यत्रि कृत्वाथप्रदक्षिणम् ॥
द्विजङ्गां काञ्चनं स्पृष्ट्वा ततो विष्णुगृहं व्रजेत् ॥३०॥

विष्णु के रूप वाले आपके लिये नमस्कार है । विष्णुमुख आपके लिये प्रणाम है । सहस्र किरणों वाले के लिए नमस्कार है । सबके तेज स्वरूप आपके लिये नमस्कार है ॥२६॥ हे शिव ! आपके लिये नमस्कार है । हे सर्वेश्वर ! हे सब पर वात्सल्य रखने वाले ! आपके लिये नमस्कार है । हे जगत् के स्वामिन् ! दिव्य चन्दन से भूषित ! आपकी सेवा में नमस्कार है । हे पद्मासन ! आपको प्रणाम है । हे कुण्डलों और अङ्गदों से भूषित ! आपको नमस्कार है । हे सब लोकों के ईश ! आपकी सेवा में प्रणाम है । आप ही इस सम्पूर्ण जगत् का विशेष बोधन किया करते हैं । आप ही सुकृत और दुष्कृत सबको हे सर्वत्र गमन करने वाले ! देखा करते हैं । हे सत्यदेव ! हे भास्कर ! आपकी सेवा में नमस्कार है । आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइए । हे दिवाकरदेव ! आपको नमस्कार है । हे प्रभाकर ! आपकी सेवा में प्रणाम है । इस प्रकार से सूर्य को नमस्कार करके तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिए । फिर किसी द्विज को तथा गौ का एवं काञ्चन का स्पर्श करके फिर विष्णु गृह को जाना चाहिए । अर्थात् विष्णु भगवान् के मन्दिर में गमन करे ॥ ३०॥

२८॥ २९॥ ३०॥

४६—प्रयाग माहात्म्य वर्णनम्

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामिपु .राकल्पेययाद्यितम् ।
ब्रह्मणादेवमुख्येनयथावत्कथितमुने ॥ १
कथ प्रयागे गमनं नृपाणां तत्र कीदृशम् ।
मृतानांकागतिस्तत्रस्नातानातत्रकिम्फलम् ॥
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किम्फलम् ॥२॥
कथयिष्यामितेवत्स ! यच्छ्रेष्ठंतत्रयत्फलम् ।
पुराहिसर्वविप्राणाकथ्यमानमयाश्रुतम् ॥
आप्रयागप्रतिष्ठानादापुराद्वासुकेह्रदात् ।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागश्च बहुमूलकः ॥३
एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥४॥
तत्र स्नात्वा दिव यान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवाः ।
ततो ब्रह्मादयो देवा रक्षा कुर्वन्ति सङ्गता ॥५
अन्ये च बहवस्तीर्थाः सवपापहराः शुभाः ।
न शक्या कथितुं राजन् ! बहुवर्षशतैरपि ॥
सक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य तु कीर्तनम् ॥६॥
षष्टिर्धनुःसहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम् ।
यमुना रक्षति सदा सवितासप्तवाहनः ॥७

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! पुरातन मे जो यथा स्थित हो उसका मैं श्रवण करना चाहता हूँ । हे मुने ! देवो मे मुख्य ब्रह्माजी ने यथावत् कथन किया है ॥ १ ॥ प्रयाग मे गमन किस प्रकार से है और वह नरों का किस प्रकार का है ? वहाँ पर जो निवास करके मृत हो जाते हैं उनकी क्या गति होती है और जो वहाँ पर पहुँच कर स्नान किया करते हैं उनको क्या फल मिला करता है जो सर्वदा प्रयाग मे निवास किया करते हैं उनका क्या फल हुआ करता है ? जो हुआ

करता है ? ॥ २ ॥ महर्षि प्रवर मार्कण्डेयजी ने कहा—हे वत्स ! वहाँ पर जो भी श्रेष्ठतम फल हुआ करता है उसको मैं आपको बतलाऊँगा। द्विजे प्राचीन समय में समस्त विप्रों का कथ्यमान (कहा हुआ) मैंने श्रवण किया है ॥ ३ ॥ प्रयाग के प्रतिष्ठान से लेकर और वासुकि के ह्रद से पुर के पर्यन्त तक कम्बल और अश्वतर दो नाग हैं और बहुमूलक नाग है। यह ही प्रजापति का क्षेत्र है जो तीनों लोकों में विश्रुत है ॥ ३, ४ ॥ वहाँ पर मनुष्य स्नान करके दिवलोक को चले जाया करते हैं और जिनकी वहाँ पर मृत्यु हो जाती है उनका पुनर्भव नहीं होता है। इसके बाद में ब्रह्मा आदि देव सब संयुक्त होकर रक्षा किया करते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! अन्य भी बहुत से तीर्थ हैं जो समस्त पापों के हरण करने वाले और परम शुभ हैं। उन सबको कहा नहीं जा सकता है चाहे सैकड़ों ही वर्षों तक क्यों न वर्णन कोई करता रहे। अब मैं अति संक्षेप से प्रयाग का कुछ माहात्म्य कीर्त्तित करूँगा ॥ ६ ॥ जो साठ धनु सहस्र हैं वे जाह्नवी की रक्षा किया करते हैं और सप्त वाहन सविता देव यमुना की रक्षा किया करते हैं ॥ ७ ॥

प्रयागं तु विशेषेण सदा रक्षति वासवः।
मण्डलं रक्षति हरिर्दैवतैः सह सङ्गतः ॥८
तं वटं रक्षति सदा शूलपाणिर्महेश्वरः।
स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम् ॥९
अधर्मेणावृतो लोके नैव गच्छति तत्पदम्।
स्वल्पमल्पतरं पापं यदा ते स्यान्नराधिप ॥
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् ॥१०
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नाम सङ्कीर्त्तनादपि।
मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात्प्रमुच्यते ॥११
पञ्चकुण्डानि राजेन्द्र ! तेषां मध्ये तु जाह्नवी।
प्रयागस्य प्रवेशेनतु पापं नश्यति तत्क्षणात् ॥१२

योजनाना सहस्रेषु गगायाः स्मरणान्नरः ।
अपि दुष्कृतकर्मा तु लभते परमागतिम् ॥१३
कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वाभद्राणिपश्यति ।
अवगाह्यचपीत्वातुपुनात्यासप्तमकुलम् ॥१४

विशेषता के साथ वासव देव सदा प्रयाग की रक्षा करते हैं। उस सम्पूर्ण मण्डल की रक्षा देवों के साथ सङ्गत होकर भगवान् हरि किया करते हैं ॥ ८॥ उस वट की सदा शूलपाणि महेश्वर रक्षा करते हैं। समस्त पापो के हरण करने वाले परम शुभ स्थान की रक्षा देवगण किया करते हैं ॥ ९॥ अधर्म से लोक से आवृत हो उस पद को चला जाया करता है। हे नराधिप ! जिस समय मे स्वल्प और स्वल्पतर आपका पाप होता है तो वह जब भी प्रयाग का स्मरण आप करेंगे उसी समय तुरन्त सब सक्षय को प्राप्त हो जायगा। प्रयाग के केवल स्मरण मात्र का ही इतना महान् फल होता है ॥१०॥ उस महान् तीर्थ के दर्शन से तथा उस तीर्थ के नाम का सङ्कीर्तन करने से भी एव वहा पर केवल मृत्तिका के लम्भन मात्र से भी मनुष्य पाप से मुक्त हो जाया करता है ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ पर पञ्चकुण्ड हैं उनके मध्य में जाह्नवी है। प्रयाग के अ दर प्रवेश करने पर उसी क्षण मे तुरन्त पापो का नाश हो जाया करता है। सहस्रो योजनो पर रहते हुए ही गङ्गा के स्मरण करने से दुष्कर्मों के करने वाला भी मनुष्य परम सद्गति की प्राप्ति किया करता है ॥ १२, १३ । गङ्गा के शुभ नाम का कीर्तन करने से पापो से मुक्त हो जाता है और दर्शन करके भद्रो का देखा करता है अर्थात् दर्शन से भलाइयाँ दिखलाई देती हैं। अवगाहन करके तथा पान करके सात कुल तक का पवित्र कर दिया करता है ॥१४॥

सत्यवादी जितक्रोधा अहिंसायाऽव्यवस्थित ।
धर्मानुसारातत्वज्ञोगोब्राह्मणहितेरत ॥१५
गगायमुनयोमध्येस्नानोमु च्येतकिल्विषात् ।

मनसाचिन्तयन्कामानाप्नोतिसुपुष्कलान् ।।१६
ततो गत्वा प्रयाग तु सर्वदेवाभिरक्षितम् ।
ब्रह्मचारी वसेन्मास पितृन्देवाश्चतर्पयेत् ॥
ईप्सितान् लभते कामान् यत्र यत्राभिजायते ।।१७।।
तपनस्य सुता देवा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
समागता महाभागा यमुना तत्रनिम्नगा ॥
तत्र सन्निहितो नित्य साक्षाद्देवो महेश्वर. ।।१८।।
दुष्प्राप्य मानुषं पुण्य प्रयागन्तु युधिष्ठिर ।
देवदानवगन्धर्वा ऋषय सिद्धचारणा ॥
तदुपस्पृश्य राजेन्द्र ! स्वर्गलोकमुपासते ।।१६।।

सत्य बोलने वाला—क्रोध को जीतने वाला—अहिंसा में व्यवस्थित—धर्म का अनुसरण करने वाला—तत्वों का ज्ञाता—गौ और ब्राह्मणों में रति रखने वाला गङ्गा और यमुना के मध्य में स्नान किया हुआ पुरुष किल्विष से मुक्त हो जाया करता है। मन के द्वारा चिन्तन किये हुए कामनाओं को जो बहुत ही अधिक हैं प्राप्त किया करता है ।।१५, १६।। इसके अनन्तर प्रयाग में पहुँच कर जो सब देवों के द्वारा अभिरक्षित है, ब्रह्मचारी को एक मास पर्यन्त वहाँ पर निवास करना चाहिये। जहाँ-जहाँ पर अभिजात होता है ईप्सित कामों अर्थात् मनोरथों को प्राप्त किया करता है ।। १७ ।। तपन अर्थात् सूर्य की पुत्री देवी तीनों लोकों में परम विश्रुत हैं। वह महाभागा यमुना नदी वहाँ पर समागता हुई है। वहाँ पर साक्षात् देव महेश्वर नित्य ही सन्निहित रहा करते हैं ।। १८ ।। हे युधिष्ठिर ! मनुष्यों के द्वारा दुष्प्राप्य पुण्य वाला प्रयाग है देव-दानव-गन्धर्व-ऋषिगण-सिद्ध और चारण हे राजेन्द्र ! उसका उपस्पर्श करके स्वर्गलोक की उपासना किया करते हैं ।। १९ ।।

५० —भारतवर्ष वर्णन

यदिदं भारतवर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादयः ।
चतुर्दशैव मनवः प्रजासर्गं ससर्जिरे ॥१
एतद्वेदितुमिच्छामः सकाशात्तव सुव्रत !
उत्तरश्रवणं भूयः प्रब्रूहि वदतां वर ! ॥२
एतच्छ्रुत्वा ऋषीणां तु प्राब्रवील्लोमहर्षणिः ।
पौराणिकस्तदा सूत ! ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥३
बुद्ध्या विचार्य बहुधा विमृश्य च पुनः पुनः ।
तेभ्यस्तु कथयामास उत्तरश्रवणं तदा ॥४
अथाह वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः ।
भरणात्प्रजनाच्चैव मनुर्भरत उच्यते ॥५
निरुक्तवचनैश्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ।
यतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः ॥६
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौकर्मविधिः स्मृतः ।
भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान्निबोधत ॥७

ऋषिगण ने कहा—जो यह भारतवर्ष है जिसमें स्वायम्भुव आदि मुनिगण अर्थात् मनु चौदह ही हुए हैं जिन्होंने प्रजाओं के सर्ग की रचना की थी ॥ १ ॥ हे सुव्रत ! मैं आपके सकाश से यह जानना चाहता हूँ। हे बोलने वालों में परमश्रेष्ठ ! आप उत्तर श्रवण को पुनः बोलिये ॥ २ ॥ ऋषियों के इस वचन को सुनकर उस समय में लोम हर्षण पौराणिक सूतजी भावितात्मा ऋषियों से कहा ॥ ३ ॥ बुद्धि से बहुत बार विचार करके और पुनः पुनः विमर्श करके उस समय में उनसे उत्तर श्रवण को कहा था ॥ ४ ॥ सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर इस भारतवर्ष में प्रजाओं का मैं वर्णन करूँगा। भरण करने से और प्रजनन करने से मनु भरत इस नाम से कहा जाता है ॥ ५ ॥ निरुक्त वचनों के द्वारा

ही यह वर्ष भारत कहा गया है क्योंकि यहीं स्वर्ग—मोक्ष और मध्यम कहा गया है ॥ ६ ॥ अन्य किसी भी स्थान में भूमि में मनुष्यों की कर्म विधि नहीं कही गयी है। इस भारतवर्ष के नौ भेदों को समझ लो ॥ ७ ॥

इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥८
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रन्तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥९
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गाया प्रवहावधिः ।
तिर्यगूर्द्ध्वन्तु विस्तीर्णं सहस्राणि दशैव तु ॥१०
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः ।
यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे ॥११
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुधवणिज्याद्यै वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥१२
तेषां संव्यवहारोऽयं वर्तनन्तु परस्परम् ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानान्तु स्वकर्मसु ॥१३
सङ्कल्पपञ्चमानान्तु आश्रमाणां यथाविधि ।
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिरिह मानुषे ॥१४

इन्द्रद्वीप—कशेरु—ताम्रवर्ण—गभस्तिमान्—नागद्वीप—सौम्य—गन्धर्व—वारुण—यह उनमें सागर से संवृत नवम द्वीप है। यह द्वीप दक्षिणोत्तर एक सहस्र योजनों वाला है। इसका आयतन कन्या कुमारी से गङ्गा के प्रवाह की अवधि है। तिर्यक् और ऊर्ध्व में दश सहस्र विस्तार से युक्त है ॥८, ९, १०॥ द्वीप यह उपनिविष्ट है और सब ओर अन्त भागों में म्लेच्छों से घिरा हुआ है। यवन और किरात इसके अन्त में पूर्व

पश्चिम में हैं। मध्य में भाग से ब्राह्मण—क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हैं। इज्या युत वाणिज्य आदि का वर्त्तन करते हुए व्यवस्थित हैं ॥११, १२॥ उनका यह सव्यवहार है और परस्पर में वर्त्तन हैं। वर्णों का अपने कर्म्मों में धर्म्म-अर्थ और काम से संयुक्त है। सकल्प पञ्चमो आश्रमों की यहां पर यथाविधि स्वर्ग और अपवर्ग के लिये मानुष जीवन में प्रवृत्ति होती है ॥१३, १४॥

यस्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्यग्यामः प्रकीर्त्तितः।
य एनं जयते कृत्स्नं स सम्राडिति कीर्त्तितः। १५
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षजितां।
स्वराठसौ स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात् ॥१६
सप्त चास्मिन् महावर्षे विश्रुता कुलपर्वताः।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमान् ऋक्षवानपि ॥१७
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च इत्येते कुलपर्वताः।
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपतः ॥१८
अभिज्ञातास्ततश्चान्ये विपुलाश्चित्रसानवः।
अन्येतेभ्यः परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ॥१९
तैर्विमिश्रा जानपदा आर्या म्लेच्छाश्च सर्वतः।
पिबन्ति बहुला नद्यो गङ्गासिन्धुः सरस्वती ॥२०
शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा।
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ॥२१
गोमती धौतपापा च बाहुदा च दृषद्वती।
कौशिकी तु तृतीया च निश्चला गण्डकी तथा॥
इक्षुर्लोहितमित्येता हिमवत्पादनिःसृताः ॥२२॥

जीत लेता है वह लोक में स्वराट् कहा जाता है। अब पुनः विस्तार पूर्वक कहूंगा ॥१६॥ इस महावर्ष में सात कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं। उन सातों के नाम ये है–महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य, पारिमात्र, ये ही सात कुल पर्वत कहे जाते हैं। इन कुल के सहस्रों समीप में अन्य पर्वत भी होते हैं। इनके पश्चात् वे अन्य बहुत से विचित्र शिखरों वाले अभिज्ञात हैं। उनसे भी अन्य ह्रस्व और ह्रस्वों के उपजीवी परिज्ञात हैं ॥१७, १८, १॥ उनसे मिले हुए जनपद हैं जो सब ओर आर्य और म्लेच्छ हैं। गङ्गा, सिन्धु और सरस्वती इन बहुत-सी नदियों का दान किया करते हैं॥ ०॥ शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, ऐरावती वितस्ता, विशाला, देविका, कुहू, गोमती, धौतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, निश्चला, गण्डकी, इक्षुलोहित, ये इतनी नदियां हिमवान् के पार्श्व भाग से निःसृत हुई हैं॥२१, २२॥

वेदस्मृतिर्वेत्रवती वृतघ्नी सिन्धुरेव च।
पर्णाशा नमदा चैव कावेरी महती तथा ॥२३
पारा च धन्वतीरुपा विदुपावेणुमत्यपि।
शिप्राह्यवन्ती कुन्ती च पारियात्राश्रिता स्मृताः ॥२४
मन्दाकिनीदशार्णा च चित्रकूटा तथैव च।
तमसापिप्पलीश्येनी तथा चित्रोत्पलापि च ॥२५
विमला चञ्चलाचैव तथा च धूतवाहिनी।
शुक्तिमन्ती शुनी लज्जामुकुटाह्लदिकापि च॥
ऋष्यवन्तप्रसूतास्तानथामलजला शुभा ॥२६॥
तापपीयोष्णा निर्विन्ध्याक्षिप्रा च ऋषभा नदी।
वेणावैतरणी चैव विश्वमालाकुमुद्वती ॥२७
तोया चैव महागौरीदुर्गमातुशिला तथा
विन्ध्यपादप्रसूतास्ताः सर्वाः शीतजला शुभाः ॥२८
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणी च वञ्जुला।

तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्याकावेरी चैव तु ॥
दक्षिणापथनद्यस्ता सह्यपादाद्विनि सृता ॥२६

वेदस्मृति, वेत्रवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु पर्णाशा, नर्मदा, कावेरी, महती, पारा, धवन्तीरूपा, विदुषा, वेणुमती, शिप्रा, अवन्ती, कुन्ती, ये समस्त नदियां पारियात्र नाम वाले कुल पर्वत के आश्रित रहने वाली हैं ऐसा ही कहा गया है ॥२३, २४॥ मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पली, श्येनी, चित्रोत्पला, विमला, चञ्चला, धूत, वाहिनी, शुक्तिमन्ती, शुनी, लज्जा, मुकुटा, ह्रदिका, ये सब नदियों का उद्गम स्थल ऋष्यवान् कुल पर्वत होता है। इनके जल बहुत ही अमल और शुभ हैं ॥२५, २६॥ तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, ऋषिभा, वेणा, वैतरिणी, विश्वमाला, कुमुद्वती, तोया, महद्गौरी, दुर्गमा, शिला, ये समस्त नदियाँ विन्ध्य कुल पर्वत से उत्पन्न हुई हैं। ये सब परम शीतल और शुभ जल वाली होती हैं ॥२७, २८॥ गोदावरी, भीमरथी, कृष्ण वेणी, वञ्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, बाह्या कावेरी, ये समस्त नदियाँ दक्षिणा पथ वाली हैं और सह्याद्रि कुल पर्वत के पाद से विनि सृत हुई हैं ॥२९॥

कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा ह्युत्पलावती ।
मलयप्रसूता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥३०
त्रिभागा ऋषिकुल्या च इक्षुदा त्रिदिवाचला ।
ताम्रपर्णी तथा मूली शरवाविमला तथा ॥
महेन्द्रतनयाः सर्वाः प्रख्याताः शुभगामिनीः ॥३१॥
काशिवासुकुमारी च मन्दगामन्दवाहिनी ।
कपा च पाशिनीचैव शुक्तिमन्तात्मजास्तुताः ॥३२
सर्वाः पुण्यजलाः पुण्याः सर्वगाश्च समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः शुभाः ॥३३
तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
तास्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ॥३४

शूरसेना भद्रकारा वाह्याः सहपटच्चराः ।
मत्स्याः किराताः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ॥
आवन्ताश्च कलिङ्गाश्च मूकाश्चैवान्धकैः सह ।
मध्यदेशाजनपदा प्रायशः परिकीर्तिताः ॥३६

कृतमाला—ताम्रपर्णी—पुष्पजा—उत्पलावती—ये सब नदियाँ मलय आदि प्रसून होने वाली हैं और ये सभी अति शीतल एवं परम शुभ जल वाली हैं ॥३०॥ त्रिभागा, ऋषि, कुल्या, इक्षुदा, त्रिदिवला, ताम्रपर्णी, मूली, शरवा, विमला ये सब नदियाँ महेन्द्र गिरि से समुत्पन्न होने वाली हैं और शुभगमन करने वाली प्रख्यात हैं ॥३१॥ काशिका सुकुमारी, मन्दगा मन्द वाहिनी, कृपा-पाशिनी ये सब नदियाँ शुक्तिमन्त कुल पर्वत से प्रसव प्राप्त करने वाली हैं। ये सभी पुण्य जलवाली, पुण्यमयी, सर्वत्रगमन करने वाली और समुद्र गामिनी हैं। ये सभी इस विश्व की माताएँ हैं और सब पापों के हरण करने वाली तथा परम शुभ हैं ॥३२,३३॥ इन सरिताओं के जिनके नामों का यहाँ पर अभी उल्लेख किया गया है इनकी सैकड़ों और सहस्रों ही अन्य नदियाँ तथा उपनदियाँ हैं। इनमें ये कुरु—पाञ्चाल—शाल्व—सजाङ्गल—शूरसेन—भद्रकार—वाह्य—सहपटच्चर—मत्स्य—किरात—कुल्य—कुन्तल—काशिकोशल—अवन्त कलिङ्ग—मूक—अन्धाक ये सब मध्यदेश के जानपद परिकीर्तित किये गये हैं ॥ ३४, ३५, ३६ ॥

सह्यस्यानन्तरे चैते तत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नाया स प्रदेशो मनोरमः ॥३७
यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः ।
रामप्रियार्थं स्वर्गीयावृक्षादिव्यास्तथौषधीः ॥३८
भरद्वाजेन मुनिना प्रियार्थमवतारिताः
ततः पुष्पवरो देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥३६
वाल्हीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।

पुरन्ध्राश्चैव शूद्राश्च पल्लवाश्चात्तखण्डिकाः ॥४०
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ।
शकाद्र ह्या पुलिन्दाश्चपारदाहारमूर्त्तिकाः ॥४१
रामठाःकण्टकाराश्च कैकेया दशनामकाः ।
क्षत्रियोपनिवेश्याश्च वैश्याः शूद्रकुलानि च ॥४२
अत्रयोऽथ भरद्वाजाः प्रस्थलाः सदसेरकाः ।
लम्पकास्तलगानाश्च सैनिकाः सह जाङ्गलैः ॥
एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान्देशान्निबोधत ।४३॥

ये सभी सह्य अद्रि के अनन्तर मे हैं वही पर गोदावरी नदी है। सम्पूर्ण पृथ्वी मे वह प्रदेश परम सुन्दर है ॥३७॥ जहाँ पर गोवर्द्धन नाम वाला मन्दर और गन्ध मादन है तथा श्रीराम प्रियार्थं स्वर्गीय वृक्ष तथा दिव्य ओषधियाँ हैं ॥३८॥ भरद्वाज मुनि के द्वारा प्रियार्थ अवतरित किये गये हैं। इसके पश्चात उसने पुष्पवर एक मनोरम देश उत्पन्न किया था ॥३९॥ वाह्लीक-वाटधान आभीर-कालतोयक-अरन्ध्र-शूद्र-पल्लव-भात्तखण्डिक- गान्धार-यवन-सिन्धु सौवीर मद्रक-शक-द्रुह्य-पुलिन्द पारदा हारमूर्त्तिक--रामठ -कण्टकार- कैकेय दशनामक क्षत्रियो के उपनिवेश के योग्य तथा वैश्य और शूद्र कुल हैं ॥ ४०, ४१, ४२ ॥ अत्रय -भारद्वाज —प्रस्थल--सहसेरक--लम्पक--तलगान और जाङ्गलो के साथ सैनिक ये सब उदीच्य (उत्तर दिशा मे होने वाल) हैं। अब जो प्राची (पूर्व दिशा मे होने वाले) देश है उनको भी समझ लो ॥ ४३ ॥

अङ्गा वङ्गा मद्गुरका अन्तर्गिरिर्बहिर्गिरो ।
सुह्योत्तरा प्रविजया. मार्गवागेयमालवाः ॥४४
प्राग्ज्यातिपाश्च पुण्ड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तका. ।
शाल्वमागधगोनद प्राच्या जनपदा स्मृताः ॥४५
तेषा परे जनपदा दक्षिणापथवासिन. ।

पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुल्यास्तथैव च ॥४६
सेतुका सूतिकाश्चैव कुपथावाजिवासिकाः ।
नवराष्ट्रामाहिषिकाःकलिङ्गाश्चैवसर्वदाः ॥४७
कारूषाश्चसहैषीका आटव्या.शवरास्तथा ।
पुलिन्दाविन्ध्यपुषिका वैदर्भा दण्डकैःसह ॥४८
कुलीयाश्च सिरालाश्च रूपसास्तापसैःसह ।
तथातैत्तिरिकाश्चैव सर्वे कारस्करास्तथा ॥४९

अङ्ग–वङ्ग–मद्गुरक–अन्तर्गिरि –बहिर्गिर–मुह्योत्तर–प्रविजय–मार्गवागेय मालव—प्राग्ज्योतिष—पुण्ड्र—विदेह—ताम्रलिप्तक—शाल्व—मागधा—गोनर्द —ये सब प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा में होने वाले जनपद कहे गये हैं ॥ ४४, ४५ ॥ इनसे भी पर जनपद दक्षिण पथवासी हैं। पाण्ड्य—केरल चोल—कुल्य— सेतुक—सूतिक और कुपथावाजि, नासक ये नव राष्ट्र माहिषिक हैं और कलिङ्ग सभी ओर हैं ॥ ४६, ४७ ॥ कारुष—सहैषीक—आटव्य—शबर—पुलिन्द—विन्ध्यपुषिक —वैदर्भ — दण्डक कुलीय—सिराल—रूपस—तापस—तैत्तिरक तथा सब कारस्कार हैं ॥ ४८, ४९ ॥

वासिकाश्चैव ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः ।
भारुमच्छाःसमाहेया सह सारस्वतैस्तथा ॥५०
काच्छीकाश्चैवसौराष्ट्रा आनर्त्ताअर्बुदैःसह ।
इत्येतेअपरान्तास्तुश्रृणु ये विन्ध्यवासिनः ॥५१
मालवाश्चकरूषाश्चमेकलाश्चोत्कलैःसह ।
औण्ड्रामाषादशार्णाश्चभोजा किष्किन्धकैःसह ॥५२
स्तोशला कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ।
तुमुराम्तुम्बराश्चैव पद्गमा नैषधैः सह ॥५३
अरूपाःशौण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा अवन्तयः ।
एते जनपदा ख्याताविन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥५४

अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ।
निराहाराः सर्वगाश्चकुपथा अपथास्तथा ॥५५
कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णादर्वा समुद्गकाः ।
त्रिगर्ता मण्डलाश्चैव किराताश्चामरैः सह ॥५६
चत्वारि भारतेवर्षे युगानि मुनयोऽब्रुवन् ।
कृत त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥
तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टाच्च कृत्स्नशः ॥५७॥

1

जम्बूखण्डस्य विस्तारं तथान्येषाविदाम्वर ! ।
द्वीपानां वासिनातेषावृक्षाणां प्रब्रवीहि नः ॥६०
पृष्टस्त्वेव तदा विप्रैर्यथाप्रश्न विशेषतः ।
उवाच ऋषिभिर्दृष्टं पुराणाभिमतं यथा ॥६१
शुश्रूषवस्तु यद्विप्राः शुश्रूषध्वमतन्द्रिताः ।
जम्बूवर्षः किंपुरुषः सुमहान्नन्दनोपमः ॥६२
दशवर्षसहस्राणि स्थितिः किम्पुरुषे स्मृता ।
जायन्ते मानवास्तत्र सुतप्तकनकप्रभाः ॥६३

मत्स्य भगवान् ने कहा—उन ऋषियों ने यह श्रवण करके पुनः उत्तर श्रवण करने की इच्छा वाले उन ऋषियों ने लोमहर्ष से अच्छी तरह से कहा ॥ ५८ ॥ ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! आपने भारत का वर्णन तो कर दिया है । अब जो किम्पुरुष वर्ष तथा हरिवर्ष है उनका भी वर्णन यथातत्त्व करने की कृपा कीजिये ॥ ५९ ॥ हे विदाम्वर ! जम्बू खण्ड का विस्तार तथा अन्य द्वीपों का भी विस्तार उनके वासियों के एवं वृक्षों के विषय में हमको बतलाईये ॥ ५९, ६० ॥ उस समय में विप्रों के द्वारा इस प्रकार से पूछे गये महर्षि ने विशेष रूप से प्रश्नों के अनुसार ही जैसा कि ऋषियों ने देखा था और जो पुराणों मे अभिमत था कहा था ॥ ६१ ॥ महर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र प्रवरो ! आप लोग सब जो भी श्रवण करने की इच्छा वाले हो उसको अब अतन्द्रित होकर श्रवण कीजिए । जम्बू वर्ष और किम्पुरुष सुमहान् और नन्दन के समान हैं । दस सहस्र वर्ष तक किम्पुरुष में स्थिति कही गई है । वहाँ पर भली भाँति तपाये हुए सुवर्ण की कान्ति के समान कान्ति वाले मानव उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ ६२, ६३ ॥

वर्षे किंपुरुषे पुण्ये प्लक्षो मधुवहः स्मृतः ।
तस्य किंपुरुषाः सर्वे पिबन्तो रसमुत्तमम् ॥६४
अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः ।

सुवर्णवर्णाश्चनरा स्त्रियश्चाप्सरसःस्मृता ॥६५
तत पर किम्पुरुषात् हरिवर्ष प्रचक्षते ।
महारजतसङ्काशा जायते यत्र मानवा ॥६६
देवलोक-च्युता सर्वे बहुरूपाश्च सवश ।
हरिवर्षे नरा सर्वे पिबन्तीक्षुरस शुभम् ॥६७
न जरा बाधते तत्र तेन जीवन्ति ते चिरम् ।
एकादशसहस्राणि तेषामायु प्रकीर्तितम् ।६८
मध्यम त मया प्रोक्त नाम्ना वर्षमिलावृतम् ।
न तत्र सूर्यस्तपति नच जीर्यन्ति मानवा ॥६६
चन्द्रसूर्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते ।
पद्मप्रभा पद्मवर्णा पद्मपत्रनिभेक्षणा ।७०

परम पुण्यमय किम्पुरुष वर्ष मे एक मधु के वहन करने वाला प्लक्ष को बतलाया गया है । उस प्लक्ष के अत्युत्तम रस को सभी किम्पुरुष पान करने वाले हैं ॥६४॥ वे सभी आमय (रोग) से रहित-शोक से वर्जित और नित्य ही परम मुदित मन वाले हैं । वहा के नर सुवर्ण के तुल्य वर्ण वाले हैं और स्त्रियाँ भी इतनी अधिक सुन्दरी हैं कि वे सब अप्सराएँ ही कही गयी है ॥६५॥ उससे आगे अर्थात् किम्पुरुष के पीछे हरि वर्ष कहा जाता है जहा पर महान् रजत के तुल्य मानव समुत्पन्न हुआ करते हैं ।६६॥ सभी वहा के मनुष्य देव लोक च्युत हुए हैं और सब सभी ओर बहुत रूप वाले हैं । उस हरि वर्ष मे सब मनुष्य परम शुभ इक्षु का रस पीया करते हैं ।६७। उन मनुष्यों को वृद्धता कुछ भी बाधा नहीं दिया करती है इसीलिये वे लोग चिरकाल तक जीवित रहा करते हैं । उन पुरुषों की आयु ग्यारह सहस्र वर्ष की बतलायी गयी है ॥६८॥ मध्यम जो हमने बतलाया है वह इलावृत वर्ष नाम वाला है । वहा पर कभी भी सूर्य का ताप नहीं रहता है और वहा मानव भी जीर्ण नहीं रहा करते है ॥६६॥ इलावृत वर्ष मे नक्षत्रों के सहित सूर्य और चन्द्र

दोनों ही प्रकाश रहित रहते हैं और वहां के रहने तथा उत्पन्न होने वाले मानवों की पद्म के सदृश प्रभा होती है—पद्म के तुल्य ही उनका वर्ण होता है और पद्म पत्र के समान ही उनके नेत्र हुआ करते हैं ॥७०॥

पद्मगन्धाश्च जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः ।
जम्बूफलरसाहारा अनिष्पन्दाः सुगन्धिनः ॥७१
देवलोकच्युताः जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः ।
त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणान्ते नरोत्तमाः ॥७२
आयु प्रमाणं जीवन्ति ये तु वर्षेइलावृते ।
मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण वा ॥७३
सुदर्शनो नाम महान् जम्बूवृक्षः सनातनः ।
नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः ॥७४
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पतेः ।
योजनानांसहस्रञ्च शतधाचमहानृपुन ॥७५
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवमावृत्य तिष्ठति ।
तस्य जम्बूफलरसो नदी भूत्वा प्रसर्पति ॥७६
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा जम्बूमूलगता पुनः ।
तं पिबन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसमिलावृते ॥७७
जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधतेऽपि तान् ।
न क्षुधा न क्लमो वापि न दुःखञ्च तथाविधम् ॥७८

इलावृत मे जो भी उत्पन्न हुआ करते हैं उन सभी मनुष्यों मे पद्म के समान गन्ध हुआ करती है। वे सब जम्बू फलो के रस का आहार करने वाले-निष्पन्दन से रहित और सुगन्ध वाले होते हैं ॥७१॥ वे सब देव लोक से ही च्युत होने वाले हैं और महान् रजत के वस्त्र धारी हैं। उन नरोत्तमों की आयु तेरह सहस्र वर्षों की हुआ करती है ॥७२। जो इलावृत मे रहते हैं वे सब अपनी पूर्ण आयु तक जीवित रहा करते हैं

अर्थात् मध्य में किसी की भी मृत्यु का अवसर वहां पर आता ही नहीं है। मेरु पर्वत के दक्षिण पार्श्व में और निषध के उत्तर की ओर एक महान् सुदर्शन नाम वाला जामुन का वृक्ष है जो हमेशा से चले आने वाला सनातन है। उस वृक्ष पर नित्य ही पुष्प और फल रहा करते हैं। ॥७३, ७४॥ उसी वनस्पति के नाम से जम्बूद्वीप समाख्यात हो गया है। उस वृक्ष का महान् उत्सेध (ऊंचाई है जो एक सहस्र एक सौ योजन है। यह वृक्षराज दिव लोक को समावृत करके ही वहां पर स्थित रहता है। उसके जम्बूफल भी बड़े ही विशाल होते हैं जो कि उनके रस से एक सरिता की रचना होकर वह प्रसर्पण किया करती है। वह नदी मेरु की प्रदक्षिणा करके उस जम्बू के मूल में पुनः गई थी। इलावृत में वहां के प्राणी सर्वदा प्रसन्न होते हुए उस जम्बू रस का पान किया करते हैं ॥७५॥ ॥७६, ७७॥ उस जम्बू वृक्ष के रस को पीकर उन्हें फिर वृद्धता कभी बाधा नहीं किया करती है। उन्हें न तो कभी क्षुधा ही सताती है और न कोई क्लम ही हुआ करता है तथा उस प्रकार का कोई दुःख ही हुआ करता है ॥७८॥

तत्र जाम्बूनद नाम कनकं देवभूषणम् ।
इन्द्रगोपकसङ्काशं जायते भासुरञ्च यत् ॥७६॥
सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः ।
स्कन्नन्तु काञ्चनं शुभ्रं जायते देवभूषणम् ॥८०
तेषां मूत्रं पुरीषं वा दिक्ष्वष्टासु च सर्वशः ।
ईश्वरानुग्रहाद्भूमिर्मृतांश्च ग्रसते तु तान् ॥८१
रक्षः पिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतास्तु ते ।
हेमकूटे तु विज्ञेया गन्धर्वाः साप्सरोगणाः ॥८२
सर्वे नागा निषेवन्ते शेषवासुकितक्षकाः ।
महामेरौ त्रयस्त्रिंशत् क्रीडन्ते यज्ञियाः शुभाः ॥८३
नीलवैडूर्ययुक्तेऽस्मिन् सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽवसन् ।

दैत्यानां दानवानाञ्च श्वेतः पर्वत उच्यते ।।८४
शृङ्गवान् पर्वतश्रेष्ठ पितृणां प्रतिसञ्चर ।
इत्येतानि मयोक्तानि नव वर्षाणि भारते ।।८५
भूतैरपि निविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।
तेषां बुद्धिर्बहुविधा दृश्यते देवमानुषे ।।८६
अशक्या परिसंख्यातु श्रद्धेया च विभूषता ।।८६।।

यहाँ पर जाम्बूनद नाम वाला सुवर्ण देवों का भूषण होता है जो इन्द्रगोप के सदृश और भासुर हुआ करता है ।।७६।। वह फलों का रस सब वर्ष के वृक्षों का परम शुभ होता है । जब स्कन्न होता है तो वह शुभ्र देव काञ्चन हो जाता है ।।८०।। उनका मूत्र और पुरीष आठों दिशाओं मे सब ओर जाता है । ईश्वर के अनुग्रह से भूमि मृत उनको ग्रसा करती है ।८१।। राक्षस —पिशाच— यक्ष सब ये हेमवत हैं । हेम कूट में गन्धर्व और अप्सरा गण जानने चाहिए अर्थात् गन्धर्व और अप्सरायें रहा करते हैं । शेष—वासुकि और तक्षक आदि सब नाग उसका सेवन किया करते हैं । महा मेरु मे तेतीस याज्ञिय क्रीडा किया करते हैं । ।।८२, ८३।। नीलमणि और वैदूर्यमणि से युक्त इसमे सिद्ध और ब्रह्मर्षि गण निवास किया करते थे । दैत्यों का और दानवों का पर्वत श्वेत कहा जाता है ।।८४।। शृङ्गवान् श्रेष्ठ पर्वत पितृगण का सञ्चर स्थल है । ये मैंने भारत मे नौ वर्ष बतला दिये हैं ।।८५।। भूतों के द्वारा भी निविष्ट हैं—गतिमान् हैं और ध्रुव हैं । उनकी बुद्धि देव मानुषों के द्वारा बहुत प्रकार की दिखलाई दिया करती है । वह परिसंख्या करने में अशक्त है—श्रद्धा करने के योग्य है और विभूषत है ।।८६।।

५१—हिमवद् वर्णनम्

आलोकयन्नदी पुण्यान्तत्समीपहृतश्रम. ।
स गच्छन्नेव ददृशे हिमवन्त महागिरिम् ।।१
खमल्लिद्भिर्बहुभिर्वृतं शृङ्गैस्तु पाण्डुरैः ।
पक्षिणामपि सञ्चारैर्विना सिद्धगति शुभम् ।।२
नदीप्रवाहसञ्जातमहाशब्दैः समन्ततः ।
अश्रुतान्यशब्दन्त शीततोयं मनोरमम् ।।३
देवदारुवनैर्नीलै कृताधोवसनं शुभम् ।
मेघोत्तरीयकं शैल ददृशे स नराधिप. ।।४
श्वेतमेघकृतोष्णीष चन्द्रार्कमुकुट क्वचित् ।
हिमानुलिप्तसर्वाङ्ग क्वचिद्धातुविमिश्रितम् ।।५
चन्दनेनानुलिप्ताङ्ग दत्तपञ्चाङ्गुल यथा ।
शीतप्रद निदाघेऽपि शिलाविकटसङ्कटम् ।।
सालक्तकैरप्सरसा मुद्रित चरणं. क्वचित् ।।६।।
क्वचित्स्पृष्टसूर्या शु क्वचिच्च तमसावृतम् ।
दरीमुखैः क्वचिद्भीमै. पिबन्त सलिल महद् ।।७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—परम पुण्यमयी नदी का अव लोकन करता हुआ उसके समीप मे हृतश्रम वाला होकर वह जाता हुआ ही महान् गिरि हिमवान् को देखता था ।।१।। यह हिमवान् पाण्डुर वर्ण वाले—आकाश को छने वाले बहुत से शिखरो से वृत है और पक्षियो के सञ्चारो के बिना परम शुभ और सिद्धगति वाला है ।।२।। नदियों के प्रवाह के कारण समुत्पन्न महान् घोर शब्दों से सभी ओर अन्य कोई भी शब्द वहां सुनाई नहीं देता है और वह परम मनोरम तथा शीतल जल वाला है ।। ३ ।। देवदारु के नील वर्ण वाले वन जो उसके नीचे वाले भाग मे हैं वेही मानों उसका अतीव सु। अधोवसन

है और जो उसके ऊपर मेघों का घिराव रहता है वही उसका उत्तरीय वस्त्र है ऐसा यह शैल एक राजा ही की भाँति दिखलाई देता था ॥४॥ श्वेत वर्ण का जो मेघ है वही मानो उसके मस्तक की पगड़ी है। कहीं पर चन्द्रमा और सूर्य ही उसके मुकुट की शोभा किया करते हैं। हिमालय सर्वदा हिम से अनुलिप्त समस्त अङ्गों वाला है और कहीं पर धातु से भी विभूषित है। अर्थात् हिमालय में जहाँ-तहाँ धातुएँ भी दिखलाई दिया करती हैं ॥५॥ दस पञ्चाङ्गुल को भाँति चन्दन से अनुलिप्त अङ्गों वाला है और ग्रीष्म ऋतु में भी शीत प्रदान करने वाला है तथा विकट विशाल शिलाओं से सङ्कीर्ण है। वहाँ पर अलक्त जिनमें लगा हुआ है ऐसे अप्सराओं के चरणों से भी चिह्नित है ॥६॥ हिमालय ऐसा एक परम विशाल पर्वत है कि कहीं पर तो उसमें सूर्य की किरणों का सस्पर्श होता है और कहीं पर एक दम अन्धकार से ही समावृत रहा करता है। किसी स्थल पर ऐसी विशाल गुफाएँ हैं जो महान् भीषण दिखलाई दिया करती हैं और उनके द्वारा सलिल का पान अत्यधिकता के साथ किया करता है ॥७॥

क्वचिद्विद्याधरगणैः क्रीडद्भिरुपशोभितम् ।
उपगीतं तथा मुख्यैः किन्नराणाङ्गणैः क्वचित् ॥८
आपानभूमौ गलितैर्गन्धर्वाप्सरसां क्वचित् ।
पुष्पैः सन्तानकादीनां दिव्यैस्तमुपशोभितम् ॥९॥
सुप्तोत्थिताभिः शय्याभिः कुसुमानां तथा क्वचित् ।
मृदिताभिः समाकीर्णं गन्धर्वाणां मनोरमम् ॥१०
निरूढपवनैर्दशैर्नीलशाद्वलमण्डितैः ।
क्वचिच्च कुसुमैर्युक्तमत्यन्तरुचिरं शुभम् ॥११
तपस्विचरणं शैलं कामिनामतिदुर्लभम् ।
मृगैर्यथानुचरितैर्दन्तिभिन्नमहाद्रुमम् ॥१२
यत्र सिंहनिनादेन त्रस्तानां भैरवं रवम् ।

दृश्यते न च सभ्रान्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥१३
सटाश्च तापसैर्यत्र कुञ्जदेशैरलङ्कृता ।
रत्नैर्यस्यसमुत्पन्नैस्त्रैलोक्यसमलङ्कृतम् ॥१४

इस हिमालय पर्वत राज पर कहीं पर कुछ ऐसे भी स्थल विद्यमान हैं जो क्रीड़ा करने वाले विद्याधर गणों के द्वारा उपशोभित रहा करते हैं और किसी स्थान पर मुख्य किन्नरों के गण गीतों का गायन किया करते हैं ॥८॥ कहीं पर आपान भूमि में गन्धर्व और अप्सराओं के गलित (गिरे हुए) सन्तानक आदि देव वृक्षों के पुष्पों से यह उपशोभित रहता है। ६॥ कुछ स्थल ऐसे भी इस हिमालय में हैं जो गन्धर्वों की सोकर उठाई हुई पुष्पों की मृदित शय्याओं से समाकीर्ण और मनोरम हैं ॥१०॥ कहीं पर ऐसे भी स्थल हैं जो नील वर्ण की शाड्वल (घास) से विभूषित और जिनमें पवन का एकदम निरोध रहता हो ऐसे देशों से तथा कुसुमों से युक्त और अत्यन्त ही रुचिर एवं शुभ हैं। ११॥ यह पर्वत हिमवान् तपस्वियों की पूर्णतया रक्षा करने वाला है और जो काम वासना वाले लोग हैं उन को तो अत्यन्त ही दुर्लभ है। यह हाथियों के द्वारा भिन्न महा द्रुमों वाला है तथा मृगों को भीत अनु चरित है। ॥१२॥ यह हिमवान् ऐसा गिरि है जिसमें सिंहों की गर्जना की भैरव (भयावह) ध्वनि नहीं होती है जिससे कि भयभीत होकर जन्तु कोई भीति सूचक शब्द किया करें। वहाँ पर हाथियों का समुदाय सम्भ्रान्त और समाकुल नहीं दिखलाई दिया करता है ॥१३ जिसमें कुञ्जदेश तापसों से सदा समलंकृत रहा करते हैं। हिमालय में अनेक अद्भुत महा मूल्यवान् रत्न समुत्पन्न हुआ करते हैं जिनसे यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य विभूषित होता है ॥१४॥

अहीनशरणं नित्यमहीनजनसेवितम् ।
अहीनं पश्यति गिरिं महीनं रत्नसम्पदा ॥१५
अल्पेन तपसा यत्र सिद्धिं प्राप्स्यन्ति तापसाः ।
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वकल्मषनाशनम् ॥१६

महाप्रपातसम्पातप्रपातादिगताम्बुभिः ।
वायुनीतैः सदा तृप्तिकृतदेश क्वचित् क्वचित् ॥१७
समालब्धजलैः शृङ्गैः क्वचिच्चापि समुच्छ्रितैः ।
नित्यर्कतापविषमैरगम्यैर्मनसा युतम् ॥१८
देवदारुमहावृक्षव्रजशाखानिरन्तरैः ।
वशस्तम्बवनाकारैः प्रदेशैरपशोभितम् ॥१९
हिमच्छन्नमहाशृङ्गं प्रपातशतनिर्झरम् ।
शाद्वलश्यामवुविषम हिमसरुद्धकन्दरम् ॥२०
दृष्ट्वैव त चारुनितम्बभूमि महानुभाव स तु भद्रनाथ ।
बभ्राम मत्रैव मुदा समेतस्थान तदा त्रिन्त्विदथाससाद ॥ २१ ॥

यह हिमवान् नित्य ही अहीनो का शरण अर्थात् आश्रय तथा रक्षक होता है और अहीनो के द्वारा ही भली भाँति सेवित रहा करता है। जो अहीन होता है वही इस गिरि को देखता है तथा यह सवदा रहतो की सम्पत्ति से अहीन ही रहता है ॥१५॥ इसमे बहुत ही स्वल्प तपश्चर्या से तापस लोग सिद्धि की प्राप्ति कर लिया करते हैं जिसके केवल दर्शन से ही सब प्रकार के कल्मषो का तुरन्त ही विनाश हो जाया करता है। ॥१६॥ महान् प्रपातो (झरनो) क सम्पात से अन्य प्रपात आदि मे गत जलो के द्वारा जो कि वायु के द्वारा इधर-उधर किये जाते हैं यह कही-कहीं पर पूर्णतया तृप्ति युक्त प्रदेश वाला रहता है। कहीं पर तो इसकी चोटियाँ ऐसी हैं जहाँ जल समालब्ध रह करता है और कहो पर ये ही शिखरे अत्यन्त ऊँची हैं जो नित्य ही सूर्य के ताप से विषमता युक्त हैं एव अगम्य हैं। इसी प्रकार से यह वनसे युक्त है ॥१७, १८॥ इस गिरि राज मे ऐसे प्रदेश हैं जहाँ पर देवदारु के महान् विशाल वृक्षा का समुदाय रहता है और उनकी शाखायें ऐसी फैली रहा करती हैं कि कुछ भी अवकाश नही रहता है अर्थात् एक दूसरे वृक्ष से घमाघस हैं। वांसो के बडे २ स्तम्भो से विषम वनों वाले प्रदेश से यह शोभा युक्त है। १९॥

बर्फ के ही छत्र से युक्त इस की महान् शिखरें विराजमान रहा करती हैं और सैकडों ही प्रपातों का निर्झरण इसमें होता रहता है। शब्द के द्वारा ही प्राप्त करने के योग्य अन्न से यह अत्यन्त विषम है और इसकी जो कन्दरायें हैं वे भी सर्वदा हिम (बर्फ) से सम्बद्ध रहा करती हैं ॥ २ ॥ अत्यन्त सुन्दर नितम्बों की भूमि वाले उस गिरिराज का देख कर ही वह महानुभाव भद्र नाथ वहीं पर बहुत ही आनन्द के साथ भ्रमण किया करते थे और उस समय में कोई समेत स्थान उन्होंने प्राप्त कर लिया था ॥ २१ ॥

५२–कैलास वर्णन

तस्याश्रमस्योत्तरस्त्रिपुरारिनिषेवित ।
नानारत्नमयै शृङ्गै: कल्पद्रुमसमन्वितै. ।।१
मध्ये हिमवत. पृष्ठे कैलासो नाम पर्वत: ।
तस्मिन्निवसति श्रीमान् कुबेर. सह गुह्यकैः ।।२
अप्सरोऽनुगतो राजा मोदते ह्यलकाधिपः ।

सूतजी ने कहा—उनके आश्रम से उत्तर दिशा की ओर भगवान् त्रिपुरारि शिव के द्वारा निषेवित तथा कल्पद्रुमों से संयुत एवं अनेक प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण शिखरों से समन्वित हिमवान् के मध्य में पृष्ठ पर कैलास नाम वाला पर्वत है उसमें कुबेर अपने गुह्यकों को साथ में लेकर निवास किया करते हैं ॥१, २॥ वहाँ पर अलका पुरी का स्वामी कुबेर राजा सर्वदा अप्सराओं से अनुगत होकर प्रसन्नता का अनुभव किया करते हैं। वहाँ कैलास के पाद से समुत्पन्न परमरम्य एवं शुभ शीतल जल है ॥३॥ जो जल मन्दार नाम वाले देववृक्ष के रज पराग से पूरित रहा करता है और देव के ही सदृश है। उसी जल से एक मन्दाकिनी नाम वाली सरिता जो परम दिव्य है और अत्यन्त शुभ है वहन किया करती है ॥४॥ उस नदी के तीर पर ही वहाँ पर अतीव दिव्य एवं महान् वन है जिसका शुभ नाम नन्दन है। कैलास गिरि से पूर्वोत्तर में एक अति दिव्य सौगन्धिक गिरि है ॥५॥ यह समस्त धातुओं से परिपूर्ण-दिव्य और पर्वत के प्रति सुन्दर वेल वाला है। एक चन्द्रप्रभ नाम वाला भी वहाँ पर पर्वत है जो परम शुभ्र और रत्न के तुल्य है ॥ ६ ॥ उनके ही समीप में एक परम दिव्य अच्छोद नाम से प्रसिद्ध सरोवर है। उस सर से एक शुभ अच्छोदिका नाम वाली नदी उत्पन्न होती है ॥ ७ ॥

तस्यास्तीरे वनं दिव्यं महच्चैत्ररथं शुभम् ।
तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः ॥८
यक्षसेनापतिः क्रूरो गुह्यकैः परिवारितः ।
पुण्या मन्दाकिनी नाम नदी ह्यच्छोदिका शुभा ॥६
महीमण्डलमध्ये तु प्रविष्टे तु महोदधिम् ।
कैलासदक्षिणे प्राच्यां शिवं सर्वौषधिं गिरिम् ॥१०
मनःशिलामयं दिव्यं सुवेलपर्वतं प्रति ।
लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान् ॥११

तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकपावनी ।
तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नाम विश्रुतम् ॥१७
कुबेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी ।
ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ॥१८
कैलासात् पश्चिमामाशां दिव्यः सर्वौषधिर्गिरिः ।
अरुणः पर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः ॥१९
भवस्य दयितः श्रीमान् पार्श्वतो हेमसन्निभः ।
शातकौम्भमयैर्दिव्यैः शिलाजालैः समाचितः ॥२०
शतसहस्रम्लापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन् ।
शृङ्गवान् सुमहादिव्यो दुर्गः शैलो महाचितः ॥२१
तस्मिन् गिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोचनः ।
तस्य पादात् प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः ॥२२

उस चन्द्रमान् में मन्दुरूपी ह्रद की उत्पत्ति होती है। वह दिव्य जल वाला विश्वकुड के प्रति मैत्रकुड गेय है ॥१५॥ वहीं पर सम्पूर्ण धातुओं से परिपूर्ण एक अत्यन्त महान् वैद्युत नाम वाला गिरि है। उस पर्वत के पाद में एक अत्यन्त दिव्य मानस नाम वाला सरोवर है जो सदा सिद्धों के द्वारा सेवित रहा करता है ॥१६॥ उस सरोवर से परम पुण्यमयी लोकों को पावन कर देने वाली सरयू नाम वाली नदी समुद्गम हुआ करती है। उसके तट पर एक अत्यन्त विशाल वैभ्राज नाम से प्रसिद्ध दिव्य वन है ॥१७॥ वहाँ पर कुबेर का अनुचर वशी प्रहेति का पुत्र ब्रह्मधाता निवास किया करता है वह राक्षस अनन्त विक्रम वाला था ॥१८॥ कैलाश पर्वत से पश्चिम दिशा में एक सर्वौषधि गिरि है। वह पर्वत सम्पूर्ण पर्वतों में श्रेष्ठ—अरुण वर्ण वाला और रुक्म (सुवर्ण) धातु से विभूषित होता है ॥१९॥ वह शातकौम्भ मय दिव्य शिलाओं के जालों से चारों ओर समाचित है और हेम सदृश की कान्ति वाला पर्वत भव का अत्यन्त प्यारा है ॥२०॥ शृङ्गों की

तस्यपादे महद्दिव्यं लोहितं सुमहत्सरः।
तस्मान् गिरौ निवसति यक्षोमणिधरोवशी ।१२
दिव्यारण्य विशोकञ्चतस्य तीरे महद्वनम्।
तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षोमणिधरोवशी ॥१३
सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारियः।
कैलासात् पश्चिमोदीच्या ककुद्मानौषधी गिरिः ॥१४

उस अच्छोदिका सरिता के तट पर एक अत्यन्त शुभ—दिव्य और महान् चैत्ररथ नाम वाला वन है। उसमे गिरि पर अपने अनुचरों के साथ मणिभद्र निवास किया करते हैं॥ ८॥ यह यक्षों का अत्यन्त क्रूर सेनापति है जो सर्वदा गुह्यकों से परिवारित रहा करता है और वहाँ पर परम पुण्यमयी मन्दाकिनी नाम वाली अच्छोदिका शुभ नदी बहा करती है॥ ९॥ मही मण्डल के मध्य मे महोदधि मे प्रविष्ट होने पर कैलास के दक्षिण पूर्व मे शिव सर्वौषधि गिरि है॥ १०॥ मैनसिल से परिपूर्ण पर्वत के प्रति सुवेल और दिव्य-हेम की शिखर वाला—लोहित नाम वाला एक महान् सूर्य प्रभ गिरि है जिसकी प्रभा सूर्य के समान है। उस पर्वत के निचले भाग मे महान् दिव्य लोहित नाम वाला ही एक सर है। उसी सर से लौहित्य नाम वाला एक विशाल नद वहन किया करता है॥ ११, १२॥ उस नद के तीर पर एक अति महान्—दिव्य विशोका वन है। उसमें पर्वत पर वशी यक्ष मणिधर निवास किया करता है। वह परम सौम्य और सुधार्मिक गुह्यकों से चारों ओर से घिरा हुआ रहा करता है। कैलास पर्वत से पश्चिमोत्तर दिशा मे ककुद्मान् नाम वाला ओषधियों का गिरि है॥१३, १४॥

ककुद्मति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्मिनः।
तदजनन्त्रैः ककुदं शैलन्त्रिककुद प्रति ॥१५
सर्वधातुमयस्तत्रसुमहान् वैद्युतो गिरिः।
तस्य पादे महद्दिव्य मानस सिद्धसेवितम् ॥१६

तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकपावनी ।
तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राज नामविश्रुतम् ॥१७
कुबेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी ।
ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ॥१८
कैलासात् पश्चिमामाशा दिव्यःसर्वौषधिर्गिरिः ।
अरुणःपर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः ॥१९
भवस्य दयितःश्रीमानपर्वतोहेमसन्निभः ।
शातकौम्भमयैर्दिव्यैःशिलाजालैः समाचितः ॥२०
शतसंख्यैस्तापनीयैः शृङ्गै दिवमिवोल्लिखन् ।
शृङ्गवान् सुमहाद्दिव्यो दुर्गः शैलोमहाचित ॥२१
तस्मिन् शिरो निवसति गिरिशो धूम्रलोचनः ।
तस्य पादात् प्रभवति शैलोद नाम सत्सर । २२

उस ककुद्मान् से रुद्र की उत्पत्ति होती है । यह बिना जल वाला त्रिककुद के प्रति वैककुद शैल है ॥ १५ ॥ यहीं पर सम्पूर्ण धातुओं से परिपूर्ण एक अत्यन्त महान् वैद्युत नाम वाला गिरि है । उस पर्वत के पाद में एक अत्यन्त दिव्य मानस नाम वाला सरोवर है जो सदा सिद्धों के द्वारा सेवित रहा करता है ॥ १६ ॥ उस सरोवर से परम पुण्यमयी लोकों को पावन कर देने वाली सरयू नाम वाली नदी समुत्पन्न हुआ करती है । उसके तट पर एक अत्यन्त विशाल वैभ्राज नाम से प्रसिद्ध दिव्य वन है ॥ १७ ॥ वहाँ पर कुबेर का अनुचर वशी प्रहेति का पुत्र ब्रह्मधाता निवास किया करता है यह राक्षस अनन्त विक्रम वाला था ॥ १८ ॥ कैलास पर्वत से पश्चिम दिशा में एक अतिदिव्य सर्वौषधि गिरि है । यह पर्वत सम्पूर्ण पर्वतों में श्रेष्ठ–अरुण वर्ण वाला और रुक्म (सुवर्ण) धातु से विभूषित होता है ॥ १९ ॥ यह शातकौम्भ मय दिव्य शिलाओं के जालों से चारों ओर समाचित है और हेम सदृश श्री सम्पन्न यह पर्वत भगवान् भव का अत्यन्त प्यारा है ॥ २० ॥ सैकड़ों की

सख्या वाले तापनीय शिखरों से दिवलोक का मन में उल्लेख न करता हुआ—महान् दिव्य शृङ्गवान् महाचित्र शंख तुर्य के समान है ॥ २१ ॥ उस शृङ्ग पर धूम्रलोचन गिरिश निवास करते हैं। उस पर्वत पाद भाग से शैलोद नाम वाला एक सरोवर का प्रभव (उत्पत्ति) होता है ॥ २२ ॥

तस्मात् प्रभवतेपुण्या नदीशैलोदकाशुभा ।
सा चक्षुसी तयोर्मध्ये प्रविष्टापश्चिमोदधिम् ।२३
अस्त्युत्तरेण कलासाच्छिव सर्वौषधोगिरिः ।
गौरन्तु पर्वतश्रेष्ठ हरितालमय प्रति ॥२४
हिरण्यशृङ्ग सुमहान् दिव्योषधिमयो गिरि ।
तस्यपादे महद्दिव्य सर काञ्चनवालुकम् ॥२५
रम्य बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथ ।
गङ्गार्थं स तु गर्जापिरुवास बहुला समाः ॥२६
दिव यास्यन्तु मे पूर्वे गगातोयाप्लुतास्थिकाः ।
तत्र त्रिपथगा देवी प्रथम तु प्रतिष्ठिता ॥२७
सोमपादात् प्रसूता सा सप्तधा प्रविभज्यते ।
यूपामणिमयास्तत्र विमानाश्च हिरण्मया ॥२८
तत्रेष्ट्वा क्रतुभि सिद्ध शक्र सुरगणै सह ।
दिव्यच्छायापथस्तत्रनक्षत्राणान्तुमण्डलम् ॥२९

उस सर से परम पुण्यमयी और अत्यन्त शुभ शैलोदका नाम वाली नदी समुत्पन्न होकर बहती है। वह उन दोनों के मध्य मे चक्षुषी पश्चिम सागर मे प्रविष्ट होती है ॥ २३ ॥ कैलाश के उत्तर भाग मे सर्वौषध शिव गिरि है। यह श्रेष्ठ पर्वत गौर है और हरिताल मय ही होता है। हिरण्य शृङ्ग बहुत ही महान् और दिव्योषधियो से परिपूर्ण गिरि है। उसके चरणो के भाग मे एक महान् दिव्य सर है जिसकी बालुका काञ्चन मयी है। वहाँ पर एक परम रम्य बिन्दुसर नाम वाला

सरोवर है जहाँ पर गङ्गा के लाने के लिये तपश्चर्या करता हुआ राजर्षि राजा भगीरथ बहुत से वर्षों तक रहा था ॥ २४, २५, २६ ॥ राजर्षि का कथन था कि पहिले गङ्गा के पवित्र जल में प्लुत मेरी अस्थियाँ दिव-लोक को चली जावें। वहीं पर त्रिपथ गामिनी देवी सर्व प्रथम प्रतिष्ठित हुई थी ॥ २७ ॥ सोमपाद से समुत्पन्न हुई वह सात भागों में प्रविभक्त की जाती है। वहाँ पर मणियों परिपूर्ण यूप हैं और सुवर्ण से परिपूर्ण अर्थात् स्वर्ण निर्मित विमान हैं ॥ २८ ॥ वहीं पर सुरगणों के सहित इन्द्र-देव ऋतुओं के द्वारा यजन करके सिद्ध हुआ था अर्थात् सिद्धि प्राप्ति की थी। वहीं पर नक्षत्रों का मण्डल दिवलोक का दिव्य छाया पथ है ॥ २९ ॥

दृश्यते भासुरा रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा।
अन्तरिक्षं दिवं चैव भावयित्वाभुवंगता ॥३०
भवोत्तमाङ्गे पतिता संरुद्धा योगमायया।
तस्या ये बिन्दवः केचित्क्रुद्धायाः पतिता भुवि। ३१
कृतन्तु तैर्बिन्दुसरस्ततो बिन्दुसरः स्मृतम्।
ततस्तस्या निरुद्धाया भवेन सहसा रुषा ॥३२
ज्ञात्वा तस्या ह्यभिप्राय क्रूर देव्याश्चिकीर्षितम्।
भित्वा विशामि पाताल स्रोतसा गृह्य शङ्करम् ॥३३
अथावलेपनं ज्ञात्वा तस्याः क्रुद्धन्तु शङ्कर।
तिरोभावयितु बुद्धिरासीदङ्गे धृता नदीम् ॥३४
एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः।
धमनीसन्ततक्षीण क्षुधाव्याकुलितेन्द्रियम् ॥३५

रात्रि के समय में वह देवी त्रिपथगा भासुर दिखलाई दिया करती है। वह अन्तरिक्ष और दिवलोक को भावित करके पीछे भू लोक में गई थी ॥३०॥ आरम्भ में जब यह इस भूलोक में आई थी भगवान् शिव के मस्तक पर पतित हुई थी और वहीं पर योग माया के द्वारा यह सम्रुद्ध

हो गई थी। उस समय मे सरोष होने के कारण इसको महान् क्रोध उत्पन्न हो गया था। उस क्रुद्धावस्था वाली उसकी जो कुछ बिन्दु इस भू मण्डल मे पतित हुई थी। उनसे यहा पर बहुत से सरो की रचना हो गई थी। इसके पश्चात् यह बिन्दुसर कहा गया है। इसके अनन्तर भीमव ने निरुद्ध हुई उसका सहस क्रोध से युक्त देवी के क्रूर अभिप्राय समझ लिया था। उसका यही चिकीर्षित था कि शिव के मस्तक का भेद न करके अपने स्रोत के द्वारा शङ्कर का ग्रहण करके पाताल लोक मे प्रवेश कर जाऊँगी ॥३१, ३२, ३३॥ इसके उपरान्त भगवान् शङ्कर उसके क्रोध युक्त इस प्रकार के अवलेपन (नीच घमण्ड) को जानकर उनकी ऐसी बुद्धि हो गई थी कि उस नदी को अपने ही अङ्गो में तिरोभूत कर लिया जावे ॥३४॥ इसी बीच मे उस राजर्षि भगीरथ को भगवान् शिव ने अपने समक्ष ही मे खड़ा हुआ देख लिया था जो धमानयो से मन्तत क्षीण वह था और क्षुधा से व्याकुलित इन्द्रियो वाला हो रहा था ॥ ३५ ॥

> अनेन तोषितश्चाह नद्यर्थं पूर्वमेव तु ।
> बुध्वास्य वरदानन्तु तत कोप न य च्छत ॥३६
> ब्रह्मणो वचन श्रुत्वा यदुक्त धारयन्नदीम् ।
> ततो विसर्जयामास सरुद्धा स्वेन तेजसा ॥ ७
> नदी भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण नोषित ।
> ततो विसर्जयामास सप्तस्रोतासि गङ्गया ॥३८
> त्रीणि प्राचीमभिमुख प्रतीचीन्त्रीण्यथैव तु ।
> स्रोतासि त्रिपथायास्तु प्रत्यपद्यन्तसप्तधा ॥३९
> नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राच्यगा ।
> सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च तिस्त्रो व प्रतीच्यगा ॥४०
> सप्तमी त्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथम् ।
> तस्मात् भागीरथी सा वै प्रदिष्टा दक्षिणोदधिम् ॥४१

शिवने जैसे ही उसको देखा उनको उसी समय ध्यान हो आया था कि इस राजर्षि ने तो अत्यधिक समय तक तपस्या करके इसी नदी के यहाँ लाने के लिये ही मुझे पूर्णतया प्रसन्न एवं तुष्ट कर लिया था कि मैंने तब इसको वरदान भी दिया था—यह सब स्मरण पथ में लाकर फिर जो क्रोध उस समय में उन्हें आया था वह शान्त हो गया था ॥36॥ ब्रह्माजी का कथित वचन का श्रवण करके इस नदी को धारण कर रहे थे। इसके पश्चात् उस निरुद्ध हुई नदी को अपने ही तेज से विसर्जित कर दिया था ॥37॥ राजा भगीरथ के लिये उसकी अत्युग्र तपस्या से नदी को छोड़ देने को भगवान् शिव तोषित हो गये थे। और फिर गङ्गा के द्वारा सात स्रोतों का विवर्जन कर दिया गया था ॥38॥ इनमें से तीन तो प्राची की ओर हुए थे और तीन पश्चिम दिशा की ओर चल दिये थे। इस तरह से इस त्रिपथगा गङ्गा के स्रोत सात भागों में उत्पन्न हो गये थे ॥39॥ इन स्रोतों में नलिनी—ह्लादिनी—पावनी ये तो प्राच्यगा अर्थात् पूर्व की ओर गमन करने वाले थे। सीता—चक्षु और सिन्धु ये तीन उसके स्रोत पश्चिम की ओर गमन करने वाले थे ॥ 40 ॥ इस प्रकार से ये छः स्रोत जो उक्त दिशाओं में गमनशील हुए थे और उन सातों में जो सातवाँ स्रोत था वह दक्षिण की ओर राजा भगीरथ का अनुगमन करने वाला हुआ था। इसीलिए उसका नाम भागीरथी गङ्गा हुआ था और वह फिर दक्षिण सागर में प्रविष्ट हो गई थी ॥ 41 ॥

सप्त चैताः प्लावयन्ति वर्षन्तु हिमसाह्वयम्।
प्रसूताः सप्त नद्यस्तु शुभा बिन्दुसरोद्भवाः ॥ 42
तान्देशान् प्लावयन्ति स्म म्लेच्छप्रायाश्च सर्वशः।
सशैलान् कुकुरान् रौध्रान् बर्बरान् यवनान् खसान् ॥43
पुलिन्दांश्च कुलत्यांश्च अङ्गलोक्यान्वराश्च यान्।
कृत्वा द्विधा हिमवन्तं प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥ 44

अथ वीरमरूश्चैव कालिकाश्चैवशूलिकान् ।
तुषारान् वर्बरानङ्गान्यगृहणात्पारदान्शकान् । ४५
एतान् जनपदाश्चक्षुः प्लावयित्वोदधिङ्गता ।
दरदोर्जगुण्डाश्चैव गान्धारानौरसान्कुहून् ॥४६
शिवपौरानिन्द्रमरून् वसतीन् समतेजसम् ।
सैन्धवानुर्वसान् सर्वान् कुपथान् भीमरोमकान् ॥४७
शुनामुखाश्चोदमरून् सिन्धुरेतान्निषेवते ।
गन्धर्वान् किन्नरान्यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान् । ४८
कलापग्रामकाश्चैव तथा किंपुरुषान्नरान् ।
किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् वै भारतानपि ॥४९
पाञ्चालान् कौशिकान् मत्स्यान् मागधाङ्गांस्तथैव च ।
ब्रह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च ॥५०
एतान् जनपदानार्यान् गङ्गा भावयते शुभा ।
ततः प्रतिहता विन्ध्ये प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥५१

ये सातो स्रोत हिम साह्वय वर्ष को प्लावित कर दिया करते हैं। फिर बिन्दु सरोवर से उद्भव प्राप्त करने वाली परम शुभ सात सरितायें समुत्पन्न हुई थीं ॥४२॥ वे सब ओर से म्लेच्छप्राय उन देशों को प्लावित कर रहीं थीं। शैलो के सहित वे देश कुकुर-रौक्ष-बर्बर-यवन-खस-पुलिन्द और कुलत्थ थे तथा जो वर अङ्गलोक्य थे। उस सरिता ने हिमवान् को भागों में करके फिर वह अन्त में दक्षिण सागर में प्रवेश कर गयी थी। ४३, ४४॥ इसके उपरान्त वीर मरु-कालिका-शूलिक—तुषार-बर्बर-अनङ्ग-पारद और शकों को ग्रहण किया था। इन उक्त जनपदों को चक्षु न प्लावित करके वह चक्षु भी उदधि में चली गयी थी। दरदोर्जगुण्ड-गान्धार-अनौरस—कूहू—शिव पौर-इन्द्र मरु—वसती-समतेजस-सैन्धव-उरस-सर्व-कुपथ-भीम रोमक-शुनामुख और उर्द-मरु-इन देशों को सिन्धु सेवन किया करता है। गन्धर्व-किन्नर-यक्ष-

राक्षस—विद्याधर—द्रारा वलाप ग्रामक—किम्पुरुष—नर—किरात—पुलिन्द—मत्स्य—कुरु—भारत—पाञ्चाल—कौशिक—मागध—ब्रह्मोत्तर—वङ्ग और ताम्रलिप्त—इन देशों को जो आर्य्य हैं उनको शुभा गङ्गा भावित किया करती है। फिर वह विन्ध्य से प्रतिहत होती है और अन्त में दक्षिण उदधि में प्रवेश कर गयी है ॥ ४५। ४६। ४७। ४८। ४९। ५०। ५१॥

ततस्तु ह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखा ययौ।
प्लावयन्त्युपकांश्चैव निषादानपि सर्वशः ॥५२
धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि।
केकरानेककर्णांश्च किरातानपि चैव हि ॥५३
कालिन्दगतिकांश्चैव कुशिकान्स्वर्गभौमकान्।
सामण्डले समुद्रस्यतीरेभूत्वातुसर्वशः ॥५४
ततस्तु नलिनीचापि प्राचीमेव दिशं ययौ।
कुपथान् प्लावयन्ती सा इन्द्रद्युम्नसरांस्यपि ॥५५
तथा खरपथान् देशान् वेत्रशङ्कुपथानपि।
मध्येनोज्जानकमरून् कुथप्रावरणान् ययौ ॥५६
इन्द्रद्वीपसमीपे तु प्रविष्टा लवणोदधिम्।

खरपथ देशो को—वेत्र शकु पथों को—मध्य में नोज्जानक सरुओं को और कुथ प्रावरणो को चली गयी थी। ।५५, ५६।। फिर वह इन्द्रद्वीप के समीप में लवणोदधि मे प्रवेश कर गयी थी। इसके उपरान्त यावनी नाम वाली बड़े वेग से पूर्व दिशा को चली गयी थी ।।५७।।

तोमरान् प्लावयन्तीचहृसमार्गान् सपृहकान् ।
पूर्वान्देशांश्चसेवन्तीभित्वासाबहुधागिरिम् ।।
कणप्रावरणान् प्राप्य गता साश्वमुखानपि ।।५८।।
सिक्त्वा पर्वतमेरु सा गत्वा विद्याधरानपि ।
शैमिमण्डलकोष्ठन्तु सा प्रविष्टा महत्सरः ।।५९
तासा नद्युपनद्योऽन्या शतशोऽथ सहस्रशः ।
उपगच्छन्तिता नद्यो यतोवर्षति वासव. ।।६०
तीरे वशोकसारायाः सुदभिर्नाम तद्वनम् ।
हिरण्यशृङ्ग वसतिविद्वान् कौबरको वशी ।।६१
यज्ञादपेत. सुमहानमितोजा सुविक्रम ।
तत्रागस्त्यं. परिवृता विद्वद्भिब्रह्मराक्षसै. ।।६२
कुबेरानुचरा ह्यं ते चत्वारस्तत्समाश्रिताः ।
एवमेव तु विज्ञेया सिद्धि पर्वतवासिनाम् ।।६३

वह यावनी सरिता का स्रोत जो उन उपर्युक्त सात स्रोतों मे से एक थी तोमर देशो का प्लावन करती हुई हस मार्गो को—समूहको की ओर पूर्व देशो का सेवन करती हुई वह प्राय गिरिओ का भेदन करके कर्ण प्रावरणो मे पहुँच कर वह अश्व मुखों को चली गयी थी ।।५८।। वह मेरु पर्वत का सेचन करके फिर विद्याधरों मे पहुँच कर अन्त में शैमि मण्डल को ठ महान् सर मे प्रवेश कर गयी है। उन सातों नदियो मे से अन्य सैकड़ों और सहस्रों ही नदियाँ तथा उप नदियाँ उप गमन किया करती हैं। वे ऐसी नदियाँ हैं जिन म इन्द्र देव वर्षा किया करते हैं। वशौक सारा क तट पर सु भि नाम वाला एक विशाल वन है। वहाँ

पर हिरण्य शृङ्गवासी विद्वान् कौवरक निवास किया करता है। वह यज्ञ से अपन-सुमहान्—अपरिमित ओज वाला-सुन्दर बलविक्रम से सम्पन्न है। वहाँ पर अगस्त्यो के द्वारा परिवृत तथा विद्वान् ब्रह्म राक्षसों से परिवृत ये चार कुबेर के अनुचर हैं जो उसके समाश्रय मे रहा करते हैं। इसी प्रकार से पर्वतों में निवास करने वालो की सिद्धि को समझ लेना चाहिये ॥५८।६०।६१।६२।६३॥

परस्परेण द्विगुणा धर्म्मतः कामतोऽर्थतः ।
हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पाणां तत्सरः स्मृतम् ॥६४
सरस्वती प्रभवति तस्माज् ज्योतिष्मती तु या ।
अवगाढे ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥६५
सरो विष्णुपदं नाम निषधे पर्वतोत्तमे ।
यस्मादग्रे प्रभवति गन्धर्वानुकुले च ते ॥६६
मेरोः पार्श्वात् प्रभवति ह्रदश्चन्द्रप्रभो महान् ।
जम्बूश्चैव नदी पुण्या यस्या जाम्बूनदं स्मृतम् ॥६७
पयोदस्तु ह्रदो नीलः स शुभः पुण्डरीकवान् ।
पुण्डरीकात् पयोदाश्च तस्माद् वै सम्प्रसूयताम् ॥६८
सरसस्तु सरस्वेतत् स्मृतमुत्तरमानसम् ।
मृगाश्च मृगकान्ताश्च तस्माद्द्वे सम्प्रसूयताम् ।६९
ह्रदाः कुरुषु विख्याताः पद्ममीनकुलाकुलाः ।
नाम्ना ते वैजयानाम द्वादशोदधिसन्निभाः ॥ ७०

यह सिद्धि परस्पर में धर्म-अर्थ और काम से द्विगुण हुआ करती है। हेमकूट के पृष्ठ पर जो सर है वह सर्पों का बताया गया है। उस सर से सरस्वती की उत्पत्ति हुआ करती है जो कि ज्योतिष्मती है अवगाढ मे दोनों ओर पूर्व सागर और पश्चिम समुद्र हैं ॥६४, ६५॥ पर्वतों में श्रेष्ठतम गिरि निषध मे विष्णु पद नाम वाला सर है जिससे आगे वे गन्धर्वानुकूल प्रसूत होते हैं ॥६६॥ मेरु गिरि के पार्श्व भाग से चन्द्रप्रभ-

एक महान् ह्रद प्रसूत होता है और परम पुण्यशालिनी जम्बूनदी है जिसे जाम्बूनद कहा गया है ।।६७।। पयोद नील ह्रद है और वह परम शुभ तथा पुण्डरीकवान् है । पुण्डरीक और पयोद न पैदा होता है ।।६८।। सरस्य यह सरोवर है और इसको उत्तर मानस कहा गया है । उस सर से मृग्या और मृग कान्ता ये दो नदियाँ प्रसूत हुई है । पद्मों और मीनो से समाकीर्ण ह्रद कुरु देशों मे विख्यात हैं । नाम से वे वैजय कहे जाते हैं और ये बारह हैं जो उदधि के ही तुल्य हैं ।।६९, ७०।।

तेभ्य. शान्तीच मध्वीच द्वेनद्यौ सम्प्रसूयताम् ।
किंपुरुषाद्यानि यान्यष्टौतेषुदेवोनवर्षति ।।७१
उद्भिदान्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वरा· ।
बलाहकश्च ऋषभो चक्रो मैनाक एव च ।।७२
विनिविष्टा.प्रतिदिशं निमग्नालवणाम्बुधिम् ।
चन्द्रकान्तस्तथा द्रोण.सुमहाश्चशिलोच्चय ।।७३
उदगायता उदीच्यान्तु अवगाढा महोदधिम् ।
चक्रो बधिरकश्चैव तथा नारदपर्वत ।।७४
प्रतीचीमायतास्ते वै प्रतिष्ठास्ते महोदधिम् ।
जीमूतो द्रावणश्चैव मैनाकश्चन्द्रपर्वतः ।७५
आयतास्ते महाशैला: समुद्रं दक्षिणम्प्रति ।
चक्रमैनाकयोर्मध्ये दिवि सद्क्षिणापथे ।।७६
तत्रसंवर्तको नामसोऽग्नि: पिबति तज्जलम् ।
अग्निः समुद्रवासस्तु औवोंऽसौवडवामुख ।।७७

उन ह्रदो से शान्ती और मध्वी दो नदियाँ प्रसूत हुई हैं। उनमें किम्पुरुष आदि जो आठ हैं वे ही रहा करते है और उनमे देव वर्षा नही करता है ।७१।। वे ऐसे ही स्थल हैं जहाँ पर उदक उद्भिद हो होते हैं तथा श्रेष्ठ नदियाँ बहा करती हैं जिनके नाम बलाहक– ऋषभ—चक्र और मैनाक हैं। ये प्रत्येक दिशा मे विशेष रूप निविष्ट हैं और अन्त में

लार सागर में निमग्न हो जाते हैं। चन्द्र कान्त—द्रोण और सुमहान् शिलोच्चय उत्तर दिशा में उन्नमान करने वाले हैं तथा महा सागर में अवगाढ़-होते हैं। चक्र-बधिरक और नारद पर्वत ये पूर्व दिशा में आयत है और वे महोदधि में प्रतिष्ठित हैं। जीमूत—द्रावण मैनाक और चन्द्र पर्वत ये महान् विशाल शैल हैं जो अति विस्तृत हैं तथा दक्षिण समुद्र के प्रति रहते हैं और चक्र एवं मैनाक के मध्य में दिवलोक में दक्षिणापथ में हैं ॥ ७, ७३, ७४, ७५, ७६॥ वहाँ सवर्तक नाम वाला है और वह अग्नि उसके जल को पी जाया करता है। समुद्र में निवास करने वाला अग्नि और्व होता है जो कि बड़वामुख नाम वाला है ॥ ७७ ॥

इत्येते पर्वताविष्टाश्चत्वारो लवणोदधिम् ।
छिद्यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वै भयात् ॥७८
तेषान्तु दृश्यते चन्द्रे शुक्ले कृष्णे समाप्लुतिः ।
ते भारतस्य वर्षस्य भेदा ये न प्रकीर्तिताः ॥७९
इहोदितस्य दृश्यन्ते अन्ये त्वन्यत्र चोदिताः ।
उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्दिश्यते गुणैः ॥८०
आरोग्यायु प्रमाणाभ्यां धर्मतः कामतोऽर्थतः ।
समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भागशः ॥८१
वसन्ति नानाजातीनि तेषु सर्वेषु तानि वै ।
इत्येतद्धारयद्विश्व पृथ्वी जगदिदं स्थिरा ॥८२

ये चारों पर्वत लवणोदधि को आविष्ट किये हुए हैं। प्राचीन समय में इन्द्रदेव के द्वारा पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया गया था जिससे उड़कर स्वेच्छया न जा सकें तो पक्षों के छिद्यमान होने पर वे इन्द्र के भय के कारण ही समुद्र में समाविष्ट हो गये हैं ॥७८॥ उनके चन्द्र में शुक्ल में और कृष्ण पक्ष में समाप्लुति दिखलायी दिया करती है। वे भारत वर्ष के भेद हैं अतएव प्रकीर्तित नहीं किये गये हैं ॥७९॥ यहाँ

पर उदित से दिखाई दिया करते हैं और जो अन्य हैं वे अन्य स्थान में प्रेरित होते हैं। उत्तरोत्तर (आगे से आगे में) इनके वर्ष गुणों के द्वारा अधिक कहे जाते हैं। आरोग्य और और आयु के प्रमाणों से धर्म—काम और अर्थ से उन वर्षों में भागशः प्राणी समन्वित हुआ करते हैं। उन सब में ये अनेक प्रकार की जातियाँ निवास किया करती हैं। इन सबको विश्व धारण किया करता है और यह जगत् जो है वही पृथ्वी स्थित है। ॥८०।८१।८२॥

५३—पृथिवी परिमाण वर्णन

अत उद्र्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्य्याचन्द्रमसोर्गतिम्।
सूर्य्याचन्द्रमसावेतो भ्राजन्तौयावदेवतु ॥१
सप्तद्वीपसमुद्राणां द्वीपानां भाति विस्तरः।
विस्तरार्द्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र वाह्यतः ॥२
पर्यासपरिमाणञ्च चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः।
पर्यासपारिमाण्यात्तु बुधैस्तुल्यं दिवः स्मृतम् ॥३
त्रीन् लोकान् प्रतिसामान्यात् सूर्य्यो यात्यविलम्बतः।
अचिरात् प्रकाशेन अवनात्तु रविः स्मृतः ॥४
भूयो भूयः प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्य्ययोः।
महितत्वान्महच्छब्दोह्यस्मिन्नर्थेनिगद्यते ॥५
अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भात्तुल्यविस्तृतम्।
मण्डलंभास्करस्याथयोजनैस्तन्निबोधत ॥६
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो मण्डलस्य तु।
विस्तारस्त्रिगुणश्चापिपरिणाहोऽत्र मण्डले। ७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—अब इससे आगे हम सूर्यदेव और चन्द्रमा की गति का वर्णन करेंगे। ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा जितनी दूर

तक प्रत्यधान हुआ करते हैं। सातों द्वीपों के समुद्रों का तथा द्वीपों का महान् विस्तार शोभित एवं दीप्त होता है। इस विस्तार का आधा भाग पृथ्वी का अत्यन्त और बाह्य हुआ करता है ॥ १, २ ॥ पर्याप्त के परिमाण तक चन्द्र और सूर्य प्रकाश दिया करते हैं। पर्याप्त के परिमाण्य से बुधों के द्वारा दिवलोक के तुल्य कहा गया है ॥ ३ ॥ प्रति सामान्य से बिना विलम्ब किये हुए सूर्य तीन लोकों को जाया करता है। शीघ्र ही प्रकाश देने के कारण से तथा अवन करने से यह रवि कहा गया है ॥४॥ मैं बारम्बार चन्द्र और सूर्य का प्रमाण कहूँगा। महिलत्व होने से महद्-यह शब्द इस अर्थ में निगदित किया जाता है ॥ ५ ॥ इस भारतवर्ष के विष्कम्भ से तुल्य विस्तृत भगवान् भुवन भास्कर मण्डल है। इसके अनन्तर अब योजनों के परिमाण में भी इसका ज्ञान प्राप्त कर लो। नौ सहस्र योजन मडल का विस्तार है और विस्तार से तिगुना परिणाह भी इस मडल में होता है ॥ ७ ॥

विष्कम्भात् मण्डलाच्चैव भास्करात् द्विगुणः शशी ।
अतः पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः पुनः ॥८
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलस्य तु ।
इत्येतदिह संख्यातं पुराणे परिमाणतः ॥९
तद्वक्ष्यामि प्रसंख्याय साम्प्रतञ्चाभिमानिभिः ।
अभिमानिनो ह्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह ॥१०
देवैरतीतास्तु रूपैर्नामभिरेव च ।
तस्माद्वै साम्प्रतैर्वक्ष्यामि वसुधातलम् ॥११॥
दिव्यस्य सन्निवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्स्नशः ।
शतार्द्धकोटि विस्तारा पृथिवी कृत्स्नश स्मृता ॥१२
तस्याश्चार्द्धं प्रमाणञ्च मेरोश्चैवान्तरम् ।
मेरोर्मध्ये प्रतिदिशं कोटिरेवातु सा स्मृता ॥१३
तथा शतसहस्राणां भेरोरनवति पुनः ।

पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्यर्द्धस्य विस्तरः ॥१४

विष्कम्भ और मण्डल से भास्कर से दुगुना शशि है। इससे पुनः योजनों के द्वारा पृथिवी के प्रमाण को बतलाऊँगा ॥ ८ ॥ सात द्वीप और सात समुद्रों वाली के मंडल का विस्तार यहाँ पर यह इतना ही सख्यात पुराण मे परिमाण से किया गया है ॥ ६ ॥ उसको प्रसख्यात बतलाऊँगा। जो इस समय मे अभिमानियों के द्वारा किया गया है। जो अभिमानी गण व्यतीत हो गये हैं वे यहाँ पर इस समय मे होने वालों के ही तुल्य हैं ॥ १० ॥ देवदेव रूप और नामों से अतीत हो चुके हैं। इसी कारण से इस समय में होने वाले देवों से वसुधा तल का बतलाता हूँ ॥ ११ ॥ साम्प्रतों के द्वारा दिव्य का सन्निवेश कृत्स्न नहीं है। पूर्ण रूप से यह पृथिवी शत के अर्द्ध कोटि विस्तार वाली पूर्णतया बतलाई गयी है ॥ १२ ॥ उस पृथिवी का अर्द्ध प्रमाण उत्तरोत्तर मेरु का ही है। मेरु के मध्य मे प्रत्येक दिशा मे एक करोड़ वह कही गई है। इस प्रकार से सौ सहस्र नवासी और फिर पचास सहस्र पृथिवी के अर्द्ध भाग का विस्तार है ॥ १३, १४ ॥

पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोटयस्तु विस्तारात् सख्यातास्तु चतुर्दिशम्।१५
तथा शतसहस्राणामेकोनाशातिरुच्यते ।
सप्तद्वीपसमुद्राया. पृथिव्याः स तु विस्तरः ॥१६
विस्तारत्रिगुणञ्चैवपृथिव्यन्तरमण्डलम् ।
गणितयोजनानान्तुकोटयस्त्वेकादशस्मृता. ॥१७
तथा शतसहस्राणा सप्तत्रिंशाधिकास्तु ता ।
इत्येतद्वंप्रसख्यात पृथिव्यन्तरमण्डलम् ॥
तारकासन्निवेशस्य दिवि यावत्तु मण्डलम् ।
पर्याप्तसन्निवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम् ॥१८
पर्याप्तपरिमाणञ्च भूमेस्तुल्य दिवः स्मृतम् ।

मेरोःप्राच्यादिशायान्तुमानसोत्तरमूर्द्धानि ॥१६
वस्त्वेकसारामाहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ।
दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्य तु पृष्ठत. ॥ ०
वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे ।
प्रतीच्यान्तु पुनर्मेरोर्मानसस्य तु मूर्द्ध नि ॥२१

अब पृथिवी का पूर्ण विस्तार योजनों के द्वारा समझ लो। चारों दिशाओं मे विस्तार से तीन करोड सख्यात हैं ॥ १५ ॥ इस भाँति से सात द्वीप समुद्रों वाली पृथिवी का वह विस्तार सो सहस्र उन्यासी कहा जाता है ॥ १६ ॥ पृथिवी का अन्तर मन्डल का विस्तार त्रिगुण है। योजनों का गणित किया गया है जो एकादश करोड कहा गया है। इस रीति से सौ सहस्र और सैंतास अधिक वे हैं—इतना ही यह पृथिवी का अन्तर मंडल होता है ॥ १७ ॥ दिव मे तारकाओं के सन्निवेश का जितना मंडल है उतना ही पर्यन्त सन्निवेश वाली भूमिका मण्डल है ॥ १८ ॥ दिव का पर्याप्त परिमाण भूमि के ही तुल्य कहा गया है। मेरु से पूर्व दिशा मे मानसोत्तर मूर्द्धा में वस्त्वेक सार वाली पुण्य महेन्द्री हेम से परिष्कृत है। पुनः मेरु के दक्षिण मे और मानस के पृष्ठ भाग में संयमनपुर में वैवस्वत यम निवास किया करता है। पुनः मेरु के पश्चिम में और मानस के मूर्धा में वरुण देवकी पुरी है ॥१६, २०, २१॥

सुपा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः ।
दिश्युत्तरायां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्ध नि ॥२२
तुल्या महेन्द्रपुर्यापि सोमस्यापि विभावरी ।
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम् ॥२३
स्थिता धर्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च ।
लोकपालोपरिष्टात् सर्वतोदक्षिणायने ॥२४
काष्ठागतस्य सूर्यस्य गतिर्यास्तन्निबोधत ।
दक्षिणोपक्रमे सूर्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ॥२५

ज्योतिषाञ्चक्रमादाय सततं परिगच्छति ।
मध्यगश्चामरावत्या यदा भवति भास्करः ॥२६
वैवस्वते संयमने उद्यन् सूर्यः प्रदृश्यते ।
सुषायामर्द्धरात्रस्तु विभावर्यास्तमेति च ॥२७
वैवस्वते संयमने मध्याह्ने तु रविर्यदा ।
सुषायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ॥२८

उस धीमान् वरुणदेव की पुरी का नाम सुषा है जो परम रम्य है जो मेरु के उत्तर दिशा मे और मानस के मूर्द्धा मे है । महेन्द्र की पुरी के तुल्य ही सोम की भी विभावरी है । मानस के उत्तर पृष्ठ मे चारों दिशाओ मे लोकपाल हैं जो धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा लोकों के संरक्षण करने के लिये ही हैं । इन लोकपालों के ऊपर सब ओर दक्षिण अयन मे सूर्य की गति के विषय मे ज्ञान प्राप्ति करलो ॥ २२, २३ २०॥ वहाँ पर दिशाओ मे गमन करने वाले भगवान् सूर्यदेव की जो गति होती है उसको समझ लेना चाहिए । दक्षिण के उपक्रम मे सूर्य क्षिप्त इषु की ही भाँति प्रसर्पण किया करते हैं ॥ २४ ॥ जिस समय मे भगवान् भास्करदेव अमरावती मे मध्य मे गमन करने वाले होते हैं उस समय मे समस्त ज्योतिषियो के चक्र को लेकर सतत् परिगमन किया करते हैं ॥ २५ ॥ वैवस्वत संयमन मे उदित होते हुए सूर्य दिखलाई दिया करते हैं । सुषा मे अर्ध रात्रि वाला है और विभावरी मे अस्तता को प्राप्त होता है ॥ २६, २७ ॥ जिस समय मे वैवस्वत संयमन मे मध्याह्न की वेला मे रवि हुआ करते हैं उस समय मे वारुणी जो सुषा पुरी है उसमे उदित होते हुए वे दिखलाई दिया करते हैं ॥ २८ ॥

विभावर्यामर्द्धरात्रं माहेन्द्रयामस्तमेव च ।
सुषायामथ वारुण्यां मध्याह्ने तु रविर्यदा ॥२९
विभावर्य्यां सोमपुर्य्यामुत्तिष्ठति विभावसुः ।
महेन्द्रस्यामरावत्यामुद्गच्छति दिवाकरः ॥३०

अर्द्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ।
स शीघ्रमेव पर्येति भानुरालातचक्रवत् ॥३१
भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि चरते रविः ।
एवं चतुर्षु पार्श्वेषु दक्षिणा तेषु सर्पति ॥३२
उदयास्तमये वाऽसावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ।
पूर्वाह्णे चापराह्णे च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ॥३३
पतत्येकन्तु मध्याह्ने भाभिरेव च रश्मिभिः ।
उदितो वर्द्धमानाभिर्मध्याह्ने तपते रविः ॥३४
अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ।
उदयास्तमयाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे तु वै ॥३५

विभावरी में अर्ध रात्रि का समय होता है और माहेन्द्री में अस्त-गत हो जाया करते हैं जब कि वरुण की पुरी सुषा में मध्याह्न में सूर्य होते हैं ॥ २९ ॥ सोम की पुरी विभावरी में विभावसु उदित होता है और महेन्द्र देव की अमरावती में दिवाकर उद्गत हो जाया करते हैं । ॥ ३० ॥ संयमन में अर्ध रात्रि होती है तथा वारुणी पुरी में अस्तगत हुआ करते हैं । वह भानु एक आलात के चक्र की भाँति (आलात-जलती हुई लकड़ी के अङ्गार के सदृश) शीघ्र ही परिगमन किया करता है ।३१। भ्रममाण ऋक्षों (नक्षत्रों) के समीप में भ्रमण करता हुआ रवि विचरण किया करता है । इस प्रकार से उन चारों पार्श्वों में दक्षिण को वह प्रसर्पण किया करता है ॥ ३२ ॥ उदय और अस्त के समय में यह पुनः पुनः उत्तिष्ठमान हुआ करता है । पूर्वाह्न (दोपहर का प्रथम भाग) और अपराह्न (दोपहर का पिछला भाग) में वह दो-दो देवालयों में पतन किया करता है ॥ ३३ ॥ अपनी प्रभाओं के द्वारा मध्याह्न में एक को पतन करके प्रकाशित किया करता है तथा वर्द्धमान अपनी रश्मियों (किरणों) के द्वारा यह रवि मध्याह्न की वेला में तपता है ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् ह्रास को शनैः शनैः प्राप्त होने वाली किरणों के द्वारा

अस्ताचल गामी हो जाया करता है । इसके उदयकाल और अस्तकालों के द्वारा ही ये पूर्व तथा पर बताये गये हैं ॥३५॥

यादृक् पुरस्तात्तपति यादृक् पृष्ठे तु पार्श्वयोः ।
यत्रोदयस्तु दृश्येत तेषामुदय स्मृतः ॥३६
प्रणाशं गच्छते यत्र तेषामस्त स उच्यते ।
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्य दक्षिणे ॥३७
विदूरभावादर्कस्य भूमेरेखा गतस्य च ।
ध्रयन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥३८
ऊर्द्ध्वं शतसहस्रांशु स्थितस्तत्र प्रदृश्यते ।
एव पुष्करमध्ये तु यदा भवति भास्करः ॥३९
त्रिंशद्भागञ्च मेदिन्या मुहूर्त्तेन स गच्छति ।
योजनाना सहस्रस्य इमासख्या निबोधत ॥४०
पूर्णं शतसहस्राणा एकत्रिंशच्च सास्मृता ।
पञ्चाशच्चसहस्राणितथान्यान्यधिकानिच ॥४१
मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ।
एतेन क्रमयोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम् ॥४२
परिगच्छति सूर्योऽसौ मास काष्ठामुदक् दिनात् ।
मध्येन पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणाते ॥४३

जिस प्रकार का पहिले तपना है और जैसा पार्श्वों के पृष्ठ भाग मे होता है । जहाँ पर इसका उदय दिखलाई दिया करता है उसका वह उदय कहा गया है ॥ ३६ ॥ जहाँ पर यह विनाश को प्राप्त हो जाया करता है उनका वह अस्तकाल कहा जाता है। सब वर्षों के उत्तर मे मेरु होता है और लोकालोक पर्वत के दक्षिण मे है ॥ ३७ ॥ इस भूमि से सूर्य के विदूर भाव होने के कारण यह गत हुए की रश्मियो का सेवन किया करते हैं । इसी कारण से उसके दर्शन रात्रि मे नहीं हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥ यह शत सहस्रांशु ऊर्ध्व भाग मे स्थित होता है वहाँ पर

दिखलाई दिया करता है। इस रीति से जिस समय में भास्कर पुष्कर के मध्य में होता है वह मेदिनी के त्रिंशत् गण की मुहूर्त मात्र में चला जाया करता है। यह संख्या सहस्र योजनों की समझ लो ॥३६,४०॥ यह सौ सहस्र और इकत्तीस कही गई है तथा पचास सहस्र और अधिक है ॥४१॥ सूर्य का यह गति मौहूर्तिकी कही जाती है। इसी क्रम के योग से जिस समय में यह दक्षिण दिशा में परिगमन किया करता है तो यह सूर्य दिन से उत्तर दिशा में एक मास रहता है और पुष्कर के मध्य के द्वारा दक्षिणायन में भ्रमण किया करता है॥४२, ४३॥

> मानसात्तरमेरोस्तु अन्तरं त्रिगुणं स्मृतम् ।
> सर्वतो दक्षिणायान्तुकाष्ठायातन्निबोधत ॥४४
> नवकोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम् ।
> तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्चच ॥४५
> अहोरात्रात् पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ।
> दक्षिणादिङ् निवृत्तोऽसौ विषुवस्योदारविः ॥४६
> क्षीरोदस्य समुद्रस्योत्तरतोऽपि दिश चरत् ।
> मण्डलं विषुव चापियोजनैस्तन्निबोधत. ॥४७
> तिस्र. कोट्यस्तु सम्पूर्ण विषुवस्यापि मण्डलम् ।
> तथा शतसहस्राणि विंशत्येकाधिकानि तु । ४८
> श्रावणे चोत्तरा काष्ठा चित्रभानुयदा भवेत् ।
> गोमेदस्य परद्वीपे उत्तराञ्च दिश चरत् ॥४६

मानस के उत्तर मेरु का अन्तर त्रिगुण कहा गया है। सब ओर से उसकी दक्षिण दिशा में जान लो ॥४४॥ योजनों के द्वारा परिमण्डल नौ करोड़ प्रसंख्यात है। तथा सौ सहस्र और पैंतालीस है॥४५॥ एक अहोरात्र से सूर्य की यह गति कही गयी है। जिस समय में यह रवि दक्षिण दिशा से निवृत्त होकर विषुव में स्थित होता है और सागर के उत्तर दिशा में विचरण करता हुआ विषुवत् मण्डल में आता है उसको

भी योजनों के द्वारा ही समझलो ॥ ४६, ४७॥ विषुव का मन्डल सम्पूर्ण तीन करोड़ तथा शत सहस्र और बीस अधिक है ॥ ४८ ॥ श्रावण में जिस समय में उत्तर दिशा में चित्र भानु होता है तो शामेद के परद्वीप में उत्तर दिशा में विचरण करता हुआ होता है ॥४९॥

> उत्तरायाः प्रमाणन्तु काष्ठाया मण्डलस्य तु ।
> दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विन्द्याद्यथाक्रमम् ।५०
> स्थान जरद्गव मध्ये तथैरावतमुत्तरम् ।
> वैश्वानर दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वत ॥५१
> नागवीथ्युत्तरा वीथो ह्यजवीथिस्तु दक्षिणा ।
> उभे आषाढमूल-तु अजवीथ्यादयस्त्रय ॥५२
> अभिजित् पूर्वत स्वातिर्नागवीथ्युत्तरास्त्रय. ।
> अश्विनीकृत्तियाम्यानागवीथ्यस्त्रय स्मृता ॥५३
> रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो नागवीथिरिति ।
> पुष्याश्लेषा पुनर्वस्वोर्वीथो चैरावती स्मृता ॥५४
> तिस्रस्तु वीथयो ह्येता उत्त ।मार्ग उच्यते ।
> पूर्वउत्तरफल्गुन्यो मघा चैरावती भवेत् ॥५५
> पूर्वोत्तरप्रोष्ठपदौ गोवीथी रेवती स्मृता ।
> श्रवणश्च धनिष्ठा च वा।णञ्च जरद्गवम् ॥५६

उत्तर दिशा के मण्डल का प्रमाण उनको यथाक्रम दक्षिणोत्तर मध्यों को ही जानना चाहिए ॥५०॥ मध्य में जरद्गव स्थान है तथा उत्तर में ऐरावत है। यहाँ पर दक्षिण में तत्त्व वैश्वानर निर्दिष्ट किया गया है ॥५१॥ नागवीथी उत्तरा वीथि है और अजवीथि दक्षिणा है। ये दोनों आषाढ़ मूल और अजवीथि आदि तीन हैं ॥५२॥ पूर्व में अभिजित्— स्वाति और नागवीथि ये तीन उत्तरा हैं। अश्विनी— कृत्तिका—याम्या तीन नागवीथी कही गयी है ॥५३। रोहिणी—मृगशिरा और आर्द्रा—यह नागवीथी कही गयी है। पुष्य—आश्लेषा और पुनर्वसु की वीथि ऐरावती

कही गयी है ॥५४॥ ये तीनों वीथियां उत्तर मार्ग कहा जाता है। पूर्वा और उत्तरा फाल्गुनी तथा मघा ये मार्ग भी होते हैं ॥५५॥ पूर्वा और उत्तरा प्रोष्ठपदा दोनों तथा रेवती गोवीथी कही गयी हैं। श्रवण—धनिष्ठा और वारुण जारद्गव हैं ॥५६॥

एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमोमार्ग उच्यते ।
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती ह्यजवीथिरिति स्मृता ॥५७
ज्येष्ठा विशाखा मैत्रश्च मृगवीथी तथोच्यते ।
मूलं पूर्वोत्तराषाढे वीथी वैश्वानरी भवेत् ॥५८
स्मृतास्तिस्रस्तु वीथ्यस्ता मार्गे व दक्षिणे पुनः ।
काष्ठयोरन्तरं चैतद्वक्ष्ये योजनं पुनः ॥५९
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु वै स्मृतम् ।
शतानि त्रीणि चाऽन्यानि त्रयस्त्रिंशत्तथैव च ॥६०
काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनानां प्रकीर्तितम् ।
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अयने दक्षिणोत्तरे ॥६१
ते वक्ष्यामि प्रसंख्याय योजनैस्तु निबोधत ।
एकैकमन्तरं तस्य नियुतान्येकविंशतिः ॥६२
सहस्रेणातिरिक्तो च ततोऽन्या पञ्चविंशतिः ।
लेखयोः काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयोश्चरन् ॥६३
अभ्यन्तरं स पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे ।
बाह्यतो दक्षिणेनैव सततं सूर्यमण्डलम् ॥६४

ये तीनों वीथियाँ मध्यम मार्ग कहा जाया करता है। हस्त—चित्रा तथा स्वाती—यह अजवीथी—इस नाम से कही गयी है ॥५७॥ ज्येष्ठ—विशाखा और मैत्र इनको मृगवीथी कहा जाती है। मूल—पूर्वा और उत्तरा आषाढ़ा वैश्वानरी वीथी होती है। ये तीनों वीथियाँ दक्षिण भाग में बतायी गयी हैं। दिशाओं का जो अन्तर है उसको पुन योजनों के द्वारा बतलायेंगे। यह अन्तर एक सहस्र ५

योजन का कहा गया है। तीन सौ और अन्य तेतीस दिशाओं में योजनों का अन्तर कीर्तित किया गया है। दिशाओं में—रेखाओं में और दक्षिणोत्तर अयन में जो अन्तर है उसको प्रसंख्यात करके योजनों के द्वारा समझिये। एक-एक का अन्तर है और उसी की तरह सातों से ये युक्त है। एक सहस्र से अतिरिक्त अन्य पच्चीस योजन बाह्य और आभ्यन्तर लेखो और दिशाओं में विचरण करता हुआ वह अभ्यन्तर में मण्डलों को जाया करता है। उत्तरायण में बाह्य से और दक्षिण से ही निरन्तर सूर्य मण्डल विचरण किया करता है ॥५८।५९।६०।६१।६२। ३।६४॥

चरन्नसावुदीच्याञ्च ह्यशीत्या मण्डलान् शतम्।
अभ्यन्तरं स पर्येति क्रमते मण्डलानि तु ॥६५
प्रमाणं मण्डलस्यापि योजनानान्निबोधत।
योजनानां सहस्राणि दश चाष्टौ तथा स्मृतम् ॥६६
अधिकान्यष्टपञ्चाशद्योजनानि तु वै पुनः।
विष्कम्भो मण्डलस्यैव तिर्यक् स तु विधीयते ॥६७
अहस्तु चरतेनाभे सूर्यो वै मण्डलक्रमात्।
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा चन्द्रो रविस्तथा ॥६८
दक्षिणे चक्रवत् सूर्यस्तथाशीघ्रं निवर्त्तते।
तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति ॥६९
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्त्तैर्दक्षिणायने।
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणां मध्ये चरति मण्डलम् ॥७०

इस प्रकार से विचरण करता हुआ यह उत्तर में एक सौ अस्सी मण्डलों में अन्दर परिगमन किया करता है और मण्डलों में भ्रमण करता है ॥६४॥ मण्डल का भी प्रमाण योजनों के रूप में समझ लो। एक सहस्र अठारह योजन बताए गए हैं और अट्ठावन योजन और भी अधिक पुनः कहे गए हैं। यह मण्डल का विष्कम्भ तिर्यक् किया जाता है। ॥६६ ६७। दिन में सूर्य क्रम से ... मण्डल का ... किया

करता है। कुलाल (कुम्हार वर्तन बनाने वाला) के चाक पर्यन्त जिस प्रकार से चन्द्रमा है उसी भाँति रवि भी होता है। दक्षिण में चक्र की ही तरह सूर्य उस भाँति शीघ्रता से निवृत्त हुआ करता है कि प्रकृष्ट अर्थात् अति दूर में रहने वाली भी भूमि को अति अल्प काल में चला जाया करता है। ६८, ६६।। यह सूर्य दक्षिणायन में अत्यन्त शीघ्र ही त्रयोदश के बारह मुहूर्तों से आधे ऋक्षों के मध्य में मण्डल का नाश किया करता है ।।७०।।

मुहूर्तैरतानि ऋक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ।
कुलालचक्रमध्यस्थो यथा म द प्रसपति ।।७१
उदगयाने तथा सूर्य सर्पते मन्दविक्रमः ।
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमि सोऽल्पा प्रसर्पति ।।
सूर्योऽष्टादशभिरह्नो मुहूर्तैरुदगायने ।।७२
त्रयोदशाना मध्ये तु ऋक्षाणा चरते रवि ।
मुहूर्तैस्तानि ऋक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन् ।।७३
तता मन्दतर ताभ्या चक्रन्तु भ्रमते पुन ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्था भ्रमतेऽसौ ध्रुवस्तथा ।।७४
मुहूर्तैस्त्रिंशता तावदहोरात्र ध्रुवो भ्रमन् ।
उभयो. काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि तु ।।७५
उत्तरक्रमणेऽर्कस्य दिवा मन्दगति स्मृता ।
तस्यैव तु पुनर्नक्त शाघ्रा सूर्यस्य वै गति ।।७६
दक्षिणप्रक्रमे चापि दिवा शीघ्र विधीयते ।
गति. सूर्यस्य व नक्त मन्दा चापि विधीयते ।।७७
एव ग तविशेषेण विभजन् रात्र्यहानि तु ।
अजवीथ्या दक्षिणाया लोकालोकस्य चोत्तरम् ।।७८

रात्रि के समय में उन नक्षत्रों को अठारह मुहूर्तों में विचरण करता हुआ कुलाल के चक्र के मध्य में स्थित होने की भाँति मन्द प्रसर्पण

किया करता है ॥ ७१ ॥ उत्तर की ओर गमन करने से सूर्य मन्द विक्रम वाला होकर ही गमन किया करता है। इसी मन्दगति होने के कारण से वह बहुत अधिक लम्बे समय से बहुत ही अल्प भूमि का प्रसर्पण किया करता है। उदगायन अर्थात् उत्तरायण में दिन को अठारह मुहूर्तों में सूर्य त्रयोदश ऋक्षों के मध्य में चरण किया करता है और उन्हीं ऋक्षों को रात्रि में बारह मुहूर्तों में चरण करता है ॥ ७२, ७३ ॥ इसी से उन दोनों से चक्र अधिक मन्द भ्रमण किया करता है। एक मिट्टी के पिण्ड की भाँति ही मध्य में स्थित यह ध्रुव की भाँति भ्रमण करता है। तीस मुहूर्तों में एक अहोरात्र में ध्रुव भ्रमण करता हुआ दोनों दिशाओं के मध्य में मण्डलों का भ्रमण करता है ॥ ७४, ७५ ॥ सूर्य की उत्तर क्रमण में दिन में मन्द गति कही गयी है। उसी सूर्य की फिर रात्रि के समय में शीघ्रता वाली गति हो जाया करती है। दक्षिण के प्रक्रमण करने में भी दिन में शीघ्रता का विधान कहा जाता है और रात्रि में सूर्य की गति मन्द हो जाया करती है। इस प्रकार से रात और दिन को अपनी गति की विशेषता के द्वारा विभाजन करता हुआ दक्षिण अजवीथी में लोकालोक के उत्तर में चरण किया करता है ॥ ७६, ७७, ७८ ॥

लोकसन्तानतोह्येष वैश्वानरपथाद्बहिः ।
व्युष्टिर्यावत् प्रभा सौरी पुष्करात् सम्प्रवर्त्तते ॥७६
पार्श्वेभ्यो बाह्यतस्तावल्लोकालोकश्च पर्वतः ।
योजनानां सहस्राणि दशोर्द्ध्वं चोच्छ्रितो गिरिः ॥८०
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च पर्वतः परिमण्डलः ।
नक्षत्रचन्द्रसूर्य्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ॥८१
अभ्यन्तरे प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः ।
एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्ततः परम् ॥८२
लोक आलोकने धातुर्निरालोकस्त्वलोकता ।
लोकालोकौ तु सन्धत्ते तस्मात् सूर्य्यः परिभ्रमन् ॥८३

तस्मादसन्ध्येतितामाहुस्पाग्युष्टैयथान्तरम् ।
उषारात्रि स्मृताविप्रैर्व्यु ष्टिश्चापिअह स्मृतम् ॥८४

लोक सन्तान से यह वैश्वानर पथ से बाहिर ही भ्रमण करता है। जब तक पुष्टि होती है यह सूर्य की प्रभा पुष्कर से संप्रवृत्त हुआ करती है ॥ ७६ ॥ पार्श्वों से बाहिर के भाग में लोकालोक नाम वाला महान् पर्वत है। यह गिरि एक सहस्र दश योजन ऊर्ध्व में उच्छ्रित है ॥ ८० ॥ यह परिमण्डल पर्वत प्रकाश और अप्रकाश वाला है। नक्षत्र-चन्द्र और सूर्य ग्रह तारा गणों के साथ लोकालोक पर्वत के अभ्यन्तर में ही प्रकाश दिया करते हैं। इतना ही लोक होता है उसके आगे शेष तो सब निरालोक अर्थात् प्रकाश रहित ही हुआ करता है। लोक आलोक्य में धातु है और निर लोक आलोकना है। इसी से सूर्य परिभ्रमण करता हुआ लोक और अ लोक दोनों का सन्धान किया करता है ॥ ८१ ।८२।८३॥ इसी कारण उसको सन्ध्या—इस नाम से कहते हैं। यथान्तर व्युष्टि से उषा कही जाती है। उषा रात्रि कही गई है और विप्रों के द्वारा व्युष्टि दिन कहा गया है ॥ ८४ ॥

त्रिशत्कलो मुहूर्तस्तु अहस्ते दशपञ्च च ।
ह्रासो वृद्धिरहर्भागैर्दिवसानां यथा तु वै । ८५
सन्ध्या मुहूर्तमात्राया ह्रासवृद्धौ तु ते स्मृते ।
लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तागते तु वै ॥८६
प्रातःस्मृतस्तत कालोभागाश्चाहुश्च पञ्चच ।
तस्मात् प्रातर्गतात्कालान्मुहूर्ता सङ्गवस्त्रयः ॥८७
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तुतस्मात्कालादनन्तरम् ।
तस्मान्मध्यन्दिनात्कालादपराह्णइतिस्मृतः ॥८८
त्रय एव मुहूर्तास्तु काल एषस्मृतो बुधैः ।
अपराह्णव्यतीताच्च काल सायं स उच्यते ॥८६
दशपञ्च मुहूर्ताह्नो मुहूर्तास्त्र एव च ।
दशपञ्च मुहूर्त वै अहस्तु विषुवे स्मृतम् ॥६०

वर्धयतो ह्रसत्येव अयने दक्षिणोत्तरे ।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते अहः ॥६१

तीस कला वाला मुहूर्त और पन्द्रह का दिन होता है । दिवसों के भागों से दिन में ह्रास और वृद्धि भी यथा रीति हुआ करते हैं । मुहूर्त मात्र में सन्ध्या होती है और वे ह्रास तथा वृद्धि बताये गये हैं । तीन मुहूर्त समागत आदित्य में लेखा प्रभृति होती है । फिर वह काल प्रात कहा गया है और पाँच भाग कहे गये हैं । उस गत काल से तीन सङ्गव मुहूर्त होते हैं । मध्य दिन जो होता है वह तीन मुहूर्तों का होता है फिर उस काल के अनन्तर उस मध्य दिन के काल से अपराह्न कहा गया है ॥ ८४, ८८, ८७ ८८ ॥ बुध लोगों ने इस काल को तीन ही मुहूर्त बताया है । उस अपराह्न के व्यतीत होने से जो काल होता है उसी को सायङ्काल कहा जाता है ॥ ८६ ॥ पन्द्रह मुहूर्त वाले दिन का तीन मुहूर्त ही समय होता है । विषुव में यह दिन दश और पाँच मुहूर्त वाला ही कहा गया है ॥ ६० ॥ इसी कारण से दक्षिणायन और उत्तरायण में यह दिन बढ़ जाता है और कम भी हो जाया करता है अर्थात् दिन बड़े छोटे हुआ करते हैं । दिन तो रात्रि का ग्रास कर जाता है और रात्रि दिन को ग्रस जाया करती है । तात्पर्य यही है कि दिन छोटे हैं तो रात्रि बड़ी हो जाती है और रात्रि छोटी होती है तो दिन बड़ा हो जाया करता है ॥६१॥

शरद्वसन्तयोर्मध्यं विषुवं तु विधीयते ।
आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकाच्चालोक उच्यते । ६२
लोकपाला स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः ।
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥६३
सुधामा चैव वैराजः कर्दमश्च प्रजापतिः ।
हिरण्यरोमापर्जन्यः केतुमान् राजसश्च ॥ ॥६४
निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निरतन्द्रा निष्परिग्रहाः ।
लोकपाला स्थितास्त्वेते लोकालोके चतुर्दिशम् । ६५

उत्तरं यदगस्त्यस्य श्रृङ्गं वैश्वानरपथाद्बहि ।।६६
पितृयान: स्मृत: पन्था वैश्वानरपथाद्बहि ।।६६
तत्रासते प्रजाकामा ऋषयो येऽग्निहोत्रिण. ।
लोकस्य सन्तानकरा:पितृयानेपथिस्थिता ।।६७
भूतारम्भकृत कर्म्म आशिषश्चविशाम्पते ।
प्रारम्भन्ते लोककामास्तेषापन्था:सदक्षिण. ।।६८

शरद् और वसन्त के मध्य मे विषुव का विधान किया जाता है। यह लोक आलोकान्त कहा गया है और लोक आलोक कहा जाया करता है ।। ६२ ।। उस लोकालोक के मध्य मे वहाँ पर लोकपाल समवस्थित रहा करते हैं। ये महान् आत्माओं वाले लोकपाल वाव हैं जो जब तक भूत-सम्प्लव होता है तब तक वहाँ पर स्थित रहा करते हैं ।। ६३ ।। इन ग्रहों में सुधामा वैराज होता है—प्रजापति कर्दम है—हिरण्यरोमा पर्जन्य है और चौथे राजस केतुमान् होता है ।। ६४ ।। ये लोकालोक पर्वत में चारों दिशाओं में लोकपाल स्थिति रक्खा करते हैं। ये चारों ही बड़े निर्द्वन्द्व—अभिमान से रहित—तन्द्रा शून्य और बिना परिग्रह वाले हुआ करते हैं ।। ६५ ।। उत्तर दिशा में जो शिखर है जिसका देवगण सेवन किया करते हैं। वह वैश्वानर पथ से बाहिर पितृयान मार्ग बताया गया है ।। ६६ ।। वहाँ पर प्रजा की कामना रखने वाले ऋषिगण रहा करते हैं जो कि अग्निहोत्र करने वाले हुआ करते हैं। ये इस लोक की वृद्धि करने वाले हैं और पितृयान के पथ में स्थित रहा करते हैं ।। ६७ ।। हे विशाम्पते! ये लोक का कामना रखने वाले भूतों के आरम्भ के लिए किया हुआ कर्म्म और आशीर्वादों का प्रारम्भ किया करते हैं और उनका पन्था सदक्षिण होता है ।। ६८ ।।

चलितन्ते तुनधर्मं स्थापयन्ति युगे युगे ।
सन्तप्ततपसा चैव मर्यादाभि: श्रुतेन च । ६६
जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमाना गृहेषु ते ।

पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह ॥१००
एवमावर्तमानास्ते वर्तन्त्याभूतसम्प्लवम् ।
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणां गृहमेधिनाम् ॥१०१
सवितुर्दक्षिणं मार्गमाश्रित्याभूतसम्प्लवम् ।
क्रियावतां प्रसंख्यैषा ये श्मशानानि भेजिरे ॥१०२
लोकसंव्यवहारार्थं भूतारम्भकृतेन च ।
इच्छाद्वेषरताश्चैव मैथुनोपगमाच्च वै ॥१०३
तथा कामकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च ।
इत्येतैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानीह भेजिरे ॥१०४
प्रजैषिणः सप्तर्षयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ।
सन्ततिं ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्जितस्तु तैः ॥१०५

वे लोग युग युग में जो धर्म च्युत हो जाया करता है उस धर्म को पुनः स्थापित किया करते हैं और धर्म की संस्थापना भली भाँति किए हुए तप से—मर्यादाओं से और श्रुत के द्वारा ही किया करते हैं ॥९९॥ पहिले होने वाले वे पीछे होने वालों के गृहों में जायमान (समुत्पन्न) हुआ करते हैं और जो पश्चिम अर्थात् पीछे होने वाले हैं वे पूर्व पुरुषों के निधन हो जाने पर यहाँ पर जन्म ग्रहण किया करते हैं। इस रीति से आवर्तमान होने वाले अर्थात् एक दूसरे के पीछे इस संसार में जन्म ग्रहण करने की पुनः पुनः आवृत्ति करने वाले वे भूत संप्लव जब होता है तब तक यहाँ पर वर्तमान रहा करते हैं। यह इन ऋषियों की संख्या जो गृहमेधी हैं अट्ठासी सहस्र है ॥१००।१०१॥ ये सविता के दक्षिण मार्ग का समाश्रय ग्रहण करके ही भूत संप्लव जब होता है तब तक क्रिया वाले रहा करते हैं इनकी संख्या यही है जो उपर्युक्त है। वे श्मशानों का भी सेवन किया करते हैं। लोक के संव्यवहार के लिए और भूतारम्भ कर्म के द्वारा वे इच्छा तथा द्वेष में भी रति रखने वाले हैं तथा मैथुन का भी उपगम अभीष्ट की सिद्धि के लिए किया करते हैं। इस रीति से

कामना के होने के कारण से ये विषयों का सेवन किया करते हैं। यही कुछ कारण हैं जिनके द्वारा ये सिद्ध लोग श्मशानों का सेवन किया करते थे। यहाँ पर प्रजा की इच्छा वाले सात ऋषि द्वापर में समुत्पन्न हुए थे। फिर उन्होंने सन्तति की निन्दा की थी और इसी कारण से उन्होंने मृत्यु को जीत लिया था ॥ १०२, १०३, १०४, १०५॥

अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्ध्वरेतसाम् ।
उदक् पन्थानपर्यन्तमाश्रित्याभूतसम्प्लवम् ॥१०६
ते सम्प्रयोगाल्लोकस्य मिथुनस्य च वर्जनात् ।
ईर्ष्याद्वेषनिवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात् ॥१०७
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे ।
आभूतसम्प्लवस्थानामगमृतत्वं विभाष्यते ॥१०८
त्रैलोक्यस्थितिकालो हि न पुनर्मारगामिनाम् ।
भ्रूणहत्याश्वमेधादि पापपुण्यनिभैः परम् ॥१०९
आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते चोर्ध्वरेतसः ।
ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रानुसंस्थितः ॥११०
एतद्विष्णुपदं दिव्यतृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ।
यत्रगत्वा नशोचन्तितद्विष्णो परमम्पदम् ॥
धर्मे ध्रुवस्य तिष्ठन्ति ये तु लोकस्य काङ्क्षिणः ॥१११

ऊर्ध्वरेता उन अट्ठासी सहस्र ऋषियों ने उदक पथ पर्यन्त समाश्रय किया था और वह भी आभूत सम्प्लव तक वे वहाँ समवस्थित रहे थे। वे लोक के सम्प्रयोग से और मिथुन के वर्जन से तथा ईर्ष्या और द्वेष भाव की निवृत्ति से और भूतों का समारम्भ करने के वर्जन से इन्हीं कतिपय कारणों के होने से वे परम विशुद्ध हो गये थे और उन्होंने अमृतत्व को प्राप्त कर लिया था। उनका वह अमृतत्व था जब तक भूतों का सम्प्लव हुआ था तभी तक रहा था और वे वहीं पर बराबर स्थित रहा करते थे। जो लोग काम के

मार्ग के गमन करने वाले हैं उनका त्रैलोक्य स्थिति काल नहीं होता है क्योंकि भ्रूण हत्या आदि महापापों से और अश्वमेध आदि पुण्य कर्मों से यह परिपूर्ण हुआ करता है ॥ १०६, १०७, १०८, १०९ ॥ जिस समय में यह समस्त भूतों का सम्प्लव होता है तो उसके अन्त मे ऊर्ध्वरता लोग भी क्षीण हो जाया करते हैं। ऊर्ध्वत्तर ऋषियों से यहां ध्रुव संस्थित होता है। यह विष्णु का व्योम मे तृतीय परम भास्कर एवं दिव्य पद है जहां पर पहुँच कर उस विष्णु के परम पद की चिन्ता नहीं किया करते हैं और जो लोभ की आकांक्षा रखने वाले हैं वे ध्रुव के ही धर्म में स्थित रहा करते हैं। ११०, १११॥

५४—ज्योतिष चक्र वर्णन

एवं श्रुत्वा कथां दिव्यामब्रुवन् लोमहर्षणिम् ।
सूर्याचन्द्रमसोचारं ग्रहाणाञ्चैव सर्वशः ॥१
भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतींषि रविमण्डले ।
अव्यूहेनैव सर्वाणि तथा चासङ्करेण वा ॥२
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ।
एतद्वेदितुमिच्छामस्ततो निगद सत्तम ! ॥३
भूतसमोहनं ह्येतद्ब्रुवतो मे निबोध तम् ।
प्रत्यक्षमपि दृश्य तत् समोहयति वै प्रजा ॥४
योऽसौ चतुर्दशर्क्षेषु शिशुमारो व्यवस्थितः ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ॥५
स एष भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥६
ध्रुवस्य मनसा यो वै भ्रमते ज्योतिषाङ्गण. ।
यान लोकमयंवर्ग्यं युवेदद प्रसपति ॥७

ऋषिगण ने कहा इस प्रकार से ग्रहों की स्थिति की कथा का श्रवण करके जो परम दिव्य थी वे फिर सूत जी बोले—सूर्य चन्द्रमा का चरण और सब ग्रहों का चरण किस प्रकार से हुआ करता है। ये समस्त ज्योतियां रवि के मण्डल में किस प्रकार से भ्रमण किया करती हैं? वे सब अलग २ व्यूह रहित होकर या असङ्कर भाव से भ्रमण करती हैं उनका कौन कैसे भ्रामण कराया करता है अथवा वे स्वयं ही भ्रमण किया करती हैं—हम अब यही ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं अतएव हे श्रेष्ठ तम! इसका वर्णन कीजिए ॥१, २, ३॥ श्री सूतजी ने कहा—यह भूतों का समोहन करने वाला है। उसको आप लोग मेरे द्वारा जान लो! प्रत्यक्ष होते हुए भी यह दृश्य है और निश्चय ही प्रजाओं को संमोहित करता है। जो यह चतुर्दश नक्षत्रों में शिशुमार व्यवस्थित है वह उत्तानपाद का पुत्र है जो दिवलोक में मेढीभूत ध्रुव है ॥४, ५॥ वही यह भ्रमण करता हुआ ग्रहों के साथ चन्द्रमा और सूर्य को भ्रमण कराता है। भ्रमण करते हुए उसके पीछे सब नक्षत्र चक्र की भांति अनुसर्पण किया करते हैं। ध्रुव के मन से जो ज्योतियों का गण भ्रमण करता है वह वातानीक मय बन्धों से ध्रुव में बद्ध होकर ही प्रसर्पण किया करता है ॥६, ७॥

तेषां भेदश्च योगश्च तथा कालस्य निश्चयः ।
अस्तोदयास्तथोत्पाता अयनेदक्षिणोत्तरे ।।८
विषुवद्ग्रहवर्णश्च सर्वमेतद् ध्रुवेरितम् ।
जीमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः ॥६
द्वितीय आवहन् वायुर्मेघास्ते स्वभिसंश्रिताः ।
इतोयोजनमात्राच्च अध्यर्द्धं विकृताअपि ॥१०
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धाराधारःप्रकीर्तिताः ।
पुष्करावर्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः ॥११
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना वै पर्वताना महौजसा ।

उदग्हिमवत. शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे ।
पुण्ड्र नाम समाख्यात सम्यग्वृष्टिविवृद्धये ।२३
तस्मिन् प्रवर्तते वर्षं तत्तुषारसमुद्भवम् ।
ततो हिमवतो वायुर्हिम तत्र समुद्भवम् ॥२४
आनयत्यात्मवेगेन सिञ्चयानो महागिरिम् ।
हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेष ततः परम् ॥२५
इमास्येचतत पश्चाददम्भूतविवृद्धये ।
वषद्वय समाख्यात सम्यग् वृष्टिविवृद्धये ॥२६
मेघाश्चाप्यायन चैव सर्वमेतत् प्रकीर्त्तितम् ।
सूर्य्य एव तु वृष्टीना स्रष्टा समुपदिश्यते ॥२७
वर्ष घर्म हिम रात्रि सन्ध्ये चैव दिन तथा ।
शुभाशुभफलानीह ध्रुवात् सर्वं प्रवर्त्तते ॥२८

हिमवान् पर्वत के उत्तर भाग से पर्वत के दक्षिण और उत्तर में भली भाँति वृष्टि की वृद्धि के लिये पुण्ड्र नाम वाला बताया गया है। उसमे तुषार से समुद्भूत वर्षा प्रवृत्त हुआ करती है। इसके उपरान्त वायु हिमवान् से हिम को जो कि वही पर समुद्भव हुआ है अपने वेग से महा गिरि का सेचन करता हुआ ले आया करता है। हिमवान् का अतिक्रमण करके उसके बाद मे वृष्टिशेष होता है। इसके पश्चात् इस (गज) के आस्य मे यह भूतो की विवृद्धि क लिये दो वष समाख्यात किये गये हैं जो अच्छी तरह वृष्टि की विवृद्धि के लिये होता है ॥२३, २४, २५॥ ॥२६॥ और मेघ आप्यायन (सतृप्ति) होते हैं जो सर्वत्र प्रकीर्तित है। वृष्टियों का सृजन करने वाले भगवान् सूर्य्य ही समुपदिष्ट हुआ करते हैं। वर्ष–घर्म–हिम–रात्रि–दोनो सन्ध्या काल–दिन–और यहाँ पर शुभ तथा अशुभ फल सब ध्रुव से प्रवृत्त होते हैं ॥२७, २८॥

ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चाप सूर्य्यो वै गृह्य तिष्ठति ।
सर्वभूतशरीरेषु त्वापो ह्यनुश्रिताश्चया. ॥२९

दह्यमानेषु तेष्वेह जङ्गमस्थावरेषु च ।
धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रामन्तीह सर्वशः ॥३०
तेन चास्त्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम् ।
तेजोभिः सर्वलोकेभ्य आदत्ते रश्मिभिजलम् ॥३१
समुद्राद्वायुसयोगात् वहन्त्यापो गभस्तयः ।
ततस्त्वृतुवशात्काले परिवर्तन् दिवाकरः ॥३२
नियच्छत्यापो मेघेभ्यः शुक्ला शुक्लैस्तु रश्मिभिः ।
अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुनासमुदीरिताः ॥३३
ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायुभिस्तनितं चैव विद्युतस्त्वग्निजाः स्मृताः ॥३४
मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ते ततो ह्यापस्तस्मादभ्रस्य वै स्थितिः ॥
स्रष्टाऽसौ वृष्टिसर्गस्य ध्रुवेणाधिष्ठितो रविः ॥३५

ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित जल को सूर्य ग्रहण करके स्थित होता है । समस्त भूतों के शरीरों में जो जल आनुषित हैं । उनके जङ्गम और स्थावरों में दह्यमान् होने पर वह समस्त जल धूमभूत अर्थात् धूँआ होकर सब ओर से निकल जाया करते हैं । और उससे अभ्रज उत्पन्न हुआ करते हैं जो कि स्थान अभ्रमय कहा गया है । समस्त लोकों में तेज पूर्ण रश्मियों के द्वारा जल का का आदान किया करता है ॥२६, ३०, ३१॥ गभस्तियाँ समुद्र से वायु के सयोग से जल का वहन करती हैं । इसके अनन्तर ऋतु के वश में होने के कारण दिवाकर समय पर परिवर्तित होता हुआ मेघों के लिये शुक्ल रश्मियों से शुक्लही जल दिया करता है । मेघ में स्थित जल नीचे गिरा करते हैं जबकि वे वायु के द्वारा समुदीरित होते हैं । इसके उपरान्त समस्त भूतों की विवृद्धि के लिये छैः मास तक वर्षा करता है । वायु के द्वारा स्तनित और अग्नि से समुत्पन्न विद्युत कहे गये हैं । मेहन करने से "मिहि"—इस धातु से मेघ व प्रकट किया करते

हैं उनसे जल भ्रंशमान होकर नीचे वहीं गिरा करते हैं ऐसी ही अभ्रकी स्थिति है। वृष्टि के सर्ग की सृष्टिका करने वाला यह रवि ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित है ॥३२, ३३, ३४, ३५॥

ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः ।
ग्रहान्निवृत्या सूर्य्यात्तु चरते ऋक्षमण्डलम् ॥३६
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठितम् ।
अत सूर्य्यरथस्यापि सन्निवेशं प्रचक्षते ॥३७
स्थितेन त्वेकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना ।
हिरण्मयेनाणुना वै अष्टचक्रैकनेमिना ॥३८
शतयोजनसाहस्रो विस्तारायाम उच्यते ।
द्विगुणं च रथोपस्थादीषादण्डं प्रमाणतः ॥३९
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथाह्यर्थवशेन तु ।
असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः ॥४०
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यथाचक्रं समास्थितैः ।
वारुणस्य रथस्येह लक्षणैः सदृशश्च सः ॥४१
तेनासौ चरति व्योम्नि भास्वाननुदिनं दिवि ।
अथाङ्गानि तु सूर्य्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य च ॥
सम्वत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम् ॥४२

ध्रुव से अधिष्ठित वायु पुनः वृष्टि का संहरण किया करता है। सूर्य ग्रह से निवृति प्राप्त कर फिर ऋक्ष मण्डल में चरण किया करता है। उस चारण के अन्त में ध्रुव से समधिष्ठित सूर्य में प्रवेश किया करता है। इसलिये सूर्य के रथ का भी सन्निवेश बतलाया जाता है। सूर्य के रथ में एक ही चक्र (पहिया) होता है और उस में पांच अरा होते हैं तथा तीन नाभि हुआ करती हैं। वह हिरण्मय अणु और अष्टचक्र व नेमि वाले चक्र के द्वारा भारवमान प्रमाण करने वाले रथ से सूर्य को सहस्र योजन के विस्तार से आयाम वाला कहा जाता है। रथोपस्थ से ईषा दण्ड प्रमाण में द्विगुण है। वह

उसका रथ ब्रह्मा के द्वारा अर्थ के वर्ष सृजन किया गया था जो असङ्ग–काञ्चन—दिव्य और पवन गामी अश्वों से युक्त था। चक्र के अनुसार समास्थित-वाजिरूप छन्दों से संयुत था। वह लक्षणों से वरुण के रथ के ही सदृश था। उसी के द्वारा आकाश में यह भास्वान् प्रतिदिन दिव में चरण किया करता है। इसके अनन्तर सूर्य्य के अङ्ग और रथ के प्रसङ्ग यथाक्रम-सम्वत्सर के अवयवों से कल्पित किये गये हैं ॥३६, ३७, ३८॥ ॥३९, ४०, ४१, ४२॥

अहर्नाभिस्तु सूर्यस्य एकचक्रस्य च स्मृत ।
अरान् सम्वत्सरास्तस्य नेम्यः षड् ऋतवः स्मृता ॥४३
रात्रिर्वरूथोधर्मश्चध्वजऊर्ध्वं व्यवस्थित. ।
अक्षकोटय् युगान्यस्यआर्तवाहा.कला.स्मृता ।४४
तस्य काष्ठा स्मृता घोणा दन्तपङ्क्तिः क्षणास्तु वै ।
निमेषश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य कला स्मृता ॥४५
युगाक्षकोटी ते तस्यअर्थकामावुभौस्मृतौ ।
सप्त(मा)श्वरूपाश्छन्दासिवहन्तेवायुरंहसा ॥४६
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुप् तथैव च ।
पङ्क्तिश्च बृहतीचैव उष्णिगेवतुसप्तमः ॥४७
चक्रमक्षे निबद्धन्तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः ।
सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षोभ्रमति ध्रुवम् ॥४८
अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरित. ।
एवमर्थवशात्तस्य संनिवेशो रथस्य तु ॥४९

एक चक्र वाले सूर्य का दिन नाभि है। उसके अरसे सम्वत्सर है और उसकी नेमियाँ छै ऋतुएँ कही गयी हैं ॥४ ॥ वरुथ रात्रि है और ऊर्ध्व में व्यवस्थित ध्वज धर्म्म है। इसकी अक्ष कोटियाँ युग है और आर्तवाह कला कही गयी है ॥४४॥ काष्टाएँ उसकी घोणा (नासिका) बतायी गयी है और क्षण दाँतो की पंक्ति है। निमेष इसका अनुकर्ष है

और इसकी ईषा वसा कही गयी है ।।४६।। उसकी ये युगाक्ष कोटी दोनों अर्थ और काम बताये गये हैं। सात रूप वाले छन्द वायु के वेग से वहन किया करते हैं। गायत्री-त्रिष्टुप्—जगती—अनुष्टुप्—पंक्ति—बृहती—उष्णिक्—ये सात छन्द हैं। चक्र अक्ष में निबद्ध है और वह अक्ष ध्रुव में समर्पित है। चक्र के साथ अक्ष भ्रमण करता है और अक्ष के सहित वह ध्रुव भ्रमा करता है ।।४६, ४७, ४८।। ध्रुव के द्वारा प्रेरित हुआ अक्ष चक्र के साथ ही घूमा करता है। इस प्रकार का अर्थ वश से रथ का सन्निवेश होता है ।।४९।।

तथा संयोगभागेन सिद्धो वै भास्करो रथः ।
तेनाऽसौ तरणिर्देव्ये नभसः सर्पते दिवम् ।।५०
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु ।
भ्रमतो भ्रमतो रश्मी तौ चक्रयुगयोस्तु वै ।।५१
मण्डलानि भ्रमे तेऽस्य रथस्य तु ।
कुलालचक्रभ्रमवन्मण्डल सर्वतोदिशम् ।।५२
युगाक्षकोटि ते तस्य वातोर्मीस्यन्दनस्य तु ।
संक्रमे ते ध्रुवमहो मण्डले सर्वतोदिशम् ।।५३
भ्रमतस्तस्य रश्मी ते मण्डले तूत्तरायणे ।
वर्द्धते दक्षिणेष्वत्र भ्रमतो मण्डलानि ।।५४
युगाक्षकोटीसम्बद्धौ द्वे रश्मीस्यन्दनस्य ते ।
ध्रुवेण प्रगृहीतौ तौ रश्मी धारमतारविम् ।।५५
आकृष्यते यदा ते तु ध्रुवेण समधिष्ठिते ।
तदा सोऽभ्यन्तरे सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।।५६
अशीतिमण्डलशत काष्ठयोरुभयोश्चरन् ।
ध्रुवेण मुच्यमाने न पुनारश्मियुगेन च ।।५७
तथैव वाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।
उद्वेष्टयन्वैवेगेन मण्डलानि तु गच्छति ।।५८

इस प्रकार से संयोग के भाग से यह भगवान् भास्कर का रथ सिद्ध हुआ है। इसी रथ के द्वारा यह सूर्य देव आकाश के मध्य में दिव में प्रसर्पण किया करते हैं ॥५०॥ उसके रथ की वे युगाक्ष कोटी दक्षिण में भ्रमण करती हैं और चक्र युगों की वे दोनों रश्मियाँ भ्रमा करती हैं। आकाश में चरण करने वाले इसके रथ के भ्रम में मण्डल हैं। और कुम्हार के चाक की भाँति मण्डल सब दिशाओं में भ्रमता है। उसके रथ की वे युगाक्ष कोटी वनोर्मी हैं। मण्डल में पर्वतों की दिशाओं में वे ध्रुव को संक्रमित किया करती हैं। भ्रमण करतेहुए उसकी रश्मियाँ और वे मण्डल उत्तरायण में वर्द्धित होते हैं। रथ की वे दो रश्मियाँ युगाक्ष कोटियों से सम्बद्ध ध्रुव के द्वारा वे दोनों रश्मियाँ प्रगृहीत हैं जो रवि को धारण करने वाले ध्रुव के द्वारा आकर्षित किया करता है। जिस समय में वे ध्रुव के साथ समधिष्ठित होते हैं उस समय में वह सूर्य मण्डलों को अभ्यन्तर में भ्रमण किया करता है। दोनों काष्ठाओं में अस्सी मण्डल शत में चरण करता हुआ रहता है। पुनः ध्रुव के द्वारा मुच्यमान् रश्मि युग से चरण करता है। इसी भाँति बहिर्मण्डल में यह सूर्य मण्डलों को भ्रमण किया करता है। वेग के साथ उद्वेष्टन करता हुआ वह मण्डलों को गमन किया करता है ॥ ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ ॥

५५–अमावस्या महत्त्व वर्णन

कथं गच्छत्यमावास्यां मासिमासि दिवं नृप ।
ऐलः पुरूरवाःसूत ! तर्पयेत कथं पितन् ॥
एतमिच्छामहे श्रोतु प्रभावन्तस्य धीमतः ॥१॥
तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभाव विस्तरेण तु ।
ऐलस्य दिवि संयोग सोमेन सह धीमता ॥२

सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितृणां तर्पणं तथा ।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥३
यदाचन्द्रश्च सूर्यश्च नक्षत्राणां समागतौ ।
अमावास्या निवसत एकस्मिन्नथ मण्डले ॥४
तदा स गच्छति द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ ।
अमावास्याममावास्यां मातामहपितामहौ ॥५
अभिवाद्य तु तौ तत्र कालापेक्षः स तिष्ठति ।
प्रचस्कन्द ततःसोममर्चयित्वा परिश्रमात् ॥६
ऐलः पुरूरवा विद्वान् मासि श्राद्धचिकीर्षया ।
ततः स दिवि सोमं वै ह्युपतस्थे पितृनपि ॥७

ऋषियों ने कहा—हे श्री सूतजी ! पुरुरवा ऐल नृप मास-मास में अर्थात् प्रति मास में अमावस्या में दिवलोक में कैसे जाया करता है और किस प्रकार से पितृगण का तर्पण करता है ? उस धीमान् के इस प्रभाव के श्रवण करने की हम लोगों की इच्छा है । सूतजी ने कहा—मैं अब उसके प्रभाव को विस्तार के साथ बतलाता हूँ । ऐल का दिवलोक में धीमान् सोम के साथ संयोग होता है । सोम से ही अमृत की प्राप्ति हुआ करती है तथा पितगण का तर्पण होता है । सौम्य-बर्हिषद्-काव्य और उसी भाँति अग्निष्वात्त हैं ।। १, २, ३ ।। जिस समय में चन्द्र और सूर्य नक्षत्रों में समागत होते हैं अमावस्या में एक ही मण्डल में निवास किया करते हैं ।। ४ ।। उस समय में वह मातामह पितामह दिवाकर निशाकरों को देखने के लिये अमावस्या-अमावस्या में जाया करता है । वहाँ पर वह उन दोनों का अभिवादन करके काल की अपेक्षा करने वाला स्थित हो जाया करता है । इसके उपरान्त वह बड़े ही परिश्रम से सोम का अभ्यर्चन करके प्रस्कन्दित होता है । महा विद्वान् पुरुरवा ऐल मास में श्राद्ध करने की इच्छा से दिवलोक में सोम का और पितृगण का उपस्थान किया करता है ।। ५, ६, ७ ।।

सिनीवाली कुहूमात्रं तावुभौ तु निधाय सः ।
सिनीवाली प्रमाणात्तु कुहूमात्रव्रतोदये ॥८
कुहूमात्रं पितृद्देशं ज्ञात्वा कुहूमुपासते ।
तमुपास्य ततः सोमं कलापेक्षी प्रतीक्षते ॥९
स्वधा मृतन्तु सोमाद्वै वर्म तेषाञ्च तृप्तये ।
दशभिः पञ्चभिश्चैव स्वधाऽमृतपरिस्रवैः ॥
कृष्णपक्षभुजां प्रीतिर्दुह्यते परमांशुभिः ॥१०॥
सद्योभिःक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः ।
निवापेष्वथ दत्तेषु पित्र्येण विधिना तु वै ॥११
स्वधामृतेन सौम्येन तर्पयामास वै पितॄन् ।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥१२
ऋतुरग्निः स्मृतो विप्रैस्ते तु संवत्सरविदु ।
जज्ञिरे ऋतवस्तस्मादृतुभ्यो ह्यार्तवाभवन ॥१३
पितरोर्तवोर्द्धमासा विज्ञेया ऋतुसूनवः ।
पितामहास्तु ऋतवो ह्यमावास्याब्दसूनव ॥
प्रपितामहाः स्मृता देवाः पञ्चाब्दं ब्रह्मणः सुता. ॥१४

सिनीवाली और कुहू मात्र इन दोनों को वह रखकर सिनीवाली के प्रमाण से अन्य कुहू मात्र व व्रतोदय में कुहू मात्र को पितृगण का उद्देश जानकर कुहू की ही उपासना किया करता है। उसकी उपासना करके इसके उपरान्त वह कलापेक्षी सोम की प्रतीक्षा किया करता है ॥८, ९॥ वही पान करता हुआ उनकी तृप्ति के लिये सोम से स्वधामृत ग्रहण करता है। दस और पाँच अर्थात् पन्द्रह स्वधामृत परिस्रवों से कृष्णपक्ष में भोग करने वालों को प्रीति होती है जो परमांशुओं के द्वारा दोहित की जाती है ॥१०॥ तुरन्त अभिक्षरण करने वाले उस सौम्य मधु से वह पितृगण के लिये बताई हुई विधि से निवापों के देने पर सौम्य सुधामृत से पितृगण का तर्पण किया करता था जो कि सौम्य—बर्हिषद् ।

काव्य और उसी भाँति अग्निष्वात्त हैं ॥ ११, १२ ॥ अग्नि ऋतु कहा गया है और विप्रों के द्वारा ऋतु को सम्वत्सर कहा जाता है। ऋतुएँ उससे समुत्पन्न हुए और ऋतुओं से आर्तव हुए थे ॥ १३ ॥ ऋतुओं के सूनु पितर अर्धमासोद् नाम जानने चाहिए। पितामह ऋतुएँ हैं जो अब्दा-सम्वत्सर के सूनु हैं। प्रपितामह देव कहे गये गये हैं। पञ्चाब्द ब्रह्माजी के पुत्र हैं ॥ १४ ॥

सौम्यावर्हिषद.काव्या अग्निष्वात्तास्त्रिधा ।
गृहस्थायेतु यज्वानो हविर्यज्ञार्तवाश्चये ॥
स्मृता बर्हिषदस्तं वं पुराणे निश्चय गताः ॥१५॥
गृहमेधिनश्च यज्वानो अग्निष्वात्तार्तवा. स्मृता. ।
अष्टका पतयः काव्याः पञ्चाब्दास्तु निबोधत ॥१६
तेषुसम्वत्सरोह्यग्निःसूर्यस्तु परिवत्सरः ।
सोमइत्विद्वत्सरश्चैववायुश्चैवानुवत्सरः ॥१७
रुद्रस्तुवत्सरस्तषां पञ्चाब्दाये युगात्मका. ।
कालेनाधिष्ठितःतेषु चन्द्रमा स्रवते सुधाम् ॥१८
एते स्मृता देवकृत्या. सोमपाश्चाप्मपा च ।
तांस्तेन तपयामास यावदासीत्पुरूरवा. ॥१९
यस्मात्प्रसूयतेसोमो मासिमासिविशेषत ।
नत स्वधामृततद्वै पितॄणां सोमपायिनाम् ॥
एतत्तदमृत सोममवाप मधु चैव हि ॥२०॥
ततः पीतसुध सोम सूर्योऽसावेकरात्मना ।
आप्यायते सुषुम्णेन सोमन्तु सामपायिनम् ॥२१

वे सौम्य—बर्हिषद काव्य और अग्निष्वात्त इस तरह से तीन प्रकार के हैं। जो गृहस्थ यज्वा हैं और जो हविर्यज्ञार्तव हैं वे पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए बर्हिषद कहे गये हैं ॥ १५ ॥ गृहमेधी यज्वा अग्नि-ष्वात्त आर्तव कहे गये हैं। अष्टका पति काव्य हैं। अब पञ्चाब्दों के विषय

में समझ लो ॥ १६ ॥ उनमें सम्वत्सर अग्नि है और सूर्य परिवत्सर है। सोम इद्वत्सर है और वायु अनुवत्सर है उनका रुद्रवत्सर है। ये पञ्चाब्द युगात्मक हैं। काल से प्रतिष्ठित हुआ चन्द्रमा उनमें सुधा का स्रवण किया करता है ॥ १७, १८ ॥ ये इतने देवकृत्य बताये गये हैं। सोमप और उष्मप जो हैं उनको उसी से पुष्कल जब तक रहता है तृप्त किया करता है। क्योंकि सोम मास-मास में विशेष रूप से स्रवण किया करता है। यह स्वधामृत सोमपायी पितृगणों के लिए है। यह सोम अमृत और मधु को प्राप्त करता है ॥ १९, २० ॥ इसके अनन्तर सुधा का पान किये हुए सोम को यह सूर्य एक रश्मि के द्वारा सोमपायी सोम को सुषुम्णा से आप्यायित किया करता है ॥२१॥

निःशेषावैकलाःपूर्वायुगपद्व्यापयन्पुरा ।
सुषुम्णाप्यायमानस्य भाग भागमहःक्रमात् ॥२२
कला क्षीयन्ति कृष्णास्ताः शुक्ला ह्याप्याययन्ति च ।
एवं सा सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ॥२३
पौर्णमास्या सदृश्येत शुक्ल सम्पूर्णमण्डलः ।
एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षेष्वहःक्रमात् ॥
देवैः पीतसुधं सोम पुरापश्चात्पिबेद्रविः ॥२४
पीत पञ्चदशाहन्तु रश्मिनैकेनभास्करः ।
आप्याय यत् सुषुम्णेन भाग भागमहः क्रमात् ॥२५
सुषुम्णाप्यायमानस्य शुक्लावर्द्धन्तिवैकलाः ।
तस्माद्ध्रसन्तिवकृष्णाःशुक्लाप्याययन्तिच ॥२६
एवमाप्यायते सोम क्षीयते च पुनः पुनः ।
समृद्धिरेव सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयो ॥२७
इत्येष पितृमान् सोमः स्मृतस्तद्वत् सुधात्मकः ।
कान्तःपञ्चदशैः सार्द्धं सुधामृतपरिस्रवैः ॥२८

पहिले सम्पूर्ण पूर्व कला एक ही साथ व्यापित हुई थीं। सुषुम्णा के द्वारा अप्यायमान का दिन के क्रम से भाग-भाग हो गये। वे कृष्ण कलाएँ क्षीण हुआ करती हैं। और शुक्लपक्ष की कलाएँ आप्यायन किया करती हैं। इस प्रकार से सूर्य के ही वीर्य से चन्द्रमा का तनु आप्यायिता है ।। २२, २३ ।। शुक्लपक्ष का सम्पूर्ण मण्डल पूर्णमासी में दिखलाई दिया करता है। इस प्रकार से ही दिनों के क्रम से शुक्लपक्ष में सोम आप्यायिता होता है। देवों के द्वारा जिसकी सुधा का पान कर लिया गया है उस सोम के पहिले और पीछे रवि पान किया करता है ।।२४।। भास्कर एक रश्मि के द्वारा पन्द्रह दिन तक पीत को अहक्रम से भाग-भाग करके सुषुम्णा के द्वारा आप्यायन किया करता है। सुषुम्णा के द्वारा आप्यायमान की शुक्ल कलाऐं बढ़ा करती हैं। इस कारण से कृष्णपक्ष की कलाओं का ह्रास होता है और शुक्ल कलाऐं आप्यायन किया करती हैं ।। २५, २६ ।। इसी भाँति यह सोम पुनः पुन. आप्यायित होता है और क्षीण हुआ करता है। शुक्ल तथा कृष्णपक्षों में इसी प्रकार से सोम की समृद्धि एवं क्षय हुआ करता है ।। २७ ।। इस रीति से यह पितृमान् सोम बताया गया है औ उसी प्रकार से यह सुधात्मक है। सुधामृत परिस्नवों के द्वारा पञ्चदश हैं उसके साथ ही यह कान्त है ।। २८ ।।

अत पर प्रवक्ष्यामि पर्वाणा सन्धयश्च याः।
यथा ग्रथ्नन्ति पर्वाणिआवृत्ताविक्षुवेणुवत् ।।२६
तथाब्दमासा पक्षाश्च शुक्ला कृष्णास्तु वै स्मृता।
पौणमास्यास्तु यो भेदो ग्रन्थयः सन्धयस्तथा ।।३०
अर्द्ध मासस्य पर्वाणि द्वितीयाप्रभृतीनि च।
अ न्याधानक्रिया यस्मात्क्रीयन्ते पर्वसन्धिषु ।।३१
तस्मात्तु पर्वणोह्यादौ प्रतिपद्यादिसन्धिषु।
सायाह्न अ मत्याश्च द्वौलवौ कालउच्यते ।।

लवौ द्वावेव राकाया कालो ज्ञेयोऽपराह्णिकः ।।३२।।
प्रकृतिः कृष्णपक्षस्य त्रालेऽतीतेऽपराह्णिके ।
सायाह्ने प्रतिपद्ये य स कालः पौर्णमासिकः ।।३३
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखादूर्ध्वं युगान्तरम् ।
युगान्तरोदिते चैवचन्द्रे लेखोपरिस्थिते ।।३४
पूर्णमासव्यतीपातौ यदा पश्येत्परस्परम् ।
तौ तु वैप्रतिपद्यावत्तस्मिन्काले व्यवस्थितौ ।।३५
तत्काल सूर्यमुद्दिश्य दृष्ट्वा सख्यातुमर्हसि ।
स-ौव सत्क्रियाकाल पष्ठ कालोऽभिधीयते ।।३६

इसके आगे जो पर्वों की सन्धियाँ होती हैं उनके विषय में वर्णन करते हैं। जिस प्रकार से आवृत्त से ईख के बाँस की तरह पर्व ग्रथित हुआ करते हैं। तथा अब्द—मास—पक्ष शुक्ल और कृष्ण कहे गये हैं पौर्णमासी का जो भेद होता है वे ग्रन्थियाँ और सन्धियाँ हैं ।। २६, ३० ।। अर्द्ध मास के द्वितीया प्रभृति जो तिथियाँ हैं। ये ही पर्व हैं जिससे पर्व सन्धियों में अग्न्याधान क्रिया प्राप्त की जाया करती हैं उसमें प्रतिपदा आदि सन्धियों में पर्व के आदि में होता है। सायाह्न में और अनुमति का दो लव काल कहा जाया करता है। दो लव ही राका का अपराह्णिक काल जानना चाहिए ।। ३१, ३२ ।। अपराह्णिक काल के अतीत हो जाने पर कृष्ण पक्ष की प्रकृति है। सायाह्न में प्रतिपदा में वह यह काल पौर्णमासिक होता है ।। ३३ ।। व्यतीपात में सूर्य के स्थित होने पर लेख से ऊर्ध्व में युगान्तर होता है। लेखा के ऊपर में स्थित चन्द्रमा के युगान्तर में उदित होने पर पूर्णमास और व्यतीपात जिस समय में परस्पर में देखते हैं। वे दोनों जब तक प्रतिपद् हैं उस काल में व्यवस्थित होते हैं। वह काल सूर्य का उद्देश करके देखकर सख्या करने के योग्य होता है और वह ही सत्क्रिया का काल है जो कि षष्ठ काल कहा जाता है।।३४ ।३५।३६।।

पूर्णेन्दुः पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ।
तस्मादाप्यायते मत्र्त पौर्णमास्या निशाकरः ॥३७
यदान्योन्यवती पाते पूर्णिमा प्रेक्षते दिवा ।
चन्द्रादित्योऽपराह्णे तु पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता ॥३८
यस्मात्तामनुमन्यन्ते पितरो दैवतः सह ।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता ॥३९
अत्यर्थं राजते यस्मात् पौर्णमास्यां निशाकरः ।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ॥४०
अमावसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ ।
एका पञ्चदशी रात्रिरमावस्या ततः स्मृता ॥४१
उद्दिश्यताममावास्यां यदा दर्शं समागतौ ।
अन्योऽन्य चन्द्रसूर्यौ तु दर्शनाद्दर्श उच्यते ॥४२

पूर्ण पक्ष मे पूर्ण इन्दु होता है और रात्रि सन्धियों मे पूर्णिमा होती है । इसी से पूर्णमासी में रात्रि मे निशाकर आप्यायन प्राप्त किया करता है ॥ ३७ ॥ जब अन्योन्यवती पूर्णिमा कार क्षण करके दिन प्रेक्षण करता है और अपराह्न मे चन्द्र और आदित्य होते हैं तब पूर्णत्व होने से पूर्णिमा कही गयी है ॥ ३८ ॥ क्योंकि पितृगण देवताओं के साथ उसको मानते हैं इसी कारण से उसका अनुमन्य मान होन से अनुमति यह नाम हुआ है और पूर्णत्व होने से पूर्णिमा है ॥ ३९ ॥ पौर्णमासी मे निशा कर बहुत ही अधिक दीप्तिमान् होता है यही कारण है कि चन्द्रमा के रञ्जन होने ही से कविगण उसको राका कहते हैं ॥ ४० ॥ जिस समय मे चन्द्रमा और दिवाकर दोनों ऋक्ष मे अमावसित होते हैं वह एक ही पञ्चदशी रात्रि होती है जिसको अमावस्या की रात्रि कहा गया है ॥४१॥ उस अमावस्या का उद्देश करके जब दर्शक समागत होते हैं और चन्द्र तथा सूर्य अन्योन्य को मिलते हैं तो दर्शन होने के कारण से ही उसका दर्श यह नाम कहा जाता है ॥४२॥

द्वौ द्वौ लवौ ह्यमावास्यां स कालः पर्वसन्धिषु ।
द्व्यक्षरः कुहूमात्रश्च पर्वकालस्तु स स्मृतः ॥४३
दृष्टचन्द्रा त्वमावास्या मध्याह्नप्रभृतीह वै ।
दिवा तदूर्ध्वं रात्र्यान्तु सूर्ये प्राप्ते तु चन्द्रमाः ॥४४
सूर्येण सहसोद्गच्छेत्ततः प्रातस्तनात्तु वै ॥४५
समागम्य लवौ द्वौ तु मध्याह्नान्निपतन्रविः ।
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमा सूर्यमण्डलात् ॥४६
निर्मच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु स ।
स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रियाः ॥
एतदृतुमुखं ज्ञेयममावास्यान्तु पार्वणम् ॥४७
दिवा पर्व त्वमावास्या क्षीणेन्दौ धवले तु वै ।
तस्माद्दिवा त्वमावास्या गृह्यते यो दिवाकर ॥४८
कुहूरिति कोकिलेनोक्तं यस्मात् कालात् समाप्यते ।
तत्कालसंज्ञिता ह्येषा अमावास्या कुहूः स्मृता ॥४९

दो-दो लव अमावस्या में हैं वह काल पर्व सन्धियों में द्व्यक्षर और कुहू मात्र है। वह पर्व काल कहा गया है ॥ ४३ ॥ जिसमें चन्द्रमा दिखलाई दिया गया हो वह अमावस्या यहाँ पर मध्याह्न प्रभृति है दिवा है उस से ऊर्ध्व में रात्रि में सूर्य के प्राप्त होने पर चन्द्रमा सूर्य के साथ सहसा उदित होवे उसके पश्चात् प्रातःकालीन होता है ॥ ४४, ४५ ॥ दोनों लवों का समागम करके मध्याह्न से रवि निपतित हो रहा हो और सूर्य मण्डल से चन्द्रमा दिखलाई देवे तब शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् होती है। निर्मथ्यमान उन दोनों मण्डलों के मध्य में वह काल जो होता है आहुति काल है और दर्श की वषट् क्रिया का है। अमावस्या में यह ऋतु-मुख पार्वण जानना चाहिये ॥ ४६, ४७ ॥ धवल क्षीण इन्दु के होने पर अमावस्या में दिवा पर्व होता है। इसी से अमावस्या में जो दिवाकर ग्रहण किया जाता है ॥ ४८ ॥ कुहू-रति कोकिल के द्वारा कहा गया

दिवसों के क्रम से होती है। इसी से पञ्चदश सोम में षोडशी कला नहीं है। इससे हे विप्र! मैंने सोम का पञ्चादशी में क्षय कहा है ॥ ५५, ५६ ॥

इत्यते पितरोदेवाः सौमनाः सोमवर्द्धनाः ।
आर्त्तवा ऋतवोऽप्याब्दा देवास्तान् भावयन्ति हि । ५७
अतः परं प्रवक्ष्यामि पितॄन् श्राद्धभुजस्तु ये ।
तेषां गतिञ्चसत्तत्त्वप्राप्तिश्राद्धस्यनैव हि ॥५८
न मृतानाङ्गतिः शक्या ज्ञातुं वा पुनरागतिः ।
तपसा हि प्रसिद्धेन किं पुनर्मां सचक्षुषा ॥५९
अत्र देवान् पितॄंश्चैते पितरो लौकिकाः स्मृताः ।
तेषान्ते धर्म्मसामर्थ्यात् स्मृताः सायुज्यगा द्विज ॥ ६०
यदि वाश्रमधर्मेण प्रज्ञानेषु व्यवस्थितान् ।
अन्येचात्र प्रसादन्ति श्राद्धयुक्तेषु कर्म्मसु ॥६१
ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया भुवि ।
श्राद्धेन विद्यया चैव चान्नदानेन सप्तधा ॥६२
कर्म्मस्वेतेषु ये सक्तावत्तन्त्या देहपातनात् ।
देवैस्ते पितृभिः सार्द्धं सूक्ष्म.सोमपैस्तथा ॥
स्वर्गता विवि मोदन्ते पितृमन्त उपासते ॥६३॥

ये इतने पितरदेव—सौम्य—सोमवर्द्धन आर्त्तव—ऋतव हैं। इनके अनन्तर अब्दवेद इनको भावित किया करते हैं ॥ ५७ ॥ इसके आगे जो श्राद्धभोगी पितर हैं उनको बतलाता हूँ। उनकी गति-सत्तत्व और श्राद्ध की प्राप्ति के विषय में कहता हूँ ॥ ५८ ॥ जो मृत हो जाते हैं। उनकी गति तथा पुनरागति जानी नहीं जा सकती है। यह यह प्रसिद्ध तप के द्वारा भी जब नहीं जानी जाती है तो मेरी तो बात ही क्या जो चक्षु न युक्त है ॥ ५९ ॥ यहाँ पर देवों को पितरों को बताया गया है। ये पितर लौकिक कहे गये हैं। उनमें वे धर्म की सामर्थ्य

जिस काल से समाप्त किया जाता है उसी काल से रक्षा वाली यह अमावस्या कुहू—इस नाम से कही गयी है ॥४९॥

सिनीवालीप्रमाणन्तु क्षीणशेषो निशाकरः ।
अमावास्या विशत्यर्क सिनीवाली तदा स्मृता ।।५०
अनुमतिश्च राका च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
एतासा द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूः स्मृताः ।।५१
इत्येष पर्वसन्धीनां कालोवैद्विलवःस्मृतः ।
पर्वाणान्तुल्यकालस्तु तुल्याहुतिवषट्क्रियाः । ५२
चन्द्रसूर्यव्यतीपाते समे वै पूर्णिमे उभे ।
प्रतिपत्प्रतिपक्षस्तु पर्वकालो द्विमात्रकः ।।५३
कालः कुहू सनीवाल्योः समुद्रो द्विलवः स्मृतः ।
अर्कनिर्मण्डले सोमे पर्वकाल कलाः स्मृताः ।।५४
यस्मादपूर्यते सोमः पञ्चदश्यान्तु पूर्णिमा ।
दशभिः पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात् ।।५५
तस्मात् पञ्चदशे सोमे कला वै नास्ति षोडशी ।
तस्मात् सोमस्य विप्रोक्तः पञ्चदश्या मया क्षयः ।।५६

सिनी वाली का प्रमाण तो यही है कि निशाकर क्षीण शेष होता है और अमावस्या अर्क मे प्रवेश किया करती है उस समय मे यह सिनी वाली कही गयी है ॥ ५० ॥ अनुमति राका —सिनी वाली तथा कुहू इन सबका द्विलव काल होता है । कुहू कही गई है ॥ ५१ ॥ पर्व सन्धियो का यह काल हो तब कहा गया है । पर्वों का तुल्य काल तुल्य आहुति वषट् क्रिया वाला है । चन्द्र सूर्य के व्यतीपात मे दोनो पूर्णिमाऐं समान है प्रतिपदा से प्रतिपक्ष द्विमात्रक पर्वकाल हुआ करता है ॥ ५२, ५३ ॥ कुहू और सिनी वाली दोनो का समुद्रकाल द्विलव कहा गया है । अर्क निर्मण्डल सोम मे पर्व काल कला कही गयी है ॥ ५४ ॥ क्योकि सोम पञ्चदशी मे पूरित नही होता है । पूर्णिमा पाँच और दश कला औ न

दिवसो के क्रम से होती है। इसी से पञ्चदश सोम मे षोडशी कला नही है। इससे हे विप्र! मैंने सोम का पञ्चादशी मे क्षय कहा है ॥ ५५, ५६ ॥

इत्येते पितरोदेवा सामपाः सोमवर्द्धना. ।
आर्त्तवा ऋतवोऽयाब्दा देवास्तान् भावयन्ति हि ॥ ५७
अतः पर प्रवक्ष्यामि पितृ न् श्राद्धभुजस्तु ये ।
तेषां गतिञ्चसत्त्वप्राप्तिश्चाद्धस्यचैव हि ॥५८
न मृतानाङ्गतिः शक्या ज्ञातु वा पुनरागतिः ।
तपसा हि प्रसिद्धेन किं पुनर्मां सचक्षुपा ॥५९
अत्र देवान् पितृ श्चैते पितरो लौकिकाः स्मृता. ।
तेषान्ते धर्म्मसामर्थ्यात् स्मृता. सायुज्यगा द्विज ॥ ६०
यदि वाधमधर्मेण प्रज्ञानेषु व्यवस्थितान् ।
अन्येचात्र प्रसादन्ति श्राद्धयुक्तेषु कर्म्मसु ॥६१
ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया भुवि ।
श्राद्धेन विद्यया चैव चान्नदानेन सप्तधा ॥६२
कर्म्मस्वेतेषु ये सक्तावसत्या देहपातनात् ।
देवैस्ते पितृभि. सार्द्धं सूक्ष्म.मोमपैस्तथा ॥
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्त उपासते ॥६३॥

ये इतने पितरदेव—सोमप—सोमवर्द्धन आर्त्तव—ऋतव हैं। इसके अनन्तर अब्ददेव उनको भावित किया करते है ॥ ५७ ॥ इसके आगे जो श्राद्धभोगी पितर हैं उनको बतलाता हूँ। उनकी गति-सत्तत्व और श्राद्ध की प्राप्ति के विषय मे कहता हूँ ॥ ५८ ॥ जो मृत हो जाते है। उनकी गति तथा पुनरागति जानी नहीं जा सकती है। यह यह प्रसिद्ध तप के द्वारा भी तब नहीं जानी जाती है तो मेरी तो बात ही क्या जो चक्षु से युक्त है ॥ ५९ ॥ यहाँ पर देवो को पितरो को बताया गया है। ये पितर लौकिक कहे गये हैं। उनमें से धर्म की सामर्थ्य

से द्विजों के द्वारा सायुज्य में गमन करने वाले बताये गये हैं ।। ६० ।। यदि वह आश्रम धर्म से प्रजाओं में व्यवस्थितों को कहा गया है और यहाँ पर अन्य श्राद्ध युक्त कर्मों में प्रसन्न हुआ करते हैं । ब्रह्मचर्य—तपस्या—यज्ञ—भूलोक में प्रजा-श्राद्ध—विद्या और अन्न ये सात प्रकार हैं । इन कर्मों में जो सक्त हैं और देह का पातन जब तक होता है तब तक रहा करते हैं वे देवों—पितृगणों के साथ तथा सोमप और ऊष्मपों के साथ स्वर्गलोक में गये हुए दिविलोक में आनन्द की प्राप्ति किया करते हैं और पितृमन्त उपासना किया करते हैं ।। ६१ ।। ६२ । ६३ ।।

प्रजावतां प्रसिद्धं वा उक्ताश्राद्धकृताञ्च वै ।
तेषां निवापे दत्तं हि तत् कुलीनैस्तु बान्धवैः ।।६४
मासश्राद्धं हि भुञ्जानास्तेऽप्येते सोमलौकिका ।
एते मनुष्या पितरो मासश्राद्धभुजस्तु वै ।।६५
तेभ्योऽपरे तु येत्वन्ये सङ्कीर्णाः कर्मयोनिषु ।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेषुस्वधास्वाहाविवर्जिताः ।।६६
भिन्ने देहे दुरापन्नाः प्रेतभूता यमक्षये ।
स्वकर्माण्यनुशोचन्तो यातनास्थानमागताः ।।६७
दीर्घाश्चैवातिशुष्काश्च श्मश्रुलाश्च विवासस ।
क्षुत्पिपासाभिभूतास्ते विद्रवन्ति स्वितस्ततः ।।६८
सरित्सरस्तडागानि पुष्करिण्यश्चसर्वशः ।
परान्नान्यभिकाङ्क्षन्त काल्यमानाइतस्तत ।।६९
स्थानेषु पात्यमाना ये यातनास्थेषु तेषु वै ।
शाल्मल्या वैतरिण्याञ्चकुम्भीपाकेद्धवालुके ।।७०

जो प्रजा वाले लोग हैं उनके यहाँ यह प्रसिद्ध है और जो श्राद्ध करने वाले हैं उनके यहाँ यह कहा गया है । उनके कुल में होने वाले बान्धवों के द्वारा निवाप में दिया हुआ श्राद्ध अर्थात् मास श्राद्ध का भोग

करने वाले हैं वे भी ये सोम लौकिक हैं। ये मनुष्य पितर हैं जो कि मास श्राद्ध का भोजन करने वाले हैं ॥ ६४, ६५ ॥ उनसे दूसरे जो अन्य हैं जो कर्म्म योनियों में सङ्कीर्ण हैं वे आश्रम धर्म्मों से महान् परिभ्रष्ट हैं और स्वाहा तथा स्वधा—इन दोनों से विवर्जित हैं। भिन्न देह से दुर्लभ—प्रेतभूत और यमक्षय में अपने कृत कर्म्मों की चिन्ता करते हुए किये हुए कर्मों का दण्ड भोगने का जो स्थान था उस पर लाये गये हैं ॥६६, ६७॥ दीर्घ-अत्यन्त शुष्क—दाढ़ी मूँछों वाले—वस्त्रों से रहित—भूख और प्यास से सताये हुए वहाँ पर इधर-उधर भागे २ फिरते हैं ॥ ६८ ॥ जल के प्राप्त करने के लिये किसी सरिता—सरोवर—तडाग और पुष्करिणियों की सब ओर खोज करते हुए दौड़ लगाते फिरा करते हैं। इधर-उधर काल्यमान होते हुए पराग की इच्छा रखते हुए रहा करते हैं किन्तु वे उन यातनायें भोगने के स्थानों में बरबश पटक दिये जाया करते हैं—नारकीय यातना भोगने के नाम ये हैं—शाल्मली—वैतरिणी—कुम्भीपाक—इक्षवालुक आदि हैं ॥६९, ७०॥

असिपत्रवनेन्चैवघात्यमाना स्वकर्मभिः ।
तत्रस्थानान्तु तेषां वै दुःखितानामशायिनाम् ।७१
तेषां लोकान्तरस्थानां बान्धवैर्नामगोत्रतः ।
भूमावसव्य दर्भेषु दत्ताः पिण्डास्त्रयस्तु वै ॥७२
प्राप्तास्तु तर्पयन्त्येव प्रेतस्थानेष्वधिष्ठितान् ।
अप्राप्ता यातनास्थानप्रभ्रष्टा ये च पञ्चधा ॥७३
पश्चाद्ये स्थावरान्ते वै भूतानीकं स्वकर्मभिः ।
नानारूपासु जातीनां तिर्यग्योनिषुमूर्त्तिषु ॥७४
यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु ।
तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहारेश्राद्ध दत्तन्तु प्रीणयेत् ॥७५
काले न्यायागतम्पात्रे विधिना प्रतिपादितम् ।
प्राप्नुवन्त्यन्नमादत्तं यत्र यत्रावतिष्ठति ॥

यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्धेषु दृष्टान्तो मन्त्रः प्रापयते तु तम्॥७६
एवं ह्यविकलं श्राद्धं श्राद्धादत्तं मनुरब्रवीत् ।
सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ॥७७

अपने ही कृत कर्मों के द्वारा नारकीय मानव असिपत्र वन नाम वाले नरक में डाल दिये जाते हैं जहाँ पर चारों ओर बरछी और तलवारें लगी रहा करती हैं। वहाँ पर जो स्थित रहते हैं वे अत्यधिक दुःखित रहा करते हैं और उन्हें शयन करने तक का कोई वहाँ स्थान नहीं होता है। ऐसे अन्य लोगों में स्थित उनके बान्धवों के द्वारा जो नाम और गोत्र का उच्चारण करके अपसव्य हो भूमि में दर्भों पर तीन पिण्ड दिये गये हैं ॥७१, ७२॥ प्रत स्थानों में अधिष्ठितों को प्राप्त हुए उनको वे पिण्ड तृप्त किया करते हैं। जो यातना के स्थान में अप्राप्त हैं वे प्रभ्रष्ट होकर पाँच प्रकार से विभक्त होते हैं। पीछे जो अपने कर्मों के द्वारा स्थावरान्त में भूत हैं वे तिर्यक योनि वाली भूतियों में तथा जातियों के नाना रूपों में जब आहार होते हैं तो उन उन योनियों में उस उस आहार में दिया हुआ श्राद्ध उनको प्राप्त एवं तृप्त किया करता है। समय पर न्याय पूर्वक पात्र में विधि के सहित प्रतिपादित एवं आदत्त अन्न को जहाँ-जहाँ पर अवस्थित होता है प्राप्त किया करते हैं ॥७३, ७४, ७५॥ जिस प्रकार से गौओं के प्रनष्ट होने पर वत्स माता को प्राप्त किया करता है उसी प्रकार से श्राद्धों में यह दृष्टान्त है कि मन्त्र उसको प्राप्त कराया करता है ॥७६॥ इसी प्रकार से श्रद्धा से दिया हुआ अविकल श्राद्ध है— ऐसा ही मनु ने कहा है। अपने दिव्य नेत्रों के द्वारा देखकर भगवान् सनत्कुमार ने कहा है ॥७७॥

गतागतज्ञः प्रेतानां प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लःस्वप्नाय शर्वरी ॥७८
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै ।

अन्योन्यपितरो ह्येते देवाश्च पितरो दिवि ॥७६
एते तु पितरो देवा मनुष्या पितरश्च ये।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥८०
इत्येष विषय. प्रोक्तः पितृणा सोमपायिनाम्।
एतत् पितृमहत्त्व हि पुराणेनिश्चयंगतम् ॥८१
इत्येष सोमसूर्याभ्यामैलस्य च समागम.।
अवाप्ति श्रद्धयाचैव पितृ.णाञ्चैवतर्पणम् ॥८२
पर्वणाञ्चैव यः कालो यातनास्थानमेव च।
समासात् कीर्तितस्तुभ्यं समएष सनातनः ॥८३
वैरूप्य येन तत्सर्वं कथितन्त्वेकदेशिकम्।
अशक्य परिसंख्यातुं श्रद्धेय भूतिमिच्छता ॥८४
स्वायम्भुवस्य देवस्य एष सर्गो मयेरित।
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च भूय. किं कथयामि वः ॥८५

प्रेतों के गनायत का ज्ञाता और श्राद्ध की प्राप्ति इसके लिये कृष्ण पक्ष के ही दिन हैं और जो शुक्ल पक्ष होता है वह तो उनके शयन के लिये रात्रि होती है ॥७८॥ ये इतने पितर देव हैं–देव पितर हैं। ये अन्योन्य में पितर है और दिवलोक में देव पितर हैं ॥७९॥ ये पितर देव हैं और जो देव पितर हैं तथा मनुष्य पितर हैं एवं पिता–पितामह और प्रपितामह हैं ॥८०॥ यह इतना सोमपायी पितृगणों का विषय कहला दिया गया है। यह पितृगण का महत्त्व पुराण में निश्चय को प्राप्त हुआ है ॥८१॥ यह सोम और सूर्यों का तर्पण तथा पर्वों का काल और यातना भोगने का स्थान यह सभी संक्षेप के साथ तुम्हारे सामने वर्णित कर दिया गया है। यह सम और सनातन है। जिसके द्वारा वैरूप्य होता है वह सभी एक देशिक कह दिया गया है। इसकी परिसंख्या नहीं की जा सकती है। जो भूति की इच्छा करने वाला है उसे श्रद्धा करनी चाहिये। ॥८२, ८३, ८४॥ स्वायम्भुव देव का यह सर्ग विस्तार के साथ और

आनुपूर्वी के सहित मैंने आपको सब बतला दिया है। अब आगे आप लोगों को मैं क्या बतलाऊं—यह कहिए ॥८४॥

५६—चतुर्युग मान वर्णन

चतुर्युगानि यानि स्यु पूर्वे स्वायम्भवेऽन्तरे।
एषा निसर्गं सत्याञ्च श्रोतुमिच्छाम विस्तरात् ॥१
एतच्चतुर्युग त्वेव तद्वक्ष्यामि निबोधत।
तत्प्रमाणं प्रसङ्ख्याय विस्तराच्चैव कृत्स्नश ॥२
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याब्दस्तु मानुषम्।
तेनापीह प्रसङ्ख्यायवक्ष्यामि तु चतुर्युगम्। ३
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठाङ्गणयेत् कला तु।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेम् मुहूर्तस्तस्त्रिंशता राज्यहनी समेते ॥ ४ ॥
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके।
रात्रि स्वप्नाय भूतानाञ्चेष्टायै कर्मणामह । ५
पित्र्ये राज्यहनी मास प्रविभागस्तयो पुन
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषा शुक्ल स्वप्नाय शर्वरी ॥६
त्रिंशद्ये मानुषा मासा पैत्रो मास स उच्यते।
शतानि त्रीणि मासाना षष्ट्या चाप्यधिकानि तु।
पैत्र संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥७।

ऋषियो ने कहा—पूर्व स्वायम्भुव अन्तर मे जो चतुर्युग हैं। अब हम लोग उनका निसर्ग और उनका सख्या काल ठीक करना चाहते हैं और पूर्ण विस्तार के साथ उसे सुनना चाहते हैं ।।१। श्री सूतजी ने कहा—यह जो चारो युगो की चौकडी जिस प्रकार से है उसको मैं बतलाता हू उसे भली भाति समझलो। उनका जो प्रमाण होता है उसको

प्रमश्यात् करके पूर्ण रूप से विस्तार के सहित मैं बतला रहा हूं ॥२॥ लौकिक प्रमाण के द्वारा मानुष वर्ष का निरूपण करके उसी के द्वारा यहां पर प्रसंख्यात करके मैं चारों युगों का वर्णन करूंगा ॥३॥ पन्द्रह निमेष की काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं की एक कला गिनी जाती है। तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र हुआ करता है ॥४॥ सूर्य्य मानुष लौकिक अहोरात्र में विभक्त होता है। रात्रि का समय प्राणियों के शयन करने का होता है और दिन विविध भाँति के कर्मों की चेष्टा करने के लिये हुआ करता है ॥५॥ पितृगण का मास रात्रि और दिन हुआ करता है उन दोनों का प्रतिभाग इसी भाँति हुआ करता है कि उनका कृष्ण पक्ष मास का दिन हुआ करता है और जो मास का शुक्ल पक्ष होता है वही शर्वरी स्वप्न के लिये होती है ॥६॥ जो ये तीस मानुष मास है वह पैत्र मास कहा जाया करता है। तीन सौ साठ मासों का पैत्र सम्वत्सर होता है जो मानुष के द्वारा विभाविद हुआ करता है ॥७॥

> मानुषेणैव मानेन वर्षाणां य छतं भवेत् ।
> पितॄणां तानि वर्षाणि सख्यातानि तु त्रीणि वै ।
> दश च ह्यधिका मासाः पितुसंख्येह कीर्तिताः ॥८
> लौकिकेन प्रमाणेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ।
> एतद्दिव्यमहोरात्रमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥९
> दिव्ये रात्र्यहनी वर्ष प्रविभागस्तयोः पुनः ।
> अहस्तु यदुदक् चैव रात्रिर्या दक्षिणायनम् ॥
> एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्याते तयोः पुनः ॥१०॥
> त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।
> मानुषाणां शतं यच्च दिव्या मासास्त्रयस्तु ॥
> तथैव सह संख्यातो दिव्य एष विधिः स्मृतः ॥११
> त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षास्तथैव च ।

दिव्य: सम्वत्सरोह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ॥१२
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः ।
त्रिंशदन्यानि वर्षाणि स्मृतः सप्तर्षिवत्सरः ॥१३
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि ।
वर्षाणि नवतिश्चैव ध्रुवसम्वत्सरःस्मृतः ॥१४

मानुष मास के मान के द्वारा ही जो वर्षों का एक शतक होता है वे पितृगण के तीन वर्ष संख्यात किये गये हैं । दश अधिक मास होते हैं । यहाँ पर यही पितृसंख्या कीर्तित की गयी है ॥८॥ लौकिक प्रमाण से जो मानुष अब्द कहा गया है—यह दिव्य अहोरात्र होता है—इस प्रकार से यही वैदिकी श्रुति है ॥६॥ दिव्य रात्रि और दिन एक वर्ष होता है और उन दोनों का प्रविभाग इसी प्रकार से हुआ करता है कि जो उत्तरायण है वह दिन होता है और जो दक्षिणायन होता है वही रात्रि होती है । ये ही रात्रि और दिन दिव्य उनके प्रसख्यात किये गये हैं ।।१०।। तीस जो वर्ष होते हैं वही दिव्य मास कहा गया है । मनुष्यों के जो शत है वे दिव्य तीन मास होते हैं । इसी भाँति से यह सख्यात हुआ करता है और यही दिव्य विधि बतलायी गयी है ॥११॥ तीन सौ साठ वर्ष का इस प्रकार से एक दिव्य सम्वत्सर मानुष के द्वारा प्रकीर्तित किया गया है ॥१२॥ मानुष प्रमाण से जो तीन सहस्र वर्ष होते हैं और तीस और होते हैं वही सप्तर्षियों का वत्सर कहलाता है । नौ सहस्र मानुष वर्ष और नब्बे अधिक अर्थात् नौ हजार नब्बे वर्ष का ध्रुव सम्वत्सर कहा जाया करता है । ॥१३, १४॥

षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च ।
षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया ॥
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥१५
इत्येतदृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया द्विजाः ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रकल्पिता ॥१६

चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन् ।
कृतत्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैव चतुर्युगम् ॥१७

पूर्वं कृतयुग नाम ततस्त्रे ताभिधीयते ।
द्वापरञ्च कलिश्चैव युगानि परिकल्पयेत् ॥ १८

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृत युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविध. ॥१९

इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकपादे निवर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२०

त्रेता त्रीणि सहस्राणि युगसंख्याविदो विदु. ।
तस्यापि त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांश. सन्ध्यया समः ॥२१

जो संख्या के वेत्ता पुरुष हैं वे छत्तीस हजार मानुष वर्ष और साठ हजार संख्या के द्वारा जो संख्यात किये गये हैं उनको दिव्य सहस्र वर्ष कहा करते हैं ॥१५॥ हे द्विजगण ! ऋषिगणों के द्वारा दिव्य संख्या से यहाँ बताया गया है और दिव्य प्रमाण के द्वारा ही युग सख्या भी प्रकीर्तित की गयी है । ऋषियो ने भारत वर्ष में चार युग बतलाये हैं । इन चारों युगों के नाम कृतयुग—त्रेतायुग—द्वापर और कलियुग हैं । ये चारों युग क्रम से ही हुआ करते हैं। सबसे पूर्व कृतयुग होता है । उसके पश्चात् त्रेतायुग कहा गया है और फिर द्वापर तथा कलियुग होता है । चार सहस्र वर्षों का कृतयुग होता है । उस कृतयुग की उतनी ही शत वाली सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश होता है । ॥१६, १७, १८, १९॥ इतर तीनों में सन्ध्या से युक्त और सन्ध्यांश से युगों में एक पाद में सो सहस्र निवृत्त हो जाते हैं । २०॥ युग सख्या के वेत्ता लोग त्रेता को तीन सहस्र कहा करते हैं। उसकी भी तीन शत [illegible] होती है और सन्ध्या के समान ही सन्ध्यांश होता है ॥ २१ ॥

द्वे सहस्रे द्वापरन्तु सन्ध्यांशौ तु चतुःशतम् ।
सहस्रमेकं वर्षाणां कलिरेव प्रकीर्तितः ॥
द्वे शते च तथान्ये च सन्ध्या सन्ध्यांशयोः स्मृते ॥२२
एषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या तु संज्ञिका ।
कृतत्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुष्टयम् ॥२३
तत्र सम्वत्सराः सृष्टा मानुषास्तान्निबोधत ।
नियुतानि दश द्वे च पञ्च चैवात्र संख्यया ॥
अष्टाविंशत्सहस्राणि कृतं युगमथोच्यते ॥२४
प्रयुतन्तु तथा पूर्ण द्वे चान्ये नियुते पुनः ।
षण्णवतिसहस्राणिसंख्याता नित्र संख्यया ॥२५
त्रेतायुगस्य संख्या मानुषेण तु संज्ञिता ।
अष्टौ शतसहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ॥
चतुःषष्टिसहस्राणि वर्षाणां ■ परं युगम् ॥२६॥
चत्वारि नियुतानि स्युर्वर्षाणि तु कलियुगम् ।
द्वात्रिंशच्च तथान्यानि सहस्राणि तु संख्यया ॥
एतत्कलियुगं प्रोक्तं मानवेण प्रमाणतः ॥२७
एषा चतुर्युगावस्था मानुषेण प्रकीर्तिता ।
चतुर्युगस्य संख्याता सन्ध्या सन्ध्यांशकैः सह ॥२८

तथा छियानबे सहस्र सख्या के द्वारा त्रेतायुग की यह सख्या मानुष प्रमाण से सज्ञा वाली की गयी है। मानुष वर्ष आठ सौ सत्तह और चौसठ हजार वर्षों के प्रमाण वाला द्वापर युग कहा गया है ॥ ५, २६॥ चार नियुत और अन्य बत्तीस सहस्र वर्षों की सख्या वाला कलयुग मानुष प्रमाण से कहा गया है ।।२७।। यह चारो युगो की अवस्था मनुष प्रमाण के द्वारा कीत्तित की गयी है और चारो युगो की सख्या उनकी सन्ध्या और सध्याश के सहित सख्यात की गयी है ॥२८॥

एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्तति ।
कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥२६
मन्वन्तरस्यसख्या तु मानुषेण निबोधत ।
एकत्रिंशत्तथाकोट्य सख्याता सख्ययाद्विजै ॥३०
तथा शतसहस्राणिदशचान्यानि भागश ।
सहस्राणि तु द्वात्रिंशच्छतान्यष्टाधिकानि च ॥३१
अशीतिश्चैव वर्षाणि मासाश्चैवाधिकास्तुषट् ।
मन्वन्तरस्यसख्यैषामानुषेण प्रकीर्तिता ॥३२
दिव्येन च प्रमाणेन प्रवक्ष्याम्यन्तर मनो ।
सहस्राणा शतान्याहु सच वै परिसख्यया ॥३३
चत्वारिंशत् सहस्राणि मनोरन्तरमुच्यते ।
मन्वन्तरस्य कालस्तु युगै सह प्रकीर्तिता ॥३४
एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्तति ।
क्रमेण परिवृत्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥३५
एतच्चतुर्दशगुण कल्पमाहुस्तु तद्विद ।
ततस्तु प्रलय कृत्स्न स तु सप्रलयो महान् ॥३६

इन चारो युगो की साधिका इकहत्तर चौकडी जिसमे कृत त्रेता आदि सभी युग होते हैं एक मनु का अन्तर होता है। अब इसी मन्वन्तर की सख्या मानुष प्रमाण से भी समझ लो। द्विजगणो के द्वारा सख्या से

इकत्तीस करोड़ संख्यात की गयी है; तथा सौ सहस्र और अन्य दश सहस्र एवं आठ अधिक बत्तीस सौ वर्ष एवं छै मास अधिक मानुष प्रमाण से यह संख्या मन्वन्तर की कही गयी है ॥ २९, ३०, ३१, ३२ ॥ अब मैं दिव्य प्रमाण से मनु का अन्तर बतलाता हूँ। वह परिसंख्या से सौ सहस्र कहा गया है। चालीस सहस्र मनु का अन्तर बतलाता हूँ। वह परिसंख्या से सौ सहस्र कहा गया है। चालीस सहस्र मनु का अन्तर कहा जाता है। उसके ज्ञाता लोग इसका चौदह गुना कल्प कहा करते हैं और मन्वन्तरों का काल युगों के साथ ही कहा गया है। ये चारों युगों की नाम वाली साधिका इकहत्तर चौकड़ी को होती है और क्रम से यह परिवृत होती है तो वही मन्वन्तर कहा जाता है। कल्प के बाद पूर्ण प्रलय होता है। वह महान् सम्प्लव होता है ॥ ३३, ३४, ३५, ३६ ॥

कल्पप्रमाणो द्विगुणो यथा भवति संख्यया ।
चतुर्युगाख्या व्याख्याता कृतं त्रेतायुगञ्चवै ॥३७
त्रेतासृष्टिं प्रवक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ।
युगपत्समवेतौ द्वौ द्विधा वक्तुं न शक्यते ॥३८
क्रमागतं मयाप्येतत्तुभ्यं नोक्तं युगद्वयम् ।
ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथा क्रमात् ॥३९
नोक्तं त्रेतायुगे शेषं तद्वक्ष्यामि निबोधत ।
अथ त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ये ॥
श्रौतस्मार्तं ब्रुवन्धर्मं ब्रह्मणा तु प्रचोदिताः ॥४०॥
दाराग्निहोत्रसम्बन्ध ऋग्यजुः सामसंहिताः ।
इत्यादिबहुलं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥ ४१
परम्परागतं धर्मं स्मार्तं त्वाचारलक्षणम् ।
वर्णाश्रमाचारयुक्तं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥४२

जिस प्रकार से संख्या से कल्प का प्रमाण द्विगुण होता है। कृत-

प्रव त्रेता की सृष्टि को बतलाऊँगा। द्वापर और कलियुग को भी बतलाऊँगा। एक ही साथ समवेत ये दोनो दो प्रकार से नहीं बतलाये जा सकते हैं। क्रम से प्राप्त इन दोनो युगो को मैंने भी आपको नहीं बतलाया है। ऋषियों के वश के प्रसङ्ग से व्याकुलता होने के कारण तथा क्रम से त्रेतायुग में शेष नहीं बतलाया है। उसे अब बतलायेंगे भली भाँति समझ लो। इसके अनन्तर त्रेता युग के आदि में मनु और जो सप्तर्षि हैं उनको श्रौत एवं स्मार्त धर्म को बतलाते हुए ब्रह्माजी के द्वारा प्रेरित किया गया था। ३७, ३८, ३९, ४० ॥ दारा-अग्निहोत्र का सम्बन्ध—ऋक्, यजु और साम संहिताएँ—इत्यादि बहुलता वाला श्रौत धर्म सप्तर्षियों ने कहा था। स्मार्त्त आचार के लक्षण वाला और वर्णाश्रमों के आचार से युक्त परम्परा के द्वारा आया हुआ धर्म इस सबको स्वायम्भुव मनु ने बतलाया था॥ ४१, ४२ ॥

सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा तथा।
तेषा सुतप्ततपसा मार्गेणानुक्रमेण ह ॥४३
सप्तर्षीणा मनोश्चैव आदौ त्रेतायुगे ततः।
अबुद्धिपूर्वकं तेन सकृत् पूर्वकमेव च ॥४४
अभिवृत्तास्तु ते मन्त्रा दर्शनैस्तारकादिभिः।
आदिकल्पेतु देवाना प्रादुर्भूतास्तुतेस्वयम् ॥४५
प्रमाणेष्वथ सिद्धानामन्यपाश्च प्रवर्तते।
मन्त्रयोगो व्यतीतेषु कल्पेष्वथ सहस्रश ॥
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषा प्रतिमायामुपास्थता ॥४६
ऋचो यजूंषिसामानिमन्त्राश्चाथर्वणास्तु ये।
सप्तर्षिभिश्चयेप्रोक्ता.स्मार्त्तन्तु मनुरब्रवीत् ॥४७
त्रेतादौ संहता वेदा केवल धर्मसेतव।
संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरे च ॥
ऋषयस्तपसा वेदानहोरात्रमधीयत ॥४८॥
अनादिनिधना दिव्या पर्वं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा।

स्वधर्म्मसंवृता साङ्गा यथा धर्मं युगे युगे ।
विक्रियन्ते स्वधर्म्मं तु वेदवादाद्यथायुगम् ॥४६॥

सत्य से—ब्रह्मचर्य से—श्रुत—तप से और उनके भली भाँति तपे हुए तप से—अनुक्रम मार्ग से बतलाया था ॥४३॥ इसके पश्चात् आदि त्रेतायुग में सप्तर्षियों के और मनु के अबुद्धि पुरस्सर ही एक बार पहिले ही उसने मन्त्रों को अभिवृत्त किया था। वे ही अभिवृत्त मन्त्र तारक आदि दर्शनों के द्वारा वेदों के आदि कल्प में स्वयं ही प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ ४४, ४५ ॥ इसके अनन्तर वे सिद्धों के तथा अन्यों के प्रमाणों में प्रवृत्त हुए हैं। इसके पश्चात् सहस्रों वर्षों के व्यतीत होने पर यह मन्त्र योग रहा है ॥४६॥ फिर उनके वे मन्त्र प्रतिमा के रूप में उपस्थित हुए थे। ऋचायें—यजु–साम और जो अथर्ववेद के मन्त्र हैं तथा हव्य- र्षियों के द्वारा जो मन्त्र कहे गये हैं और स्मार्त इनको मनु ने कहा था। त्रेतादि में संहृत हुए वेद केवल धर्म के सेतु थे। फिर आयु के संक्षेप होने से वे ही द्वापर में व्यस्थित हुए हैं। ऋषिगण तप के द्वारा रात दिन वेदों का अध्ययन किया करते थे ॥ ४७, ४८ ॥ भगवान् स्वयम्भू ने पूर्व में अनादि निधन अर्थात् आदि-अन्त से रहित दिव्य वेदों को कहा था। वे युग-युग में धर्म के अनुसार ही अङ्गों के सहित स्वधर्म संवृत हुए थे। युग के अनुसार वेदवाद से अपने धर्म को विकृत किया करते हैं ॥ ४६ ॥

आरम्भयज्ञः क्षत्रह्विर्यज्ञा विशः स्मृता ।
परिचारयज्ञाः शूद्राश्च जपयज्ञाश्च ब्राह्मणाः ॥५०
तत समुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्म्मशालिनः ।
क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धिसुखिनश्च वै ॥५१
ब्राह्मणैश्च विधीयन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियैर्विशः ।
वैश्यान् शूद्रानुवर्तन्ते शूद्रान् परमनुग्रहात् ॥५२
शुभाः प्रकृतयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमाश्रयाः ।
सङ्कल्पितेन मनसा वाचा वा हस्तकर्मणा ॥

त्रेतायुगे ह्यविकले कर्मारम्भः प्रसिद्ध्यति ॥५३॥
आयूरूपं बलं मेधा आरोग्यं धर्मशीलता ।
सर्वसाधारणं ह्येतदासीत्त्रेतायुगे तु वै ॥५४
वर्णाश्रमव्यवस्थानमेषां ब्रह्मा तथाकरोत् ।
संहिताश्च तथा मन्त्रा आरोग्यधर्मशीलता ॥५५
संहिताश्च तथा मन्त्रा ऋषिभिर्ब्रह्मणः सुतैः ।
यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा ह्येव तु दैवतैः ॥५६
यामैः शुक्लैर्जयैश्चैव सर्वसाधनसंभृतैः ।
विश्वसृड्भिस्तथा सार्द्धं देवेन्द्रेण महौजसा ॥
स्वायम्भुवेऽन्तरे देवैस्ते यज्ञाः प्राक्प्रवर्तिताः ॥५७॥

आरम्भ यज्ञ क्षत्र हवि था, फिर वैश्यों के यज्ञ कहे गये हैं । शूद्र परिचार यज्ञों वाले थे तथा जप यज्ञ वाले ब्राह्मण हुए थे ॥ ५० ॥ इसके उपरान्त त्रेता में धर्मशाली वर्णों का समुदय हुआ था । वे सब क्रियाओं से सम्पन्न प्रजाओं वाले और सुख समृद्धि से युक्त थे । ब्राह्मणों के द्वारा क्षत्रियों का विधान किया गया था—क्षत्रियों के द्वारा वैश्यों का किया गया था । शूद्र वैश्यों का अनुवर्त्तन करते थे और शूद्रों पर परम अनुग्रह था । उन सबकी प्रकृतियाँ परम शुभ थीं और धर्म भी वर्णों और आश्रमों के समाश्रय वाला था । उस पूर्ण त्रेता युग में सङ्कल्पित मन से—वाणी से और हाथों के द्वारा किये हुए कर्म में वह कर्मों का समारम्भ प्रसिद्ध हुआ था ॥ ५१, ५२, ५३ ॥ उस त्रेता युग में आयु—रूप—बल—मेधा—आरोग्य और धर्मशीलता यह सब कुछ सबके लिए साधारण था । ब्रह्माजी ने इन सबकी वर्णों और आश्रमों की इस प्रकार की व्यवस्था करदी थी कि आरोग्य—धर्मशीलता—मन्त्र और संहिता उसी तरह की थी ॥ ५४ ५५ ॥ ब्रह्माजी के पुत्र ऋषियों के द्वारा संहिताएँ और मन्त्र प्रवृत्त किये गये थे । उस समय में ही दैवतों के द्वारा यज्ञ प्रवर्तित किया गया था । समस्त साधनों से संभृत याम—शुक्ल—जयों के द्वारा तथा महान् ओज वाले

देवेन्द्र ने विश्व सृजो के साथ देवो ने सब यश स्वायम्भुव अन्तर मे प्रवर्तित किये थे ॥ ५६, ५७ ॥

सत्य जपस्तपोदान पूर्वं धर्मोऽयमुच्यते ।
यदा धर्मस्य ह्रसते शाखा धर्मस्य वर्द्धते ॥५८
जायन्ते च तदा शूराआयुष्मन्तो महाबलाः ।
न्यस्तदण्डा महायोगायज्वानोब्रह्मवादिन ॥५६
पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथुवक्त्रा सुसहता ।
सिंहोरस्का महासत्वा मत्तमातङ्गगामिनः ॥६०
महाधनुर्द्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्तिन ।
सर्वलक्षणपूर्णास्ते न्यग्रोधपरिमण्डला. ॥६१
न्यग्रोधौ तु स्मृतौबाहू व्यामोन्यग्रोधउच्यते ।
व्यामेन तूच्छ्रयोयस्तअतउर्ध्वन्तुदेहिन ॥
समुच्छ्रयो परीणाहो न्यग्रोधपरिमण्डल ॥६२॥
चक्र रथो मणिर्भार्या निधिरश्वोगजस्तथा ।
प्रोक्तानि सप्तरत्नानि पूर्व स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥६३

सबसे पूर्व सत्य-जप-तप और दान यही धर्म कहा गया था । जिस समय मे धर्म का कुछ ह्रास होता है तो धर्म की शाखा की वृद्धि हुआ करती है ।।५८।। उस समय मे शूरो की समुत्पत्ति हुआ करती थी जो शूर आयुष्मान् और महान् बलवान् थे । ये शूरन्यस्त दण्ड-महान् योग वाले-यज्वा-ब्रह्मवादी-पद्म पत्र के तुल्य आयत नेत्रो वाले-पृथु वक्त्र-सुसहत-सिंह के समान उर स्थल वाले-महासत्व तथा मत्त हाथी के सदृश गमन करने वाले थे । उस समय मे होने वाले शूर महान् धनुर्धारी थे और त्रेता मे चक्रवर्ती हुए थे । वे शूर समस्त लक्षणो से परिपूर्ण एव न्यग्रोध परिमण्डल वाले थे ।।५६, ६०, ६१।। दोनो न्यग्रोध दो बाहू कहे गये हैं और व्याम को न्यग्रोध कहा जाता है जिसका उच्छ्रम व्याम के समान है इसके उपरान्त देह धारी का समुच्छ्रम न्यग्रोध परिमण्डल

परीणाह होता था ॥ ६२ ॥ पहिले स्वायम्भुव अन्तर में चक्र—रथ—मणि—भार्या—निधि—अश्व—गज ये सात रत्न बताये गये हैं ॥ ६३ ॥

विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेषु वै ॥६४
भूतभव्यानि यानीह वर्तमानानि यानि च ।
त्रेतायुगानि तेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः ॥६५
भद्राणामानि तेषाञ्च विभाव्यन्ते महीक्षिताम् ।
अत्यद्भु तानि चत्वारि बलधर्मं सुखं धनम् ॥६६
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते नृपतेः समम् ।
अर्थोधर्म्मश्च कामश्च यशोविजयएव च ॥६७
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्तिबलान्विताः ।
श्रुतेन तपसा चैव ऋषीस्तेऽभिभवन्ति हि । ६८
बलेनाभिभवन्त्येते तेन दानवमानवान् ।
लक्षणैश्चैव जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः ॥६९
केशास्थिता ललाटेन जिह्वा च परिमार्जनी ।
श्यामप्रभाश्चतुर्दंष्ट्राः श्रवत्सास्चोर्द्ध्वरेतसः ॥७०

जो व्यतीत हो गये हैं और आने वाले हैं उन सभी मन्वन्तरों में इस पृथ्वी मण्डल में चक्रवर्ती नृप भगवान् विष्णु के अंश से ही समुत्पन्न हुआ करते हैं ॥६४॥ भूत, भव्य और वर्तमान जो भी यहाँ पर त्रेता युग हैं उनमें चक्रवर्ती समुत्पन्न हुआ करते हैं। उन मही के पालक नृपों के बहुत ही भद्र नाम होते हैं और उनमें बल-धर्म-सुख और धन ये चार वस्तुएँ अत्यन्त ही अद्भुत हुआ करते हैं ॥६५, ६६॥ अन्योन्य के परस्पर में विरोध न होने से नृपति के अर्थ—धर्म—काम—यश और विजय समान ही होते है अणिमा आदि के ऐश्वर्य्य से प्रभु शक्ति के बल से समन्वित वे नृपतिगण श्रुत एवं तप के द्वारा ऋषियों को भी अभिभूत करने वाले

हुआ करते थे ॥६७, ६८॥ असमानीय शरीरों में स्थित लक्षणों के द्वारा वे उत्पन्न हुआ करते थे और वे उस बल के द्वारा दानव-मानवों को तिरस्कृत किया करते थे ॥६९॥ ललाट पर उनके केश स्थित होते थे तथा जिह्वा परिमार्जन करने वाली थी—श्याम उनकी प्रभा थी—चार द्रंष्ट्राओं वाले—अवस और ऊर्ध्वरेता होते थे ॥७०॥

आजानबाहवश्चैव तालहस्तौ वृपाकृती ।
परिणाहप्रमाणभ्यां सिंहस्कन्धाश्च मेधिनः ॥७१
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मं च हस्तयो ।
पञ्चाशीति सपस्राणि जीवन्तिह्यजरामयाः ॥७२
असङ्गा गतयस्तेषा चतस्रश्चक्रवर्तिनाम् ।
अन्तरिक्षे समुद्रेषु पाताले पर्वतेषु च ॥७३
इज्यादानन्तप. सत्यन्त्रेताधर्मास्तु वै स्मृता ।
तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः ॥७४
मर्यादास्थापनार्थञ्च दण्डनीतिः प्रवर्तते ।
हृष्टपुष्टा जना सर्वे आरोगा पूर्णमानसा ॥७५
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायान्तु विधि स्मृत. ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि जीवन्तेतत्रताःप्रजा ॥७६
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण ताः ।
एते त्रेतायुगे भावस्त्रेतासन्ध्या निबोधत ॥७७
त्रेतायुगस्वभावेन सन्ध्यापादेन वर्तते ।
सन्ध्यापाद. स्वभावाच्च योऽश पादेनतिष्ठति ॥७८

उनकी बाहुऐं जानु पर्यन्त लम्बी होती थी-ताल वृक्ष के सदृश हाथ होते थे तथा वृष के तुल्य आकृति हुआ करती थी। परिणाह और प्रमाण से सिंह के समान स्कन्धों वाले मेधा युक्त थे। उनके चरणों में चक्र तथा मत्स्य के चिह्न हुआ करते थे एवं हाथों में शङ्ख और पद्म होते थे। वे सब जरा और रोग से रहित होकर पिचासी हजार वर्ष पर्यन्त

जीवित रहा करते थे। उन चक्रवर्तियों की चार सङ्ग रहित गतियाँ हुआ करती थीं—समुद्रों में, अन्तरिक्ष में, पाताल में और पर्वतों में सर्वत्र गतियाँ रहा करती थीं ॥७१, ७२, ७३॥ इज्या-दान-तप और सत्य ये त्रेतायुग के धर्म्म बताये गये हैं। उस समय में वर्णों और आश्रमों का विभाग वाला धर्म्म प्रवृत्त रहा करता था ॥७४॥ सांसारिक समस्त कार्यों की मर्यादा की स्थापना करने लिये दण्ड नीति की प्रवृत्ति हुआ करती थी। वह समय ऐसा होता था कि उसमें प्रायः सभी मनुष्य हृष्ट पुष्ट और पूर्ण मानस वाले रोगों से रहित रहा करते थे। एक वेद और चार पाद थे—यही विधि त्रेता में कही गयी है। उस समय में वे सब प्रजाजन तीन हजार वर्ष तक जीवित रहा करते थे ॥७५, ७६॥ सभी और पुत्रों एवं पौत्रों से समाकीर्ण होने वाले रहकर क्रम से ही मृत्यु को प्राप्त हुआ हुआ करते हैं। तात्पर्य यह है कि बड़ों के रहते हुए छोटों की मृत्यु नहीं हुआ करती थी। यह ही त्रेतायुग का भाव था अब त्रेता की सन्ध्या को भी समझ लो ॥७७॥ त्रेतायुग के स्वभाव से सन्ध्या का पाद से रहती थी और स्वभाव से सन्ध्या का पाद जो है वह जो मय है पाद से ही स्थित रहा करता था ॥७८॥

५७—द्वापर और कलियुग वर्णन

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः ।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥१
द्वापरादौ प्रजानान्तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या ।
परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सा वै प्रणश्यति ॥२
ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः ।
लोभोधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ॥३
प्रध्वंसश्चैव वर्णानां कर्म्मणान्तु विपर्ययः ।

यात्रा बधःपरोदण्डोमानोदर्पोऽक्षमाबलम् ॥४
तथा रजस्तोमोभूयः प्रवृत्ते द्वापरे पुनः ।
आद्येकृतेनाधर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्त्तितः ॥५
द्वापरे व्याकुलो भूत्वा प्रणश्यति कलो पुनः ।
वर्णानां द्वपरेधर्माःसङ्कीर्यन्ते तथाश्रमाः ॥६
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन्श्रुतिस्मृतो ।
द्विधाश्रुति स्मृतिश्चैवनिश्चयो नाधिगम्यते । ७

महा महर्षि सूतजी ने कहा—इसके आगे अब मैं द्वापर की विधि का वर्णन करूँगा । उस त्रेता युग के क्षीण होने पर द्वापर युग प्रतिपन्न हुआ करता है । प्रजाजनों को जो त्रेतायुग में सिद्धि थी वह द्वापर के आदि काल तक रही थी किन्तु ज्यों ही उस युग का परिवर्त्तन हुआ वैसे ही वह त्रेता युग की सिद्धि नष्ट हो गई थी । उन्हीं प्रजाओं को द्वापर में युग के प्रवृत्त होने पर लोभ—धृति—वाणीयुद्ध और तत्वों के विषय में विशेष निश्चय का अभाव हो गया था ॥ १, २, ३ ॥ वर्ण जो ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र ये चारों का एक सुन्दर क्रम चला आ रहा था उसका प्रध्वंस हो गया था और जो लोगों के वर्णों के अनुसार मर्यादित कर्म्म होते थे उन सबमें विपरीत भाव उत्पन्न हो गया था । यात्रावध—परदण्ड—मान—दर्प—अक्षमा—अबल ये सब उस समय में रनप गये थे और द्वापर युग के प्रवृत्त होने पर रजोगुण तथा तमोगुण की विशेषता

अनिश्चयावगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते ।
धर्मतत्त्वे ह्यविज्ञाते मतिभेदस्तु जायते ।।८
परस्पर विभिन्नास्ते दृष्टीनां विभ्रमेण तु ।
अतो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतमत्याकुलन्त्विदम् ।।६
एको वेदश्चतुष्पादः संहृत्य तु पुनः पुनः ।
संक्षेपादायुपश्चैव व्यस्यते द्वापरेष्विह ।।१०
वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ।।११
ते तु ब्राह्मणविन्यासैः स्वरक्रमविपर्ययैः ।
संहृता ऋग्यजु साम्ना संहितास्तैर्महर्षिभिः ।।१२
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित् क्वचित् ।
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि भाष्यविद्यास्तथैव च ।।१३
अन्ये तु प्रस्थितास्तान्वै केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ।
द्वापरेषु प्रवर्तन्ते भिन्नार्थैस्तैः स्वदर्शनैः ।।१४

जब किसी भी निश्चय का अवगमन नहीं होता है धर्म्म का तत्व विद्यमान नहीं रहा करता है। धर्म्म के तत्व के विज्ञात न होने पर मति मे भेद स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाता है ।। ८ ।। इस तरह दृष्टिकोणो के विभ्रम होने से वे सब परस्पर मे विभिन्न हो जाते हैं। अतएव विभिन्न दृष्टि वाले उनके द्वारा यह सब संसार मति से आकुल हो जाया करता है ।। ६ ।। वेद वस्तुतः एक ही है किन्तु उसके चार पाद पुन:-पुनः संहृत करके किये गये थे। द्वापर युग मे आयु के सक्षेप से यह ऐसी व्यवस्था की गयी थी। एक ही वेद के चार भेद द्वापरादि मे व्यवस्थित किये गये थे। दृष्टि के विभ्रम वाले ऋषियो क पुत्रो के द्वारा फिर वेदो के भेद किये गये थे ।। १०, ११ ।। ब्राह्मण विन्यास और स्वर क्रम के विपर्ययो से वे वेद सहृत किये गये हैं और उन महर्षियो के ऋक् यजु और सामवेदो की सहिताएँ की गयी थी ।। १२ ।। सामान्य

उपद्रव समुत्पन्न हो जाते हैं ॥ १५, १६, १७, १८ ॥ इसके पश्चात् वाणी-मन और कर्मों के द्वारा जो दुःख होते हैं उनमें निर्वेद उत्पन्न होता है। जब निर्वेद होता है तो उनको दुःख से मोक्ष प्राप्त करने की विचारणा होती है। उस दुःखों से छुटकारा पाने की विचारणा में वैराग्य जो होता है उस वैराग्य से दोषों का दर्शन हुआ करता है। जब दोषों पर दृष्टि जाने से वे दोष स्पष्टतया दिखलाई दिया करते हैं तो उस दोष दर्शन से ज्ञान की समुत्पत्ति होती है। यह ज्ञान की उत्पत्ति उन्हीं मेधावी पुरुषों को होती है जो पहिले मध्य स्वायम्भुव अन्तर में थे। द्वापर युग में संसार में शास्त्रों का विरोध करने वाले लोग उत्पन्न हो जाया करते हैं ॥ १९, २०, २१ ॥

आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानाज्योतिषस्य च ।
अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥२२
प्रक्रियाकल्पसूत्राणाभाष्यविद्याविकल्पनम् ।
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्चप्रस्थानानिपृथक्पृथक् ॥२३
द्वापरेष्वभिवर्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ।
मनसा कर्म्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिध्यति ॥२४
द्वापरे सर्वभूतानां काल क्लेशपर. स्मृतः ।
लोभो धृतिर्वणिग्युद्धन्तत्त्वानामविनिश्चय. ॥२५
वेदशास्त्रप्रणयन वर्णानां सङ्करस्तथा ।
वर्णाश्रमपरिध्वस. कामद्वेषौ तथैव च ॥२६
पूर्ण वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तदा नृणाम् ।
निःशेषे द्वापरे तस्मिंस्तस्य सन्ध्या तु पादत ॥२७
गुणहीनास्तु तिष्ठन्ति धर्मस्य द्वापरस्य तु ।
तथैव सन्ध्या पादेनअंशस्तस्याप्रतिष्ठित. ॥२८

द्वापर मे आयुर्वेद विकल्प-ज्योतिष के अङ्गशास्त्र-अर्थ शास्त्र विकल्प-हेतुशास्त्र विकल्प-कल्प सूत्रों की प्रक्रियाभाष्य विद्या विकल्पन-

स्मृति शास्त्र के प्रभेद इस प्रकार से पृथक्-पृथक् प्रस्थान उस युग में अभिवर्तित होते हैं और मनुष्यों में मति के भेद हो जाते हैं अर्थात् सभी मनुष्यों की मति विभिन्न हो जाती हैं और किसी की मति किसी से मेल नहीं खाती है। मन—कर्म और वचन से बहुत ही कष्ट से वार्त्ता प्रसिद्ध होती है। २२, २३, २४ ॥ द्वापर-युग का समय ऐसा ही था जो समस्त भूतों के लिये परम क्लेश से परिपूर्ण था। प्राणियों में लोभ की मात्रा अधिक हो गई थी—धृति—वणिग्युद्ध और तत्वों का विशेष निश्चय नहीं था। वेदों और शास्त्रों का प्रणयन—वर्णों का सङ्कर दोष—वर्णों और आश्रमों का सर्वतोभाव से नाश—काम वासना और द्वेष सबमें छाया हुआ था ॥ २५, २६ ॥ उस समय में मनुष्यों की परमायु पूरे दो सहस्र वर्ष की थी। द्वापर युग के निःशेष हो जाने पर उसके एक पाद की उसकी सन्ध्या का काल था। द्वापर युग के धर्म की ऐसी दशा थी कि सब गुणहीन रहा करते थे। उसी प्रकार से उस सन्ध्या में उसका एक पाद से अंश प्रतिष्ठित रहता था ॥२७, २८॥

द्वापरस्य तु पर्येषा पुष्यस्य च निबोधत ।
द्वापरस्याशशेषे तु प्रतिपत्तिः कलेरथ ॥२६
हिंसास्तेयानृतं माया दम्भश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वभावा· पुष्यस्य साधयन्ति च ताः प्रजाः ॥३०
एष धर्मःस्मृतःकृत्स्नोधर्मश्चपरिहीयते ।
मनसाकर्मणावाचावार्त्ता: सिद्ध्यन्ति वानघा ॥३१
कलिः प्रमारको रोगः सततं चापि क्षुद्भयम् ।
अनावृष्टिभयञ्चैव देशानाञ्च विपर्ययः ॥३२
न प्रमाणे स्थिति ह्यस्तिपुष्येघोरेयुगेकलौ ।
गर्भस्थोम्रियतेकश्चिद् यौवनस्थस्तथापरः ॥३३
स्थाविर्ये मध्यकौमारे म्रियन्ते च कलौ प्रजाः ।
अल्पतेजोबलाः पापा महाकोपा ह्यधार्मिकाः ॥३४

अनृतव्रतलुब्धाश्च पुष्ये चैव प्रजा स्थिता ।
दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ॥३४

द्वापर युग की यही पर्येषा है। अब पुष्य के विषय में भी जान लेना चाहिए। द्वापर के अश देश में ही कलियुग की प्रतिपत्ति हो जाती है ॥ २६ ॥ जो तपस्विजन होते थे उनमें भी हिंसा—अस्तेय—अनृत (मिथ्या) और महान् दम्भ भाव होता था। पुष्य के ये ही स्वभाव होते थे और वे प्रजाओं का साधन किया करते थे ॥ ३० ॥ यही उस समय का धर्म कहा गया है वैसे वास्तविक जो धर्म था वह पूर्ण रूप से हीन हो गया था मन—वचन और कर्म से बातऐं सिद्ध हों अथवा न होवें। यह कलियुग एक ऐसा प्रमारक रोग जैसा है। निरन्तर ही लोगों को क्षुधा और भय रहा करता है। सर्वेश वृष्टि के न होने का भय बना ही रहता है और देशों का विपर्यय होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ पुष्य और कलियुग में प्रमाण में कोई भी स्थिति नहीं होती है। कोई कोई तो गर्भ में स्थित होते हुए ही मर जाया करता है और कोई अपनी युवावस्था में पहुँच कर मृत्यु को प्राप्त हो जाया करता है ॥ ३३ ॥ इस कलियुग में प्रजाजन प्राय स्थविरता में तथा मध्य कौमारावस्था में मर जाया करते हैं। सभी लोग अत्यल्प तेज और बल विक्रम वाले—महान् पापी—अत्यधिक क्रोध से युक्त और अधार्मिक होते हैं ॥ ३४ ॥ पुष्य में सभी प्रजा जन बुरी इच्छा वाले—दुराचार—दुराचार और दुरागमों से युक्त एवम् मिथ्या व्रत वाले और लुब्धक हुआ करते हैं ॥ ३५ ॥

विप्राणां कर्मदोषैस्तै प्रजानां जायते भयम् ।
हिंसा मानस्तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाऽक्षमाऽनृतं ॥३६
पुष्ये भवन्ति जन्तूनां लोभो मोहश्च सर्वशः ।
सङ्क्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ॥३७
नाधीयन्ते तथा वेदान्न यजन्ते द्विजातयः ।

उत्सीदन्तियथाचैववैश्यै.सार्द्धं न्तुक्षत्रियाः ॥३८
शूद्राणां मन्त्रयोनिस्तु सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह ।
भवतीहकलौ तस्मिन्शयनासनभाजनैः ॥३९
राजानः शूद्रभूयिष्ठा पाषण्डानांप्रवृत्तयः ।
काषायिणश्चनिष्कच्छास्तथाकापालिनश्चह । ४०
ये चान्ये देवव्रतिनस्तथा ये धर्म्मदूषकाः ।
दिव्यवृत्ताश्च ये केचिद्वृत्त्यर्थं श्रुतिलिङ्गिनः ॥४१
एवंविधाश्च ये केचिद्भवन्तीह कलौ युगे ।
अधीयते तदा वेदान् शूद्राधर्मार्थकोविदाः ॥४२

विप्र अपने कर्मों से दूषित हो गये थे और उनके ही कर्म्मों के दोषों के कारण प्रजाओं का भय उत्पन्न हो जाया करता है। युग मे जन्तुओं में हिंसा–मान–ईर्ष्या–क्रोध–असूया–अक्षमा–अधृति–लोभ और सब ओर से मोह ये अवगुण हो जाया करते हैं। इस कलियुग को प्राप्त करके अत्यन्त सक्षोभ जीवों में समुत्पन्न हो जाया करता है ॥ ३६, ३७॥ द्विजाति गण वेदों का अध्ययन नहीं किया करते हैं और न वे यजन ही करते हैं तथा क्षत्रिय लोग वैश्यों के साथ ही सब उत्पन्न हो जाते हैं। ॥ ३८॥ शूद्रों का ब्राह्मणों के साथ मन्त्र और योनि का सम्बन्ध होजाता है। इस घोर कलियुग मे शूद्रों का ब्राह्मणों के साथ शयन–आसन और भोजन के द्वारा भी सम्बन्ध हो जाया करता है॥ ३९॥ राजा लोगों में प्राय. शूद्रों की अधिकता होती है तथा पाखण्डियों की प्रवृत्तियाँ बढ़ी-चढ़ी होती हैं। सभी ओर काषाय वस्त्रों के धारण करने वाले–निष्कच्छ और कापालिक दिखलाई दिया करते हैं। और जो अन्य कोई देवव्रती हैं तथा जो धर्म दूषक हैं एवम् जो कोई दिव्य वृत्त वाले हैं वे भी सब वृत्ति के ही लिए श्रुति लिङ्गों के धारण करने वाले होते हैं अर्थात् सबका लक्ष्य केवल धार्मिक आडम्बर दिखाकर रोजी के कमाने का ही हुआ करता है। इस कलियुग में जो कोई भी होते हैं वे इसी प्रकार के हुआ

करते हैं। कलि में शूद्र लोग वेदों का अध्ययन किया करते हैं और वे ही धर्म तथा अर्थ के विद्वान् होते हैं॥ ४०, ४१, ४२॥

यजन्ति ह्यश्वमेधैस्तु राजानः शूद्रयोनयः।
स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम् ॥४३
उपहृत्य तथान्यान्य साधयन्ति तदा प्रजाः।
दुःखप्रचुरताल्पायुर्देशोत्सादः सरोगता ॥४४
अधर्माभिनिवृत्तत्वं कलौवृत्तं कलौस्मृतम्।
भ्रूणहत्या प्रजानाञ्च तथा ह्येवं प्रवर्तते ॥४५
तस्मादायुर्बलं रूपं प्रहीयन्ते कलौयुगे।
दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं नृणाम् ॥४६
भूत्वा च न भवन्तीह वेदाः कलियुगेऽखिलाः।
उत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवलं धर्महेतवः ॥४७
एषा कलियुगावस्थासन्ध्यांशौ तु निबोधत।
युगेयुगे तु हीयन्तेत्रीस्त्रीन् पादाश्चमिदयं ॥४८
युगस्वभावा सन्ध्यासुअवतिष्ठन्ति पादतः।
सन्ध्यास्वभावा स्वांशेषुपादेनैवावतस्थिरे ॥४९

शूद्र योनि से समुत्पन्न राजा लोग इस कलियुग में अश्वमेध यज्ञों के द्वारा यजन किया करते हैं। ये लोग स्त्री-बाल और गौ का वध करके तथा परस्पर में हनन करते हुए अन्योन्य का अपहरण करके इस समय में प्रजा का साधन किया करते हैं। दुःखों की बहुतायत—आयु का स्वल्प होना—देश का उत्सादन—रोगों के सहित रहना और अधर्माभिनिवृत्तत्व यह इस कलि का वृत्त है जो कि कलियुग में कहा गया है। प्रजाजनों की भ्रूण हत्या (गर्भस्थ बालक को भ्रूण कहते हैं) इसी प्रकार से सबकी प्रवृत्तियाँ कलि में होती हैं। इसी कारण से इस कलियुग में आयु-बल और रूप लावण्य की हीनता हुआ करती है। दुःखों की इतनी अधिकता जीवों को रहा करती है कि इस कलि में दुःखों से अभिप्लुत मनुष्यों की

परमायु अर्थात् अधिक से अधिक उम्र सौ वर्ष की ही हुआ करती है। ॥४३, ४४, ४५, ४६॥ इस कलियुग मे समस्त वेद होकर भी नहीं हुआ करते हैं अर्थात् होते हुए भी वे सब निष्फल ही होते हैं। केवल धर्म के हेतु यज्ञ उत्सीदमान हुआ करते हैं। यह ऐसी इस कलियुग की अवस्था होती है। अब उस युग की सन्ध्या और सन्ध्याशो को भी समझ लो। युग-युग मे सिद्धियाँ तीन-तीन पाद हीन हुआ करती हैं। युग के स्वभाव सन्ध्याओं मे भी पाद से अवस्थित रहा करते हैं। अपने अंशो मे सन्ध्या के स्वभाव एक पाद से अवस्थित रहा करते थे ॥ ४७, ४८। ४९॥

एवं सन्ध्यांशकेकाले सम्प्राप्ते युगान्तिके।
तेषामधर्मिणां शास्ता भृगुणाञ्च कुले स्थितः ॥५०
गोत्रेण वै चन्द्रमसे नाम्नाप्रमतिरुच्यते।
कलिसन्ध्यांशभागेषु मनोःस्वायम्भुवेऽन्तरे ॥५१
समाःस्त्रिंशत्तुसम्पूर्णाःपर्यटन्वैवसुन्धराम्।
अस्त्रकर्मा स वै सेनाहस्त्यश्वरथसङ्कुलाम् ॥५२
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः।
स तदा तैःपरिवृतोम्लेच्छान् सर्वान्निजघ्निवान् ॥५३
स हत्वा सर्वशश्चैव राजानः शूद्रयोनयः ॥५४
पाषण्डान् स तदा सर्वान्निःशेषानकरोत् प्रभुः ॥५५
अधार्मिकाश्चयेकेचित्तान्सर्वान् हन्तिसर्वशः।
औदीच्यान्मध्यदेशांश्चपार्वतीयांस्तथैवच ॥५६

इस प्रकार से युग के अन्त करने वाले सन्ध्यांश काल के सम्प्राप्त होने पर उन अधर्मियों का शासन करने वाला भृगुओं के कुल मे स्थित चन्द्रमस गोत्र मे युक्त नाम से प्रमति कहा जाता है। कलि के सन्ध्यांश भागों में मनु के स्वायम्भुव अन्तर मे जब तीस वर्ष पूर्ण हो जाते हैं तो अस्त्र कर्म वाला इस वसुन्धरा पर पर्यटन करते हुए एक विशाल सेना

लेकर निकलता है जिस सेना में हाथी-घोड़े और और रथ सभी होते हैं और इनसे वह संकुल हुआ करती है। सभी प्रकार के आयुधों को ग्रहण करने वाला वह हजारों और सैकड़ों विप्रों के सहित रहता है। उसके साथ उस समय मे वह परिवृत रहकर समस्त म्लेच्छों का निहनन कर दिया करता है ॥५०, ५१, ५२, ५३॥ वह सभी ओर मे जो राजा शूद्र योनि वाले होते हैं उनका हनन कर देता है। उस समय मे वह प्रभु सभी पाखण्डियों को निःशेष कर देता था ॥५४, ५५॥ जो भी कोई अधार्म्मिक होते थे उन सबको सभी ओर से मार गिराता है। जो औदीच्य हैं अर्थात् उत्तर दिशा मे रहने वाले हैं—मध्य देश के निवासी हैं तथा पर्वतीय भागों के रहने वाले हैं इन सबका अन्त कर देने वाला वह था ॥५६॥

प्राच्यान् प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ॥५७
गन्धारान् पारदाश्चैव पह्लवान् यवनान् शकान् ।
तुषारान् बर्बरान् श्वेतान् पुलिन्दान् बबरान् खसान्॥५८
लम्पकानान्ध्रकाश्चापि चोरजातीस्तथैव च ।
प्रवृत्तचक्रो बलवाञ्शूद्राणामन्तकृद् बभौ ॥५९
विद्राव्य सर्वभूतानि चचार वसुधामिमाम्।
मानवस्य तु वंशे तु नृदेवस्येहजज्ञिवान् ॥६०
पूर्वजन्मनि विष्णुश्च प्रमतिर्नाम वीर्यवान्।
स्वतः स वै चन्द्रमसः पूर्वं कलियुगे प्रभुः ॥६१
द्वात्रिंशेऽभ्युदितेवर्षे प्रक्रान्तो विंशतिःसमाः ।
निजघ्नेसर्वभूतानिमानुषाण्येवसर्वशः ॥६२
कृत्वबीजावशिष्टान्तापृथ्वीक्रूरेणकर्मणा ।
परस्परनिमित्तेन कालेनाकस्मिकेन च ॥६३

प्राच्य-प्रतीच्य तथा विन्ध्य के पृष्ठ वासी—अपरान्तिक—दाक्षि-

णात्य (दक्षिण दिशा वाले)—द्रविड—सिंहल—गान्धार—पारद—पह्लव—यवन—शक—तुषार—बबर—श्वेत—पुलिन्द—बर्बर—खस—लम्पक—आन्ध्रक तथा घोर जाति वाले सबका शूद्रों का अन्त कर देने वाला वह बलवान् प्रवृत्त चक्र होकर सुशोभित हुआ था ॥५७, ५८, ५६॥ सभी भूतों को विद्रावित करके वह इस पृथ्वी पर सचरण किया करता था। वह यहाँ पर नृदेव माधव के वश मे समुत्पन्न हुआ था ॥६०॥ पूर्व जन्म मे वह विष्णु वीर्यवान् प्रमिति नाम वाला था पूर्व मे वह प्रभु कलि युग मे चन्द्रमा के कुल मे था। बत्तीसवें वर्ष के अभ्युदित होने पर वह प्रशान्त हुआ था। जब बीस वर्ष हो गये तो इसने सभी ओर से मानुष सभी भूतों का निहनन कर दिया था। परस्पर मे निमित्त आकस्मिक काल के द्वारा तथा क्रूर कर्म से पृथ्वी को बीजावशिष्टा त कर दिया था ॥ ६१ ॥ ॥६२, ६३॥

> संस्थिता सह सायासे सेना प्रमतिना सह।
> गङ्गायमुनयोर्मध्येसिद्धिप्राप्ता समाधिना ॥६४
> ततस्तेषु प्रनष्टेषु सन्ध्यांशे क्रूरकर्मसु।
> उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् तेष्वतीतेषु वै तदा ॥६५
> तत सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते च युगान्तरे।
> स्थिता स्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित् क्वचित्।
> स्वाप्रदानास्तथातेषं लोभाविष्टास्तुवृन्दश।
> उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रलुम्पन्तिपरस्परम् ॥६७
> अराजके युगान्ते तु संक्षये समुपस्थिते।
> प्रजास्ता वै तदा सर्वा परस्परभयार्दिता. ॥६८
> व्याकुलास्ता परागृनाम्स्त्यज्य दवगृहाणि तु।
> स्वान् स्वान् प्राणानवेक्षन्तो निष्कारुण्यात् सुदुःखिता ॥६९
> नष्टे श्रौतस्मृते धर्मे कामक्रोधवशानुगा।
> निर्मर्यादा निरानन्दा निःस्नेहा निरपत्रपाः ॥७०

प्रमनि के साथ वह सेना सायास में सस्थित हो गई थी। गङ्गा और यमुना के मध्य म समाधि के द्वारा सिद्धि को प्राप्त हुए थे। इसके पश्चात् सन्ध्यांश मे उन क्रूर कर्मों वालों के प्रनष्ट होने पर उस समय मे उनके अतीत होने पर सभी पार्थिवों का उत्सादन कर दिया था। इसके अनन्तर युग का अन्त करने वाले सन्ध्यांशक काल के सम्प्राप्त होने पर यहाँ ससार मे कहीं—कहीं पर प्रजाजनों के अत्यन्त अल्प रह जाने पर वे स्थित थे। समूहों के रूप म धन न देने वाले और लोभ स आविष्ट चित्त वाले वे सब परस्पर म प्रलुम्पन करते थे और एक दूसरे का उपहिंसन किया करते हैं ॥ ६४, ६५, ६६, ६७ ॥ वह युगांश अराजक जैसा था और उसमे सक्षय के समुपस्थित होने पर वह ऐसा समय था जिसमे सम्पूर्ण प्रजाजन परस्पर म भय से अर्दित हो रहे थे। वे सब प्रजाएँ देव गृहों का परित्याग करके परावृत्त हो गये थे। अपने २ प्राणों को देखते हुए निष्कारुण्य भाव से वे सब अच्छी तरह दुःखित हो गये थे। ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ श्रौत तथा स्मार्त्त धर्म के नष्ट हो जाने पर सब लोग काम और क्रोध के वश म होकर उनके ही अनुयायी बन गये थे। सब मर्यादा से रहित—आनन्द स शून्य—स्नेह हीन और निर्लज्ज बन गये थे ॥ ७० ॥

नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वका पञ्चविंशका ।
हित्वा दाराश्च पुत्राश्च विषादव्याकुलप्रजा ॥७१
अनावृष्टिहतास्तेवै वार्तामुत्सृज्य दुःखिता ।
चीरकृष्णाजिनधरा निष्कुद्धानिष्परिग्रहा ॥७२
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा सङ्करङघोरमास्थिता ।
एव कष्टमनुप्राप्ता ह्यल्पशेषा. प्रजास्तत ॥७३
ज तवश्च क्षुधाविष्टा दु खान्निर्वेदमायमन् ।
सश्रयन्तिच देशास्ताश्चक्रवत् परिवर्तना । ७४
तत प्रजास्त ता सर्वा मासाहारा भवन्ति हि ।

अथ दीर्घेण कालेन पक्षिणः पशवस्तथा ।
मत्स्याश्चैव हताः सर्वैः क्षुधाविष्टैश्च सर्वशः ॥८०
निःशेषेष्वथ सर्वेषु मत्स्यपक्षिपशुष्वथ ।
सन्ध्यांशे प्रतिपन्ने तु निःशेषास्तु तदा कृता ॥८१
ततः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमथोऽखनन् ।
फलमूलाशनाः सर्वे अनिकेतास्तथैव च ॥८२
वल्कलान्यथ वासांसि अधः शय्याश्च सर्वशः ।
परिग्रहो न तेष्वस्ति धनशुद्धिमवाप्नुयुः ॥८३
एवं क्षयमभिष्यन्ति ह्यल्पशिष्टा प्रजास्तदा ।
तासामल्पावशिष्टानामाहाराद् वृद्धिरिष्यते ॥८४

मृगान् वराहान् वृषभान्ये चान्ये वनचारिणः ॥७५
भक्ष्यादचैवाप्यभक्ष्यास्च सर्वास्तान् भक्षयन्ति ताः ।
समुद्र सश्रिता यास्तु नदीश्चैव प्रजास्तु ताः ॥७६
तेऽपि मत्स्यान् हरन्तीह आहारार्थं च सर्वशः ।
अभक्ष्याहारदोषेण एकवर्णगता प्रजाः ॥७७

धर्म के नष्ट होने पर ▮▮ प्रतिहत-ह्रस्वक और पञ्चविंशक हो गये थे । अपनी दाराओं और पुत्रो का त्याग करके सब प्रजा विषाद से व्याकुल थी । अनावृष्टि के कारण हत हुए वे सब वार्ता का त्याग करके अत्यन्त दुखित थे । चीर तथा कृष्ण जिन (काला मृग चर्म) को धारण करने वाले-निष्कृद्ध और सब बिना परिग्रह वाले थे । वर्ण और आश्रम से परिभ्रष्ट हुए घोर सङ्कटावस्था मे समस्थित थे । इस प्रकार से कष्ट को प्राप्त हुई सब प्रजाऐ अल्प शेष रह गई थी ॥ ७१, ७२ ७३ ॥ जन्तुगण सब भूख से आविष्ट हुए अत्यन्त दुःख से निर्वेद को प्राप्त हो गये थे । चक्र की भाँति परिवर्त्तन करने वाले उन देशो का सश्रय किया करते थे । इसके उपरान्त वे समस्त प्रजाऐ मास का आहार करने वाली हो गई थी । कुछ लोग मृगो को खाते थे तो कुछ वाराह—वृषभ और अन्य वनचारियो का भक्षण किया करते थे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ वे सब प्रजाएँ उस समय मे ऐसी हो गई थी कि चाहे भक्ष्य हो या अभक्ष्य हो सभी का भक्षण किया करते थे । कुछ प्रजाजन समुद्रो मे तथा कुछ नदियो का सश्रय किया करते थे वे भी अपने आहार के लिये सर्वत्र मत्स्यो का हरण किया करते थे । अभक्ष्य आहार के करने के दोष से सब प्रजा एक वर्णगत होगई थी ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

यथा कृतयुगे पूर्वमेकवर्णमभूत्किल ।
तथा कलियुगस्यान्ते शूद्रीभूता प्रजास्तथा ॥७८
एव वर्षशत पूर्णं दिव्य तेषा न्यवर्त्तत ।
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि मानुषाणि तु तानि वै ॥७९

अथ दीर्घेण कालेन पक्षिणः पशवस्तथा ।
मत्स्याश्चैव हताः सर्वैः क्षुधाविष्टैश्चसर्वशः ॥८०
नि:शेषेष्वथ सर्वेषु मत्स्यपक्षिपशुष्वथ ।
सन्ध्यांशे प्रतिपन्ने तु नि:शेषास्तु तदा कृताः ॥८१
ततः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमथोऽखनन् ।
फलमूलाशनाः सर्वे अनिकेतास्तथैव च ॥८२
वल्कलान्यथ वासांसि अधःशय्याश्च सर्वदा ।
परिग्रहो न तेष्वस्ति धनशुद्धिमवाप्नुयुः ॥८३
एवंक्षयमनुप्राप्ता ह्यल्पशिष्टा प्रजास्तदा ।
तासामल्पावशिष्टानामाहाराद् वृद्धिरिष्यते ॥८४

जिस प्रकार से पूर्व में कृतयुग में सभी प्रजाजन एक ही वर्ण वाले थे क्योंकि उस आदिकाल में वर्णों की कोई भी व्यवस्था ही नहीं बनी थी उसी भाँति इस कलियुग के इस अन्तिम काल में सभी लोग शूद्रीभूत हो गये थे क्योंकि वर्णों के कर्म धर्म सभी छोड़कर एक वर्ण जैसे बन गये थे। इस प्रकार से पूर्ण दिव्य एक सौ वर्ष उनके व्यतीत हो गये थे जो कि मानुष वर्ष छत्तीस हजार होते थे ॥ ७८, ७६ ॥ इसके अनन्तर बहुत अधिक दीर्घ काल तक भूख से व्याकुल लोगों के द्वारा सभी ओर से समस्त पशु-पक्षी और मत्स्य मार दिये गये थे और खा लिये गये थे ॥ ८० ॥ उस कालयुग के सन्ध्यांश काल में जब कि वह प्रतिपन्न हो गया था सम्पूर्ण पक्षी-पशु और मत्स्यों के निःशेष हो जाने पर सभी समाप्त हो गये थे। जब कोई भी जीव प्रजा के लोगों को खाने के लिये रहे थे तो फिर उन्होंने भूमि से कन्द मूलों को खोदने का आरम्भ कर दिया था। सब लोग फल-मूल और कन्दों को खाने वाले और बिना घरों वाले हो गये थे। सबके वस्त्र वृक्षों की छाल के ही थे और सब नीचे भूमि पर शयन करने वाले थे। उन लोगों में कुछ भी परिग्रह दोष नहीं रह गया था और सब लोगों ने धन की शुद्धि को प्राप्त कर लिया

था। इस प्रकार से उस समय में जो भी बहुत थोड़ी-सी प्रजा अव-शिष्ट रह गई थी वह क्षय को प्राप्त हो जायगी। उन अत्यल्प शेष बचे हुओं के आहार से वृद्धि अभीष्ट हुआ करती है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ॥ ८३ । ८४ ॥

एवं वर्षशतं दिव्यं सन्ध्यांशस्तस्य वर्त्तते ।
ततो वर्षसहस्रान्ते अल्पशिष्टाः स्त्रियः सुताः ॥८५
मिथुनानि तु ताः सर्वा ह्यन्योन्यसप्रजज्ञिरे ।
ततस्तास्तु म्रियन्ते वै पूर्वोत्पन्ना प्रजास्तु या ॥८६
जातमात्रेष्वपत्येषु तत्र कृतमवर्त्तत ।
यथा स्वर्गे शरीराणि नरके चैव देहिनाम् ॥८७
उपभोगसमर्थानि एवं कृतयुगादिषु ।
एवं कृतस्य सन्तानः कलेश्चैव क्षयस्तथा ॥८८
विचारणात्तु निर्वेदः साम्यावस्थात्मना तथा ।
ततश्चैवात्मसम्बोधः सम्बोधाद्धर्मशीलता ॥८९
कलिशिष्टेषु तेष्वेव जायन्ते पूर्ववत् प्रजाः ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्त्तत ॥९०
अतीतानागतानि स्युर्यानि मन्वन्तरेष्विह ।
एते युगस्वभावास्तु मयोक्तास्तु समासतः ॥९१

इस रीति से उस कलियुग का वह सन्ध्यांश काल दिव्य सौ वर्ष का होता है। जब यह सौ वर्ष समाप्त हो गये थे तब इसके अन्त में बहुत ही थोड़े स्त्रीजन और उनके सुत अवशिष्ट रह गये थे। उनके वे मिथुन सब अन्योन्य से समुत्पन्न हुए थे। इसके उपरान्त जो पूर्व में उत्पन्न प्रजायें थी वे मर जाया करती थी। फिर सन्तानों के जात मात्र होने पर कृत युग वर्त्तमान होने लगा था। जिस तरह देहधारियों के शरीर स्वर्ग में और नरकों में रहा करते हैं ॥ ८५, ८६, ८७ ॥ इस प्रकार से कृत युगादि में देहधारियों के शरीर उपभोग करने में समर्थ

थे। इसी रीति से कलियुग का क्षय और कृत युग की सन्तति हुई थी ॥ ८८ ॥ साम्यावस्थात्मा के द्वारा विचार करने से निर्वेद होता है और फिर उस निर्वेद से आत्मा का भली भाँति ज्ञान समुत्पन्न हुआ करता है। जब सम्बोध हो जाता है तो धर्म शीलता का प्रादुर्भाव स्वभाविक रूप से हो जाया करता है ॥ ८९ ॥ इस रीति से उस कलियुग में जो अवशिष्ट रह जाया करते हैं उनसे पूर्व की भाँति प्रजाएं जन्मग्रहण किया करती हैं फिर भावी अर्थ के बल से कृत युग वरता करता था। इस संसार में मन्वन्तरों में जो भी कोई अतीत और अनागत हैं वे हुआ करते हैं। ये सब युगों के स्वभाव मैंने अत्यन्त संक्षेप के साथ सब बतला दिये हैं। ॥९०, ९१॥

विस्तरेणानुपूर्व्याच्च नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ।
प्रवृत्तातु ततस्तस्मिन् पुनः कृतयुगे तु वै ॥९२
उत्पन्नाः कलिशिष्टेषु प्रजाः कार्त्तयुगास्तथा ।
तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विहरन्तिच ॥९३
सह सप्तर्षिभिर्ये तु तत्र ये च व्यवस्थिताः ।
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थे य इह स्मृताः ॥९४
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीह तेषु च ।
वर्णाश्रमाचारयुत श्रौतस्मार्त्तविधानतः ॥९५
एव तेषु क्रियावत्सु प्रवर्त्तन्तीह वै कृते ॥९६
श्रौतस्मार्त्तस्थितानान्तु धर्मे सप्तर्षिदर्शिते ।
ते तु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह कृते युगे ॥९७
मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति ऋषयस्तु ते ।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्वेवापरक्षितौ ॥९८

स्वयम्भू भगवान् को नमस्कार करके मैंने विस्तार से और आनुपूर्वी से सभी कुछ बतला दिया है। फिर इसके बाद ये पुनः उस कृतयुग की प्रवृत्ति हो जाया करती है। उसके प्रवृत्त होने पर जो कलियुग में

थोड़े से बचे खुचे रह जाते हैं उन्हीं में कृतयुग की प्रजाऐं समुत्पन्न हुआ करती हैं। जो वहाँ पर सिद्ध गण स्थित रहा करते हैं वे अदृष्ट होते हुए विहार किया करते हैं। सप्तर्षियों के साथ वहाँ पर जो व्यवस्थित रहते हैं वे यहाँ पर बीजार्थ में ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र बतलाये गये हैं। उन लोगों को उनके सप्तर्षिगण श्रौत-स्मार्त के विधान से वर्णों और आश्रमों के आचार से युक्त धर्म को कहा करते हैं। इसी प्रकार से कृतयुग में क्रियावान् उनमें वे सब प्रवृत्त हुआ करते हैं ॥९२, ९३, ९४, ९५॥ ॥९६॥ श्रौत और स्मार्त धर्मों में स्थित रहने वालों को सप्तर्षियों के द्वारा प्रदर्शित धर्म में वे यहाँ पर उस कृतयुग में धर्म की व्यवस्था के लिये ही अवस्थित रहा करते हैं। वे ऋषिगण मन्वन्तरों के अधिकारों में उसी तरह से स्थित रहा करते हैं जैसे आपन क्षिति में दावाग्नि से प्रदग्ध हुए तृणों में वनों की स्थिति हुआ करती है ॥९७, ९८॥

वनाना प्रथमं दृष्ट्वा तेषा मूलेषु सम्भवः।
एव युगाद्युगाना वै सन्तानस्तु परस्परम् ॥९९
प्रवर्त्तते ह्यविच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः।
सुखमायुर्बलं रूप धर्मार्थौ काम एव च ॥१००
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रय. पादा. क्रमेण तु।
इत्येषः प्रतिसन्धिर्वः कीर्त्तितस्तु मया द्विजाः ! ॥१०१
चतुर्युगाणा सर्वेषामेतदेव प्रसाधनम्।
एषा चतुर्युगाणान्तु गणिता ह्येकसप्तति. ॥१०२
क्रमेण परिवृत्तास्ता मनोरन्तरमुच्यते।
युगाख्यासु तु सर्वासु भवतीह यदा च यत् ॥१०३
तदेव च तदन्यासु पुनस्तद्वै यथाक्रमम्।
सर्गे सर्गे यथा भेदा ह्युत्पद्यन्ते तथैव च ॥१०४
चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह।
आसुरी यातुधानी च पैशाची यक्षराक्षसी ॥१०५

एते युगस्वभावा व परिक्रान्ता यथाक्रमम् ।
मन्वन्तराणि यान्यस्मिन् कल्पे वक्ष्यामि तानि च ॥ १०८

प्रत्येक युग मे उस समय मे जो भी प्रजा होती है उनके विषय में अब श्रवण करो। कल्प के अनुसार युगो के साथ वह प्रजा भी तुल्य लक्षणों वाली होती है। यही युगो का यथाक्रम लक्षण बताया गया है ॥१०६॥ चिर काल में प्रवृत्त कलियुग के स्वभाव से मन्वन्तरों के परिवर्तन होते हैं। क्षय और उदय होने के कारण से परिवर्त्तमान यह जीवलोक क्षण भर सस्थित नही रहता है। ये युगों के स्वभाव क्रमानुसार हमने आप लोगों को परिक्रान्त कर दिये हैं। इस कल्प मे जो भी मन्वन्तर होते हैं उनको भी हम बतलायेंगे ॥१०७, १०८॥

---

१८ — चतुर्युग गति वर्णन

चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणान्तु कृत युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा रविनन्दन ! ॥१
यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्म पादविग्रह ।
स्वधर्मनिरता सन्तो जायन्ते यत्र मानवा ॥२
विप्रा स्थिता धर्मपरा राजवृत्तौ स्थिता नृपा ।
कृष्यामभिरता वैश्या शूद्रा शुश्रूषव स्थिता ॥३
तदा सत्यञ्च शौचञ्च धर्मश्चैव विवर्धते ।
सद्भिराचरित कर्म क्रियते ख्यायते च वै ॥४
एतत् कार्त्तयुग वृत्त सर्वेषामपि पार्थिव ! ।
प्राणिनाधर्मसङ्गानामपि वै नीचजन्मनाम् ॥५
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेताय गमिहो च्यते ।
तस्यतावच्छतीसन्ध्याद्विगुणा परिकीर्त्यते ॥६

द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यात्रिभिर्धर्मोव्यवस्थित. ।
यत्र सत्यञ्च सत्वञ्चत्ताधर्मो विधायते । ७

मत्स्य भगवान् ने कहा—चार सहस्र वर्षों का कृत युग कहा जाता है और उस युग की उतने ही सो वर्ष की सन्ध्या होती है जो द्विगुणा हे रविनन्दन ! हुआ करती है ॥ १ ॥ जिस कृत युग मे धर्म्म के चार पाद पूर्ण होते हैं और अधर्म का विग्रह केवल एक ही पाद होता है। जिस युग मे सभी मनुष्य अपने २ धर्म मे निरत रहा करते थे। उस समय मे सभी विप्रगण धर्म्म मे तत्पर होकर रहा करते थे और नृपों के वर्ग राजवृत्ति मे स्थिर रहा करते थे। वैश्य लोग कृषि के कर्म्म मे स्थित थे और शूद्र सेवा धर्म्म के करने वाले हुआ करते थे ॥२, ३॥ उस समय मे सत्य, शौच और धर्म्म विशेष रूप से वर्धित हुआ करते थे। सत्पुरुषों के द्वारा सत्कर्म का समाचरण किया जाता था और वही ख्यात हुआ करता था। हे पार्थिव ! इस प्रकार का नीच जाति मे भी जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी भी सब धर्म्म को ही सङ्ग रखने वाले जिसमे होते थे। वह कृतयुग का समय हुआ था ॥ ४ ॥ ५ ॥ तीन हजार वर्षों की अवधि वाला त्रेता युग कहा जाता है उस युग की उतने ही सौ वर्ष वाली दुगुनी सन्ध्या होती है। इस युग में धर्म्म के केवल तीन ही चरण होते हैं और अधर्म्म दो पादो वाला रहा करता है। जिसमे सत्य और सत्व त्रेता का धर्म हुआ करता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

त्रेताया विकृतिं यान्ति वर्णास्त्वेतेन संशयः ।
चातुर्वर्ण्यस्य वैकृत्यायान्ति दौर्बल्यमाश्रमा ॥८
एषा त्रेतायुगगति विचित्रा देवनिर्मिता ।
द्वापरस्य तु या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि ॥९
द्वापरन्तु सहस्रे तु वर्षाणां रविनन्दन ! ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा युगमुच्यते ॥१०

तत्र चार्थपराः सर्वे प्राणिनो रजसा हृताः ।
सर्वे नैष्कृतिका क्षुद्रा जायन्ते रविनन्दन ! ॥११
द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पदभ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः ।
विपर्ययाच्छनैर्धर्मः क्षुणमेति कलौ युगे ॥१२
ब्राह्मण्यभावस्य ततो तथोत्सुक्य व्यशीर्यते ।
व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये ॥१३
तथा वर्षसहस्रन्तु वर्षाणां द्वेशते अपि ।
सन्ध्ययासह सङ्ख्यात क्रूरङ्कलियुग स्मृतम् ॥१४

त्रेता मे ये चारो वर्ण विकृति को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसमे कुछ भी संशय नही है। चारो वर्णों की विकृति से चारो आश्रम भी दुर्बलता को प्राप्त हो जाया करते है ॥८॥ यही इस त्रेता युग की गति है जो अति विचित्र और देवो के द्वारा निर्मित है। अब द्वापर युग की जो चेष्टाएँ हैं उन्हें भी आप श्रवण करने के योग्य होते है। हे रवि-नन्दन ! द्वापर युग की अवधि दो सहस्र वर्षों की होती है और उसकी उतने ही सौ वर्ष की दुगुनी सन्ध्या है—इस प्रकार से यह युग कहा जाता है ॥६, १०॥ उस युग मे सभी प्राणी रजोगुण से हृत होते हुए अर्थ-परायण हुआ करते है। हे रविनन्दन ! सभी प्राणी इस युग मे नैष्कृतिक और अत्यन्त क्षुद्र होते है। धर्म केवल दो ही चरणों वाला स्थित रहता है और अधर्म के तीन पाद समुत्थित होकर रहा करते हैं। कलियुग मे बिल्कुल विपर्यय हो जाने धर्म क्षय को शनैः-शनैः प्राप्त हो जाया करता है ॥११, १२॥ फिर ब्राह्मण्य भाव का विनाश और औत्सुक्य भी विशीर्ण हो जाया करता है। द्वापर युग मे विपर्यय हो जाने पर व्रत और उपवास आदि सब त्याग दिये जाया करते हैं ॥१३॥ फिर एक सहस्र वर्ष की अवधि वाला तथा दो सौ वर्ष की सन्ध्या के सहित यह महान् क्रूर कलि-युग सङ्ख्यात करके बताया गया है ॥१४॥

यत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद् धर्मःपादविग्रहः ।
कामिनस्तपसाच्छन्नाजायन्ते तत्र मानवाः ॥१५
नैवातिसात्त्विकः कश्चिन्न साधुर्न च सत्यवाक् ।
नास्तिका ब्रह्मभक्ता वा जायन्ते तत्र मानवाः ॥१६
अहङ्कारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबन्धनाः ।
विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ति सर्वे कलौ युगे ॥१७
आश्रमाणां विपर्यासः कलौ संपरिवर्तते ।
वर्णानाञ्चैव सन्देहो युगान्ते रविनन्दन ! ॥१८
विद्याद् द्वादशसाहस्री युगाख्या पूर्वनिर्मिताम् ।
एवं सहस्रपर्यन्त तदहो ब्राह्ममुच्यते ॥१९

जिस कलियुग मे अधर्म चारों पादों से युक्त रहा करता है और धर्म का केवल एक ही चरण अवशिष्ट रहता है। उस युग मे मानव तप मे समाच्छन्न होकर कामी उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१५॥ इस युग मे न तो कोई अत्यन्त सात्विक ही होता है और न कोई भी साधु एवं सत्य वाणी बोलने वाला हुआ करता है। इसमे तो सभी मानव नास्तिक अथवा ब्रह्मभक्त उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१६॥ सभी अहङ्कार से जकड़े हुए और क्षीण स्नेह के बन्धनो वाले होते हैं। इस कलियुग मे सभी विप्र शूद्र के समान आचरण करने वाले हो जाया करते है कलियुग मे भली भाँति परिवर्तित होकर आश्रमो का विपर्यास हो जाया करता है। हे रविनन्दन ! इस युग के अन्त मे तो वर्णों का भी सन्देह हो जाया करता है। पूर्व मे निर्माण की हुई यह युगो की आख्या बारह सहस्र वर्षों की जाननी चाहिए। इस प्रकार से एक सहस्र पर्यन्त वह ब्रह्मा का दिन कहा जाया करता है। ॥१७॥१८॥१९॥

ततोऽहनि गते तस्मिन् सर्वेषामेव जीविनाम् ।
शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा लोकसंहारबुद्धितः ॥२०
देवतानाञ्च सर्वासां ब्रह्मादीनामहीपते ! ।

दैत्यानां दानवानाञ्च यक्षराक्षसपक्षिणाम् ॥२१
गन्धर्वाणामप्सरसां भुजङ्गानाञ्च पार्थिव ! ।
पर्वतानां नदीनाञ्च पशूनाञ्चैव सत्तम ! ॥२२
तिर्य्योनिगतानाञ्च सत्वानां कृमिणान्तथा ।
महाभूतपतिः पञ्च हृत्वा भूतानि भूतकृत् ॥२३
जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत् ।
भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाददानो भूत्वावायुः प्राणिनां प्राणजालम् ।
भूत्वा वह्निर्निर्दहन्सर्वलोकान्भूत्वा मेघोभूय उग्रोऽप्यवर्षत् ॥२४

उस ब्रह्मा के एक दिन के समाप्त हो जाने पर सभी जीवधारियों के शरीर की निर्वृति को देखकर लोकों के संहार की बुद्धि से हे महीपते! समस्त देवताओं—ब्रह्मादिकों—दैत्यों—दानवों—यक्ष, राक्षस, पक्षियों—गन्धर्वों—अप्सरागणों—हे पार्थिव! पर्वतों—नदियों—हे श्रेष्ठतम! पशुओं तिर्य्योनियों में रहने वाले सत्वों और कृमियों के भूतों के करने वाले महाभूतों के पति पांचों भूतों का हरण करके जगत् के संहरण करने के लिए महान् वैशस किया करते हैं। सबके चक्षुओं को आदान करने वाले होकर—सब लोकों का निर्दहन करता हुआ वह्नि होकर एवं फिर अत्युग्र मेघ होकर वर्षा किया करता था ॥२०॥२१॥२२॥२३॥२४॥

४६—प्रलयकाल वर्णन

भूत्वा नारायणो योगी सत्वमूर्तिर्विभावसुः ।
गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान् ॥१
ततः पीत्वार्णवान् सर्वान् नदीः कूपांश्च सर्वशः ।
पर्वतानाञ्च सलिलं सर्वमादाय रश्मिभिः ॥२
भित्वा गभस्तिभिश्चैव महीङ्गत्वा रसातलम् ।

पातालजन्मादाय पिबन्तु रसमुत्तमम् ॥३
मूत्रासृक्रुक्वेदमन्यच्च यदस्ति प्राणिषु ध्रुवम् ।
तत् सर्वमरविन्दाक्षमादत्ते पुरुषोत्तमः ॥४
वायुश्च भगवान् भूत्वा विधुन्वानोऽखिलं जगत् ।
प्राणापानसमानाद्यात् वायूनाकर्षते हरिः ॥५
ततो देवगणाः सर्वे भूतान्येव च यानि तु ।
गन्धोघ्राणं शरीरञ्च पृथिवीं संश्रितगुणाः ॥६
जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संश्रिताः सलिले गुणाः ।
रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाश्रितागुणाः ॥७

श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—सबकी मूर्ति योगी नारायण विभावसु होकर अपनी अत्यन्त प्रदीप्त गभस्तियों के द्वारा समस्त सागरों का शोषण किया करते हैं। १॥ इसके अनन्तर सब सर्वों का—नदियों का और सभी ओर कूपों के जल को पीकर तथा रश्मियों के द्वारा सब पर्वतों के सलिल को ग्रहण करके—अपनी किरणों से मही का भेदन करके नीचे पहुँच कर रसातल से पाताल के जल का पान करके वहाँ के उत्तम रूप को ग्रहण कर लेते हैं। मूत्र-असृक् तथा अन्य जो भी क्लेदन करने वाला प्राणियों में होता है निश्चय ही इस सब अरविन्दाक्ष को पुरुषोत्तम ले लिया करते हैं ॥२, ३, ४॥ समस्त जगत् का विधूनन करने वाला भगवान् वायु होकर फिर श्रीहरि प्राणायाम समान आदि वायुओं का समाकर्षण किया करते हैं ॥ ५॥ इसके अनन्तर सब देवगण और जो सब भूत हैं उनका भी समाकर्षण कर लिया करते हैं। गन्ध घ्राण को तथा शरीर पृथ्वी को सब गुण संश्रित हुआ करते हैं। जिह्वा-रस और स्नेह सलिल में गुण संश्रित होते हैं। रूप, चक्षु और विपाक ज्योति का ही समाश्रय करने वाले गुण हैं ॥ ६, ७॥

स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनेसंश्रितागुणाः ।
शब्दः श्रोत्रञ्च खान्येव गगनेसंश्रितागुणाः ॥८

लोकमाया भगवता मुहूर्त्तेन विनाशिता ।
मनोबुद्धिश्च सर्वेषां क्षेत्रज्ञश्चेति यः श्रुतः ॥९
ते वरेण्यं परमेष्ठि हृषीकेशमुपाश्रिताः ।
ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारितः ॥१०
वायुनाक्रम्यमाणासु द्रुमशाखासु चाश्रिताः ।
तेषां सघर्षणोद्भूतः पावकः शतधाज्वलन् ॥११
अदहच्च तदा सर्वं वृतः सम्वर्तकोऽनलः ।
सपर्वतद्रुमान् गुल्मान् लतावल्लीस्तृणानि च ॥१२
विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ।
यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत् ॥१३
भस्मीकृत्वा ततः सर्वान् लोकाँल्लोकगुरुर्हरिः ।
भूयो निर्वापयामास युगान्तेन च कर्मणा ॥१४

स्पर्श-प्राण और चेष्टा पवन में समित गुण हैं। शब्द-श्रोत्र और आकाश गगन के संश्रय करने वाले गुण हैं। भगवान् ने एक ही मुहूर्त में लोकमाया का विनाश कर दिया था। सबके मन-बुद्धि और जो क्षेत्रज्ञ सुना गया है वे सब उस वरेण्य परमेष्ठी हृषीकेश का उपाश्रय करने वाले हुए थे। इसके पश्चात् उन भगवान् की रश्मियों से सब परिवारित हो गया था ॥८॥९॥१०॥ वायु के द्वारा द्रुमों की शाखाओं के आक्रम्य माण होने पर आश्रित हो गये थे। उनके संघर्ष से समुत्पन्न पावक सैकड़ों रूपों से जलता हुआ हो गया था। उस समय में सबको वृत हुए सम्वर्तक अनल ने जला दिया था। द्रुमों से युक्त पर्वतों को—गुल्मों को—लता बल्लों और तृणों को—दिव्य विमानों को—विविध पुरों को और जो भी आश्रयणीय थे उन सबको उसने जला दिया था ॥११, १२, १३॥ इसके उपरान्त लोकों के गुरु श्री हरि ने समस्त लोकों को भस्मीभूत करके फिर युगान्तक कर्म के द्वारा निर्वापित किया था ॥१४॥

सहस्रवृष्टिः शतधा भूत्वा कृष्णो महाबलः ।
दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम् ॥१५
ततः क्षीरनिकायेन स्वादुना परमाम्भसा ।
शिवेन पुण्येन महीनिर्वाणमगमत परम् ॥१६
तेन रोधेन संच्छन्ना पयसा वर्षतो धरा ।
एकार्णवजलीभूता सर्वसत्त्वविवर्जिता ॥१७
महासत्त्वान्यपि विभुं प्रष्टान्यमितौजसम् ।
नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जगति संवृते ॥१८
संशोषमात्मना कृत्वा समुद्रानपि देहिनः ।
दग्ध्वा सम्प्लाव्य च तथा स्वपित्येकः सनातनः ॥१९
पौराणं रूपमास्थाय स्वपित्यमितविक्रमः ।
एकार्णवजलव्यापी योगी योगमुपाश्रितः ॥२०
अनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णवाम्भसि ।
न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति ॥२१

महान् बल से सम्पन्न श्रीकृष्ण ने सैकड़ों प्रकार से सहस्र वृष्टि वाले होकर दिव्य तोय हवि के द्वारा इस मेदिनी को तृप्त कर दिया था ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त क्षीर सागर में रहने वाले परम स्वाद से युक्त शिव और पुण्य जल के द्वारा इस मही का परम निर्वाण हो गया था ॥ १६ ॥ फिर रोध से यह मेदिनी सञ्छन्न हुई जलों की वर्षा से एकार्णवी भूत जल पूर्ण हो गई थी और यह सब सत्त्वों से विवर्जित थी ॥ १७ ॥ सूर्य-पवन और आकाश के नष्ट होने पर इस सूक्ष्म जगत् का सम्वरण हो जाता है और महा सत्त्व भी अमित ओज वाले विभु में सम्प्रष्ट हो जाया करते हैं ॥ १८ ॥ अपने ही आपकी आत्मा से समस्त समुद्रों का तथा देहधारियों का संशोषण करके सबको दग्ध करके तथा सम्प्लावित करके सनातन प्रभु एक ही उस समय में शयन किया करते हैं ॥१९॥ अमित विक्रम वाले प्रभु पौराण रूप में समास्थित होकर शयन करते हैं

और एकार्णव के जल मे व्यापक योगी योग का उपाश्रय किया करते हैं ।। २० ।। उस एकमात्र सागर मे इस प्रकार से योग निद्रा के आनन्द मे शयन करने वाले प्रभु को अनेको सहस्र युग व्यतीत हो जाया करते हैं। उस अवस्था मे इस अव्यक्त को कोई भी व्यक्त रूप से जानने के योग्य नही हुआ करता है ।।२१।।

कश्चैव पुरुषोनाम किं योगः कश्चयोगवान् ।
असौ कियन्त कालञ्च एकार्णवविधिप्रभुः ।।२२
करिष्यतीति भगवानिति कश्चन्न बुध्यते ।
न द्रष्टा नैव गमिता न ज्ञाता नैव पार्श्वगः ।।२३
तस्य न ज्ञायते किञ्चित्तमृते देवसत्तमम् ।
नभः क्षिति पवनमप प्रकाशप्रजापतिं भुवनधरं सुरेश्वरम् ।
पितामहश्रुतिनिलयमहामुनिं प्रशास्य भूय शयनह्यरोचयत् ।।२४

यह पुरुष नाम वाला कौन है—योग क्या है और कौन इसके करने वाला है—यह विभु भगवान् कितने काल पर्यन्त इस एक मात्र सागर मे शयन करते रहने की विधि को करेंगे—इसको कोई भी नही जानता है । न तो कोई इसके देखने वाला है—न कोई इसका ज्ञान प्राप्त करने वाला है न कोई ज्ञाता तथा पार्श्व मे गमन करने वाला ही होता है ।। २२, २३ ।। उस देवो मे श्रेष्ठ के बिना उसके विषय मे कोई भी

६०–यज्ञावतार वर्णन

एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाद्युतिः ।
प्रच्छाद्य सलिलेनोर्वी हंसो नारायणस्तदा ॥१
महतो रजसो मध्ये महार्णवसरःसु वै ।
विरजस्को महाबाहुरक्षयं ब्रह्म यं विदुः ॥२
आत्मरूपप्रकाशेन तमसा संवृतः प्रभुः ।
मनः सात्त्विकमाधाय यत्र तत् सत्यमासत ॥३
याथातथ्यं परं ज्ञानं भूतन्तद्ब्रह्मणापुरा ।
रहस्यारण्यकादिदिष्टं यच्चौपनिषदं स्मृतम् ॥४
पुरुषोयज्ञइत्येतत् यत्परं परिकीर्तितम् ।
यश्चान्यः पुरुषाख्यः स्यात् स एव पुरुषोत्तमः ॥५
ये च यज्ञकरा विप्रा येचर्त्विज इतिस्मृता ।
अस्मादेवपुरा भूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तथा ॥६
ब्रह्माणं प्रथमं वक्त्रादुद्गातारञ्च सामगम् ।
होतारमपि चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत् प्रभुः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इस प्रकार से एकार्णवी भूतलोक में उस समय में महान् द्युति वाले हंस नारायण सलिल से उर्वी का प्रच्छादन करके शयन किया करते हैं ॥ १ ॥ महान् रजोगुण के मध्य में, महार्णवसरों में जो विरजस्क (रजोगुण से रहित) महान् बाहुओं वाला अक्षय है जिसको ब्रह्म जानते हैं ॥ २ ॥ अपने रूप के प्रकाश से तम से संवृत प्रभु सात्विक मन का आधान करके जिसमें रहते हैं वह सत्य है ॥ ३ ॥ पहिले ब्रह्मा के द्वारा यह यथा तथ्य परम ज्ञान प्राप्त हुआ था जो रहस्यारण्यक उद्दिष्ट था और जो औपनिषद ज्ञान कहा गया है ॥४॥ जो परपुरुष यज्ञ—यह परिकीर्तित किया गया है और जो अन्य है। जिसका नाम पुरुष है वह ही पुरुषोत्तम प्रभु है ॥५॥ जो इनमें से यज्ञ का सम्पादन करने वाले विप्र हैं वे ऋत्विज कहे गये हैं। पहिले इन्हीं से यज्ञ के

सहित उपनिषदों की क्रियाऐं हैं। वह एकार्णव मे शयन किया करते हैं जो पहिले बड़ा भारी सपभय्यं हुआ था। हे विप्रगण! जिस तरह से मार्कण्डेय को कुतूहल हुआ था। उसका अब आप लोग श्रवण करो। वह महामुनि उन भगवान् की कुक्षि में ही धीर्घ हो गए थे। वरदान के तेज से उनकी आयु भी बहुत से सहस्रों वर्षों की हुई थी ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

> अटरतीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीतीर्थगोचरान्।
> आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायतनानि च ॥१५
> देशान् राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च।
> जपहोमपरः शान्तस्तपोघोरं समास्थितः ॥१६
> मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिःसृतः।
> स निष्क्रामन्नचात्मानं जानीते देवमायया ॥१७
> निष्क्रम्याप्यस्य वदनादेकार्णवमथो जगत्।
> सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत ॥१८
> तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते।
> देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं परमं गतः ॥१९
> चिन्तयन् जलमध्यस्थो मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत।
> किन्नु स्यान्मम चिन्तेयं मोहः स्वप्नोऽनुभूयते ॥२०
> व्यक्तमन्यतमो भावस्तेषां सम्भावितो मम।
> नहीदृशो जगत् क्लेशमयुक्तं सत्यमर्हति ॥२१

तीर्थों के प्रसङ्ग से पृथिवी मे स्थित प्रत्यक्ष तीर्थों का पर्यटन तथा पुण्यमय आश्रम देवों के आयतन–देश–राष्ट्र–विचित्र एवं अनेक पुरों का अटन करते हुए जप एवं होम में परायण तथा परम शान्त होकर घोर तपश्चर्या मे समास्थित हो गये थे ॥१५॥१६॥ इसके पश्चात् उनके मुख से शनैः मार्कण्डेय विनिःसृत होगये थे। वह निष्क्रमण करते हुए देव की माया से अपने आपको भी नहीं जानते थे अर्थात् उनको अपने

धर्मानुष्ठान को करने के लिये जो हुए थे उनके विषय में श्रवण करो ॥६॥ प्रभु ने प्रथम मुख से ब्रह्मा को और उद्गाता सागर को फिर बाहुओं से होता और अध्वर्यु को सृजित किया था ॥७॥

ब्रह्मणो ब्राह्मणाच्छंसि प्रस्तोतारञ्च सर्वशः ।
तौ मित्रावरुणौ पृष्ठात् प्रतिप्रस्तारमेव च ॥८
उदरात् प्रतिहर्त्तारं होतारञ्चैव पार्थिव ! ।
अच्छावाकमथोरुभ्यां नेष्टारञ्चैव पार्थिव ! ॥६
पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रसुब्रह्मण्यञ्च जानुतः ।
ग्रावस्तुतन्तु पादाभ्यामुन्नेतारञ्च याजुषम् ॥१०
एवमेवैष भगवान् षोडशैव जगत्पतिः ।
प्रवक्तॄन् सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान् ॥११
तदेष वै वेदमयः पुरुषो यज्ञसंस्थितः ।
वेदाश्चैतन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषदक्रियाः ॥१२
स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत्पुरा ।
श्रूयन्तां तद्यथा विप्रा ! मार्कण्डेयकुतूहलम् ॥१३
गीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनिः ।
बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा ॥१४

उस प्रभु ने ब्रह्म से ब्राह्मणों को और सब प्रस्तोता का सृजन किया था । दोनों मित्रावरुणों को और प्रति प्रस्तार को पृष्ठ से सृजित किया गया था । हे पार्थिव ! उदर से प्रतिहर्त्ता और होता का सृजन किया गया था । दोनों ऊरुओं से अच्छा वाक तथा नेष्टा की रचना की थी । दोनों हाथों से आग्नीध्र को तथा जानु से सुब्रह्मण्य को रचा था । पादों से ग्रावस्तुत और याजुष उन्नेता का सृजन किया था । इस प्रकार से ही इन जगत् के पति भगवान् ने सोलहों सम्पूर्ण यज्ञों के प्रवक्ता उत्तम ऋत्विजों का सृजन किया था ॥८॥६॥१०॥११॥ वही यह वेदमय पुरुष यज्ञों में संस्थित है । इसी से परिपूर्ण सम्पूर्ण वेद है तथा अङ्गों के

सहित उपनिषदों की क्रियायें हैं। वह एकार्णव में शयन किया करते हैं जो पहिले बड़ा भारी उपश्चर्य्य हुआ था। हे विप्रगण! जिस तरह से मार्कण्डेय को कुतूहल हुआ था। उसका अब आप लोग श्रवण करो। वह महामुनि उन भगवान् की कुक्षि में ही जीर्ण हो गये थे। वरदान के तेज से उनकी आयु भी बहुत से सहस्रों वर्षों की हुई थी॥१२॥१३॥१४॥

अटंस्तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीतीर्थगोचरान्।
आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायनानि च॥१५
देशान् राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च।
जपहोमपरः शान्तस्तपोघोरं समास्थितः॥१६
मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिःसृतः।
स निष्क्रामन्नचात्मानं जानीते देवमायया॥१७
निष्क्रम्याप्यस्य वदनादेकार्णवमथो जगत्।
सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत॥१८
तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते।
देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं परमङ्गतः॥१९
चिन्तयन् जलमध्यस्था मार्कण्डेयोऽन्वशंसत।
किन्नु स्यान्मम चिन्तेयं मोहः स्वप्नोऽनुभूयते॥२०
व्यक्तमन्यतमोभावस्तेषा सम्भावितो मम।
नहीदृशं जगत् क्लेशमयुक्तं सत्यमर्हति॥२१

तीर्थों के प्रसङ्ग से पृथिवी में स्थित प्रत्यक्ष तीर्थों का पर्यटन तथा पुण्यमय आश्रम-देवों के आयतन-देश-राष्ट्र-विचित्र एवं अनेक पुरों का अटन करते हुए जप एवं होम में परायण तथा परम शान्त होकर घोर तपश्चर्या में समास्थित हो गये थे॥१५॥१६॥ इसके पश्चात् उनके मुख से शनैः मार्कण्डेय विनिःसृत होगये थे। वह निष्क्रमण करते हुए देव की माया से अपने आपको भी नहीं जानते थे अर्थात् उनको अपने

स्वरूप का भी ज्ञान नहीं था ॥ १७ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने इनके मुख से वाहिर निकल कर भी इस सम्पूर्ण जगत् को सब ओर अन्धकार से समाच्छन्न और एकमात्र सागरमय देखा था ॥ १८ ॥ जब यहाँ पर इस प्रकार जगत् का स्वरूप देखा था तो उसके हृदय में अत्यन्त तीव्र भय समुत्पन्न हो गया था और अपने जीवन के रहने में भी संशय हो गया था। जब देव का दर्शन प्राप्त किया तो उससे वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसे महान् विस्मय समुत्पन्न हो गया था ॥ १९ ॥ जल के मध्य में स्थित मार्कण्डेय महर्षि ने चिन्तन करते हुए यह सब कुछ देखा था अपने हृदय में ऐसा विचार हो गया था कि क्यों ऐसी मेरी चिन्ता हो रही है ? क्या यह एक मोह है अथवा स्वप्न का अनुभव किया जा रहा है ॥ २० ॥ व्यक्त उनका अन्यतम भाव मुझे सम्भावित हुआ था। यह मत्य जगत् इस प्रकार के आयुक्त क्लेश के योग्य नहीं होता है ॥ २१ ॥

नष्टचन्द्रार्कपवने नष्टपर्वतभूतले ।
कतमः स्यादयं लोक इति चिन्तामवस्थितः ॥२२
ददर्श चापि पुरुषं स्वपन्तं पर्वतोपमम् ।
सलिलेऽर्द्धमयो मग्नं जीमूतमिव सागरे ॥२३
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्गोयुक्तमिव भास्करम् ।
शर्वर्यां जाग्रतमिव भासन्तं स्वेन तेजसा ॥२४
देवं द्रष्टुं मिहायातः को भवानिति विस्मयात् ।
तथैव स मुनिः कुक्षिं पुनरेव प्रवेशितः ॥२५
सम्प्रविष्टः पुनः कुक्षिं मार्कण्डेयोऽतिविस्मयः ।
तथैव च पुनर्भूयो विजानन् स्वप्नदर्शनम् ॥२६
स तथैव यथा पूर्वं स धरातले पुरा ।
पुण्यतीर्थजलोपेता विविधान्याश्रमाणि च ॥२७
क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तिवरदक्षिणान् ।

आपश्यद्देवकुक्षिस्थान् याजकान् शतशोद्विजान् ॥२८

माश को प्राप्त हुए चन्द्र-सूर्य्य और पवन वाले तथा विनष्ट पर्वत एवं भूतल वाले इसमें यह कौन सा लोक होगा—इसी चिन्ता में वह बहुत समय पर्यन्त अवस्थित रहा था ॥ २२ ॥ पर्वत की उपमा वाला अर्थात् महान् विशाल शयन करते हुये एक पुरुष को देखा था जो उसका सागर से एक जीमूत की भांति आधा भाग सलिल में मग्न हो रहा था ॥ २३ ॥ जो इतना तेजोमय था कि अग्नि के समान जाज्वल्यमान या-किरणों से युक्त भास्कर के सदृश था और रात्रि में अपने तेज से भासमान जाग्रत् की भाँति दिखलाई दे रहा था ॥ २४ ॥ वह विस्मय से यह ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से कि आप कौन हैं देव का दर्शन प्राप्त करने के लिये यहाँ पर आये थे ज्योंही वह आये थे वैसे ही वह मुनि उसी भाँति कुक्षि में पुन प्रवेशित हो गये ॥ २५ ॥ पुनः कुक्षि में सम्प्रविष्ट हुए मार्कण्डेय मुनि अत्यन्त विस्मित हो गये थे। फिर दूसरी बार भी उसी भाँति स्वप्न-दर्शन को वे जानने लगे थे। वह भी पूर्व की ही भाँति धरामण्डल में पर्यटन किया करते हैं। जो धरा परम पुण्यमय तीर्थों के जलों समुपेत थी और इसी भाति अनेक आश्रमों में भी भ्रमण करते हैं। उस समय में ऋतुओं के द्वारा समाप्त करती है श्रेष्ठ दक्षिणा जिनके ऐसे यजमानों को और देव की कुक्षि में स्थित सैकड़ों याजक द्विजों को उसने देखा था ॥२६, २७, २८॥

सद्वृत्तमास्थिता सर्वे वर्णाब्राह्मणपूर्वकाः
चत्वारश्चाश्रमाः सम्यग्यथाहिष्टागया तव ॥२९
एव वर्षशत साग्र मार्कण्डेयस्य धीमतः।
चरत. पृथिवी सर्वान्न कुक्ष्यन्त. समीक्षित. ॥३०
तत कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिस्सृत ।
गुप्त न्यग्रोधशाखाया बालमेव निरीक्षत ॥३१
तथैकार्णवजले नीहारेणावृताम्बरे ।

अव्यग्रः क्रीडते लोके सर्वभूतविवर्जिते ॥३२
स मुनिर्विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः ।
बालमादित्यसङ्काशं नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ॥३३
स चिन्तयंस्तथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ।
पूर्वंदृष्टमिदं मन्ये शङ्कितो देवमायया ॥३४
अगाधसलिले तस्मिन् मार्कण्डेयः सुविस्मयः ।
प्लवस्तथार्त्तिमगमत् भयात् सन्त्रस्तलोचनः ॥३५

ब्राह्मण जिनमें सर्व प्रथम है ऐसे चारों वर्ण वाले लोग सद्वृत्त (चरित) में समास्थित थे । ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रम भी जैसे मैंने तुमको बतलाये थे भली भाँति व्यवस्थित थे । इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी पर सञ्चरण करते हुए धीमान् मार्कण्डेय मुनि को डेढ़ सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे किन्तु वह फिर भी उस कुक्षि का अन्त नहीं देख पाये थे । इसके उपरान्त फिर किसी समय में पुनः वह मुख से बाहिर निकल पड़े थे और उन्होंने न्यग्रोध की शाखा में छिपे हुए एक बालक को देखा था । नीहार से समावृत जिसका अम्बर है ऐसे उस एकार्णव जल में, जहाँ कि सभी प्रकार के भूतों का अभाव था, ऐसे लोक में वह व्यग्रता रहित होकर क्रीड़ा करता है ॥ २९, ३०, ३१, ३२ ॥ उसको देखकर वह मुनि आश्चर्य से पूर्ण तथा समाविष्ट होकर कौतूहल से संयुत हो गया था । वह बालक सूर्य के तुल्य तेज से परिपूर्ण था कि उसको वह देख नहीं सका था ॥ ३३ ॥ उसने चिन्तन करते हुए सलिल की सन्निधि में उसी भाँति एकान्त में स्थित होकर देव की माया से शङ्का वाला होकर इस सबको पूर्व की भाँति देखा हुआ मानने लगा है ॥ ३४ ॥ अत्यन्त विस्मय से संयुत होकर उस अगाध जल में भय से सन्त्रस्त नेत्रों वाला वह मार्कण्डेय मुनि प्लवमान होता हुआ अत्यन्त ही परिश्रम को प्राप्त हो गया था ॥ ३५ ॥

स तस्मै भगवानाह स्वागतं बालयोगवान् ।

कर रहा है ? मुझको मार्कण्डेय—ऐसा कहकर मृत्यु को देखने के लिये योग्य होता है ? उस मार्कण्डेय मुनि ने उससे अत्यन्त क्रोध से इस प्रकार कहा था तब उसी भांति भगवान् मधुसूदन पुन उससे कहने लगे थे। ।।३६, ४०, ४१।।

अहं ते जनको वत्स ! हृषीकेश पिता गुरु ।
आयु प्रदाता पौराण किं मान्त्वन्नोपसर्पसि ।।४२
मा पुत्रकाम प्रथम पिता तेऽङ्गिरसोमुनि ।
पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्र समाश्रित ।।४३
ततस्त्वा घोरतपसा प्रावृणोद मितौजसम् ।
उक्तवानहमात्मस्थ महर्षिभिमतौजसम् ।।४४
क समुत्सहते चान्यो यो न भूतात्मकात्मज ।
द्रष्टुमेकार्णवगत क्रीड त योगवर्त्मना ।।४५
तत प्रहृष्टवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचन ।
मर्ध्नि बद्धाञ्जलिपटो मार्कण्डेयो महातपा ।४६
नामगोत्रे तत प्रोच्य दीर्घायुर्लोकपूजित ।
तस्मै भगवते भक्त्या नमस्कारमथाकरोत् ।।४७

श्री भगवान ने कहा—हे वत्स ! मैं तेरा जनक हूँ। मैं परम पुरातन—हृषीकेश—पिता—गुरु और आयु के प्रदान करने वाला हूँ। क्यों तू मेरे समीप नहीं आ रहा है ? ।।४२।। पहिले पुत्र की कामना रखने वाले तेरे पिता अङ्गिरस मुनि ने परम तीव्र तपस्या का समाश्रय ग्रहण करके मेरी ही समाराधना की थी ।।४३।। इसके अनन्तर अत्यन्त घोर तप से

उसने अमित ओज वाले तुमको प्राप्त करने का वरदान प्राप्त कर लिया था। इसके पश्चात् मेरे ही अन्दर स्थित अपरिमित ओज वाले महर्षि से मैंने कहा था जो भूतात्मकात्मज न हो ऐसा अन्य कौन है जो योग के मार्ग से क्रीडा करते हुए एकार्णव में त को देखने का उत्साह किया करता है ? । ४४, ४५।। इसके पश्चात् प्रहृष्ट मुख वाला—विस्मय से समुत्फुल्ल लोचनों से संयुत—मस्तक म अञ्जलि पुट को बद्ध करते हुए महान् तपस्वी मार्कण्डेय अपने नाम और गोत्र का उच्चारण करके दीर्घायु और लोक पूजित ने उन भगवान् को भक्तिभाव से नमस्कार किया था ।।४६।।४७।।

इच्छेय तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं त्वानघ ! ।
यदेकार्णवमध्यस्थ शेषे त्व बालरूपवान् ।।४८
किं संज्ञश्चैव भगवन् ! लोके विज्ञायसे प्रभो ! ।
तर्कये त्वां महात्मानं को ह्यन्य स्थातुमर्हति ।।४९
अहंनारायणो ब्रह्मन् ! सर्वभू सर्वनाशन ।
अहं सहस्रशीर्षाख्यैय पदैरभिसंज्ञित ।।५०
आदित्यवर्णं पुरुषो मखे ब्रह्ममयो मख ।
अहमग्निर्ह यशाह्रो यादसां पतिरव्यय ।।५१
अहमिन्द्रपदे शक्रो वर्षाणां परिवत्सर ।
अहं योगी युगाख्यश्च युगान्तावर्तएव च । ५२
अहं सर्वाणि सत्वानि दैवतान्यखिलानि तु ।
भुजङ्गानामहं शेषो तार्क्ष्यो वै सर्वपक्षिणाम् ।।५३
कृतान्त सर्वभूतानां विश्वपा कालसंज्ञित ।
अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ।।५४

अहं चैव सरिद्दिव्या क्षीरोदश्च महार्णवः ।
यत्तत् सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः ॥५६
अहं सांख्यमहं योगोऽप्यहं तत्परमम्पदम् ।
अहमिज्या क्रिया चाहमहं विद्याधिप स्मृत ॥५६

मार्कण्डेय महामुनि ने कहा—हे अनघ ! मैं अब तात्विक रूप से आपकी इस देव माया के ज्ञान को जानने की मैं इच्छा करता हूँ कि जो बाल रूप वाले आप इस एकार्णव के मध्य में स्थित होकर शयन कर रहे हैं ॥४८॥ हे प्रभो ! हे भगवन् ! आप इस लोक में किस संज्ञा वाले होकर जाने जाते हैं अर्थात् लोक में आपका क्या नाम प्रसिद्ध है । मैं ऐसा अनुमान करता हूँ कि महात्मा आपको कोई अन्य स्थित करने के योग्य होता है ॥४६॥ श्री भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं सबकी उत्पत्ति करने वाला तथा सबका नाश करने वाला नारायण हूँ मैं सहस्र शीर्षा नाम वाले पदों से अभिलक्षित होता हूँ ॥५०॥ मैं सूर्य के समान वर्ण वाला पुरुष और मख में ब्रह्ममय मख हूँ । मैं हव्य का वहन करने वाला अग्नि हूँ तथा मैं अविनाशी यादवों का स्वामी हूँ ॥५१॥ मैं इन्द्र के पद पर

मैं ही इच्छा और क्रिया हूं तथा मुझे ही विद्या का अधिप कहा गया है। ॥५४, ५५, ५६॥

अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः।
अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशोदश ॥५७
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः।
क्षीरोदसागरे चाहं समुद्रे वडवामुखः ॥५८
वह्निः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमयं हविः।
अहं पुराणः परमं तथैवाहं परायणम् ॥५९
अहं भूतस्य भव्यस्य वर्तमानस्य सम्भवः।
यत् किञ्चित् पश्यसे विप्र ! यच्छृणोषि च किञ्चन।
यल्लोके चानुभवसि तत् सर्वं मामनुस्मर।
विश्वसृष्टंमयापूर्वं सृज्यं चाद्यापि पश्यमाम् ॥६१
युगे युगे च स्रक्ष्यामि मार्कण्डेयाखिलं जगत्।
तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयावधारय ॥६२
शुश्रूषुर्मम धर्मांश्च कुक्षौ चर सुखं मम।
मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवैश्च ऋषिभिः सह ॥६३

मैं ही ज्योति, वायु, भूमि, नभ, आप (जल), समुद्र, नक्षत्र, दश दिशाएँ, वर्ष, सोम, पर्जन्य, रवि हूं अर्थात् पवन भूमि आदि समस्त मेरा ही एक दूसरा स्वरूप है। क्षीरसागर में मैं विद्यमान हू तथा समुद्र में बड़वानल मेरा ही रूप है। सम्वर्तक अग्नि होकर जलमय हवि का पान

करने वाला मैं परम पुरातन एवं परायण मैं हूं। मैं ही अतीत होने वाले-भव्य (भविष्य) और वर्त्तमान काल को समुत्पन्न करने वाला हूं। हे विप्र ! इस लोक मे जो भी कुछ तुम देखते हो, श्रवण करते हो और जिसका भी कि किंचितमात्र अनुभव किया करते हो वह सभी मुझको ही अर्थात् मेरा ही स्वरूप समझना चाहिये। मेरे ही द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व पहिले सृजित किया गया है और जो कुछ भी आज भी सृजन करने के योग्य है उस सभी को मुझे ही देख लो ॥५७, ५८, ५६, ६०, ६१॥ हे मार्कण्डेय! प्रत्येक युग में इस सम्पूर्ण जगत को मैं ही सृजित किया करता हूँ इसीलिये यह सभी कुछ जो भी है मेरा ही स्वरूप है और मुझ को ही तुम समझ लो ॥६२॥ मेरे धर्म्मों के श्रवण करने की इच्छा वाले यदि तुम हो तो तुम मेरी ही इस कुक्षि मे सुख पूर्वक सचरण करते रहो। यह ब्रह्मा भी मेरे इसी शरीर मे स्थित है और सब देवगण भी उसके साथ मे विद्यमान रहा करते हैं ॥६३॥

व्यक्तमव्यक्तयोग मामवगच्छासुरद्विषम् ।
अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव तारकः ॥६४
परस्त्रिवर्गादोङ्कारस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः ।
एवमादिपुराणेशो वदन्नेव महामतिः ॥६५
वक्त्रमाहृतवानाशु मार्कण्डेय महामुनिम् ।
ततो भगवतः कुक्षि प्रविष्टो महामुनिम् ॥६६
स तस्मिन् सुखमेकान्ते शुश्रूषुहँसमव्ययम् ।
योऽहमेव विविधतनुं परिश्रितो महार्णवे व्यपगयचन्द्रभास्वरे ।
शनैश्चरन् प्रभुरपि हंससंज्ञितोऽसृजं जगद्विरहितकालपर्यये ॥६७

व्यक्त–अव्यक्त योग वाला—असुरों का द्वेष्टा मुझको ही समझ लो। एकाक्षर और तीन अक्षरों वाला तारक मन्त्र भी मेरा ही एक स्वरूप है ॥६४॥ त्रिवर्ग से पर ओङ्कार और त्रिवर्ग के अर्थ का निदर्शन-महामुनि आदि पुराणेशने इस प्रकार से महामुनीश्वर मार्कण्डेय से कहते हुए ही अपना मुख आह्वन कर दिया था और इसके उपरान्त वह मुनि श्रेष्ठ उनकी कुक्षि में प्रविष्ट हो गये थे ॥६५, ६६॥ वह उसमें एकान्त में सुख पूर्वक अविनाशी हंस का श्रवण करने वाले होकर कुक्षि में सञ्चरण करते हैं। जो यह मैं ही नाना भाँति वाले तनुओं का परिश्रम करके इस महार्णव में जिसमें सूर्य और चन्द्र आदि सभी व्यपगत हैं हंस की संज्ञा वाला प्रभु भी धीरे २ चरण करता हुआ विरहित काल पर्यन्त में इस जगत् का सृजन मैंने ही किया है ॥६८॥

तन्त्र महाविज्ञान

लोक मे व्याप्त विभिन्न प्रकार के तन्त्र सम्बन्धी भ्रमो को दूर करने और तांत्रिक विषयो का जनोपयोगी बौद्धिक व वैज्ञानिक विश्लेषण करने वाली वर्षों की अथक खोज का परिणाम, दो खण्डो में प्रकाशित यह पुस्तक मौलिक सूझ बूझ से ओत प्रोत है। जनसाधारण मे फैले उपेक्षा भाव को यह आकर्षण मे परिवर्तित कर देगी, ऐसा हमारा विश्वास है क्योंकि तन्त्र एक उच्चकोट की वैज्ञानिक साधना प्रणाली है जिसकी सहायता से साधक भौतिक व आत्मिक दोनो क्षेत्रो मे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त कर सकता है।

प्रथम खण्ड मे तन्त्र की महत्ता, प्रमाणिकता, प्राचीनता, गोपनीयता उसके अर्थ, सिद्धान्त, भाव, आचार व पूजा पर प्रकाश डाला गया है। पञ्चमकारों की तथाकथित घृणित साधनाओं का वास्तविक रहस्य समझाया गया है। शक्तिपात, नाद, बिन्दु, कला, मन्त्र, वर्ण, मातृका, मन्त्र, बीजाक्षर आदि विषयो का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण किया गया है जिसमे तन्त्र की वैज्ञानिकता पर कुछ भी सन्देह नही रह जाता।

दूसरे खण्ड मे शक्ति साधना के विश्वव्यापी प्रसार, इतिहास, विस्तार, दार्शनिक रूप, तात्विक विवेचन व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर खोजपूर्ण सामग्री दी गई है। वेद, उपनिषद्, पुराण योग वसिष्ठ, महाभारत, गीता, आरण्यक वेदान्त व सांख्य में प्राप्य शक्ति की महत्ता का दिग्दर्शन किया गया है। दुर्गा, लक्ष्मी, काली, सरस्वती व दस महाविद्याओ काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमाता, भैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातङ्गी और कमला के स्वरूप व साधना विधानो का विशद वर्णन किया गया है जिससे साधक इच्छित तान्त्रिक सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है।

इस तरह से तान्त्रिक विषयो का वैज्ञानिक प्रतिपादन और साधना विधान दोनो इनमें आ गये हैं जिससे ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय बन गया है।

मूल्य २ खण्ड १५) मात्र

प्रकाशक · संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली (उ० प्र०)